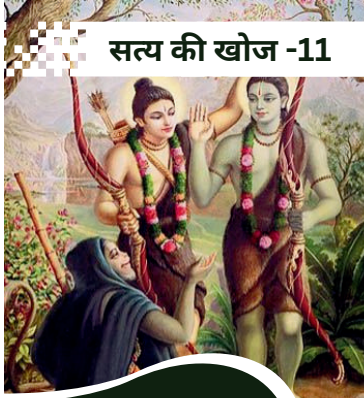






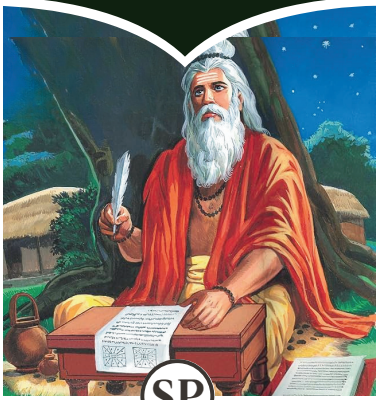
सत्य की खोज -11

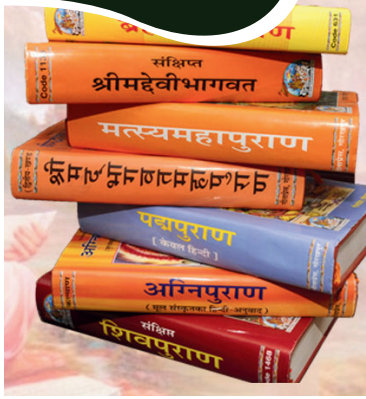
रामायण, महाभारत एवं मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थों के प्रति भ्रांतियां

डॉ. डी. के. गर्ग

M.Com., F. C. A., M.B.A., L.L.B., M.I.P.L.,
LL.M., Ph.D., LL.D., D.Litt







SP

SATELLITE PRAKASHAN

रामायण, महाभारत एवं मनुस्मृति
आदि धर्मग्रन्थों के प्रति भ्रांतियां

डॉ. डी. के. गर्ग

शिक्षाविद्, लेखक एवं सामाजिक कार्यकर्ता
एम.कॉम., एफ.सी.ए., एम.बी.ए., एल.एल.बी., एल.एल.एम.
एम.आई.पी.एल., पी.एच.डी., एल.एल.डी., डी.लिट्

सैटेलाइट प्रकाशन,
नई दिल्ली

रामायण, महाभारत एवं मनुस्मृति

आदि धर्मग्रंथों के प्रति भ्रांतियां

© डॉ. डी. के. गर्ग
एम.कॉम., एफ.सी.ए., एल.एल.बी., एम.बी.ए., एल.एल.एम.,
एम.आई.पी.एल., पी.एच.डी., एल.एल.डी., डी.लिट.

प्रथम संस्करण: 2025
ISBN: 978-81-989986-7-5

प्रकाशक
सैटेलाईट प्रकाशन
120, हंस भवन, नई दिल्ली 110002

आवरण
भावना सिंह

शब्द संयोजन
ओम ग्राफिक्स
गाजियाबाद-201002

मुद्रक
सूर्या प्रिन्टपैक
गाजियाबाद-201001

मूल्य : रु 600/-

दो शब्द

महाभारत काल के बाद पाखंड की शुरुआत हुई और पौराणिक ग्रन्थ लिखे जाने लगे, इसके अतिरिक्त वेद आदि धर्मग्रंथो के गलत भाष्य प्रस्तुत किये जाने लगे और लम्बे समय तक मुगलो के शासन, अंग्रेजो के शासन ने इसमें और बढोत्तरी हुई। आजकल के अनेको कथावाचक भी इसी असत्य के प्रचार प्रसार में लगे हुए है, जो अत्यंत दुखद है।

वेदों के गलत भाष्य–वेद विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है, विश्व में इससे पुराना कोई ग्रन्थ व पुस्तक नहीं है। वेद कहाँ से आये हैं? कुछ मान्यता है कि वेद भारत में उत्पन्न हुए हैं, लेकिन यह मान्यता सही नहीं है, क्योंकि वेद अपौरुषीय है, वेदों को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, बल्कि यह मन्त्रों के रूप में सूक्ष्म रूप से ब्रह्माण्ड में विद्यमान है, इनको ईश्वरकृत माना जाता है। प्राचीन ऋषियों ने वेदों के मन्त्रों का ध्यान की अवस्था में साक्षात्कार किया और उन मन्त्रों को लिखित रूप में दिया।

वेद की भाषा देव भाषा है जिसे आज के परिवेश में वैदिक संस्कृत कहा जा रहा है। वैदिक संस्कृत में रचित ये ग्रंथ संस्कृत साहित्य की सबसे पुरानी परत हैं इसको धार्मिक ग्रन्थ इसलिए कहते हैं क्योंकि यह हिंदू धर्म के सबसे पुराने ग्रंथ हैं। जब हम वेद की बात करते हैं तो इसका मतलब चार वेदों से है। वेद चार हैंः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। जो ईश्वरोक्त, सत्य विद्याओं से युक्त ऋग्संहितादि चार पुस्तकें हैं, जिनसे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, उनको 'वेद' कहते हैं।

सायण और महीधर आदि जैसे वेद भाष्यकारों के वेदों की व्याख्या को गलत समझने के कई कारण हैं। वेदों में मांसभक्षण और पशुबलि का विधान नहीं है, बल्कि कुछ भाष्यकारों ने वेदों का अर्थ गलत तरीके से किया है, जिससे यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे विद्वानों ने वेदों का सही अर्थ बताने की कोशिश की है, लेकिन कुछ लोग अभी भी सायण और महीधर के भाष्य को सही मानते हैं।

वेदों के गलत भाष्य के कारणः कुछ पाश्चात्य विद्वानों द्वारा संस्कृत व्याकरण ज्ञान के अभाव में और वाममार्ग से प्रभावित मैक्समूलर और ग्रिफिथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों का गलत अर्थ किया और उन्हें पशुबलि और माँसाहार का समर्थन करने वाला माना,

जिससे यह भ्रम फैला कि वेदों में पशुबलि और माँसाहार का विधान है। जबकि वेदों में पशुबलि और माँसाहार का कोई विधान नहीं है। वेदों में प्रकृति के सम्मान, जीवन के महत्व और सभी प्राणियों के साथ प्रेम का संदेश है। वेदों में कोई इतिहास नहीं है परन्तु ये बताने की कोशिश हुई है कि वेद मई गंगा नदी और इतिहास भी है।

वेदों का सही अर्थ समझने के लिए हमें गलत भाष्य को त्यागकर सही भाष्य का अध्ययन करना चाहिए। स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे विद्वानों ने वेदों का सही अर्थ बताने की कोशिश की है, और उनके भाष्य को सही माना जाता है। इस पुस्तक में कुछ मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है ताकि वेदों के प्रति दुष्प्रचार खत्म किया जा सके। आर्यावर्त का गौरव और इतिहास जिन ग्रन्थों में आज भी सुरक्षित हैं उनमें वेद, उपनिषद, मनुस्मृति, रामायण, दर्शन शास्त्र, और महाभारत आदि प्रमुख हैं। जितना प्राचीन यह देश है उतना ही प्राचीन और विस्तृत इस देश का साहित्य और संस्कृति है। अतः हमें केवल मिलावटी ग्रन्थ छोड़कर वास्तविक वैदिक धर्मग्रंथ का अध्ययन करना चाहिए।

रामायण और महाभारत के प्रति दुष्प्रचार और भ्रांतिया – यहाँ समय–समय पर अनेकों महापुरुषों का जन्म हुआ है परन्तु जिन दो महापुरूषों के जीवन में भारत के इतिहास, संस्कृति, साहित्य और उनकी परम्पराओं को सबसे अधिक प्रभावित किया है वे थे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम तथा योगेश्वर श्री कृष्ण।

राम और कृष्ण मानवीय संस्कृति के आदर्श पुरुष हैं। कुछ बंधुओं के मन में अभी भी यह धारणा है कि महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज राम और कृष्ण को मान्यता नहीं देता है। प्रत्येक आर्य अपनी दाहिनी भुजा ऊँची उठाकर साहसपूर्वक यह घोषणा करता है कि आर्यसमाज राम–कृष्ण को जितना जानता और मानता है, उतना संसार का कोई भी आस्तिक नहीं मानता। कुछ लोग जितना जानते हैं, उतना मानते नहीं और कुछ विवेकी–बंधु उन्हें भली प्रकार जानते भी हैं, उतना ही मानते हैं।

श्री राम और श्री कृष्ण को माध्यम बनाकर रचा गया भारतीय ग्रन्थ बड़ा विशाल है। बौद्ध साहित्य में भी राम कथा का वर्णन हुआ है। वहाँ जातक कथाओं में राम कथाओं से सम्बन्धित दशरथ जातक, अनामांक जातक और दशरथ कथानक नामक तीन जातक कथायें उपलब्ध हैं। पर इन तीनों जातकों की घटनायें रामायण से भिन्न हैं। जैन परम्परा में भी राम कथा से सम्बन्धित ग्रन्थ मिलते हैं। जैन परम्परा के अनुसार राम का मूल नाम 'पदम' था। बौद्ध साहित्य की अपेक्षा जैन साहित्य में राम कथा का अधिक विस्तार हुआ है। जैन आचार्यों ने राम कथा को अपने धर्म के विशिष्ट दर्शन, साधना, उपासना के सिद्धान्तों से अनुप्राणित कर प्रस्तुत किया है। विविध भारतीय भाषाओं में भी राम कथा से सम्बन्धित अनेकों साहित्य लिखे गये हैं। जिनमें मुख्यतः मराठी तेलगू, तामिल, हिन्दी, बंगला और उड़िया भाषाओं में हैं।

विभिन्न कवियों ने श्री राम और श्री कृष्ण के चरित्र को अपनी–अपनी तरह से काव्य की भाषा में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग करते हुए प्रस्तुत किया है। इसके कारण समय–समय पर वास्तविक कथा का स्थान काल्पनिक चित्रण ने ले लिया और श्रद्धावश अलंकारिक भाषा को ही स्वीकार कर लिया और वास्तविक कथा विलुप्त होती चली गयी। इसके अतिरिक्त रामायण आदि में समय–समय पर मिलावट का प्रयास किया गया, इसके फलस्वरूप रामायण में 'उत्तरकाण्ड' बाद में जोड़ा गया और इसमें आधारहीन कथानक डाल दिये गये। एक और बात ध्यान देने योग्य है कि जिस तरह से रामकथा और कृष्णकथा का विस्तार होता चला गया उसी तरह इसका स्वरूप बिगड़ता चला गया। "जितने मुँह उतनी बातें", जितने रचयिता उतनी ही रामकथा के रूप और बची–कुची कसर कथाकारों और टी0वी0 धारावाहिकों में लच्छेदार कथायें सुनाकर पूरी कर दी। उन्होंने पूरा ही अर्थ का अनर्थ कर दिया और श्री राम एवं श्री कृष्ण के जीवन चरित्र को उपहास का पात्र बना दिया।

राम दिग्विजयी थे, किन्तु साम्राज्यवादी नहीं। कालिदास ने रघुवंश में रघुकुल की परम्परा का विवेचन करते हुए लिखा है– "आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचाभिव" अर्थात् जिस प्रकार मेघ पृथ्वी से जल लेकर वर्षा द्वारा उसी को लौटा देते हैं, उसी प्रकार सत्पुरुषों का लेना भी देने –लौटाने के लिए होता है। इसी नीति का अनुसरण करते हुए बालि से किष्किन्धा का राज्य जीत कर, अपने राज्य में न मिला कर, उसके भाई सुग्रीव को दे दिया और लंका पर विजय प्राप्त करके उसका राज्य रावण के भाई विभीषण को सौंप दिया।

कुछ भ्रान्तियाँ ऐसी हैं जो अन्यथा निर्दोष प्रतीत होने पर भी तथ्य के विपरीत होने से इतिहास की कोटि में न आने से उपेक्षणीय नहीं हैं। परन्तु कुछ ऐसी निराधार बातें भी हैं जो रामायण के पात्रों, विशेषतः श्री राम, को कलंकित करने के अतिरिक्त सारे समाज और देश के लिए अभिशाप बन गई हैं।

रामायण के राम के बाद महाभारत के श्री कृष्ण एक योगी राज और कुशल राजा के रूप में हमेशा जाने जायेंगे जिन्होंने बड़ी कुशलता से महाभारत के युद्ध को निर्णायक मोड़ तक पहुँचाया और इस दौरान अर्जुन को जो उपदेश दिया वह आज भी गीता के उपदेश के रूप में विश्वविख्यात हैं। परन्तु इसका दुखदः पहलु भी रामकथा की भांति हुआ है, जिसको कथाकारों ने और कवियों ने अपने–अपने ढंग से तोड़–मरोड़ कर पेश किया और कृष्ण की छवि माखन चोर और गोपियों से रासलीला के रूप में प्रस्तुत कर एक महापुरूष के साथ अन्याय किया गया। इसी तरह गीता का मूल उपदेश चूँकि संस्कृत भाषा में दिया गया था उसके भी अनेकों अर्थ अपनी–अपनी तरह से प्रकाशित करके अर्थ का अनर्थ कर दिया।

रामायण और महाभारत में किसी पात्र का उपनाम नही है। जैसे राम के नाम के साथ, न तो सिंह जुड़ा है, न लाला, न ही चौधरी दशरथ जी के नाम के साथ ना तो सिंह जुड़ा है, ना चौधरी, ना ठाकुर और न ही अन्य कुछ यहां तक कि रामायण को लिखने वाले बाल्मीकि जी के नाम के साथ भी कोई उपनाम नही जुड़ा है।

महाभारत के किसी भी पात्र, श्री कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर, भीष्म, कुंती, सजंय, विदुर, के साथ भी कोई उपनाम नहीं है। इससे यही सिद्ध होता है कि उपनाम सामाजिक विकृति है, जो ऊंच–नीच के भेद के कारण एवं विधर्मियों द्वारा हिन्दू समाज को तोड़ने हेतु कालांतर में उत्पन्न हुई है।

महाभारत ग्रंथ में हमें कुरु वंश के आंतरिक कलह की जानकारी देते हुए यह स्पष्ट करता है कि यदि परिवार और राष्ट्र आंतरिक कलह के शिकार हो जाते हैं तो उनका पतन हो जाता है। तब महाभयंकर विनाश मानवता को झेलना पड़ता है । अंतिम निष्कर्ष यह है कि परिवार से लेकर राष्ट्र तक में शांति व्यवस्था स्थापित रहनी चाहिए। जो परिवार विरोधी, समाज विरोधी तथा राष्ट्रविरोधी मानसिकता के लोग हैं उनका सही समय पर उपचार होता रहना चाहिए। दूसरी शिक्षा ये मिलती है कि किसी भी 'भीष्म' को ऐसी 'भीष्म प्रतिज्ञा' नहीं लेनी चाहिए जिसका लाभ किसी 'दुर्योधन' को मिले और अंत में किसी धर्मराज 'युधिष्ठिर' को वनवास में जाकर 'महाभारत' के माध्यम से अपना राज्य वापस लेना पड़े। आवश्यकता होने पर मौन रहने वाली गांधारी को आंखों पर पट्टी बांध कर अंधी बने रहने की सजा इतिहासकारों ने उसे दे दी। किसी भी विवाद को समय पर हल करना अत्यंत बुद्धिमानी है और ऐसे समय मौन रहना या अनावश्यक तटस्थ रहने का भाव भी कई बार घातक सिद्ध होता है। 'महाभारत' से शिक्षा मिलती है कि सत्य परेशान हो सकता है, पराजित नहीं।

इस पुस्तक में मुख्यतः चार विषयों पर विस्तृत चर्चा की गयी हैं–

1. रामायण कथा सम्बन्धित भ्रान्तियाँ और निवारण
2. महाभारत कथा सम्बन्धित भ्रान्तियाँ और निवारण
3. वेदों से सम्बन्धित भ्रान्तियाँ और निवारण
4. मनुस्मृति से सम्बन्धित भ्रान्तियाँ और निवारण

इसमें रामायण और महाभारत से सम्बन्धित विभिन्न पात्रों के वास्तविक चित्रण को विभिन्न विद्वानों तथा प्रमाणिक साहित्य को आधार मानकर सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ताकि झूठी और गप्प कथाओं को समाप्त किया जा सके। सबसे दुखदः पहलू यह है कि अब दिन–रात प्रचार माध्यमों (पत्र–पत्रिकाओं, दूरदर्शन, आकाशवाणी आदि) तथा निहित स्वार्थों के कारण राजनीतिक दलों के प्रचार के कारण

यह बातें जगजाहिर हो गई हैं। ऐसी कतिपय भ्रान्तियों का निराकरण करने के लिए ही यह छोटी–सी पुस्तक लिखी गई है। जिस पर आपको विचार करने की जरुरत है, लेखक का अपना कोई अन्य उद्देश्य नहीं है।

आर्य समाज के कुछ नियम हैं –जैसे कि

- वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेदों को पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
- सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
- अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

जिनसे प्रभावित होकर इस पुस्तक के संपादन की इच्छा हुई जिसमे प्रमुख विद्वानों के लेखों की भी मदद ली गयी है। असत्य ज्ञान को सत्य मान लेना मिथ्या ज्ञान की श्रेणी में आता है यानि जो वस्तु जैसी है नहीं उसको वैसी मान लेना मिथ्या ज्ञान है इसी को भ्रान्त प्रतीति कहते हैं। जैसे शरीर अनित्य है, आत्मा नित्य है, शरीर चल है, आत्मा अचल है, जब शरीर को आत्मा मान लेना अथवा आत्मा को शरीर मान लिया जाए यह मिथ्या ज्ञान है। जीव को ब्रह्म बताने वाले मिथ्या ज्ञानी हैं। इसी प्रकार शिवलिंग को ईश्वर मानकर पूजा करना मिथ्या ज्ञान है, भ्रांत प्रतीति है। वह सत्य है ही नहीं। अज्ञान अंधकार है। अर्थात लोग अज्ञान के अंधकार में डूबे हुए हैं। इसका ईश्वर की पूजा, आराधना, उपासना से दूर–दूर तक भी कोई संबंध नहीं है।

कई सहस्त्र वर्षों से भारतीय समाज रामायण को बड़े ही श्रद्धाभाव से मानता और सुनता चला आया है । इस समय मुख्य रूप से दो ग्रंथ प्रचलित हैं वाल्मिकी मुनि कृत रामायण और तुलसीदास कृत रामचरितमानस, रामायण भी कई प्रकार की मिलती हैं जिनकी कथाओं में थोड़ा–थोड़ा भेद मिलता है। परंतु मुख्य रूप से रामचरितमानस का प्रभाव इस समय मानव समाज पर अधिक है । ऐसा इसलिए क्योंकि तुलसीदास ने वाल्मिकी रामायण के वास्ताविक शब्दों के अर्थ न पकड़कर उनकी सर्वथा उपेक्षा ही की और कई चमत्कारों और काल्पिनक बातों को रामायण के पात्रों से जोड़कर इसे अविश्वसनीय बना दिया है। परिणाम ये हुआ कि लोग रामायण को मात्र तीर, भालों, बर्छों से लड़ा गया एक जंगली लोगों के युद्ध से अधिक और कुछ नहीं मानते। और जो हिन्दू समाज रामायण का पाठ बड़े श्रद्धाभाव से सुनते हैं उनके लिए भी राम मात्र पाप मुक्ति और पूजा पाठ करके मूर्तियों पर फूल माला फेरने तक ही सीमित हैं और वामपंथी, नास्तिक, ईसाई, मुसलमान आदि तो रामायण को इन्हीं ऊटपटांग बातों के कारण हेय दृष्टि से देखकर तिरस्कार तक करते हैं । चमत्कारों और अतार्किक विज्ञान विरुद्ध प्रसंगों को आधार बनाकर तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखकर राम का महत्व बढ़ाने के बजाए घटा अवश्य दिया है। जैसा कि कहते हैं कि यदि हमें किसी परिवार

की पीढ़ियों के इतिहास का पता लगाना हो तो हमें उस परिवार के सबसे वृद्ध व्यक्ति से वो इतिहास पूछना पड़ेगा न कि उस परिवार के पाँच वर्षीय बालक से । ठीक वैसे ही राम चरित्र के वास्ताविक रूप को जानने हेतु हमें राम युग के वाल्मिकी मुनि की रामायण का आश्रय लेना होगा न कि मात्र 600 वर्ष पूर्व तुलसीकृत रामचरितमानस का। जब तक रामायण का वह विज्ञान सम्मत और तर्कसम्मत स्वरूप जनता के सामने प्रस्तुत नहीं किया जायेगा तब तक लोग इसे केवल एक भक्तिग्रंथ मानकर अकर्मण्य ही बने रहेंगे। हमारे कथावचकों ने भी श्रीराम जी के स्वरूप को इतना विकृत करके अत्यंत क्षमाशील और शत्रुओं को अभयदान देने वाले एक मोम के ढेले जैसा बनाकर प्रस्तुत किया है।

रामायण त्रेतायुग के महायुद्ध का एक अद्भुत इतिहास है जिसके आधार पर लोगों का युद्ध के कर्तव्य, राष्ट्रप्रेम, दृढ़ता, राजनीति, शत्रुदमन आदि शिक्षाओं से रक्त गर्म होना चाहिए था और श्रीराम एक महाबली प्रखर योद्धा थे । बजाए इसके राम, लक्षमण और सीता जी की मूर्तियाँ स्थापित करके उनकी फूल माला करके पापमुक्ति, पैसा कमाना ही प्रयोजन बनकर रह गया और रामायण का वह विशुद्ध स्वरूप जनता के समझ में न आ पाया। रामायण की घटनाओं का तार्किक वर्णन प्रस्तुत करने पर ही वास्ताविक इतिहास पता लग सकता है । इसी कारण हम यहाँ रामायण की कुछ घटनाओं का तार्किक और विज्ञान सम्मत पक्ष यहाँ प्रस्तुत करेंगे जैसा कि वाल्मिकी मुनि के मन्तव्य के आधार पर है।

(1) श्रीराम चन्द्र और लक्ष्मण जी का व्यक्तित्व :– जैसा कि तुलसीदास ने अपनी रामचरितमानस में बहुत सी चमत्कारिक घटनाओं को श्रीराम जी के जीवन के साथ जोड़कर उनके कर्तव्यपरायण स्वरूप को छिपा दिया है, वाल्मिकी मुनि की रामायण के अनुसार श्रीराम और लक्ष्मण जी आर्यवर्त (भारत) में ऐसे महाबली योद्धा राजकुमार हुए हैं कि अनेकों राज्यों के राजकुमारों की चमक उनके सामने फीकी थी, ये दोनों राजकुमार समस्त अस्त्रशस्त्र विद्या में निपुण थे सभी प्रकार के राजनैतिक दाँव पेंच और कूटनीति में निपुण थे ये सब विद्या इन्होंने वशिष्ठ और विश्वामित्र जी से गुरुकुलों में प्राप्त की थी। पृथ्वी के बड़े भू–भाग पर राजा राम के रघुवंशीयों का ही चक्रवर्ती शासन था, और राजधानी अयोध्या को आज के उत्तर प्रदेश के छोटे से शहर अयोध्या से तुलना नहीं करनी चाहिए ।

(२) रामायण का प्रगत युग :– ये पश्चिमी लोगों की मान्यता है कि युग जितना पुराना हो उसके लोग उतने ही अप्रगत, अशीक्षित, जंगली और बर्बर ही होने चाहिए। ऐसा वे डारविन के सिद्धांतों के आधार पर कहते हैं कि मानव जंगली अवस्था से विकसित होता गया और उन्नति करता गया । परन्तु वैदिक परम्परा इसके विपरीत है, जब मनुष्य रचना हुई तो वह साक्षात ईश्वर के सान्निध्य में अत्यंत विज्ञानयुक्त थे और रूप में सुंदर और अत्यंत बुद्धि और बल से सम्पन्न थे, समय के साथ ह्रास होता गया

और मानव वेद की उच्च शिक्षा से दूर होता गया, सम्प्रदायों में बँटता गया और ऐसे ही मानव सभ्यता ह्रासभाव को प्राप्त हुई । ठीक इसीलिए रामायण कालीन युग आज की तुलना में अत्यंत प्रगत था । जितने दिव्यास्त्रों के नाम हम सुनते हैं वे सब विज्ञान की यांत्रिक रचनाओं के परिणाम हैं, और बहुत बार रामायण में प्रयोग किया जाने वाला शब्द विमान भी इसकी साक्षी देता है । क्योंकि शब्द बिना किसी अर्थ के नहीं होता है, पदार्थ के अस्तित्व में ही उसके शब्द का प्रयोग होता है ।

(3) बाली–सुग्रीव बंदर नहीं थे :– वर्तमान में सभी बाली–सुग्रीव, हनुमान जी को बंदर ही समझते हैं और उनकी पूँछ और बंदर का मुख उनके चित्रों पर लगा देते हैं, वास्तव में वानर जंगलों में रहने वाली क्षत्रियों की शाखा थी, और इसी कारण उनके मुख पर ऐसी रंगों से आकृति बनाई जाती थी, ठीक वैसे ही जैसे कि आज के आदिवासी लोग अफ्रीका के जंगलों में बनाते हैं । लेकिन इस अर्थ को न समझकर हमारे कथाकारों ने इनको मानव से बंदर ही बना डाला । जैसे दूसरे विश्वयुद्ध में अफ्रीका के रेगिस्तान में जर्मन और इंग्लैंड की सेना में भयंकर युद्ध हुआ था । जिस कारण इनको Desert Rats कहा जाता था, यदि आज से लगभग हजार वर्ष बाद इस युद्ध का इतिहास लिखा जायेगा और कोई ये लिखे कि जर्मन ने चूहों की सेना खड़ी की ! तो ये कितना हास्यास्पद लगेगा ? ठीक वैसे ही हास्यास्पद है बाली सुग्रीव को बंदर कहना ।

मनुस्मृति के प्रति गलत प्रचार – मनुस्मृति का नाम सुनते ही कुछ लोग मनु के प्रति विपरीत प्रतिक्रिया देना आरम्भ कर देते है। सच्चाई यह है कि इन लोगों ने कभी मनुस्मृति को पुस्तक आकार में देखा। मनुस्मृति में क्या बाद मे मिलाया गया है और क्या मनुस्मृति का असली हिस्सा है यह जानने के लिए डाक्टर सुरेन्द्र जी द्वारा संपादित मनुस्मृति पढ़ें।

1. मनु स्मृति सृष्टि के प्रथम आदि राजा मनु द्वारा रचित प्रथम संविधान है।

2. मनुस्मृति पर सबसे बड़ा आक्षेप जातिवाद को समर्थन देने का लगता है। जबकि सत्य यह है कि मनुस्मृति जातिवाद नहीं अपितु वर्ण व्यवस्था की समर्थक है। वर्ण का निर्धारण शिक्षा की समाप्त होने के पश्चात निर्धारित होता था न कि जन्म के आधार पर होता था। मनु के अनुसार एक ब्राह्मण का पुत्र अगर गुणों से रहित होगा तो शूद्र कहलायेगा और अगर एक शूद्र का पुत्र ब्राह्मण गुणों वाला होगा तो ब्राह्मण कहलायेगा। यही व्यवस्था प्राचीन काल में प्रचलित थी। प्रमाण रूप में मनुस्मृति 9/335 श्लोक देखिये। शरीर और मन से शुद्ध– पवित्र रहने वाला, उत्कृष्ट लोगों के सानिध्य में रहने वाला, मधुरभाषी, अहंकार से रहित, अपने से उत्कृष्ट वर्ण वालों की सेवा करने वाला शूद्र भी उत्तम ब्रह्म जन्म और द्विज वर्ण को प्राप्त कर लेता है।

3 मनुस्मृति पर एक बड़ा आक्षेप नारी जाति को निम्न दर्शाने का लगता है। सत्य

यह है कि मनुस्मृति नारी जाति को पुरुष के बराबर नहीं अपितु उससे श्रेष्ठ मानती है। संसार की कोई भी धर्म पुस्तक में ऐसा मनु के विषय में विधान नहीं है। प्रमाण रूप में मनुस्मृति 3/56 श्लोक देखिये। जिस समाज या परिवार में स्त्रियों का आदर–सम्मान होता है, वहां देवता अर्थात् दिव्यगुण और सुख– समृद्धि निवास करते हैं और जहां इनका आदर–सम्मान नहीं होता, वहां अनादर करने वालों के सभी काम निष्फल हो जाते हैं भले ही वे कितना ही श्रेष्ट कर्म कर लें, उन्हें अत्यंत दुखों का सामना करना पड़ता है।

4 मनुस्मृति पर एक अन्य आक्षेप यह है कि मनुस्मृति पशु हिंसा की समर्थक है। यह भी एक भ्रान्ति है। मनुस्मृति 5/15 का प्रमाण देखिए। अनुमति देने वाला, शस्त्र से मरे हुए जीव के अंगों के टुकड़े–टुकड़े करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने या लाने वाला और खाने वाला यह सभी जीव वध में घातक/हिंसक होते हैं।

5. मनुस्मृति हमें धर्म–अधर्म, पञ्च महायज्ञ, चतुर्थ आश्रम व्यवस्था, समाज व्यवस्था के विषय में मार्गदर्शन करता है। इसलिए वह आज भी प्रासंगिक है।

वर्तमान मनुस्मृति में 2685 श्लोकों में से 1471 श्लोक मिलावटी और 1214 श्लोक ही मौलिक हैं। यही मिलावटी श्लोक मनु स्मृति के विषय में भ्रांतियों का कारण है। इसलिए इन मिलावटी श्लोकों को हटाकर सत्य श्लोकों को स्वीकार कीजिये। डॉ अम्बेडकर द्वारा मिलावट किये हुए 1471 श्लोकों में से 88 प्रतिशत श्लोकों का प्रयोग अपने लेखन में हुआ है। इससे यही सिद्ध होता है कि डॉ अम्बेडकर की मनुस्मृति के विषय में मान्यताएं मिलावटी अशुद्ध मनुस्मृति पर आधारित है।

श्री कृष्ण के चरित्र पर असभ्य दाग लगाने का कार्य –कृष्ण एक महान वैज्ञानिक, युग प्रवर्तक, योगेश्वर, भगवान महापुरुष, शब्द कम पड़ जाएंगे यदि कृष्ण की महानता को बयां किया जाए तो वह कृष्ण जिसने सब कुछ हारे हुए पांडवों को विश्व का चक्रवर्ती सम्राट बना दिया, वह कृष्ण जिसने गीता का ज्ञान दिया, वह कृष्ण जिसने सुदर्शन जैसे शस्त्र को धारण किया। हाय! क्या दुर्दशा कर दी इस महान महापुरुष की इन पोंगे पुजारियों ने पौराणिक वादियो ने दुष्टों ने। इस महान महापुरुष को राधारमण, छलिया, माखन चोर, वेणुगोपाल, लड्डू गोपाल, वस्त्र चुराने वाला, ना जाने क्या–क्या बोल दिया। आजकल राधा कृष्ण के नाच दिखाने और अश्लील गीत गाने का प्रचलन चल पड़ा है। जबकि कृष्ण के चरित्र को बताने वाली भागवत में कहीं भी राधा का नाम नहीं हैं।

मित्रों, मानव का परम कर्तव्य है की मिथ्याज्ञान, अज्ञान अंधकार से जल्दी से जल्दी बाहर निकले और यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति करे। मिथ्या ज्ञान से मनुष्य महा पापी और पतित होता है क्योंकि जो जीव को ब्रह्म बतलाते हैं, वे अविद्या निद्रा में सोते होते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश यह मिथ्याज्ञान के पांच क्लेश हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न ग्रन्थों एवं विभिन्न स्त्रोतों से उपलब्ध लेखों स्वाध्याय के आधार पर एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया है । जिसके आधार पर अलग–अलग विषय वस्तु को सरल भाषा में प्रस्तुत करके गूढ़ विषय को भी आसानी से समझा जा सके।

इस पुस्तक के लेखन में विभिन्न विद्वानों का मार्गदर्शन समय–समय पर प्राप्त होता रहा है। जिनमें, डॉ. जयेन्द्र आचार्य (नोएडा), रंजीत आर्य (पंजाब), मदन रहेजा जी (मुम्बई), श्री मनमोहन आर्य (देहरादून), एवं श्री यशपाल यश (जयपुर) तथा पूर्व राजदूत श्री विद्यासागर वर्मा, डॉ. मुमुक्षू आर्य (एम.डी. नोएडा), विश्वप्रिय आर्य (गुजरात), चार्टर्ड अकाउंटेंट श्री राजेश्वर सरन सिंघल (गजियाबाद) का हार्दिक रूप से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के कार्य में यथाःसम्भव मार्गदर्शन प्रदान किया। और अन्त में, मैं अपने सहयोगी प्रो0 बी0 प्रसाद, अनुपमा रावत, निशि कुमारी, भावना सिंह, शंकर पाण्डा, अजय कुमार यादव आदि का आभार करता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में यथा सम्भव सहयोग दिया। इनके अतिरिक्त विशेष रूप से मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती नीतू गर्ग, अनुज वेद प्रकाश, प्रिय पुत्रगण डॉ. तुषार आर्य और डॉ. अमन आर्य का भी आभारी हूँ जो समय–समय मेरी मदद करते रहे, जिन्होंने इस कार्य में हमेशा सहयोग दिया है।

मनुष्य एक अल्पज्ञ प्राणी है, हो सकता है कि कोई त्रुटि रह गई हो। इसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। मुझे आपके सुझावों का हमेशा इन्तजार रहेगा। इसके सभी लेख वैदिक, वैज्ञानिक एवं प्रमाणिक हैं। परन्तु मनुष्य अल्पज्ञ है और अनजाने में कोई त्रुटि यदि रह गयी है तो मानवीय भूल समझकर कृप्या क्षमा करें, आर्शिवाद बनाये रखें तथा अवगत कराने की कृपा करें। आपकी दया का जीवन भर सहृय आभारी रहूँगा तथा आपकी अति कृपा होगी।

डॉ. डी. के. गर्ग

शिक्षाविद्, लेखक एवं सामाजिक कार्यकर्ता

एम.कॉम., एफ.सी.ए., एम.बी.ए., एल.एल.बी., एल.एल.एम.

एम.आई.पी.एल., पी.एच.डी., एल.एल.डी., डी.लिट्

सम्पर्क सूत्र – 9873807011

वर्ष - 2024

नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

भाग-1
रामायण कालीन वैदिक संस्कृति

रामायण कथा सम्बन्धित भ्रांतियाँ और निवारण 3

अध्याय-1 मर्यादा पुरूषोत्तम राम 8

अध्याय-2 माता-सीता 39

अध्याय-3 हनुमान जी महाराज 55

अध्याय-4 दशानन रावण 69

अध्याय-5 अन्य पात्र 76

- राजा जनक 76
- अंगद का पांव 79
- जामवंत रीछ (भालू) 80
- जटायु 80
- कुम्भकरण की छह महीने सोने की कहानी 81
- सूपर्णखां की नाक काटना 82
- मेघनाथ 84
- विश्वामित्र 85
- रामायण कथा में गिलहरी और उसके शरीर पर तीन रेखाएं होने की बात 86

अध्याय-6 लक्ष्मण 89

- लक्ष्मण और उनका चरित्र 89

- रामायण में वर्णित लक्ष्मण रेखा की सच्चाई 89
- लक्ष्मण ने किसे मूर्छित किया 92

अध्याय–7 महर्षि बाल्मीकि 96

- क्या तुलसी की रामायण प्रामाणिक रामायण ग्रंथ हैं ? 99

अध्याय– 8 सिख पंथ में राम के प्रति आस्था 107

भाग–2
महाभारत से संबंधित भ्रांतियाँ

महाभारत का युद्ध और उससे प्रेरणा 115

अध्याय–1 योगीराज श्रीकृष्ण जी महाराज 121

- कृष्ण जी का उपदेश 144

अध्याय–2 द्रौपदी 157

अध्याय–3 अर्जुन 176

अध्याय–4 महाभारत का कर्ण 177

अध्याय–5 भीष्म पितामह 184

- उत्तरायण–दक्षिणायण 191

अध्याय–6 अन्य पात्र 195

- एकलव्य 195
- गांधारी 198
- शकुनि 206
- धृतराष्ट्र 210
- धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म 211
- भीम 213
- संजय 214
- नकुल 217
- सहदेव 218
- महापुरुष परशुराम 220

- अभिमन्यु (अर्जुनपुत्र) 224
- महाभारत मे बर्बरीक 226
- सुभद्रा-हरण की कथा 227
- जयद्रथ वध 227

भाग-3
वेद और मनुस्मृति आदि के प्रति दुष्प्रचार

धर्मग्रन्थ वेद को लेकर दुष्प्रचार **233**

1. क्या गायत्री मंत्र सांप्रदायिक है? 234
2. वेदों में मांसाहार -पशुबलि 235
3. वेदों में गोघन अर्थात गायों के वध करने का आदेश है? 237
4. क्या वेदादि धर्मग्रंथों में माष शब्द का उल्लेख हैं जिसका अर्थ मांस खाना है? 238
5. क्या वेदों के अनुसार इंद्र देवता बैल खाता है ? 238
6. क्या वेदों में अश्लीलता है ? 239
7. वेदों में मूर्ति पूजा 244
8. वेदों में वर्णित सोमरस के रूप में शराब अथवा अन्य मादक पदार्थ को ग्रहण करने का वर्णन हैं ? 249
9. वेदों में जादू-टोना पर मंत्र हैं ? 250
10. वेदों में स्त्रियों का अधिकार 251
11. सती प्रथा वैदिक काल से है ? 256
12. तलाक, बहुपत्नी की प्रथा वैदिक काल से है ? 257
13. अमैथुनी सृष्टि को लेकर दुष्प्रचार 259
14. वेद ईश्वर कृत हैं ? 262
15. बिना मुख ईश्वर ने वेद ज्ञान कैसे दिया? 268
16. क्या वेदों में इतिहास हैं? 270
17. वेदों में नदियों का अस्तित्व है 274
18. वेदों में ईसा मसीह, महावीर, कबीर का नाम 276

19. आर्य बाहर से आये थे 281
20. द्रविड़ और आर्य-भ्रांति निवारण 285
21. आर्य सिर्फ अग्नि की पूजा करते हैं। 288
22. आर्य लोग बलिवैश्य यज्ञ करते है ? 290
23. वेद, रामायण और महाभारत आदि ग्रंथो में शूद्र का अपमान है? 292

भाग-4

मनुस्मृति को लेकर दुष्प्रचार **297**
1. मनुस्मृति में जातिवाद 298
2. शूद्र सम्बन्धित मनु के विचार 302
3. ब्रह्मणवाद मनु की देन नहीं 305
4. मनुस्मृति में नारियों के लिए सम्मान 305
5. पुत्र पुत्री एक समान 304
6. स्त्रियों के धन की सुरक्षा के विशेष निर्देश 307
7. वैवाहिक स्वतंत्रता एवं अधिकार 307
8. मनु स्मृति में दण्ड व्यवस्था 309

भाग-5

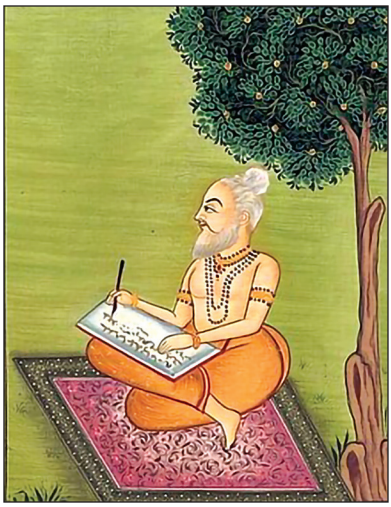
भविष्य पुराण के नाम पर दुष्प्रचार **313**
1. भविष्य पुराण में मुहम्मद का नाम बताकर उसको आदिमानव सिद्ध करने का प्रयास! 311
2. पुराणों में मूर्ति पूजा 316
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 323



भाग– 1
रामायण कालीन वैदिक संस्कृति



रामायण कथा, सम्बन्धित भ्रांतियाँ और निवारण



रामायण कथा में राम–लक्ष्मण, सीता, हनुमान, रावण एवं विभीषण आदि मुख्य पात्र हैं, जो अपने समय में ख्याति प्राप्त विद्वान रहे हैं। राम और रावण का आपसी युद्ध हुआ जिसको लेकर वाल्मीकि ऋषि ने रामायण कथा लिखी लेकिन बाद में महाकवि तुलसी आदि ने रामायण महाकाव्य की रचना की जिसमें अतिश्योक्ति अलंकारों और रूपक अलंकार आदि का खूब प्रयोग किया है। हिन्दी भाषा का पूर्ण और सही ज्ञान न होने के कारण कथाकारों ने वास्तविक अनर्थ कर दिया।

यहाँ हम रामायण और इसके मुख्य पात्रों से जुडी हुई कुछ भ्रांतियों का निवारण करेंगे। जनमानस में व्याप्त कतिपय भ्रांतियों का समाधान इस लेख में किया गया है जिससे राम का विमलयश लोगों में रम सकें।

रामायण हमारी अनमोल विरासत हैं। इसे हम सिर्फ पाँच–छह सहस्र वर्षों तक सीमित करके न देखें और न ही मनोरंजन हेतु सतही चमत्कार मान कर चलें यह शाश्वत और सार्वभौमिक हैं। यह इतिहास की वह सच्चाई हैं जिसमें तर्क, तथ्य और प्रमाण के साथ–साथ सम्पूर्ण विज्ञान है, आवश्यकता है कि इस पर जमी वक्त की धूल को पूरी ईमानदारी के साथ साफ किया जाये।

रामायण कालीन वैदिक संस्कृति

वाल्मीकि रामायण में राम को आर्य कहा गया है

प्रमाण के लिए प्रस्तुत श्लोक देखें –

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिंधुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चौव सदैव प्रियदर्शिनः ॥

आर्य शब्द में उदारता, नम्रता, श्रेष्ठता, सरलता, साहस, पवित्रता, दया निर्बल संरक्षण ज्ञान के लिए उत्सुकता सामाजिक कर्तव्य पालन आदि सभी उत्तम गुणों का समावेश हो जाता है। मानवीय भाषा में इससे उत्तम कोई शब्द नहीं है।



श्री राम आर्य थे और वेदों के ज्ञाता थे। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड सर्ग 1 श्लोक 16 आर्य सर्वसमश्चव् सदैव प्रियदर्शन

ऋषि बाल्मीकि, श्री राम के सम्बन्ध में कहते हैं कि वे आर्य हैं, समदृष्टि हैं और प्रियदर्शन हैं **सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत् साङ्वेदवित्॥** – (अयो० 1/20)

भावार्थ– श्री राम सर्वविद्याव्रतस्नातक तथा छहों अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेदों के यथार्थ ज्ञाता थे।

1 संध्या और अग्निहोत्र

प्रश्न उठता है कि क्या रामायण काल में वैदिक संस्कृति थी? यदि हाँ तो इसका क्या प्रमाण है? वैदिक संस्कृति से हमारा अभिप्राय वेदों में वर्णित संध्या, अग्निहोत्र इत्यादि से है और ईश्वर के निराकार स्वरुप को स्वीकार करने उसे मूर्ति पूजा नहीं करने से है। इस विषय में विस्तार से चर्चा करते हैं।

वाल्मीकि रामायण से विदित होता है कि उस काल में आर्यों की उपासना सन्ध्या के रुप में होती थी। जप, प्राणायाम तथा अग्निहोत्र के भी विपुल उल्लेख मिलते हैं। पौराणिक मूर्तिपूजा, व्रत, तीर्थ, नाम स्मरण या कीर्तन रुप में धार्मिक कृत्य का वर्णन मूलतः नहीं हैं। मूर्तिपूजा के क्षणिक उल्लेख जो इस सम्बन्ध में मिलते भी हैं वे अप्रसांगिक प्रक्षेप या मूलकथा से असम्बद्ध हैं।

ईश स्तुति, सन्ध्या, गायत्री जप, अग्निहोत्र और प्राणायाम के कुछ प्रसंग द्रष्टव्य हैं–

कौशल्या, सुप्रजा, राम, पूर्वा, सन्ध्या, प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम्॥

(बालकाण्ड33/2)

भावार्थः–महर्षि विश्वामित्र ने कहा है कौशल्या नन्दन राम! प्रातः कालीन संध्या का समय हो रहा है। हे नरशार्दूल! उठो और नैतिक कर्तव्य सन्ध्या और देव यज्ञ करो।

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम्॥

(बाल०का०23/3)

भावार्थः—ऋषि विश्वामित्र के इस उदार वचनों को सुनकर दोनों भाई (राम और लक्ष्मण) उठे स्नान आदि से निवृत्त होकर परम जप (गायत्री का जाप) किया।

कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वा सन्ध्यामुपास्य च ॥31॥

प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम् ॥31॥

(बाल०का०29 वांसर्ग)

भावार्थः— राम लक्ष्मण दोनों राज कुमार सावधानी के साथ रात्रि व्यतीत करके प्रातः काल उठे और सन्ध्योपासना की। अत्यन्त पवित्र होकर परम जप गायत्री का नियम पूर्वक उन्होंने जप किया और उसके बाद अग्निहोत्र करके बैठे हुए गुरु विश्वामित्र को अभिवादन किया।

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः सन्ध्या मुपासत।

(युद्धकाण्ड 5/23)

भावार्थः— सीता के शोक से दुःखी राम ने लक्ष्मण द्वारा धैर्य बधाने पर (आश्वासित) संध्योपासना की। सीता को खोजते हुए हनुमान अशोक वाटिका में एक पवित्र सुन्दर नदी को देखकर सोचते हैं।

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥

(सुन्दरकाण्ड14/49)

भावार्थः— यदि सीता जीवित होगी तो प्रातः कालीन संन्ध्या के लिए इस सुन्दर जल वाली नदी के तट पर संन्ध्या के योग्य इस स्थल पर अवश्य आयेगी।

तस्मिन् कालेपि कौशल्या तस्थावामीलितेक्षणा ।
प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम् ॥

(अयो० 4/32—33)

भावार्थः—श्रीराम जब कौशल्या जी के भवन में गये उस समय कौशल्या नेत्र बन्द किये ध्यान लगाए बैठी थीं और प्राणायाम के द्वारा परम पुरुष परमात्मा का ध्यान कर रही थीं।

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला॥

(अयो०20 / 15)

भावार्थः– रेशमी वस्त्र पहन कर राम माता कौशल्या प्रसन्नता के साथ निरन्तर व्रत परायण होकर मङ्गल कृत्य पूर्ण करने के पश्चात् मन्तोचारण पूर्वक उस समय अग्नि में आहुति दे रही थीं।

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागतम्॥

(अयो06 / 1)

भावार्थः–पुरोहित के चले जाने पर श्री राम ने स्नान करके नियत मन से विशाललोचना पत्नी सीता सहित परमात्मा की उपासना की।

2 वेद वेदांग का अध्ययन

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥

(बाल01 / 14)

भावार्थः– राम स्वधर्म और स्वजनों के पालक वेद–वेदाङ्गों के तत्त्ववेत्ता तथा धनुर्वेद में प्रवीण थे।

सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत् साङ्गवेदवित् ॥

(अयो० 1 / 20)

भावार्थः– श्रीराम सर्वविद्याव्रतस्नातक तथा छः अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेदों के यथार्थ ज्ञाता थे।

अस्मिन् च चलते धर्मो यो धर्म नातिवर्तते।
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेदविदां वरः॥

(युद्धकाण्ड 28 / 19)

भावार्थः– धर्म श्रीराम से कभी अलग नहीं होता। श्रीराम धर्म का कभी उल्लंघन नहीं करते। वे ब्रह्माशस्त्र और वेद दोनों के ज्ञाता थे तथा वेदविद्या में श्रेष्ठ थे।

3 रावण भी वेदविद्या व्रत स्नातक था।

वेदविद्यावर्तस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा।
स्त्रियः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर॥

(युद्धकाण्ड92 / 64)

भावार्थः– सुपार्श्व नामक बुद्धिमान् रावण के मन्त्री ने रावण से कहा हे रावण ! तू वेदविद्या व्रत स्नातक तथा स्वकर्मपरायण होकर स्त्रीवध (सीता का वध) क्यों करना चाहता है?

इस प्रकार रावण वेदविद्यावित् होने पर भी पापी क्यों माना जाता है? इसका उत्तर हनुमान के निम्न कथन से मिलता है–

अह रुपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता॥ 17 ॥

यद्यधर्मो न बलवान्न् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥18॥

(सुन्दर०का० ४९वां सर्ग)

भावार्थः– रावण को देखकर हनुमान मुग्ध हो जाते हैं, वे कहते हैं अहो ! रावण का रुप, सौन्दर्य, अहो! धैर्य, कैसी अनुपम शक्ति और कैसा आश्चर्यजनक तेज राक्षसराज रावण का राजोचित सर्व लक्षणों से सम्पन्न होना कितने आश्चर्य की बात है। यदि इसमें अधर्म प्रबल न होता तो यह इन्द्र सहित देव लोक का भी स्वामी बन सकता था।

अतः वेदवेत्ता होने पर भी अपनी आचार हीनता से रावण अधर्मी और पापी माना गया।

अध्याय-1

मर्यादा पुरूषोत्तम राम



मर्यादा पुरुषोत्तम राम का विश्व के महापुरुषों में सर्वोत्तम स्मरणीय चरित्र' है। यदि किसी मनुष्य को धर्म का साक्षात् स्वरुप देखना हो तो उसे केवल तत्समय लिखे गए ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण का अध्ययन करना चाहिये। उपलब्ध जानकारी के अनुसार रामायण काल लगभग 5,114 ईसा पूर्व का माना जाता है, जो त्रेता युग में स्थित है. कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार, खगोलीय घटनाओं के आधार पर, यह समय 5114 ईसा पूर्व के आसपास बताया गया है. ,लेकिन यहाँ ये हमारा विषय नहीं है। हमारा केवल ये सुझाव है की रामायण काल की वास्तविक जानकारी के लिए मरा सिर्फ रामायण का अध्ययन करना चाहिए।

महर्षि दयानन्द कहते थे कि भारत का बच्चा–बच्चा मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के जीवन चरित्र से परिचित हो और अपने जीवन और व्यवहार में अनको अपना आदर्श मानकर उनका अनुकरण करे। यह सुविदित तथ्य है कि वाल्मीकि रामायण में महाभारत काल के बाद अनेक प्रक्षेप व क्षेपक डाल दिये गये। अतः रामायण का शुद्ध स्वरूप बालकों व विद्यार्थियों तक लाने के लिए आर्यसमाज के विद्वानों स्वामी जगदीश्वरानन्द जी और महात्मा प्रेमभिक्षु जी ने वाल्मीकि रामायण के शुद्ध व ऐतिहासिक तथ्यों से युक्त भव्य, प्रभावशाली व संक्षिप्त संस्करणों का रामायण नाम से ही सम्पादन किया जिसे न केवल भारतीय अपितु विश्व के सभी लोगों को पढ़ना चाहिये।

श्री राम अयोध्या के राजा थे। वे बड़े प्रतापी, सहनशील, धर्मात्मा, प्रजापालक, निष्पाप, निष्कलंक थे। उन्हें 'मर्यादा पुरुषोत्तम' भी कहा जाता है क्योंकि उन्होंने मानव समाज के लिए आदर्श व्यवहार की मर्यादाएं स्थापित कीं। वे आज से लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व त्रेतायुग के अन्त में हुए थे। उनके समकालीन महर्षि वाल्मीकि ने अपने रामायण ग्रन्थ में उनका जीवन–चरित्र दिया है।

महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम में बैठे थे। घूमते हुए नारद मुनि वहां आ पहुंचे। तब वाल्मीकि ने नारद से पूछा? इस संसार में वीर, धर्म को जानने वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी, सच्चरित्र, सब प्राणियों का हितकारी, विद्वान, उत्तम कार्य करने में समर्थ, सब के लिए प्रिय दर्शन वाला, जितेन्द्रिय, क्रोध को जीतने वाला, तेजस्वी, ईर्ष्या न करने वाला, युद्ध में क्रोध आने पर देव भी जिससे भयभीत हों ऐसा मनुष्य कौन है, यह जानने की मुझे उत्सुकता है। तब नारद मुनि ने ऐसे बहुत से दुर्लभ गुणों वाले श्री राम का वृत्तान्त सुनाया। महाराजा दशरथ ने श्री राम को युवराज बनाने का अपना विचार सारी परिषत् के सामने रखा। तब परिषत् ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए श्री राम के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया 'प्रजा को सुख देने में श्री राम चन्द्रमा के तुल्य हैं, वे धर्मज्ञ, सत्यवादी, शीलयुक्त, ईर्ष्या से रहित, शान्त, दुखियों को सांत्वना देने वाले, मधुरभाषी, कृतज्ञ, और जितेन्द्रिय हैं।।। प्रजा पर कोई आपत्ति आने पर वे स्वयं दुःखी होते हैं और उत्सव के समय पिता की भान्ति प्रसन्न होते हैं। उनका क्रोध और प्रसन्नता कभी निरर्थक नहीं होती। वे मारने योग्य को मारते हैं और निर्दोषों पर कभी क्रोध नहीं करते।' श्री राम के गुणों का वर्णन कैकेयी ने स्वयं किया है। जब श्री राम को राजतिलक देने का निर्णय हुआ तब सभी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कैकेयी को यह समाचार उसकी दासी ने जाकर दिया। तब कैकेयी आनन्द विभोर हो गई और अपना एक बहुमुल्य हार कुब्जा को देकर कहने लगी–''हे मथरे ! तूने यह अत्यन्त आनन्ददायक समाचार सुनाया है। इसके बदले में मैं तुम्हें और क्या दूं।" परन्तु मन्थरा ने द्वेष से भरकर कहा कि राम के राजा बनने से तेरा, भरत का और मेरा हित न होगा। तब कैकेयी राम के गुणों का वर्णन करती हुई कहती है–''राम धर्मज्ञ, गुणवान, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और पवित्र हैं तथा बड़े पुत्र होने के कारण वे ही राज्य के अधिकारी हैं। राम अपने भाईयों और सेवकों का अपनी सन्तान की तरह पालन करते हैं।" श्री राम की महत्ता वसिष्ठ के शब्दों में–

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥ (वाल्मीकि रामायण)

अर्थ– राज्याभिषेक के लिए बुलाए गए और वन के लिए विदा किए गए श्री राम के मुख के आकार में मैंने कोई भी अन्तर नहीं देखा। राज्याभिषेक के अवसर पर उनके मुख मण्डल पर कोई प्रसन्नता नहीं थी और वनवास के दुःखों से उनके चेहरे पर शोक की रेखाएं नहीं थी। उदये सविता रक्तो रक्तरचास्तमये तथा। सम्पत्तौ च विपत्तौ न महतामेकरूपता।।

अर्थ– सूर्य उदय होता हुआ लाल होता है और अस्त होता हुआ भी लाल होता है। इसी प्रकार महापुरुष सम्पत्ति और विपत्ति में समान ही रहते हैं। सम्पत्ति प्राप्त होने पर हर्षित नहीं होते और विपत्ति पड़ने पर दुःखी नहीं होते।

वन को जाते हुए श्री राम अयोध्यावासियों से कहते हैं–''आप लोगों का मेरे प्रति

जो प्रेम तथा सम्मान है, मुझे प्रसन्नता तभी होगी यदि आप मेरे प्रति किया जाने वाला व्यवहार ही भरत के प्रति भी करेंगे।" अपने नाना के यहां से अयोध्या लौटने पर जब भरत और शत्रुघ्न को पता लगा कि सारे पाप की जड़ मन्थरा है, तब शत्रुघ्न को उस पर बहुत क्रोध आया और उसने मन्थरा को पकड़ लिया और उसे भूमि पर पटक कर घसीटने लगा। तब भरत ने कहा– यदि इस कुब्जा के मारने का पता श्री राम को चल गया तो वह धर्मात्मा हम दोनों से बात तक न करेंगे। यह थी श्री राम की महत्ता।

हनुमान जी अशोक वाटिका में सीता से श्री रामचन्द्र जी की बाबत कहते हैं–

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदांगेषु च निष्ठितः॥

अर्थ–श्री रामचन्द्र जी यजुर्वेद में पारंगत हैं, बड़े–बड़े ऋषि भी इसके लिए उनको मानते अर्थात् आदर देते हैं तथा वे धनुर्वेद और वेद वेदांगों में भी प्रवीण हैं। यह वेद–वेदांगों में प्रवीण होना उनके ऋषि होने का भी प्रमाण है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम एक ऐसे समाज का प्रतिनिधित्व करते थे जो पूर्णतया आर्य था, सब प्रकार के अन्धविश्वास पाखंड से मुक्त था, याज्ञिक था, राम सच्चे आर्य थे, उन जैसा आर्य मिलना दुर्लभ है । राम सच्चे साधु सन्यासियों व ऋषि मुनियों का बहुत सम्मान करते थे।

यदि आप वास्तव में राम के भक्त हो और रामराज्य लाना चाहते हो तो गांव–गांव में गुरुकुल, गौशाला व यज्ञशाला स्थापित करो । राम के मन्दिर व राम की बडी बडी मूर्तियां बनाने से राम प्रसन्न नहीं होते, राम को प्रसन्न करना है तो राम के आदर्शों को जीवन में धारण करो, राम की तरह आर्य बनो, याज्ञिक बनो, वेद पढो, संयम सदाचार का जीवन जीओ, माता पिता की सेवा करो, सब जीवों से प्रेम करो, तभी जय श्री राम का नारा सार्थक होगा। राम जी की मूर्तियां बना कर उनमें झूठमूठ की प्राण प्रतिष्ठा करने व उनका हार श्रृंगार करने से कुछ लाभ नहीं होगा।

आज अनेक प्रकार की रामायण उपलब्ध हैं। कुछ रामायण में राम के इतिहास को बहुत तोड़ मरोड़ कर पेश किया गया है। कुछ लोग दुष्प्रचार करते हैं कि राम शूद्रों से भेदभाव करते थे, उन्होंने शम्भूक नामक एक शूद्र का वेदादि शास्त्र पढ़ने के कारण वध कर दिया था। सत्य तो यह है कि गुरुकुलों में सब वर्णों के विद्यार्थियों के लिए बिना किसी भेदभाव के समान शिक्षा, खानपान, वस्त्र आदि का प्रबन्ध था। मध्य काल में जब वेद विद्या का लोप होने लगा था, उस काल में ब्राह्मण व्यक्ति अपने गुणों से नहीं अपितु अपने जन्म से समझा जाने लगा था, शूद्र को नीच समझा जाने लगा था, नारी को नरक का द्वार समझा जाने लगा था, मनुस्मृति में जातिवाद का पोषण करने वाले श्लोकों को

मिला दिया गया था, उस काल में बाल्मीकि रामायण में शम्भूक वध वाला उत्तर काण्ड मिला दिया गया।

उदाहरणार्थ–न राम ने कभी सीता का परित्याग किया और न बाल्मीकि ने ऐसा लिखा। इसी प्रकार न राम ने तपस्या करते शम्बूक का वध किया और न बाल्मीकि ने ऐसा लिखा। किन्तु वर्तमान में उपलब्ध रामायण में ऐसा लिखा होने से राम को स्त्रियों तथा शूद्रों पर अत्याचार करने के लिए दोषी ठहरा दिया गया।

रामराज्य का वर्णन करते हुए वाल्मीकि रामायण में बताया गया है–

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते।।

अर्थ– राज्य भर में चोरों, डाकुओं और लुटेरों का कहीं नाम तक न था। दूसरे के धन को कोई छूता तक न था। श्री राम के शासन काल में किसी वृद्ध ने किसी बालक का मृतक संस्कार (प्रेत कार्य) नहीं किया था अर्थात् राजा राम के समय में बाल मृत्यु नहीं होती थी।

सर्व मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम्।।

अर्थ– रामराज्य में सब अपने–अपने वर्णानुसार धर्म कार्यों में तत्पर रहते थे। इसलिए सब लोग सदा सुप्रसन्न रहते थे। राम दुःखी होंगे इस विचार से प्रजाजन परस्पर एक दूसरे को दुःख नहीं देते थे।श्री राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वह युगपुरुष, आदर्श राजा, ईश्वरभक्त, मातृ–पितृ–भक्त, आदर्श भाई–पुत्र–शिष्य–प्रजापालक आदि थे। वह धर्म का साक्षात् रूप थे। यह भी जानना है कि वह इस संसार को बनाने व चलाने वाले ईश्वर नहीं थे, वह सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, सृष्टिकर्त्ता, जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार या प्रारब्ध के अनुसार भिन्न–भिन्न योनियों में मनुष्यादि का जन्म देने वाले ईश्वर नहीं थे। संसार को बनाने व चलाने वाला ईश्वर अजन्मा है, वह कभी जन्म या अवतार नहीं लेता, वह सर्वव्यापक, निराकार व सर्वान्तर्यामी रूप से संसार के करने योग्य सभी कार्य कर सकता है। रावण व कंस व उनके जैसे किसी भी अन्यायकारी पुरुष का हनन करने के लिए उसे अवतार या जन्म लेने की किंचित आवश्यकता नहीं है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के विषय में पिछले 50–साल से 400 साल तक अनेको रामायण लिखी गयी है, इनमे भरपूर तुक्केबाजी है, मिलावट है, जो प्रामाणिक नहीं है। और राम कथा को व्यवसाय का रूप कथा वाचको ने देकर सत्यता के विपरीत मिथ्या प्रचार का कार्य किया है। ये कथावाचक राम कथा इस प्रकार से सुनाते है जैसे की सब कुछ उन्ही के सामने, इनकी उपस्थिति में हुआ है।

इस अध्याय में हम कुछ भ्राँतिया और आरोपों के विषय में विचार आपके सम्मुख रखेंगे।

राम अपने पिता दशरथ के कहने से उनके द्वारा कैकई को दिए गए वचन को पूरा करने के लिए वन गए?

पिता द्वारा कैकयी को दिए वचन को पूरा करने के लिए वन नहीं गए।

आज तक हम सुनते आये हैं कि राजा दशरथ के कहने पर श्री राम ने चक्रवर्ती राज्य का परित्याग करके 14 वर्ष के लिए वनवास स्वीकार किया था। राम के अन्य गुणों के अतिरिक्त उनका त्याग निस्संदेह यह बहुत बड़ी बात थी। इस विषय पर प्रमाण के साथ चर्चा करना जरुरी है।

सत्य तो यह है कि राम ने ऐसा पिता दशरथ की आज्ञा के विपरीत किया था क्योंकि राजा दशरथ नहीं चाहते थे कि उनका ज्येष्ठ पुत्र राम वनवास जाये। इस विषय में वाल्मीकि रामायण को ही प्रामाणिक मान लेना उचित होगा क्योंकि अन्य रामायण जैसे तुलसीकृत रामायण आदि को श्रद्धावश, काव्य के रूप को रोचक बनाने और अलंकार, उपमा आदि का अत्यंत प्रयोग किया गया है।

महर्षि वाल्मीकि रामायण के अनुसार कोप भवन में पड़ी कैकयी ने काम मोहित होकर वर देने के लिए उद्यत हुए दशरथ से कहा –हे देव! उस समय (देवासुर संग्राम के अवसर पर) आपने दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी, उन दोनों वरों को मैं अब माँगूगी।

–यह जो श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी की गई है, इसी अभिषेक सामग्री द्वारा मेरे पुत्र भरत का अभिषेक किया जाए।

–और आपने जो दूसरा वर दिया था उसे भी प्राप्त करने का समय आ गया है। श्रीराम तपस्वी के वेश में 14 वर्ष तक दण्डकारण्य में रहें और मेरा पुत्र भरत निष्कंटक राज्य को प्राप्त करे।

कैकयी की बात सुनकर राजा असहज तो हुए पर कुछ नहीं बोल पाए क्योंकि राजा अपने दिये वचन भी नहीं तोड़ना चाहते थे और राम को वनवास भी नहीं भेजना चाहते थे अतः वे चुप रहे परन्तु कैकयी अपनी बात पर अडिग थीं।

रामायण के अनुसारः–

प्रतिकूलं प्रियं में स्थान्न तु वत्सः गच्छेति भाषितः॥

अयोध्या –012/85–86

दशरथ नहीं चाहते थे कि राम वन में जाएं, इसके विपरीत वह हृदय से चाहते थे कि राम उनकी आज्ञा का उल्लंघन करें।

दशरथ ने कहा–हे देवी! मैं धर्म बंधन में बँधा हुआ हूँ। इस समय मैं अपने परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र राम को देखना चाहता हूँ, उसी समय राम को वहाँ बुलाया गया तब उन्होंने देखा कि राजा दशरथ दीन–हीन दशा में हैं।

कैकयी से बहुत कुछ कहने–सुनने के पश्चात दशरथ बोले–अपने पुत्र राम से यदि मैं वन जाने को कह दूँ तो वह तुरंत बहुत अच्छा कहकर चला जाएगा और वह कोई दूसरा जवाब नहीं देगा। राम मर्यादा और धर्म का पालन करने वाला पुत्र है।

धर्म बन्धेन बद्धोडस्मि नष्टा च मम चेतना।
ज्येष्ठं पुत्र प्रियं रामं द्रष्टुम् इच्छामि धार्मिकम्॥

अयोध्या –14/24

और आगे दशरथ ने कहाः–

नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रतिभाषितुम।
स प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वश्यति।
यदि ये राघवः कुर्यात् वनं गच्छेति भाषितः।

अयोध्या –012/85–86

और इतना कहने के बाद एक बार राम कहकर दशरथ मूर्छा अवस्था में आ गए और आगे कुछ नहीं बोल पाए, दशरथ के नेत्रों में आँसू भर आए। राजा को इस दशा में देखकर राम ऐसे भयभीत हुए मानो उनका पैर किसी सांप पर पड़ गया हो।

अप्रसन्नाः किं नु सदा मां प्रति वटसलः।
विवर्णवदनो दीनो न हि माम भि भाषते॥

अयोध्या –18/12

मुझे सदा प्यार करने वाले वे दशरथ आज दुखित मन हो उतरे चेहरे वाले तथा दीन–हीन से होकर मुझसे बोलते क्यों नहीं ?

इस प्रकार अनेक प्रश्न करके राम ने दशरथ की दशा का कारण जानना चाहा।

दशरथ से कोई उत्तर ना मिलने पर श्रीराम के पूछने पर कैकई बोली–राम राजा न तो कुपित हैं और न ही इनको कोई व्याधि है। उनके मन में कोई ऐसी बात है, जिसे वह तुम्हारे डर से कह नहीं पा रहे हैं। बात यह है कि पहले तो इन्होंने मेरा सत्कार करते हुए वरदान दे दिया और अब पश्चाताप कर रहे हैं। यदि तुम राजा की आज्ञा का पालन करो तो मैं तुमको सब कुछ स्वयं ही बता दूँगी क्योंकि वह स्वयं तुम से कुछ नहीं कह पाएंगे।

इस पर रामचन्द्रजी ने कहा– हे देवी! आप बोलिए क्योंकि मैं महाराज के आदेश से आग में भी कूद सकता हूँ तथा अपने गुरुजनों के द्वारा आदिष्ट होने पर तीक्ष्ण विष

भी पी सकता हूँ। इसलिए हे देवी! पिताजी को जो अभीष्ट है उनसे कहिए मैं उसका पालन करूँगा।

इस प्रकार कैकयी ने देवासुर संग्राम से लेकर राम के वनवास तक की तथा भरत के राज्य अभिषेक की सारी कहानी राम को सुना दी तथा इतना सुनने के बाद राम ने कहा।

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटा धीर धरो राज्ञः प्रतिज्ञमनु पालयनः॥

अयोध्या –19/2

राम ने कहा हे देवी ! पिताजी के न कहने पर भी केवल आपके आदेशानुसार मैं 14 वर्ष तक वनवास में चला जाऊँगा, फिर कैकयी ने कहा कि महाराज लज्जा के कारण तुम से कुछ नहीं कह रहे हैं। इतना सुनकर राम ने खुद ही कह दिया कि मैं आपके आदेश से भी वनवास में चला जाऊंगा।

राम और कैकयी के मध्य हो रहे वार्तालाप के बीच दशरथ ने कुछ नहीं कहा क्योंकि–

सः रामस्य वचः श्रुत्वा भृशं दुःखहतः पिता।
शोक दशक्नुवन् वक्तुं प्ररूरोद महास्वनम्॥

अयोध्या –27

यानि अत्यधिक दुःख से आहत पिता दशरथ राम की बात सुनकर शोक के कारण कुछ बोल न सके और उच्च स्वर में फूट–फूट कर रोने लगे।

राम माता कौशल्या की आज्ञा लेने उनके महल में गए और इस प्रकार राम ने अपना निश्चय लक्ष्मण से इन शब्दों में बता दिया–

सोडहं न शस्यामि पितुर्नियोग मतिवर्तितुम।
पितुर्हिवच ना द्वीर कैकेट्याह प्रचोदितः।

अयोध्या –43

हे वीर! मैं पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। पिता के आदेश से ही माता कैकयी ने मुझे यह बात कही थी। अतः ये कथन मिथ्या है कि श्री दशरथ ने राम को वन जाने के लिए स्वयं आदेश दिया था और दशरथ ने कैकयी को राम को आदेश देने के लिए कहा था।

स्पष्ट है कि राजा दशरथ कदापि नहीं चाहते थे कि राम वन में जाएं।

कौशल्या भी राम के इस निर्णय पर दुःखी हुईं और राम से कहा–

यथैव ते पुत्र पिता तथाहं गुरु स्वधर्मेण सुहृत्तया च।
न त्वानु जानामि न मां विहाय सुखदुःखिता महसि गन्तुमेनम॥

अयोध्या –52

हे पुत्र! जैसे पिता तुम्हारे गुरु हैं, वैसे ही मैं भी हूँ। इस दुखिया को इस प्रकार असहाय छोड़ कर मत जाओ यह मातृ धर्म के विरुद्ध है, इसलिए मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती। माँ–बेटे का वार्तालाप काफी देर तक चलता रहा।

आगे कौशल्या ने कहा–हे प्रिय पुत्र राम! वन गमन के लिए दृढ़ निश्चय वाली तेरी बुद्धि को मैं रोक नहीं सकती क्योंकि काल बहुत बलवान है। इसलिए तुम जाओ क्योंकि संसार में भाग्य की गति सदा दुर्विज्ञेय है। वही भाग्य तुझे मेरी बात को काटकर तुझे वन गमन के लिए प्रेरित कर रहा है। हे रघुकुल श्रेष्ठ! इसलिए अब तुम चले जाओ।

वनवास के लिए पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए रामचंद्र को व्याकुलता रहित देखकर दशरथ बोले–हे राम! कैकेयी ने वरदान के द्वारा मुझे मोहित कर लिया है। इस कारण मुझसे वरदान लेकर कैकयी तुमको वन जाने के लिए आदेश दे रही है। मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूं कि तुम्हारा वन जाना मुझे प्रिय नहीं है। लेकिन राख से ढकी अग्नि के समान कुटिल अभिप्राय वाली कैकयी के कारण मैं विचलित हो गया हूँ। इस प्रकार राम के वन जाने से जिस व्यक्ति का मन इतना व्यथित हो रहा है, वह भला राम को वन जाने का आदेश कैसे दे सकता है? अंततः वन को प्रस्थान करते हुए राम ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था–

अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्यां वनं गच्छेति राघव।
मया चोद्रं व्रजामीति ततसत्यम अनुपालये॥

अयोध्या –34 / 50

माता कैकयी ने मुझसे याचना की कि हे राम! तुम वन को चले जाओ इस पर मैंने वचन दिया था कि अवश्य जाऊँगा, मुझे उस वचन का पालन करना है। राम के इस वचन के बाद कोई संदेह नहीं रह जाता कि पिता के आदेश पर नहीं बल्कि माता कैकयी के आदेश पर राम वनवास गये।

राम सम्वैधानिक शासक थे, राजा के पद पर उनकी नियुक्ति दशरथ ने नहीं अपितु दशरथ के प्रस्ताव पर जनता के प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से की थी। प्रश्न उठता है कि जब राजा के रूप में दशरथ ने कैकयी की माँग को स्वीकार नहीं किया, पिता के रूप में वे राम के वियोग को सहन नहीं कर सकते थे, यदि राम को राजा दशरथ ने वनवास के लिए जाने की आज्ञा नहीं दी तो वे स्वयं वन में क्यों गए ?

यहां राम ने एक बहुत बड़ा संदेश दिया है ,संतान का कर्तव्य केवल इतना हो नहीं है कि मां–बाप की सेवा करनी चाहिए और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।

अपितु संतान को अनुवत्र भी होना चाहिए।इसीलिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने पिता के द्वारा रानी केकई को दिए वचन को पूरा करने के लिए 14 वर्ष के लिए राजपाठ छोड़कर वनवास गए।

हमारे वेद शास्त्र क्या कहते हैं?

ओइम् अनुव्रतः पितुः पुत्रे माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥

—अथर्ववेद 3/30/2

अर्थ– (पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता का (अनुव्रतः) अनुव्रत हो अर्थात् उसके व्रतों को पूर्ण करे। पुत्र (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) उत्तम मनवाला (भवतु) हो अर्थात् माता के मन को संतुष्ट करने वाला हो। (जाया) पत्नी को चाहिए कि वह (पत्ये) पति के साथ (माधुमतीम्) मीठी और (शान्तिवाम्) शान्तिप्रद (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले।

व्याख्या– इस वेदमंत्र में वे आरम्भिक साधन बताये हैं जिनसे गृहस्थ सुव्यवस्थित रह सकता है।

इस मंत्र में प्रयुक्त मुख्यत दो शब्दों पर विचार कीजिए– एक 'पुत्र' और दूसरा 'अनुव्रतः'।

यहां एक बहुत बड़ा संदेश दिया है, संतान का कर्तव्य केवल इतना हो नहीं है कि मां–बाप की सेवा करनी चाहिए और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।

अपितु संतान को अनुवत्र भी होना चाहिए। इसीलिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने पिता के द्वारा रानी केकई को दिए वचन को पूरा करने के लिए 14 वर्ष के लिए राजपाठ छोड़कर वनवास गए।

राम का देवी पूजन

प्रचलित कथा के अनुसार भगवान् राम जब लंका को विजय करके लौटे तो उन्होंने देवी पूजन का आयोजन किया था। प्रश्न उठता है कि जिन लोगों ने राम को भगवान् मान लिया तो भगवान् किसकी पूजा करेंगे? ये दोनों विचार एक साथ नहीं चल सकते। यदि राम ने देवी की पूजा की तो फिर राम से ज्यादा वजन देवी का हुआ और फिर तो राम की जगह देवी की पूजा शुरू करनी चाहिए। सवाल उठता है कि राम बड़े हुए या देवी ?

देवीपूजन का अभिप्राय

जैसा कि पहले लिखा गया है कि राम वेदों के विद्वान थे और अग्निहोत्र, संध्या आदि करते थे। इसलिए राम को मूर्तिपूजक कहना गलत है। देवीपूजन से अभिप्राय

ईश्वर स्तुति से ही है। वेदों में ईश्वर को एक और निराकार बताया गया है। ईश्वर के अनगिनत गुण है। ईश्वर का प्रत्येक नाम उसके प्रत्येक गुण का दर्शन करवाता है। ईश्वर के अनगिनत गुण होने के कारण अनगिनत नाम है। देवी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि एक ईश्वर के अनेको नामों से कुछ नाम हैं। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में देवी, शक्ति, श्री, लक्ष्मी, सरस्वती आदि ईश्वर के नामों की व्याख्या दी हैं।

जितने 'देव' शब्द के अर्थ लिखे हैं उतने ही 'देवी' शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिंगों में नाम हैं। जैसे–'ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति'। जब ईश्वर का विशेषण होगा तब 'देव' जब चिति का होगा तब 'देवी', इससे ईश्वर का नाम 'देवी' है।

साधारण भाषा में सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा आदि देवियों के नाम सुने जाते हैं। जो कि ईश्वर के ही गुणों पर आधारित अन्य नाम हैं।

परमेश्वर की पूजा की क्या विधि हो सकती है? वेद कहता है कि परमात्मा आत्मिक, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक आदि बलों का देने वाला है। इसी कारण से सकल देव एवं समस्त विश्व उसकी उपासना, पूजा, सेवा सत्कार और सम्मान करता है। पूजा का प्रकार क्या हो? उसकी आज्ञा के अनुसार चलना ही उसकी पूजा है क्योंकि इसमें पूजक का भी कल्याण है। ईश्वर की आज्ञाओं के अनुकूल चलने में ईश्वर की पूजा है।

चारो वेदो में ईश्वर के लिए देवी शब्द का प्रयोग बार बार हुआ है जैसे कि ऋग्वेद में 43 बार अथर्वेद में 26 बार और सामवेद में 4 बार आदि। इस आलोक में देवी शब्द का अर्थ समझना जरुरी है।

यहाँ हम एक वेद मंत्र का उदाहरण भी देंगे :

ओइम् शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥

यजु. 36.12

सर्वप्रकाशक और सर्वव्यापक ईश्वर इच्छित फल और आनंद प्राप्ति के लिए हमारे लिए कल्याणकारी हो और हम पर सुख की वृष्टि करे । उपरोक्त से स्पष्ट है कि राम ने जो देवी पूजन किया वह किसी काल्पनिक देवी की मूर्ति पूजा नहीं अपितु ईश्वर की आराधना है।

रामेश्वर में रामचन्द्र द्वारा मूर्ति स्थापना

पौराणिक ग्रंथों के अनुसार, जब भगवान श्रीराम लंका पर आक्रमण करने जा रहे थे, तब उन्होंने समुद्र के किनारे शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा अर्चना की थी। शिव को भगवान राम अपना आराध्य देवता मानते हैं, इसीलिए युद्ध से पहले भगवान राम ने शिव की पूजा की। इसी को रामेश्वरम् कहा गया।



प्रश्न–रामेश्वर को रामचन्द्र ने स्थापित किया है। जो मूर्तिपूजा वेद–विरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्ति स्थापना क्यों करते और वाल्मीकि जी रामायण में क्यों लिखते?

रामचन्द्र के समय में उस मन्दिर का नामों निशान भी न था किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ राम नामक राजा ने मंदिर बनवाकर नाम 'रामेश्वर' रख दिया है। जब रामचन्द्र सीताजी को ले हनुमान आदि के साथ लंका से चले आकाश मार्ग में विमान पर बैठ अयोध्या को आए थे तब सीता जी से कहते है कि–

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः। सेतु बंध इति विख्यातम॥

वा0 रा0, लंका काण्ड (देखिये– युद्ध काण्ड़, सर्ग 123, श्लोक 20–21)

अर्थात् :–हे सीते! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास किया था और परमेश्वर की उपासना–ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का देव महादेव परमात्मा है, उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहाँ प्राप्त हुई और देखो हमने यह सेतु बांधकर लंका में आकर उस रावण को मार तुम्हे वापस ले आये। इसके सिवाय वहाँ वाल्मीकि ने अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

द्रष्टव्य–सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लासः, पृष्ठ–303

इस प्रकार उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान राम स्वयं परमात्मा के परमभक्त थे। उन्होंने ही यह सेतु बनवाया था।

जनता को भ्रम में डालने के लिए एक बेतुकी कथा यह उड़ाई गई कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम चन्द्र जी महाराज ने सेतुबंध रामेश्वरम में शिवलिंग पूजा की थी तथा उसे स्थापित किया था, पर यह बात सर्वथा निराधार हैं।

क्या ऐसा हो सकता है कि वह महान राम जो चारो वेदों का ज्ञाता और ईश्वर महादेव का भक्त था उस पतित शंकर को भी नहीं वरन् उसके लिंग और गुप्त अंग की पूजा करते थे, उस पर जल चढ़ाते थे ?

गुप्त अंगों योनि की पूजा इन वाममार्गियों ने मध्य काल में प्रचलित की और ये शिवलिंग पूजन भी उसी समय से भारत देश में प्रचलित हुआ। शिवलिंग पूजा का आरम्भ दक्षिण भारत में प्रारम्भ हुआ और शैव मत ने शिव पुराण बनाकर उसमे विभिन्न प्रकार के शंकर भगवान द्वारा किए गए चमत्कार दिखलाकर भोली भाली जनता को गुमराह किया और इस अश्लील शिवलिंग पूजन का प्रचार–प्रसार किया। अब तो हालत यह हो गई

है कि कोई भी पढ़ा लिखा व्यक्ति यह देखने–सुनने और समझने तक का प्रयत्न नहीं करता है कि शिवलिंग पूजा का असली रूप क्या है?

उदाहरण के लिए कामख्या मंदिर और भारत के प्राचीन अन्य बड़े बड़े मंदिरों में अश्लील स्त्री की योनि और शिव के गुप्त लिंग की पूजा होती है पर कितने लोगों ने इस अश्लील कुप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई है? वैष्णव सम्प्रदाय के लोगों ने यदि शैव सम्प्रदाय की या शैव सम्प्रदाय के लोगों ने वैष्णव की निन्दा की है तो द्वेष वश की है। दोनों दल अपने चेलों का गिरोह बढ़ाने में प्रयत्न शील रहे हैं।

चौदह वर्ष की छोटी सी आयु में शिव मंदिर में शिव लिंग पर उछलते कूदते चूहे को देख कर ऋषि दयानन्द सरस्वती जी को शिवलिंग और पत्थर की मूर्ति पूजा से विश्वास उठ गया। छोटे से बालक दयानंद सरस्वती ने यह सोचा कि जो शिव एक छोटे से जीव चूहे तक से अपनी रक्षा नहीं कर सकता ,वह उनके दुख कैसे दूर करेगा। क्या सृष्टि को बनाने वाले परम पिता शिव भगवान इतने असहाय और कमजोर है कि एक छोटे से जीव को अपने ऊपर से नहीं हटा सकते। उसी समय ऋषि दयानन्द सरस्वती ने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक वे सच्चे शिव की प्राप्ति नहीं कर लेते तब तक वे इसके प्रयास में निरंतर जुटे रहेंगे। ऋषि दयानंद ने सच्चे शिव की खोज की और सारे संसार के मजहब मत मतांतर और संप्रदायों के घनघोर घटा टोपो को नष्ट करके एक वैदिक परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को संसार के सामने रख कर लोगो को सच्चे शिव परम पिता परमात्मा के बारे में बताया। इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने मानव मात्र का धर्म के विषय में मार्ग दर्शन किया ।

तुलसीदास कृत रामायण में कुछ स्थलों पर मूर्ति पूजा का वर्णन, तुलसीदास जी की अपनी निजी कल्पना है। वह स्वयं वैष्णव थे, अतः यह स्थल केवल उनके अपने विचारों के ही प्रतिबिम्ब हैं उनका आधार वाल्मीकिकृत रामायण नहीं। न सीता माता ने स्वयंवर के समय देवी की जाकर पूजा की और न राम ने सेतुबंध के अवसर पर रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना अथवा पूजा की। वाल्मीकि रामायण में इतना वर्णन है कि लंका से विमान द्वारा लौटते समय राम ने सीता से संकेत करके कहा कि यहाँ महादेव की कृपा से हमने समुद्र का पुल बाँधा था।

एतत्तु कृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्यपरिपूजितम् ।
एतत् पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोत् प्रभुः ।

(युद्ध काण्ड 123/20–21)

अर्थः यह जो बड़े तट दिखाई दे रहा है, को सेतुबंध कहते हैं जो तीनों लोकों में

प्रसिद्ध है यह परम पवित्र स्थान है यहाँ पापी मुझपर प्रायश्चित करते हैं, यहां सर्वव्यापक देवताओं में बड़े महादेव परमात्मा मुझे कृपा की थी।

उपर्युक्त श्लोक में कहीं भी शिवलिंग स्थापना तथा उसके पूजन की बात नहीं है। सम्भवतः महादेव शब्द, जिसका अर्थ है देवों में महान परमात्मा है, को देखकर तुलसीदास जी ने शिवलिंग स्थापना एवं उनकी पूजा की कल्पना कर ली। वैष्णव लोगों का स्वभाव ही ऐसा है संस्कृत तो आती नहीं कुछ भी बोल देते हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम परम राजनीतिज्ञ थे

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र कूटनीति, राजनीति, न्याय व्यवस्था, लोक प्रशासन जैसे विषयों के मर्मज्ञ ज्ञाता थे। वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में उनके राजनीतिक ज्ञान का परिचय होता है जो उन्होंने उपदेश के रुप में अपने अनुज महाराज भरत को दिया। महाराज दशरथ की मृत्यु के 14 दिन पश्चात भरत ने वल्कल वस्त्र धारण कर लिए। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को मनाने के लिए भरत चतुरंगनी सेना लेकर अयोध्या से कूच कर गए। अयोध्या कांड में रघुवंशी भरत की इस कवायद का बड़ा ही सुंदर उल्लेख है। सैकड़ों मार्ग को समतल करने वाले, वृक्षों को काटकर मार्ग बनाने वाले जहाँ वृक्ष नहीं वहाँ मार्ग पर वृक्ष लगाने वाले, पत्थरों को तोड़कर रास्ता बनाने में माहिर शिल्पियों को इस काम में लगाया गया।

ससुधाकुटिट्मतलः प्रपुष्पितमहीरुहः।
मतोद् घुष्टद्विजगणः पताकाभिरलकृतः ॥13॥
अपरेपूरयन् कूपान पासुभिः श्ववभ्रमायतम्।
निम्नभागास्ततः केचित्समाश्चक्रुः समन्ततः ॥12॥

(अयोध्या कांड)

भरत जी की आज्ञा अनुसार भूमि प्रदेश के जानने वाले , भूमि की नाप तोल करने में दक्ष लोग फावड़े कुदाल आदि उपयोगी सामान लेकर आगे–आगे चले। वे लोग मार्ग को ठीक करने के अभिप्राय से लता वल्ली झाड़– पत्थरों और अनेक प्रकार के वृक्षों जो मार्ग में पड़ते थे कूट काटकर रास्ता बनाते जाते थे। कुछ लोग मार्ग में आने वाली कूप और गड्ढों को मिट्टी से पाटते थे और नीची भूमि को मिट्टी से भर कर बराबर करते चले जाते थे उन कारीगरों ने सेना के जाने के मार्ग को चूने के गचो से ठीक कर दिया सड़क के इधर–उधर विकसित फूलों वाले वृक्ष लगाए गए सड़कों के दोनों ओर पताका सुशोभित हो रही थी और पक्षी गण मस्ती में आकर चहक रहे थे।

महाराज भरत अयोध्या प्रस्थान की तिथि से उसी दिन शाम को गंगा के किनारे निषादराज गुह की राजधानी श्रंगवेरीपुर में पहुँचते हैं जो आज प्रयाग में है। निषादराज

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के मित्र थे अपना अभिप्राय निषादराज को बताते हैं... निषादराज अपने अधीनस्थों को आदेश देते हैं (यहां हम बताना चाहेंगे निषाद मल्लाह नहीं था वह निषाद लोगों का राजा था) उसकी आज्ञा पाकर नाविक लोग उठ खड़े होते हैं अपने राजा के आदेश अनुसार 500 नौका गंगा के घाट पर लगा दी जाती है। महर्षि वाल्मीकि ने नौकाओं की संख्या व कुछ नौकाओं का नाम भी अयोध्या काण्ड में इस प्रसंग में खोला है।

वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड के 70 वे सर्ग में 50 से अधिक श्लोक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के भरत को दिए गए उपदेश वैदिक भारत की राजनीति का सुंदर काण्ड प्रस्तुत करते हैं। उपदेशों का सार इस प्रकार है।

कच्चिद्देवान् पितॄन् भृत्यान गुरून् पितृसमानपि।
वृद्धाश्च तात वैधाश्चं ब्राह्माणाश्चाभिमन्यसे॥

(अयोध्या कांड)

कच्चित्सहस्नान् मूर्खणामेकमिच्छसि पण्डितम्।
पण्डितो हार्थकृच्छ्रेषु कुयार्न्निः श्रेयसं महत्द्य।

(अयोध्या कांड)

मर्यादा पुरुषोत्तम राम भरत से कहते हैं हे भरत! तुम अपने राज्य में विद्वानों, रक्षकों, नौकरों, गुरुओं, पिता के समान पूज्य बड़े बूढ़ों, चिकित्सकों का सत्कार तो करते हो।

हे भाई! तुम बाण और अस्त्र विद्या में निपुण तथा नीतिशास्त्र विशारद धनुर्वेद के आचार्यों का आदर सत्कार तो करते हो।

हे तात! क्या तुमने अपने समान विश्वसनीय वीर नीतिशास्त्र के जानने वाले लोभ में न फंसने वाले प्रमाणिक कुल उत्पन्न और संकेत को समझने वाले व्यक्तियों को मंत्री बनाया है क्योंकि हे राघव! मंत्रणा को धारण करने वाले नीतिशास्त्र विशारद सचिवों के द्वारा गुप्त रखी हुई मंत्रणा हीं राजाओं की विजय का मूल होती है तुम अकेले तो किसी बात का निर्णय नहीं कर लेते तुम्हारा विचार कार्य रूप में परिणत होने से पूर्व दूसरे राजाओं को विदित तो नहीं हो जाता। तुम हजार मूर्खों की अपेक्षा एक बुद्धिमान परामर्शदाता को रखना अच्छा समझते हो ना? क्योंकि संकट के समय बुद्धिमान व्यक्ति महान कल्याण करता है। हे कैकईनंदन! तुम्हारे राज्य में उग्र दण्ड से उत्तेजित प्रजा तुम्हारा अथवा तुम्हारे मंत्रियों का अपमान तो नहीं करती। हे भरत! क्या तुमने व्यवहार कुशल सूर, बुद्धिमान, धीर, पवित्र स्वामी भक्त और कर्म कुशल व्यक्ति को अपना सेना अध्यक्ष बनाया है?

तुम्हारी सेना में जो अत्यंत बलवान युद्ध विद्या में निपुण सुपरीक्षित और पराक्रमी सैनिक है उन्हें पुरस्कृत कर सम्मानित करते हो या नहीं उनका उत्साहवर्धन करते हो

या नहीं? तुम सेना के लोगों को कार्य अनुरूप भोजन और वेतन जो उचित परिमाण में और उचित काल में देना चाहिए उसे यथा समय देने में विल्म्ब तो नहीं करते। हे भरत! राज कर्मचारियों का वेतन ठीक समय पर ना मिलने से राज्य कर्मचारी लोग विरुद्ध होते हैं स्वामी की निंदा करते हैं राज्य कर्मचारियों का ऐसा करना भारी अनर्थ की बात समझी जाती है। हे भरत! तुम्हारी गुप्तचर व्यवस्था तो अचूक है या नहीं। हे राघव! पापी लोगों से रहित मेरे पूर्वजों के द्वारा सुरक्षित तथा समृद्ध कौशल देश सुखी तो है या नहीं?

हे भरत! पशुपालन कृषि आदि में लगे हुए तुम्हारी सब प्रजा सुखी तो है ना लेन–देन के कार्य में लिप्त रहकर ही वैश्य लोग धन–धान्य से युक्त होते हैं ना। हे भरत! तुम प्रतिदिन प्रात काल उठकर और सब प्रकार से सुभाषित होकर दोपहर से पहले ही सभा में जाकर प्रजा से मिलते हो या नहीं? हे भरत तुम्हारी आय अधिक और खर्च न्यून है ना तुम्हारे कोश का धन न्राच गाने वालों में तो नहीं ले लुटाया जाता है। तुम्हारे राज्य में घूस लेकर अपराधियों को छोड़ तो नहीं दिया जाता। अमीर और गरीब का झगड़ा होने पर तुम्हारे मंत्री लोभ रहित होकर दोनों का मुकदमा न्याय पूर्वक निपटाते आते हैं या नहीं.....

हे भरत ! झूठे अपराधों के कारण दंडित लोगों को आँखों से गिरने वाले आँसू अपने भोग विलास के लिए शासन करने वाले राजा उसके पुत्र राज्य कर्मचारियों और उसके पशुओं का नाश कर डालते हैं।

ऐसे अनेकों महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्था न्याय प्रशासन लोक प्रशासन कर व्यवस्था से सम्बन्धित उपदेश मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने भरत को दिए। आज आधुनिक भारत में राजनीतिक रैलियों में राम का उद्घोष करने वाले राजनेताओं को अपने गिरेबान में झांकना चाहिए...! क्या वह राम के राजनीतिक आदर्शों पर चल रहे हैं? रामराज्य मर्यादा पुरुषोत्तम राम को मानने से ही नहीं मर्यादा पुरुषोत्तम राम की शिक्षाओ को मानने से उन्हें राज व्यवस्था में लागू करने से ही आएगा। राम के विचारों का साकार मंदिर कब भारतीय लोकतंत्र में बन पाएगा?

श्रीराम जी पर लगाए जाने वाले आरोप और उनका उत्तर

आरोप 1 –श्री राम दलित विरोधी थे ?

इन दिनों दलितों की राजनीति करनेवाले राजनेता दलित वोटों की तलाश में राम का चरित्र हनन और रावण का महिमा मंडन की ओछी राजनीति कर रहे हैं। जिसके लिए उन्हें पेरियार के सच्चा रामायण से प्रेरणामिल रही है। हालांकि इसके लिए उन्होंने राम कथा से सम्बन्धित विभिन्न साहित्यिक सामग्री को पढ़ना मुनासिब नहीं समझा। सच्चा

रामायण के लेखक पेरियार ने अपने रुग्ण मानसिकता और क्षेत्रीय सोच के तहत रावण का महिमा मंडन इसलिए किया है कि उनकी जानकारी में रावण एक दक्षिण भारतीय मूल के निवासी तमिल थे जबकि उनके अनुसार राम तथाकथित बाहरी आर्य आक्रांताओं के वंशज थे। उनकी सोच एकतरफा और विघटनकारी है।

सच तो यह है कि उस समय दलित शब्द ही नहीं था, वर्ण व्यवस्था कर्म पर आधारित थी। भाषा के अनुसार दलित उसको कहते है जो बिल्कुल असहाय हो और बिना किसी की सहायता से निर्वाह ना कर सके जैसे लकवा मारा व्यक्ति, कोढी, अत्यंत निर्धन जो परिश्रम करने में असमर्थ हो आदि। इसलिए राम को दलित विरोधी कहना ही दुःखद है। राम राजा थे, प्रजा की जिम्मेदारी थी उन पर, जिसका उन्होंने निर्वहन किया।

आरोप 2 - राम ने धोखे से शम्भूक का वध किया था ?

मेरी एक प्रार्थना है कि इस उत्तर को पढ़ते समय अपने पूर्वाग्रह को अलग रख दें क्योंकि पूर्वाग्रह के साथ तथ्यों को सही ढंग से नही समझा जा सकता। वैसे तो प्रश्न का उत्तर केवल एक वाक्य में दिया जा सकता है कि वास्तव में शम्बूक नामक कोई चरित्र मूल वाल्मीकि रामायण में है ही नही। सत्य वही हैं जो तर्क शास्त्र की कसौटी पर खरा उतरे। हम यहाँ तर्कों से शम्बूक वध की कथा की परीक्षा करके यह निर्धारित करेंगे की सत्य क्या हैं?

यहाँ ध्यान दें कि मैंने ''वाल्मीकि रामायण'' की बात की है। आज वर्तमान में रामायण के दो संस्करण उपलब्ध है – एक महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित और एक कलयुगी वाल्मीकियों द्वारा रचित। दुख की बात ये है कि कलयुगी वाल्मीकि रामायण ही आज अधिक प्रचलन में है। पहले महर्षि वाल्मीकि की रामायण समझते हैं, फिर आज की कलयुगी रामायण का इतिहास अच्छे से समझ आ जाएगा।

एक बात को अच्छे से समझ लें कि मूल एवं वास्तविक वाल्मीकि रामायण में केवल 6 खंड ही थे –बाल–कांड, अयोध्या कांड, अरण्य–कांड, किष्किंधा कांड, सुंदर कांड एवं लंका (युद्ध) कांड। युद्ध कांड में श्रीराम के राज्याभिषेक के साथ ही महर्षि वाल्मीकि ने रामायण का समापन कर दिया। यही कारण है कि जब तुलसीदास जी ने रामचरितमानस लिखी तो उन्होंने भी उसमें केवल इन्ही छः कांडों का समावेश किया।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र जी महाराज के जीवन को सदियों से आदर्श और पवित्र माना जाता हैं। कुछ विधर्मी और नास्तिकों द्वारा श्री रामचन्द्र जी महाराज पर शम्बूक नामक एक शूद्र का हत्यारा होने का आक्षेप लगाया जाता हैं।

सर्वप्रथम शम्बूक कथा का वर्णन वाल्मीकि रामायण में उत्तर काण्ड के 73–76 सर्ग में जोड़ी गयी है और ये कथा इस प्रकार हैं–

एक दिन एक ब्राह्मण का इकलौता बेटा मर गया। उस ब्राह्मण ने लड़के के शव को लाकर राजद्वार पर डाल दिया और विलाप करने लगा। उसका आरोप था कि बालक की अकाल मृत्यु का कारण राज का कोई दुष्कृत्य हैं। ऋषि–मुनियों की परिषद् ने इस पर विचार करके निर्णय दिया कि राज्य में कहीं कोई तप कर रहा है। रामचंद्र जी ने इस विषय पर विचार करने के लिए मंत्रियों को बुलाया। नारद जी ने उस सभा में कहा–राजन! द्वापर में भी शूद्र का तप में प्रवत होना महान अधर्म हैं (फिर त्रेता में तो उसके तप में प्रर्वत होने का प्रश्न ही नहीं उठता?)। निश्चय ही आपके राज्य की सीमा में कोई खोटी बुद्धिवाला शूद्र तपस्या कर रहा हैं। उसी के कारण बालक की मृत्यु हुई हैं। अतः आप अपने राज्य में खोज कीजिये और जहाँ कोई दुष्ट कर्म होता दिखाई दे वहाँ उसे रोकने का यतन कीजिये। यह सुनते ही रामचन्द्र जी पुष्पक विमान पर सवार होकर शम्बूक की खोज में निकल पड़े और दक्षिण दिशा में शैवल पर्वत के उत्तर भाग में एक सरोवर पर तपस्या करते हुए एक तपस्वी मिल गया जो पेड़ से उल्टा लटक कर तपस्या कर रहा था।

उसे देखकर श्री रघुनाथ जी उग्र तप करते हुए उस तपस्वी के पास जाकर बोले– "उत्तम तप का पालन करते हुए तापस! तुम धन्य हो। तपस्या में बड़े–चढ़े, सुदृढ़ पराक्रमी पुरुष! तुम किस जाति में उत्पन्न हुए हो? मैं दशरथ कुमार राम तुम्हारा परिचय जानने के लिए ये बातें पूछ रहा हूँ। तुम्हें किस वस्तु के पाने की इच्छा हैं? तपस्या द्वारा संतुष्ट हुए इष्टदेव से तुम कौन सा वर पाना चाहते हो– स्वर्ग या कोई दूसरी वस्तु? कौन सा ऐसा पदार्थ हैं जिसे पाने के लिए तुम ऐसी कठोर तपस्या कर रहे हो जो दूसरों के लिए दुर्लभ हैं?

तापस! जिस वस्तु के लिए तुम तपस्या में लगे हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। इसके सिवा यह भी बताओ की तुम ब्राह्मण हो या अजेय क्षत्रिय? तीसरे वर्ण के वैश्य हो या शूद्र हो?"

क्लेश रहित कर्म करने वाले भगवान् राम का यह वचन सुनकर नीचे मस्तक करके लटका हुआ वह तपस्वी बोला हे श्री राम! मैं झूठ नहीं बोलूँगा। देव लोक को पाने की इच्छा से ही तपस्या में लगा हूँ। मुझे शूद्र जानिए। मेरा नाम शम्बूक हैं। वह इस प्रकार कह ही रहा था कि रामचन्द्र जी ने म्यान से चमचमाती तलवार निकाली और उसका सर काटकर फेंक दिया।

शम्बूक वध की कथा की तर्क से परीक्षा

- क्या किसी भी शूद्र के लिए तपस्या धर्म शास्त्रों में वर्जित हैं?
- क्या किसी शूद्र के तपस्या करने से किसी ब्राह्मण के बालक की मृत्यु हो सकती हैं?

- क्या श्री रामचन्द्र जी महाराज शूद्रों से भेदभाव करते थे?

इस प्रश्न का उत्तर वेद, रामायण, महाभारत और उपनिषदों में अत्यंत प्रेरणा दायक रूप से दिया गया हैं।

वेदों में शूद्रों के विषय में कथन

1. तपसे शूद्रम-यजुर्वेद 30/5

अर्थात–बहुत परिश्रमी, कठिन कार्य करने वाला, साहसी और परम उद्योगों अर्थात तप को करने वाले आदि पुरुष का नाम शूद्र हैं।

2. नमो निशादेभ्य-यजुर्वेद 16/27

अर्थात– शिल्प–कारीगरी विद्या से युक्त जो परिश्रमी जन (शूद्र/निषाद) हैं उनको नमस्कार अर्थात उनका सत्कार करे।

वाल्मीकि रामायण में श्री राम चन्द्र जी महाराज द्वारा वनवास काल में निषाद राज द्वारा लाये गए भोजन को ग्रहण करना (बाल कांड 1/37–40) एवं शबर (कोल/भील) जाति की शबरी से बेर खाना (अरण्यक कांड 74/7) यह सिद्ध करता हैं कि शूद्र वर्ण से उस काल में कोई भेद भाव नहीं करता था। श्री रामचंद्र जी महाराज वन में शबरी से मिलने गए। शबरी के विषय में वाल्मीकि मुनि लिखते हैं कि वह शबरी सिद्ध जनों से सम्मानित तपस्वनी थी। अरण्यक 74/10

अब पाठक स्वयं विचार करे कि श्री राम जी तपस्या में लीन किसी शूद्र कुल में उत्पन्न हुए शम्बूक की हत्या कैसे कर सकते हैं?

नारद मुनि का कथन कि द्वापर युग में शूद्र का तप करना वर्जित हैं असत्य कथन मात्र हैं।

श्री राम का पुष्पक विमान लेकर शम्बूक को खोजना एक और असत्य कथन हैं क्योंकि पुष्पक विमान तो श्री राम जी ने अयोध्या वापस आते ही उसके असली स्वामी कुबेर को लौटा दिया था–सन्दर्भ– युद्ध कांड 127/62

जिस प्रकार किसी भी कर्म को करने से कर्म करने वाले व्यक्ति को ही उसका फल मिलता हैं उसी प्रकार किसी भी व्यक्ति के तप करने से उस तप का फल उस तप को करने वाले व्यक्ति मात्र को मिलेगा। इसलिए यह कथन कि शम्बूक के तप से ब्राह्मण पुत्र का देहान्त हो गया असत्य कथन मात्र हैं।

सत्य यह है कि मध्य काल में जब वेद विद्या का लोप होने लगा था, उस काल में ब्राह्मण व्यक्ति अपने गुणों से नहीं अपितु अपने जन्म से समझा जाने लगा था, उस काल में जब शूद्र को नीचा समझा जाने लगा था, उस काल में जब नारी को नरक का

द्वार समझा जाने लगा था, उस काल में मनु स्मृति में भी वेद विरोधी और जातिवाद का पोषण करने वाले श्लोकों को मिला दिया गया था, उस काल में वाल्मीकि रामायण में भी अशुद्ध पाठ को मिला दिया गया था जिसका नाम उत्तर काण्ड हैं।

इस प्रकार के असत्य के प्रचार से न केवल अवैदिक विचाधारा को बढावा मिला अपितु श्री राम को जाति विरोधी कहकर कुछ अज्ञानी लोग अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए हिन्दू जाति की बड़ी संख्या को विधर्मी अथवा नास्तिक बनाने में सफल हुए हैं।

इसलिए सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में सदा तत्पर रहते हुए हमें श्री रामचन्द्र जी महाराज के प्रति जो अन्याय करने का विष वमन किया जाता है उसका प्रतिकार करना चाहिए तभी राम राज्य को सार्थक सिद्ध किया जा सकेगा।

आरोप 3- श्री राम जी माँसाहारी थे?

इस शंका का समाधान होना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि श्री राम के साथ भारतीय जनमानस की आस्था जुड़ी है। हमारा ये मानना है कि श्री रामचन्द्र जी पूर्ण रूप से शाकाहारी थे। मेरे विश्वास का कारण स्वयं ईश्वर की वाणी वेद हैं। वेदों में अनेक मन्त्र मानव को शाकाहारी बनने के लिए प्रेरित करते हैं, माँसाहार की निंदा करते हैं, निरीह पशुओं की रक्षा करना आर्य पुरुषों का कर्तव्य बताते हैं और जो निरीह पशुओं पर अत्याचार करते हैं, उनको कठोर दंड देने की आज्ञा वेदों में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

1. वैष्णव मत को मानने वाले गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरित मानस के प्रभाव से वैष्णव मत की मूलभूत मान्यता शाकाहार के समर्थन में होने से भारतीय जनमानस का यह मानना है कि ऐसा नहीं हो सकता श्रीराम जी माँसाहारी थे।
2. महात्मा बुद्ध के काल में इस प्रक्षिप्त भाग के विरुद्ध दशरथ जातक के नाम से ग्रन्थ की स्थापना की जिसमें यह सिद्ध किया कि श्रीराम पूर्ण रूप से अहिंसा व्रत धारी थे और भगवान बुद्ध पिछले जन्म में राम के रूप में जन्म ले चुके थे। कहने का अर्थ यह हुआ कि जो भी आया उसने श्री राम जी की अलौकिक प्रसिद्धि का सहारा लेने का प्रयास लेकर अपनी–अपनी मान्यताओं का प्रचार करने का पूर्ण प्रयास किया।
3. **वेदों की शिक्षा के प्रतिकूलः**– जैसे वेदों में माँस खाने की मनाही है जबकि वाल्मीकि रामायण के कुछ श्लोक माँस भक्षण का समर्थन करते हैं। अतः वह प्रक्षिप्त हैं।
4. श्री रामचंद्र जी के काल में वाममार्ग आदि का कोई प्रचलन नहीं था इसलिए वाममार्ग की जितनी भी मान्यताएँ हैं उनका वाल्मीकि रामायण में होना प्रक्षिप्त है।

श्रीराम जी की माँसाहार की विरुद्ध स्पष्ट घोषणा

अयोध्या कांड सर्ग २ के श्लोक २६ में जब श्री राम जी वन में जाने की तैयारी कर रहे थे तब माता कौशल्या से श्रीराम जी ने कहा मैं १४ वर्षों तक जंगल में प्रवास करूँगा और कभी भी वर्जित माँस का भक्षण नहीं करूँगा और जंगल में प्रवास कर रहे मुनियों के लिए निर्धारित केवल कंद–मूल पर निर्वाह करूँगा।

इससे स्पष्ट साक्ष्य रामायण में माँस के विरुद्ध और क्या हो सकता है।

वीर हनुमान जी का सीता माता के साथ वार्तालाप

वीर हनुमान जब अनेक बाधाओं को पार करते हुए रावण की लंका में अशोक वाटिका में पहुँच गये तब माता सीता ने श्रीराम जी का कुशल क्षेम पूछा तो उन्होंने बताया कि राम जी न तो माँस खाते हैं और न ही मद्य पीते हैं। वाल्मीकि रामायण सुंदर कांड ३६/४१

रामायण में कहीं भी राम के मांसाहार सेवन के बारे में नहीं लिखा है। हर जगह श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के द्वारा कंद मूल खाए जाने का जिक्र मिलता है।

न मांसं राघवो भुङक्ते न चापि मधुसेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ॥

अर्थात राम ने कभी माँस सेवन नहीं किया न ही उन्होंने मदिरा का पान किया है। हे देवी, वे हर दिन केवल संध्यासमय में उनके लिए एकत्रित किए गए कंद ग्रहण करते हैं।

8 इसके अलावा अयोध्याकाण्ड में निम्निलिखित श्लोक निहित है जिसका कथन भोजन का प्रबंध करने के पश्चात लक्ष्मण ने किया था।

अयम् कृष्णः समाप्अन्गः शृतः कृष्ण मृगो यथा।
देवता देव सम्काश यजस्व कुशलो हि असि ॥

अर्थात देवोपम तेजस्वी रघुनाथजी, यह काले छिलके वाला गजकन्द जो बिगडे हुए सभी अंगों को ठीक करने वाला है उसे पका दिया गया है। आप पहले प्रवीणता से देवताओं का भजन कीजिए क्योंकि उसमें आप अत्यंत कुशल हैं।

श्रीराम और श्री लक्ष्मण द्वारा यज्ञ आदि में पशु बलि

रामायण के बाल कांड में ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ के समक्ष जाकर उन्हें अपनी समस्या बताते हैं कि जब–जब वे यज्ञ करने लगते हैं तब–तब से मारीच और सुबाहु नाम के दो राक्षस यज्ञ में विघ्न डालते हैं। माँस, रुधिर आदि अपवित्र वस्तुओं से यज्ञ को अपवित्र कर देते हैं। राजा दशरथ श्री रामचंद्र एवं लक्ष्मण जी को उनके साथ राक्षसों

का विध्वंस करने के लिए भेज देते हैं। जिसका परिणाम यज्ञ का निर्विघ्न सम्पन्न होना एवं राक्षसों का संहार होता है।

जो लोग यज्ञ आदि में पशु बलि आदि का विधान होना मानते हैं। वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ द्वारा किये गये अश्वमेद्य यज्ञ में पशु बलि आदि का होना मानते हैं, उनसे हमारा यह स्पष्ट प्रश्न हैं कि अगर यज्ञ में पशु बलि का विधान होता तो फिर ऋषि विश्वामित्र की तो राक्षस उनके यज्ञ में माँस आदि डालकर सहायता कर रहे थे न कि उनके यज्ञ में विघ्न डाल रहे थे। इससे तो यही सिद्ध होता है कि रामायण में अश्वमेध आदि में पशु बलि का वर्णन प्रक्षिप्त है और उसका खण्डन स्वयं रामायण से ही हो जाता है।

एक आक्षेप यह भी लगाया है कि प्राचीन भारत में अतिथि का सत्कार माँस से किया जाता था। इस बात का खंडन स्वयं वाल्मीकि रामायण में है। जब ऋषि विश्वामित्र ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में पधारते हैं तब ऋषि वशिष्ठ, ऋषि विश्वामित्र का सत्कार माँस आदि से नहीं अपितु सब प्रकार से गन्ने से बनाये हुए पदार्थ मिष्ठान, भात, खीर, दाल, दही आदि से करते हैं। यहाँ पर माँस आदि का किसी प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है। सन्दर्भ वाल्मीकि रामायण बाल कांड सर्ग 52 एवं सर्ग 53 श्लोक 1–6

आरोप 4 - श्रीराम का हिरण के शिकार के लिए जाना

दुष्प्रचार लोग यह भ्रम फैलाते हैं कि श्रीराम एक क्षत्रिय होने के नाते मांस का सेवन करते थे। इसीलिए तो माता सीता ने उन्हें हिरण मारकर लाने के लिए कहा था। यदि श्रीराम मांसाहारी नहीं थे तो क्यों माता सीता ने हिरण की माँग की थी? मांस खाने वाले पण्डे और कुछ हिन्दू इस दुष्प्रचार का सहारा लेकर माँसाहार करते है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि माता सीता ने हिरण के चमड़े की मांग की थी, क्योंकि वह उस चमड़े का आसन या वस्त्र बनाना चाहती थीं। अधर्मी लोग मृग के शिकार करने को मांसाहार से जोड़ कर देखते हैं।

सत्य क्या है ?

मृग शब्द को लेकर भ्रान्ति होने का मूल कारण मृग शब्द से हिरण का ग्रहण करना है। वास्तविकता यह है कि मृग का अर्थ हिरण नहीं अपितु सिंह अर्थात जंगली पशु भी है।

प्रभु श्रीराम, लक्ष्मण और माता सीता ने अपना राजपाट और राजसी वस्त्र सभी को त्याग कर वनगमन किया था। उन्होंने सन्यासियों के वस्त्र को धारण कर लिया था। वे सभी ऋषियों के आश्रम में रहे थे। वहां उन्होंने ध्यान और तप किया। बाद में वे दंडकारण्य में रहने लगे। पंचवटी में कुटिया बनाकर रहने लगे।

उन्हें किसी मृगचर्म की कोई जरूरत नहीं थी। क्योंकि वे शुद्ध सात्विक और तपस्वी वाला जीवन व्यतीत कर रहे थे। आपने कभी देखा है, किसी कुटिया में किसी ने पशु की खाल लटकाई हो? दूसरा भारत में मैदानी इलाकों में और दक्षिण भारत में कभी भी पशु चर्म को वस्त्र बनाने का प्रचलन नहीं रहा। पशु चर्म को कपड़े के समान प्रयोग करने का प्रचलन केवल बहुत ठंडे या बर्फीले इलाके में किया जाता था। आपने शिवजी के चित्र को इसी वेशभूषा में देखा होगा। लेकिन कोई भी वैष्णवी चर्म का प्रयोग नहीं करता।

सही क्या है-

इसके पीछे दो मुख्य कारण थे –१ सोने जैसी चमकती हुई त्वचा वाले किसी पशु को पहली बार देखकर सीता को आश्चर्य हुआ और उन्होंने इस उछलते–कूदते हुए हिरन के शिशु को पकड़ कर लाने को कहा।कही भी ऐसा कोई वार्तालाप नहीं मिलता कि जिसमें सीता ने इसको मारकर भोजन के प्रयोग के लिए कहा हो।

2 सुनहरी हिरन के बच्चे को देख कर जंगल में अकेलेपन को दूर करने के लिए माता सीता ने श्रीराम से उस बच्चे को पालने की इच्छा जाहिर की थी। प्रभु राम ने उस समय सीता को समझाने का प्रयास किया कि इतना छोटा बच्चा अपनी माँ के बिना नहीं रह सकता है, इसलिए ये हठ छोड़ दो। किंतु तब सीता बोलीं, ठीक है, जब तक इसकी माँ नहीं आती, तब तक तो इसे रख सकते हैं। ऐसे में हार कर प्रभु श्रीराम उस हिरन को पकड़ने उसके पीछे दौड़ते हुए चले गए। जब दौड़ते हुए वो हिरन एकदम से कभी दिखाई देता और कभी गायब हो जाता।

ये षड़यंत्र किस तरह हुआ ? इसके पीछे रावण की और उसके साले मारीच की भूमिका थी। मारीच आवाज निकालने और वेश बदलने में माहिर था। मारीच राम को पहचानता था क्योंकि वह सीता स्वयंवर में रावण के साथ राजा जनक के यहाँ गया था। उसने स्वर्ण रंग के वस्त्र डालकर मृग का रूप धारण किया जिसको देखकर सीता भ्रमित हुई क्योंकि इस प्रकार का मृग उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। इसलिए उन्होंने राम से उस मृग को पकड़कर लाने की जिद की।

मारीच उछल कूद करता हुआ राम से ओझल हो गया और वस्त्र बदल कर असली वेश में राम के पास आ गया और राम को अपनी बातो में तब तक उलझाए रखा जब तक रावण ने सीता का अपहरण कर लिया।

राम ने किसी मृग का वध नहीं किया, परन्तु मारीच ने आवाज निकालकर सीता को भ्रमित कर दिया था।

कुछ प्रमाणों से इस तथ्य को समझने का प्रयास करते हैं।

1. भाषा की दृष्टि से भी देखे तो शिकार शब्द उर्दू का है, उस समय ये शब्द प्रचलन

में ही नहीं था। आखेट शब्द हिंदी का है। आखेट का अर्थ है किसी को पकड़ लेना, सीताजी ने स्वर्ण मृग का आखेट के लिए ही कहा था।

2. वाल्मीकि रामायण आरण्यक कांड 14/33 में जटायु राम से कहते हैं–

इदं दुर्गमं ही कान्तारं मृग राक्षससेवितम्

अर्थात् – हे राम! यह दुर्गम्य वन मृग, राक्षसों से भरा है। यहाँ पर मृग का अर्थ हिंसक जंगली पशु निकलेगा क्योंकि शांतिप्रिय हिरण से किसी को कोई खतरा नहीं होता।

3 हिमाचल आदि पहाड़ी क्षेत्रों में सिंह को मृग के नाम से जाना जाता है। वेद में भी मृग को सिंह कहा गया है।

जैसे – मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठः

4. जंगली पशुओं के शिकार करने को मृगया कहते हैं।

5 कुछ लोग एक प्रश्न करते है कि यदि रम्म हिरन को पकड़ने गए तो धनुष क्यों लेकर गए और हिरन पर तीर क्यों चलाया ?

इसका सीधा उत्तर है कि जैसे पुलिस का सिपाही हमेशा बन्दूक लेकर चलता है, कुछ लोग हमेशा आत्म रक्षा के लिए लाठी लेकर चलते है, वैसे ही राम जंगल में रहते हुए अपने साथ धनुष लेकर चलते थे।

वहाँ राम ने कोई तीर नहीं चलाया, इधर–उधर भागकर शुरु में मारीच ने राम को चलाया और नकली आवाज से सीता को भ्रमित करने के बाद वस्त्र बदलकर राम के पास आ गया और उनको बातों में उलझाया। वह पहले से ही राम को जानता था। राम उसकी कुटिल चाल को नहीं समझ पाए।

आरोप 5- राम ने शबरी के झूठे बेर खाए?

राम और शबरी की भेंट के सम्बन्ध में लोक में एक कथा प्रचलित है कि राम ने शबरी के झूठे बेर खाए लेकिन वाल्मीकि रामायण यहाँ तक कि तुलसीकृत रामचरितमानस में भी इस मिथ्या धारणा का समर्थन नहीं होता। वाल्मीकि रामायण अरण्यकांड में यह वर्णन इस प्रकार है।

तौ पुष्ककरिण्याः पम्पायास्तीरमासादघ पश्चिम्।
अपश्यता ततस्तत्र शबयर्या रम्यमाश्रम ।।2।।

तौ च दृष्ट्वा त सिद्धा समुत्थाय कृतातंजलिः
रामस्य पादौ जग्राह लक्ष्मणस्य च धीमतः ।।4।।

माय तु विविधं वन्यं संचित पुरुषर्षभ ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम॥5॥

शब्दार्थ: कमलों से भरे हुए पम्पा सरोवर के पश्चिम तट पर पहुँचकर राम लक्ष्मण ने तपस्विनी शबरी के रमणीय आश्रम को देखा। वह दोनों भाई नाना प्रकार के वृक्षों से आवृत उस आश्रम में पहुँच वहाँ की रमणीयता को देखते हुए शबरी के निकट पहुँचे। वह सिद्ध शबरी उन दोनों भाइयों को देखते ही हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। उनसे कहा है पुरुष श्रेष्ठ मैंने पम्पा सरोवर के निकटवर्ती वन में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के कंद मूल फलों को आपके लिए इकट्ठा कर रखा है ऐसा कहकर उस शबरी ने उन्हें अर्घ्य पाघ आचमन यथाविधि प्रदान कर उनका आतिथ्य सत्कार किया।

वाल्मीकि रामायण में केवल इतना ही उल्लेख है वहाँ राम द्वारा झूठे बेर खाए जाने का दूर–दूर तक कोई उल्लेख नहीं है। हाँ लेकिन आगे प्रकरण में राम और शबरी के बीच वार्तालाप होता है, राम शबरी की जीवनचर्या, उनकी सिद्धियों और उपासना की स्थिति, समाधि आदि के विषय में प्रश्न उत्तर करते हैं, शबरी की कुशल योग क्षेम पूछते हैं।

राम शबरी से कहते हैं हे चारुभाषनि! तुम यम नियमों के पालन में सफल तो हो गई हो तप के द्वारा प्राप्त होने वाला संतोष सुख एवं शांति तो तुम्हें प्राप्त हो गई है।

श्री राम ने शबरी के लिए बेहद आदर सूचक सम्मानजनक शब्दों का प्रयोग किया जिसका वर्णन वाल्मीकि जी ने किया। आदि कवि वाल्मीकि ने शबरी के लिए तपस्विनी, सिद्धा जैसे सम्मान सूचक उपलब्धिं बोधक शब्दों का इस्तेमाल किया है।

राम ने शबरी के झूठे बेर खाए यह मिथक रामचरितमानस के रचना काल के बाद ही प्रचारित किया गया है। वैदिक संस्कृति में झूठा खाना व किसी को खिलाना पाप निंदनीय कर्म माना गया है। आज भले ही झूठा खाना सामाजिक समरसता, रिश्तों की प्रगाढ़ता का बोधक हो लेकिन ऋषि मुनियों की दृष्टि में यह निंदनीय, आयुर्वेद व चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि में रोग कारक है। इस सम्बन्ध मे प्रमाण है यदि हम उनका उल्लेख यहाँ करें तो यह लेख बहुत विस्तृत हो जाए।

तुलसीकृत रामचरितमानस की चर्चा जरूर करते हैं। वहाँ राम शबरी की भेंट के प्रसंग को तुलसी ने ऐसे व्यक्त किया है।

"कंद मूल फल सुरस अति दिए राम
कहुँ अपि प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि"

अर्थ: शबरी ने राम लक्ष्मण को अत्यंत रसीले और स्वादिष्ट कंदमूल और फल श्री राम को दिए प्रभु ने बार–बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया।

यहाँ भी राम द्वारा झूठे बेर खाने की घटना का अनुमोदन समर्थन नहीं होता। हाँ लेकिन रामचरितमानस के इसी प्रसंग में तुलसी की जातिवादी मानसिकता नारी के प्रति उनके घृणित विचारों का दिग्दर्शन अवश्य होता है जिसे पढ़कर कोई भी निष्पक्ष, निष्कपट राम ऋषि–मुनियों का वंशज तुलसी को संत नहीं स्वीकार कर सकता।

रामचरितमानस में एक नहीं, ऐसे सैकड़ों चौपाई सोरठा छंद है। ऋषि मुनि कृत रचित ग्रंथों रचनाओं व साधारण पक्षपाती सम्प्रदाय मतवादी मनुष्य कृत में यही भेद होता है। कहां महर्षि वाल्मीकि जैसा आदि कवि जिसने रामायण में सीता, शबरी, अनुसूइया, मंदोदरी, तारा, रूमा जैसी आर्य वैदिक नारियों के लिए आदर सम्मान सूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है । आदि कवि वाल्मीकि कृत रामायण में आप एक भी शब्द जातिवाचक या नारी के अपमान सूचक नहीं दिखा सकते। वही तुलसीकृत रामायण में ऐसे शब्दों की भरमार है। उदाहरण के तौर पर शबरी के ही प्रकरण को लेते हैं।

तुलसी ने इसी प्रसंग में लिखा है।

अध ते अधम अति नारी।
तिन्ह मह मै मतिमंद अधारी॥

जाति ही अध जन्म महिम मुक्त कीन्हि असि नारी।
महामन्द मन सुख महसि ऐसे प्रभुहि बिसारी॥

अर्थात शबरी श्री राम से कह रही है प्रभु एक तो स्त्री वैसे ही अधम है उन में भी अधम स्त्री हूँ। ऊपर से मैं मंदबुद्धि हूँ। तुलसी कहते हैं जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी ऐसी स्त्री को भी श्रीराम ने मुक्त कर दिया।

जिस शबरी को राम ने खुद स्वयं तपस्विनी कहा है, योग्य सद्गुण यम नियम विषयक वार्तालाप प्रश्नचर्या उसके साथ राम व वाल्मीकि जी ने जिसे सिद्धा नारी कहा है। उसको तुमने मंदबुद्धि पापी नीच जाति की घोषित कर दिया प्रभु श्री राम की भक्ति की आड़ में।

वाल्मीकि रामायण में शबरी का उल्लेख 2 कांडों में आता है। प्रथम अरण्यकांड और दूसरा युद्ध कांड में वहाँ पर भी श्री राम की शबरी के विषय में कैसी उच्च आदर्श मानसिकता थी उसका परिचय हमें तब मिलता है जब श्री राम रावण का वध कर विभीषण का राज्याभिषेक कर युद्ध में सहयोगी रहे वानर योद्धाओं को योग्यता अनुसार इनाम पारितोषिक खुद लंकापति विभीषण से दिला कर पुष्पक विमान मे माता सीता, लक्ष्मण, हनुमान सहित आकाश मार्ग में अयोध्या वापसी की यात्रा के दौरान। श्री राम माता सीता को आकाश से ही अरण्य कांड युद्ध कांड में घटित घटनाओं के स्थलों को उंगली से इशारा कर दिखाते हैं। उन स्थलों के साथ ही वनवास के दौरान स्थित ऋषि मुनियों के आश्रमों को भी दिखाते हैं यह सहज मानव प्रकृति है आकाश से मनुष्य अंतरिक्ष

को नहीं देखता पृथ्वी का ही अवलोकन करता है प्रभु श्रीराम ने भी ऐसा ही किया। जब तुगंभद्रा नदी के दक्षिण में स्थित पम्पा सरोवर के ऊपर पुष्पक विमान आता है तो श्री राम सीता से कहते हैं।

अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारणी।
अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ।।26।।

(वाल्मीकि रामायण युद्ध काण्ड सर्ग 69)

शब्दार्थः हे सीता सरोवर के तट पर धर्माचारिणी शबरी से मेरी भेंट हुई थी और इसी जंगल में मैंने विशाल भुजा वाले कबंध राक्षस को मारा था।

यहां भी श्री राम ने शबरी के लिए आदर्श शब्द का इस्तेमाल किया है। लेकिन तुलसीदास सबरी को मूढ मति नीच नारी सिद्ध करने पर तुले हुए हैं। अलंकारिक साहित्यिक भाषा का दुष्ट प्रयोग करते हुए।

तुलसी यहीं नहीं रुके यद्यपि चर्चा प्रकरण के विरुद्ध हो जाएगी उन्होंने रामचरितमानस की एक चौपाई में लिखा है।

सापत ताडत पुरुष कहंता।
बिप्र पूज्य अस गाव हि संता।

पूजिअ बिप्र सील गुण हिना ।
सुद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।।

अर्थात् शाप देता हुआ, मारता हुआ, कठोर वचन कहता हुआ भी कथित ब्राह्मण पूजनीय है ऐसा संत कहते हैं शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है और गुणवान युक्त और ज्ञान में निपुण शूद्र पूजनीय नहीं है।

ऐसी आर्य वैदिक संस्कृति ऋषि–मुनियों की मूल भावना के विरुद्ध लिखी गई चौपाइयों के कारण जातिवाद शोषण फला फूला। भला जो मधुर नहीं बोलता कठोर वचन बोलता है वह ब्राह्मण कैसे महाभारत मे तो मीठा मधुर गंभीर बोलने वाले को ही पंडित ब्राह्मण कहा गया है। और जो गुणवान है शिक्षित है तपस्वी है वह नीच शूद्र अर्थात अनपढ़ कैसे।

सबसे अधिक चिंताजनक तो यह है कथित दलित बुद्धिजीवियों के मुताबिक राम सब के नहीं है केवल खास वर्ग के हैं। जबकि प्रथम और अंतिम सत्य यही है राम सभी के है। आदर्श भाई, आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श मनुष्य राजा राम। तुलसी की रामायण देश को तोड़ती है जबकि वाल्मीकि की रामायण देश को ही नहीं अखिल विश्व को मानवीय मूल्य की प्रेरक सीख देते हुए एकजुट करती है

आरोप 6 - श्रीरामचरितमानस में नारी और शूद्र का अपमान

वामपंथी और अन्य समुदाय के लोग महाकवि रामभक्त तुलसीदास पर शूद्र विरोधी, महिला विरोधी होने का आरोप लगाते हैं कि उन्होंने एक चौपाई के माध्यम से इनका अपमान किया है।

सत्यता की पड़ताल

इसमें चौपाई का दोष नहीं इसको पढ़ने वाले और उसका अर्थ निकालने वाले लोगों का दोष है क्योंकि शूद्र और नारी का अपमान रामायण में कहीं भी नहीं किया गया है।

हिंदी भाषा के अंदर एक शब्द के अंतर से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उदाहरण मौजूद है रामायण की एक गलती से समाज में बार–बार भ्रम का पैदा होना जिसका दुष्परिणाम समाज में वैमनस्य बढ़ा है।

ध्यान दें!

1. गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य श्रीरामचरितमानस की कुल 10902 चौपाईयों में से आज तक मात्र एक ही चौपाई पढ़ने में आ पाई है और वह है सुंदर कांड में 58 वें दोहे की छठी चौपाई **"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।"**

इस सन्दर्भ में चित्रकूट में मौजूद तुलसीदास धाम के पीठाधीश्वर और विकलांग विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री राम भद्राचार्य जी (जो नेत्रहीन होने के बावजूद संस्कृत व्याकरण सांख्य न्याय वेदांत में 5 से अधिक गोल्ड मेडल जीत चुकें हैं।) महाराज का कहना है कि बाजार में प्रचलित रामचरितमानस में 3 हजार से भी अधिक स्थानों पर अशुद्धियाँ हैं और इस चौपाई को भी अशुद्ध तरीके से प्रचारित किया जा रहा है।

उनका कथन है कि तुलसीदास जी महाराज खलनायक नहीं थे।

2. आप स्वयं विचार करें यदि तुलसीदास जी की मंशा सच में शूद्रों और नारी को प्रताड़ित करने की ही होती तो क्या रामचरितमानस की 10902 चौपाईयों में से वो मात्र एक चौपाई में ही शूद्रों और नारी को प्रताड़ित करने की ऐसी बात क्यों करते?
3. यदि तुलसी दलित विरोधी होते तो भील शबरी के जूठे बेर को भगवान द्वारा खाये जाने का वह चाहते तो लेखन और शबरी की प्रसंशा नहीं करते।
4. यदि ऐसा होता तो केवट को गले लगाने का लेखन न करते।
5. ये चौपाई सही रूप में इस प्रकार है :–

ढ़ोल गँवार शूद्र पशु नारी नहीं, बल्कि यह ढ़ोल गँवार शूद्र पशु रारी हैं।

ढोल = बेसुरा ढोलक

गँवार = गँवार व्यक्ति

पशु = पालतु जानवर है

शूद्र = बिना पढा लिखा

रारी = कलह करने वाले लोग।

अर्थ : यदि रारी के स्थान पर नारी पढ़ा जाए और क्षुब्द के स्थान पर शूद्र पढ़ा जाए तो इसका अर्थ ये होगा–

ढोर यानी पशु, शूद्र यानि गलत कार्य करने वाला, गँवार यानि जो शिक्षा नहीं लेता और मूर्ख हैं। नारी यानि वो स्त्री जो काम काज नहीं करती, ये सब भी ताड़न यानि शिक्षा के अधिकारी हैं। इसका मतलब महाकवि तुलसी के भावार्थ को समझने में भूल हुई है। भ्रमवश या भारतीय समाज को तोड़ने के लिये जानबूझ कर गलत तरह से प्रकाशित किया जा रहा है। धार्मिक ग्रंथों को आधार बनाकर जो लोग हिन्दू समाज को तोड़ने का काम कर रहे हैं, उन्हें सफल नहीं होने दिया जायेगा।

आरोप 7- राम ने सीता परित्याग किया

वाल्मीकि रामायण का 'उत्तरकाण्ड' प्रक्षिप्त है, यह अन्तःसाक्ष्य, बाह्य साक्ष्य और परिस्थितिजन्य साक्ष्य तीनों प्रकार से स्वतः सिद्ध है पर इस काण्ड के कूट रचनाकार के चातुर्य की प्रशंसा करनी पड़ेगी कि कालिदास एवं भवभूति जैसे कवि एवं नाटककार और बांग्ला, तेलुगु एवं गुजराती आदि प्रादेशिक भाषाओं के अनेक रचनाकार भी भ्रमित होकर उसे सत्य मान बैठे। एक झूठ को भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के माध्यम से बार–बार कहलवाया जाये तो वह सच का रूप ले लेता है। प्रभु श्री राम के अद्वितीय उदात्त चरित्र को विवादास्पद बनाने के लिये जिसने भी यह कुकृत्य किया, वह पाप का भागी है। ऐसे ही धुरन्धरों ने रामचरितमानस में भी' लव–कुश काण्ड 'जोड़ने का निन्दनीय प्रयास किया है। श्री ज्वाला प्रसाद ने अलग से 'लव–कुश काण्ड' की रचना की और योजनाबद्ध रूप से इसे तुलसीकृत रामचरितमानस में जोड़ दिया।

गोस्वामी तुलसीदास समेत असंख्य कवियों, साहित्यकारों तथा भारत के समस्त हिन्दू–जन उन्हें भगवान् का अवतार मानते हैं, इसी कारण 'राम' शब्द भगवान् का पर्यायवाची हो गया है।

महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम को आदर्श पुरुष एवं उत्तम चरित्र सम्पन्न आदर्श नायक के रूप में चित्रित किया है। श्रीराम अवतार माने जायें या इतिहास पुरुष माने जायें,

दोनों ही स्थितियों में वे एक अनुकरणीय चरित्र हैं। उनका पूरा जीवन सम्पूर्ण मानवता को आदर्श शिक्षा प्रदान करता है।

रामकथा पर सबसे प्रामाणिक शोध करनेवाले फादर कामिल बुल्के का स्पष्ट मत है कि "वाल्मीकि रामायण का 'उत्तरकाण्ड' मूल रामायण के बहुत बाद की पूर्णतः प्रक्षिप्त रचना है'' (रामकथा – उत्पत्ति और विकास, हिन्दी परिषद्, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1650, संशोधित सं. 19 66, संशोधित सं का पुनर्मुद्रण 2007, पृ. 20, 65, ने 484, 553)।

गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा रचित रामचरितमानस में श्री राम द्वारा सीता के परित्याग का कहीं उल्लेख नहीं है, उन्होंने श्रीराम के राज्याभिषेक के बाद के काल का भी वर्णन किया है। रामराज्य की कानून–व्यवस्था, प्रशासनिक व्यवस्था, नागरिकों की जीवन – शैली तथा उनके जीवन स्तर की विशेष विवेचना भी की है। उन्होंने सीता द्व ारा दो पुत्रों की प्राप्ति का भी वर्णन किया है।

''दुइ सुत सुन्दर सीता जाए। लव कुस वेद पुरानन्ह गाये।। – रामचरितमानस (गीताप्रेस संस्करण),

उत्तरकाण्ड, दोहा 24 के बाद चौपाई ६ श्रीराम के अतिरिक्त उन्होंने भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के पुत्रों का भी उल्लेख किया है –

दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे ॥ 8 ॥

वहीं चौपाई सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति को दो–दो पुत्रों की प्राप्ति अयोध्या में ही हुई। तुलसीदासजी ने पूरे मानस में कहीं भी सीता–परित्याग का संकेत तक नहीं दिया है। अगर ऐसी घटना की सत्यता की परम्परा/मान्यता रहती तो वे इसका उल्लेख अवश्य करते ।

ध्यान पूर्वक रामायण का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि 'उत्तरकाण्ड' मूल वाल्मीकि रामायण का अंग नहीं है और न ही यह महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित है ।

वाल्मीकि रामायण का पूरा 'उत्तरकाण्ड' काल्पनिक है और हजारों वर्षों बाद मूल में जोड़ा गया। सीता–परित्याग और शम्बूक–वध की घटनायें पूर्णतः असत्य हैं। श्रीरामचन्द्रजी ने ग्यारह सहस्र वर्षों तक जनकनन्दिनी सीता एवं समस्त भ्राताओं के साथ राजनगरी अयोध्या से प्रजा का पालन करते हुए कौशल देश पर सुखपूर्वक राज किया था।

आरोप 8 - रामजी ने बाली को धोखे से मारा

रामायण में एक प्रसंग आता है कि बाली को रामजी ने धोखे से मारा? और इस पर प्रश्न लगाया जाता है कि राम ने ऐसा क्यों किया जबकि वो बहुत शक्तिशाली योद्धा थे?

विश्लेषणः– इस प्रसंग को अगर हम वाल्मीकि रामायण में ध्यान से पड़ेंगे तो हमें अपने सारे प्रश्नों का उत्तर मिल जायेगा। जब बाली को बाण लगा तो उसने यही प्रश्न किया कि प्रभु आप मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, आपकी नीतियों की दुनियाँ दुहाई देती है, फिर भी आपने मेरे साथ ये छल क्यों किया?



श्रीराम जी ने कहा हे वानर राज! तुमने अपने जीवन काल में अपने बल के मद में चूर हो कर कभी न्याय और धर्म का विचार नहीं किया अपने छोटे भाई को बिना किसी अपराध के राज्य से निकाल दिया और उसकी पत्नी को अपने अधीन कर लिया।

जो अपनी बहन, छोटे भाई की पत्नी, अपनी पुत्र वधू एवम अपनी बेटी के प्रति मन में पाप रखता है। ऐसे व्यक्ति का वध करना न्यायोचित है और उसे कोई पाप नहीं लगता। तुम्हारे कर्म के हिसाब से ही तुम्हारी ये गति हुई है और मृत्यु के सम्मुख आकर तुम्हें नीति और धर्म का ज्ञान सूझ रहा है। यहाँ ये भी ध्यान देने योग्य है कि –

1. यदि श्री रामजी गलत होते तो बाली का पुत्र कदापि श्रीराम का साथ न देता।
2. जो व्यक्ति स्त्री का सम्मान नही करता, उसे सामने मारने या छिपके मारने में कोई अंतर नही और वैसे भी रामजी ने बाण छाती पर मारा था न कि पीठ पर। अगर छिपकर मारा होता तो बाण पीठ पर लगता, छाती पर नहीं।
3. जब बाली सुग्रीव से युद्ध के लिए तैयार था उसी समय उसकी पत्नी तारा ने सूचित कर दिया था।

सुग्रीवप्रियकामार्थ प्राप्तौ तत्र दुरासदौ।
तव भ्रातुः हि विख्यातः सहायो रण कर्कशः ॥

अर्थात् :– सुग्रीव की अभीष्ट सिद्धि के लिए वे दोनों (राम और लक्ष्मण) दुर्धर्ष वीर कटिबद्ध हुए हैं। रण कुशल वे दोनों भाई सुग्रीव के सहायक बने हैं।

अतः यह सिद्ध होता है कि बाली को उसकी पराजय की पूर्व सूचना मिल चुकी थी तो हम राम के ऊपर कैसे दोषा रोपण कर सकते हैं? दूसरी ओर जब राम ने बाली के ऊपर शर संधान किया था तो उसके पहले उन्होंने अपने धनुष की टंकार इतने जोर से खींची थी कि पेड़ पर बैठे पक्षी तक उड़ गए तथा सम्पूर्ण जंगल चलायमान हो उठा था। क्या बाली इतनी बड़ी घटना के प्रति असावधान होकर सुग्रीव से लड़ता रहा? नहीं बल्कि उस घटना से उसकी भौहें तन गई थीं, तो हम कैसे कह सकते हैं कि राम ने

बाली को छिपकर मारा था? दूसरा प्रश्न यह उठता है कि जब सुग्रीव और बाली के बीच भयंकर युद्ध हो रहा था, बाली और सुग्रीव लगातार पैतरा बदल रहे थे, तब इस दौरान कौन सी स्थिति आई होगी जब राम का बाण बाली का वक्ष स्थल विदीर्ण कर गया। युद्ध में यह स्थिति तब आई जब सुग्रीव पेट के बल जमीन पर पड़ा था और बाली का पैर उसके पीठ पर था, वह बल–पूर्वक सुग्रीव के दोनों हाथ अपनी ओर खींच रहा था। ऐसी स्थिति में बाली की छाती प्रभु राम की तरफ थी। अगर वह शर–संधान न करते तो सुग्रीव का प्राणांत हो जाता।

4. ये कथा पूर्णतया गप्प है कि ब्रह्माजी ने बाली को वरदान दिया था कि जो भी शत्रु उनके सामने जायेगा उसकी शक्तियां आधी रह जाएंगी। अगर श्रीराम सामने से युद्ध करते तो ब्रह्माजी का वरदान निरस्त हो जाता, जो कि ब्रह्माजी के वरदान का अपमान होता। इसलिए श्रीराम जी ने बाली से सामने से युद्ध नही किया।

वरदान, श्राप, भाग्य नाम की कोई चीज दुनिया में नहीं हैं। हर व्यक्ति अपने परिश्रम से शक्तिशाली बनता है, कर्म से भाग्य बनता है और इस प्रकार की कथा महापुरुष एवं युगपुरुष श्री राम को कमजोर सिद्ध करने और उन पर लांछन लगाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ब्रह्मा ईश्वर को कहते हैं जिसने इस दुनियाँ का निर्माण किया है, उसके लिए सभी जीव एक समान हैं। वो किसी में भेद–भाव नहीं करता है।

अध्याय-2

माता-सीता



मर्यादापुरुषोत्तम महाराज रामचन्द्र की धर्मपत्नी सीताजी रामायण में एक प्रमुख पात्र है और नारी जाती में सीताजी एक सम्माननीय नाम है जिनको लेकर कवियों और लेखकों ने बहुत कुछ लिखा है। बड़े बड़े क्रान्तदर्शी महाकवियों की प्रतिभा खोज करते करते थक गई, किन्तु उनको श्रीसीताजी की उपमा न मिल सकी। इसीलिए आदिकवि बाल्मीकि ने श्रीसीताजी को अनुपमा कहा है। क्या सरलता में, क्या सुशीलता में, क्या सच्चरित्रता में, क्या पतिपरायणता में, क्या कृतज्ञता में, क्या गम्भीरता में और क्या सुन्दरता में, सभी विषयों में सीतादेवी अद्वितीय थीं ?

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इस लोकोक्ति के अनुसार सीतादेवी बाल्यावस्था से ही होनहार थीं। यह उन के जन्मजन्मान्तरों के सुकृत्यों का फल और सौभाग्य था कि उनका महाराज जनक जैसे अध्यात्मतत्ववेत्ता तथा धर्मात्मा पिता के यहाँ जन्म हुआ था। महाराज जनक अपने समय में अध्यात्मविद्या में अति पारंगत माने जाते थे कि ब्रह्मजिज्ञासु ऋषि मुनियो की मण्डली ज्ञानचर्चा के लिए उनको सदैव घेरे रहती थी और वे निष्काम भाव से राज्य–व्यवहार चलाते हुए भी जल में उत्पन्न कमलपत्र के समान संसार से पृथक् रहते थे, ऐसे सर्वगुणसम्पन्न राजर्षि जनक की आत्मजा श्रीसीता सर्वगुणों की खान क्यों न होतीं ।

यद्यपि श्रीवाल्मीकि रामायण और पुराणों में श्रीसीताजी को जानकी, वैदेही, जनकात्मजा और जनकसुता पदों से जनक की पुत्री बतलाते हुए भी उन को अयोनिजा कहा गया है और उनके सीता नाम को लेकर उन की उत्पत्ति के विषय में एक यह अलौकिक कथा वर्णन की गई है कि, यतः वे सीता–यज्ञ में हल चलाते हुए महाराजा जनक को पृथ्वी

में सीता (हल के खुड़) में से मिली थीं, इसी लिये उनका नाम 'सीता' पड़ा था। परन्तु इस कथा का ऐतिहासिक और मानवी दृष्टि से तत्त्वानुसन्धान किया जाय, तो उसमें तथ्यांश इतना ही प्रतीक होता है कि महाराजा जनक के सीतायज्ञ के अवसर पर ही उनका जन्म होने के कारण उनका नाम 'सीता' रक्खा गया था। संसार में और भी ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जिनमें किन्ही विशेष अवसरों पर उत्पन्न बालकों के नाम उन अवसरों के नाम पर ही रखे गए हैं। इस शताब्दी के काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय श्री पं० सुधाकर द्विवेदी के 'सुधाकर' नामकरण का यह कारण था कि उनके जन्म के समय पत्रवाहक (पोस्टमैन) काशी से प्रकाशित 'सुधाकर' समाचार पत्र उनके पितृव्य के पास लाया था, उन्होंने उसी नवप्राप्त पत्र के नाम पर अपने नवजात भ्रातृज का नाम 'सुधाकर' रख दिया था । भारत सरकार द्वारा पाकिस्तान के विरूद्ध चलाये गये 'आपरेशन सिन्दूर' के दौरान एक बच्ची का जन्म हुआ तो उसके माता–पिता ने उसका नाम "सिन्दूरी" रख दिया।

श्रीमती सीताजी के 'सीता' नामकरण का हेतु भी उनकी सीतायज्ञ के अवसर पर की उत्पत्ति ही हो सकती है, क्योंकि सीतायज्ञ के अवसर पर उनका आविर्भाव तो सर्ववादिसम्मत ही है।

अब श्री सीताजी की गुणगाथा की ओर पुनः आइए – –श्रीसीताजी राजर्षि जनक के गृह में कलानिधि की कलाओं के समान दिन–प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगीं। जहाँ उनका रूप मोतियों की आभा के समान शोभा देता था, वहाँ उनका क्षत्रिय–कन्योचित तेज और पराक्रम भी प्रत्येक देखने वाले को प्रभावित किए विना न रहता था।

राजर्षि जनक प्रायः प्रतिदिन सभा में बैठ कर ऋषि मुनियों के साथ परमार्थतत्त्वचिन्तन किया करते थे, उनकी सभा में दूर दूर से तपस्वी आया करते थे। उन वनवासी तपस्वियों के मुख से तापस आश्रमों और तपोवनों का वर्णन सुन सुन कर श्रीसीताजी के बालहृदय में उन आश्रमों मैं ऋषिकन्याओं वा ऋपिपक्षियों के साथ विहार करने की अभिलाषा अकुरित और बद्धमूल हो गई। प्राकृतिक शोभा–निरीक्षण में उनका प्रेम प्रगाढ़ होता गया। यही कारण है कि आगे चल कर चौदह वर्ष तक श्री सीता को अपने पति के साथ घोरनादिनी नदियों के तीरस्थ गहन निर्जन वनों और गिरिकन्दराओं के आवास में कुछ भी कष्टानुभव नहीं हुआ।

सीता स्वयंवर में धनुष तोड़ने की कथा

पौराणिक कथा :– शिवजी का पिनाक धनुष राजा जनक के पास था। एक बार बचपन में जब सीताजी अपनी सखियों के साथ खेल रही थीं तभी उन्हें यह शिव धनुष दिखाई दिया और सीता ने उसे उठा लिया। वह धनुष जिसे सम्पूर्ण राज्य में कोई हिला



भी न सका, उसे सीता को इतनी आसानी से उठाता हुआ देखकर राजा जनक अचम्भित थे। यह दृश्य देखने के बाद ही राजा जनक ने यह निर्णय लिया कि सीता का विवाह वह उस पुरुष से करेंगे जो इस धनुष को उठाने में सक्षम होगा।

जिस धनुष को बड़े–बड़े सूरमा भी नहीं उठा सकते थे उस धनुष को माता सीता ने बाल्यकाल में एक हाथ से ही उठा दिया। प्रचलित कथा के अनुसार भगवान श्रीराम ने जो शिव धनुष तोड़ा उसको पांच हजार लोग जैसे तैसे खींच के जनक, विश्वामित्र और राम–लक्ष्मण के समक्ष लेकर आए थे। रामायण के अनुसार यह धनुष एक विशालकाय लोहे के संदूक में रखा हुआ था। इस संदूक में आठ बड़े–बड़े पहिये लगे हुए थे, उसे पाँच हजार मनुष्य किसी तरह खींचकर लाए थे। भगवान राम व लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ मिथिला पहुँचे तब विश्वामित्र ने ही राजा जनक से श्रीराम को वह शिव धनुष दिखाने के लिए कहा। तब पाँच हजार लोगों द्वारा शिवधनुष को खींचकर उनके सम्मुख लाया गया। भगवान श्रीराम ने उस धनुष को उठा लिया और उनके द्वारा प्रत्यंचा चढ़ाते समय वह धनुष टूट गया।

पड़ताल:– महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण में सीता स्वयंवर का वर्णन नहीं हैं। इस कथा में अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है और कथा वाचक इसको और रोचक बनाते चले आये हैं। वस्तुतः मूल में भूल हो जाने के कारण एक झूठ को सच बनाने की प्रक्रिया में सौ झूठ बनाने पड़ते हैं।

1. सीता के चरित्र को सीता हरण के समय इतना कमजोर दिखा दिया कि वह रावण का सामना नहीं कर पायी वही रावण जो, इस धनुष को हिला भी नहीं सका था और 5000 वीर पुरुष ही इस धनुष को उठाकर राम के पास लाये थे, इससे ये कथा असत्य लगती है।
2. सीता एक राजकुमारी थी और राजमहल भी अत्यंत विशाल होगा, फिर सीता द्वारा झाड़ू पोंछा करने का कार्य आसानी से गले नहीं उतरता।
3. वाल्मीकि रामायण में राजा जनक की सभा में रावण के आने का कोई उल्लेख नहीं है, तब उसके धनुष न उठाने की चर्चा कैसे हो सकती है? सच तो यह है कि सीता के स्वयंवर की बात ही सर्वथा मिथ्या है। स्वयंवर में कन्या बहुतों में से

अपनी पसन्द के अनुरूप किसी एक को अपने पति के रूप में चुनती हैं एवं उसका वरण करती है।

4. तथ्य यह है कि – बाल्यकाल को अतिक्रमण करके किशोरावस्था में पदार्पण करने पर श्रीसीताजी के सद्‌गुणों का सौरभ दशों दिशाओं में व्याप्त होने लगा। राजर्षि जनक जहाँ अपनी पुत्री की कीर्ति सुनकर बहुत प्रसन्न होते थे, वहाँ अब उनके मन में इस चिन्ता का भी आविर्भाव होने लगा कि सीता अपनी शारीरिक और मानसिक सम्पत्ति, अपने सौन्दर्य, यछ, विद्या और बुद्धि–के अनुरूप ही किसी योग्य पुरुष श्रेष्ठ की सहधर्मिणी तथा धर्म–पत्नी बने। इसकी परीक्षा के लिए महाराज जनक ने यह प्रबन्ध किया कि उनके कुल में उनके पूर्वपुरुषों के समय से एक बड़ा भारी धनुष विद्यमान चला आता था, जो शिव–धनुष के नाम से विख्यात था । उन्होंने सीता के स्वयंवर के लिए यह शर्त नियत किया कि जो पुरुष इस धनुष पर बाणारोपण कर सकेगा सीता उसी के गले में वर–माला पहिना कर उसको अपना पति वरण करेगी।

वीर्यशुल्का होने के कारण सीता अपनी पसन्द के अनुरूप पति का चुनाव करने मे स्वतन्त्र नहीं थी। स्वयं जनक के शब्दों में उसका विवरण इस प्रकार हैं– (स्त्री०वीर्य शुल्का) वह प्रतिज्ञा या प्रण जो वीर्य सम्बन्धी हो। जैसे यह प्रतिज्ञा करना कि जो पुरुष या स्त्री अमुक कार्य करेगा उसके साथ इस स्त्री या पुरुष का विवाह होगा।

वरया मा सुरागत्य राजानो मुनिपुन्गव ।
तेषां वरायातां कन्यां सर्वेषां पृथ्वीक्षितां।।

वीर्य शुल्केति भगवन् न ददामि सुतामहम्।
ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुंन्गव।।

मिथिलामप्युपागम्य वीर्य जिज्ञासवस्तदा।
तेषां वीर्य वीर्यमल्यं शैवं धनुरूपाहतम्।।

न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुरूपस्ताननेपिवा हृतम्।
तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्यात्वा महामुने।।
प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निवोध तपोधन।।

यद्ययस्य धनुषो राम, कुर्योदारोषणं मुने।
सीतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरेहम्।। ।।

बाल 066 / 16 / –19,26

5. हे मुनिवर! मेरी पुत्री सीता को कई राजाओं ने आकर माँगा। कन्या का वरण करने वाले उन सभी राजाओं को मैंने बता दिया कि मेरी पुत्री वीर्यशुल्का है, यही कारण है कि मैंने अपनी पुत्री अभी तक किसी को नहीं दी, तब सभी राजा मिलकर

मिथिला में आए और पूछने लगे कि राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए शुल्क रूप में क्या पराक्रम निश्चित किया है। मैंने जिज्ञासा करने वाले उन राजाओं के सामने यह धनुष रख दिया परंतु उनमें से कोई भी इसे उठाने या हिलाने में समर्थ न हो सका। उन पराक्रमी नरेशों की शक्ति बहुत थोड़ी जानकर मैंने अपनी कन्या उन्हें देने से इन्कार कर दिया। यदि राम इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा दें तो मैं अपनी कन्या उन्हें दे दूँ।

महर्षिर्वचनाद् यत्र तिष्ठति तद्धनु।
मन्जूषां तामपावृत्या दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत्॥

इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पशामीहे पाणिना।
यत्नवांश्व भविष्यामि तोलने पूरणेपिबा ॥

बाढमित्यब्रवीद् राजा मनिष्च समभाषत ।
लिलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः॥

पश्यतां नृसहस्राणां रघुनंदनः ।
आरोपयत् स धर्मात्मा स लीलमिव तद्धनुः॥

आरोपयित्वा मोर्वी च प्रिरयामास तद्धनुः ।
तद् बभन्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशः॥

मम सत्या प्रतिज्ञा सा वीर्य शुल्केति कौशिक।
सीता प्राणैर्बुहुमता देया रामाया मे सुता॥ ॥

बाल ०67 / 13–17 / 23

6. महर्षि की आज्ञा से श्रीराम ने जिसमें वह धनुष था उस पेटी को खोलकर उसमें रखे धनुष को देखा और कहा–अच्छा अब मैं धनुष को हाथ लगाता हूँ, इसे उठाने और प्रत्यंचा चढ़ाने का भी प्रयत्न करूँगा। ऋषि और दशरथ की अनुमति पाकर राम ने उस धनुष को बीच से पकड़कर मानो खेल–खेल में उठा लिया और सहस्रों लोगों के देखते–देखते उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। प्रत्यंचा चढ़ा कर राम ने धनुष को कान तक खींचा ही था कि वह बीच से टूट गया। उनकी हिम्मत देखकर जनक बोले– मुनिवर! मैंने वीर्य शुल्का बताकर जो प्रतिज्ञा की थी वह आज सत्य और सफल हो गई। मैं अपनी प्राणों से प्यारी सीता श्रीराम को समर्पित करूँगा।

पिता द्वारा घोषित शर्त के अनुसार जो भी धनुष तोड़ देता उसके गले में वरमाला डालने के लिए सीता बाध्य थी अतः इसे स्वयंवर का नाम नहीं दिया जा सकता।

माता सीताजी भी सन्ध्या करती थीं, ऐसा भी रामायण से पता चलता है। हनुमान् जी जब सीताजी को ढूँढते हुए अशोकवाटिका में पहुँचे तो सोचने लगे कि सीताजी यदि जीवित होंगी तो सन्ध्या करने के लिए अवश्य ही नदी के किनारे आएँगी–

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥

—बा० रा० सुन्दरकाण्ड, सर्ग 14.49—51

श्री हनुमान् जी सोच रहे हैं कि यह सन्ध्या का समय है, सन्ध्या में मन लगाने वाली और तपे हुए सोने के समान शोभावाली जनककुमारी सुन्दरी सीता सन्ध्याकालिक उपासना के लिए इस पुण्यसलिला नदी के तट पर अवश्य पधारेंगीं। यदि चन्द्रमुखी सीता देवी जीवित हैं तो वे इस शीतल जल वाली सरिता के तट पर अवश्य पदार्पण करेंगी।

सीता की उत्पत्ति

प्रचलित कथाएं: सीता जी के जन्म को लेकर कई कथाएँ प्रचलित हैं। इन्हीं में से एक कथा हम आपको बता रहे हैं। एक बार राजा जनक धरती जोत रहे थे तब राजा जनक को धरती में से सोने की डलिया में मिट्टी में लिपटी हुई सुन्दर कन्या मिली। राजा जनक की कोई संतान नहीं थी। इसलिए उस कन्या को हाथों में लेकर उन्हें पिता प्रेम की अनुभूति हुई। राजा जनक ने उस कन्या को सीता नाम दिया और उसे अपनी पुत्री के रूप में अपना लिया।

सत्यता की परखः— यदि आप पुराणों को पढ़ें तो आपको पता लगेगा कि पुराणों ने किसी की उत्पत्ति को सीधे ढंग से पेश नहीं किया। जहाँ इन वामपन्थी लोगों ने पुराणों का निर्माण किया और पूज्य महात्माओं की उत्पत्ति को घृणित रूप से वर्णन करने वाले श्लोक भी प्राचीन ग्रन्थों में मिला दिये। चूँकि इन धूर्त पाखण्डी वाममार्गी पौराणिक लोगों ने महारानी सीताजी की उत्पत्ति के बारे में भी वाल्मीकि रामायण में श्लोक बनाकर सम्मिलित कर दिये।

अब सीता की इस उत्पत्ति पर जरा विचार कीजिए। प्रथम तो इस प्रकार की उत्पत्ति सृष्टि के नियम के विरुद्ध है क्योंकि मनुस्मृति अध्याय1 श्लोक 33 में स्पष्ट लिखा है कि—

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान।
क्षेत्रबीजसमायोगात्सम्भवः सर्वदहिनाम ॥33॥

अर्थात् :— स्त्री खेत रूप है और पुरुष बीज रूप है। खेत तथा बीज के मिलने से ही सब शरीरधारियों की उत्पत्ति सम्भव हो सकती है। अतः बिना स्त्री—पुरुष के संयोग के जैवीय सृष्टि में किसी भी शरीरधारी की उत्पत्ति असम्भव और सृष्टि नियम के विरुद्ध है। अतः सिद्ध हुआ कि सीता की उत्पत्ति का इस प्रकार वर्णन करना पौराणिक गप्पाष्टक ही हैं।

जादू वह जो सिर चढ़ कर बोले यह जन श्रुति पौराणिकों पर ही ठीक घटित होती है। इन सम्पूर्ण प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि योगिनी नाम की जनक की स्त्री थी, उसके गर्भ से ही सीता की उत्पत्ति हुई थी। पौराणिकों ने खेत से सीता का निकलना मिथ्या ही रामायण में मिला दिया। इसी प्रकार से अन्य ऋषि मनीषियों की उत्पत्ति भी सृष्टि–नियम के विरुद्ध मिथ्या ही पुराणों ने प्रतिपादित की है। सज्जन लोग बुद्धि पूर्वक सच्चाई को ग्रहण करने का प्रयत्न करें। जनक के हल जोतने पर भूमि के अन्दर फाल का टकराना तथा उससे एक कन्या का पैदा होना और फिर उसी का नाम सीता रखना आदि असम्भव होने से प्रक्षिप्त है।

अन्य तर्क

1. राजा का कार्य प्रजा के सुख–दुःख को देखना राज्य की नीति बनाना, सीमाओं की रक्षा करना, आस–पास के राज्यों में मधुर सम्बन्ध बनाना एवं सलाहकार समिति से समय–समय पर वार्ता करना आदि। राजा के पास उसकी सेवा, श्रुषा और प्रत्येक कार्य के लिए सेवक होते हैं। ये विश्वास नहीं होता कि राजा जनक खेत में हल चलाकर जुताई कर रहे होंगे।
2. ईश्वर ने प्रारम्भ में अमैथुनी सृष्टि की रचना की, ये बात वेद सम्मत हैं। परन्तु सृष्टि के प्रारम्भ के बाद इस बात पर विश्वास करना ऐसी कल्पना करना भी पूरी तरह से अवैज्ञानिक और तर्क सम्मत नहीं है।
3. रामायण के प्रमाणिक लेखक महर्षि वाल्मीकि की रामायण में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।
4 अन्य ग्रंथो में भी इस बात के प्रमाण नहीं मिलते कि सीता का जन्म एक घड़े से हुआ जो अचानक जुताई के दौरान राजा जनक को प्राप्त हुआ।

इस विषय में अब कुछ और निष्पक्ष विश्लेषण करते हैं।

1 पहला विचार ये कि इस कथा में अलंकार का प्रयोग हुआ है। हिंदी में एक–एक शब्द के कई–कई अर्थ निकलते हैं और कोई भी नाम वैसे ही नहीं रख दिया जाता। इस विषय में प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान स्वामी करपात्री जी ने स्वरचित रामायण मीमांसा (पृ० 89) में लिखा है। पुराणकार किसी व्यक्ति का नाम समझाने के लिए कथा गढ़ लेते हैं। जनक पुत्री सीता के नाम को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने वैदिक सीता (हल कृष्ट भूमि) से सम्बन्ध जोड़कर उसका जन्म ही भूमि से हुआ। जैसे किसी बेटी का नाम उसके माता पिता भूमिका रख दें, सूर्य देवी रख दें। इसी तरह राजा जनक ने अपनी पुत्री का नाम सीता रख दिया। सीता शब्द के कई अर्थ होते हैं, जिसमें एक अर्थ है संज्ञा (स्त्रीलिंग संस्कृत)।



i. वह रेखा जो जमीन जोतते समय हल की फाल के धँसने से पड़ती जाती है।

ii. वह भूमि जिस पर राजा की खेती होती हो, राजा की निज की भूमि।

सीता नाम अर्थ को लेकर ऐसी खेती वाली कहानी गढ़ दी गयी।

2 दूसरा विचार यह हो सकता है कि किसी ने कारण वश यह कन्या खेत में फेंक दी हो और संयोग वश वह जनक को मिल गई हो अथवा किसी ने राजा जनक को यह कहकर कि यह कन्या खेत में लावारिस पड़ी मिली है, सौंप दिया हो और फिर उन्होंने उसे पाल लिया हो। महर्षि कण्व को शकुन्तला इसी प्रकार मिली थी और प्राप्ति के समय पक्षियों द्वारा संरक्षित एवं पालित (न कि प्रसूत) होने से उसका नाम शकुन्तला रख दिया था।

3. तीसरा विचार जो ज्यादा उचित और तर्क संगत प्रतीत होता है, इसको समझने के लिए इस कथा को ध्यान से धीरे–धीरे पढ़ें।

राजा जनक को हल चलाते हुए कुम्भ से एक कन्या प्राप्त हुई। यहाँ अलंकार की भाषा का प्रयोग देखिये हल का अर्थ है समाधान करना, जैसे प्रश्न पत्र हल करते हैं तथा समस्या का हल किया जाता है।

कुम्भ का अर्थ है घड़ा, जब बच्चा माता के गर्भ में होता है तो पेट कुम्भ की भाँति हो जाता है और भारत के कई स्थानों पर बच्चे को कुम्भ से प्राप्ति भी कहते हैं।

देखो, लेखक ने किस तरह एक घटना को लिखा जब राजा जनक अपने निजी भवन में सभासदों को समस्याओं का हल सुझा रहे थे तभी अचानक उनकी पत्नी को प्रसव हुआ और पुत्री ने जन्म लिया और राजा ने इस पुत्री का नाम सीता रख दिया।

4. वाल्मीकि रामायण में सीता को राजा जनक की आत्मजा कहा है। सीता की उत्पति पृथ्वी से कैसे मानी जा सकती है? जबकि वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों में उसे जनक की आत्मजा एवं औरस पुत्री तथा उर्मिला की सहोदरा कहा गया है।

वर्धमानां ममात्मजाम् (बाल066/15)

जानकात्मजे (युद्ध 0115/18)

जनकात्मजा (रघुवंश 13/78)

महाभारत में लिखा है।

विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो (3/274/9)

अमरकोश (2/6/27) में आत्मज शब्द का अर्थ इस प्रकार लिखा है।

आत्मनो देहाज्जात :–आत्मजः अर्थात् जो अपने शरीर से पैदा हो वह आत्मज कहलाता है। आत्मा क्षेत्र (स्त्री) का पर्यायवाची है, क्षेत्र और शरीर पर्यायवाची हैं।

क्षीयते अनेन क्षेत्रमः– स्त्री को क्षेत्र इसलिए कहते हैं कि वह संतान को जनने से क्षीण हो जाती है। पुरुष बीज रूप होने से क्षीण नहीं होता।

रघुवंश सर्ग 5 श्लोक 36 में लिखा हैं।

ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार ॥

5. स्वयं रामायण में भी इसके विरुद्ध प्रमाण मिल जाते हैं। जैसा कि जब सीता अनसुइया के पास गई और अनसुइया ने उसको पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया तो उत्तर में सीता ने कहा कि –

पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ।
अनुशिष्टं जनन्या में वाक्यं तदपि मे धृतम ॥8॥

वाल्मीकि रामा० अयोध्या स० 118

अर्थात्:–पहले अग्नि के समीप जो मेरा हाथ राम को पकड़ाते हुए मेरी जननी ने मुझे शिक्षा दी थी वह वाक्य भी मैंने धारण किया हुआ है।

इस श्लोक में सीता ने स्पष्ट शब्दों में अपनी जननी माता का वर्णन किया है। इससे आगे जब हनुमानजी सीता से मिलकर लौटने लगे तो सीता ने कपड़े में से खोल कर एक मणि हनुमान को दी और कहा कि यह राम को दे देना और मणि देने के पश्चात सीता ने कहा कि –

मणिं दृष्ट्वा च रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति ।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥2॥

वाल्मीकि रामा० सुन्दर० स० २८

अर्थात् –इस मणि को देखकर राम तीन को याद करेंगे, मेरी जननी को मुझे और राजा दशरथ को।

सीता के इस कथन से भी सीता की जननी माता का होना स्पष्ट है। इससे यह तो सिद्ध है कि सीता की माता थीं और वह भी पालन करने वाली नहीं अपितु जननी अवश्य थीं। किन्तु कथा में गौण होने के कारण उसका स्पष्ट वर्णन रामायण में नहीं आया। अब हम आपको पौराणिकों के घर से ही अपने पक्ष की पुष्टि के प्रमाण बताते हैं।



6. धरती को फोड़कर निकलने वालों की उद्भिज्ज संज्ञा हैं। तृण, औषधि, तरुलता आदि उद्भिज्ज कहलाते हैं। मनुष्य, पशु आदि, जरायुज, अण्डज और स्वेदज प्राणियों के अन्तर्गत हैं। मनुष्य वर्ग में होने के कारण सीता की उत्पत्ति पृथ्वी से होना प्रकृति विरुद्ध होने के कारण असम्भव है।

7. पाणिग्रहण संस्कार के समय जिस प्रकार रामचन्द्रजी की पीढियों का वर्णन किया गया था उसी प्रकार सीता की भी 22 पीढियों का वर्णन किया गया। यदि सीता की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई होती तो पृथ्वी से पहले की पीढ़ियाँ कैसे बनती, इसे शाखोच्चार कहते हैं। राजस्थान में विवाह के अवसर पर दोनो पक्षों के पुरोहित आज भी 22 के ही नहीं 30/40 पीढ़ियों तक के नामों का उल्लेख करते हैं। साधारणतः सौ वर्ष में चार पुरुष समझे जा सकते हैं, इस प्रकार 40 पीढियों में लगभग एक हजार वर्ष बनते हैं। अर्थात् सर्वसाधारण लोग भी मुँहामुही सैकड़ों वर्षो के पारिवारिक इतिहास का ज्ञान रख सकते थे। जिसका 22 पीढ़ियों का क्रमिक इतिहास ज्ञात है, उसे कीड़े–मकोड़ों या पेड़–पौधों की तरह पृथ्वी से उत्पन्न हुआ नहीं माना जा सकता। वस्तुतः सीता के पृथ्वी से उत्पन्न होने सम्बन्धी गप्प का स्रोत विष्णु पुराण अंश 4 अध्याय 4 वाक्य 27–28 हैं। जिसका वाल्मीकि रामायण में प्रक्षेप कर दिया गया है। जन्म को पृथ्वी से मानकर सीता का अंत भी पृथ्वी में समाने की कल्पना करके ही किया गया है।

8. **अमैथुनी सृष्टिः**– सीता को अनेक स्थलों में अयोनिजा कहा गया है। पृथ्वी से उत्पन्न होने का अर्थ माता–पिता के बिना अर्थात् स्त्री–पुरुष के संयोग के बिना उत्पन्न होना है। इसी को अयोनिज सृष्टि कहते हैं। क्योंकि इसमें गर्भाशय से बाहर निकलने में योनि नामक मार्ग का प्रयोग नहीं होता जबकि सृष्टि के आदिकाल में समस्त सृष्टि अमैथुनी होती थी।

यहाँ यह तथ्य जरूर जोड़ा जाता है कि सृष्टि चाहे मैथुनी हो अथवा अमैथुनी, प्राणियों के शरीरों की रचना परमेश्वर सदा माता–पिता के संयोग से ही करता हैं पर दोनों में अंतर केवल इतना है कि आदि सृष्टि में माता (जननी) पृथ्वी होती है और वीर्य संस्थापक सूर्य। (ऋग्वेद1/164/3) में कहा है–

द्यौर्मे पिता जनिता माता पृथ्वी महीयम

अर्थात् – सृष्टि के आदि काल में प्राणियों के शरीरों का उत्पादक पिता रूप में सूर्य था और माता रूप में यह पृथ्वी। परमात्मा ने सूर्य और पृथ्वी दोनों के रज–वीर्य के

संमिश्रण से प्राणियों के शरीरों को बनाया। जैसे इस समय बालक माता के गर्भ में जरायु में पड़ा माता के शरीर में रस लेकर बनता और विकसित होता हैं, वैसे ही आदि सृष्टि में पृथ्वी रुपी माता के गर्भ में बनता रहता हैं। इसी शरीर को साँचा रुपी शरीर भी कहा जाता है, जिससे हमारे जैसे मैथुनी मनुष्य उत्पन्न होते रहते हैं।

सीता का जन्म सृष्टि क्रम चालू होने और साँचे तैयार होने के बाद त्रेतायुग में हुआ था। अतः सीता के अयोनिजा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जनक उनके पिता थे? और रामचरितमानस के अनुसार सुनयना उनकी माता का नाम था।

विवाह के समय श्रीराम चन्द्रजी और सीताजी की आयु

क्या विवाह के समय श्री रामचन्द्रजी की आयु 15 वर्ष और सीताजी की आयु 6 वर्ष थी? इस शंका को उठाने वालों में मुख्य रूप से वो लोग हैं जो मुहम्मद और आयशा के विवाह के समय आयशा की आयु जो उस समय केवल मात्र 6 वर्ष थी को सही मानने का प्रयास करते हैं।

प्रथम तो सीताजी की विवाह के समय 6 वर्ष आयु मानने का कारण वाल्मीकि रामायण में दिया गया एक श्लोक है, जिसे अरण्यकांड 47/4/10 में सीता रावण को अपना परिचय देते हुए कहती हैं कि मेरी आयु इस समय 18 वर्ष है, मैं 12 वर्ष ससुराल में रहकर समस्त भोगों का उपभोग करके मैं राम–लक्ष्मण के साथ वन में आई हूँ। अर्थात् विवाह के समय सीता जी की आयु केवल 18–12=6 वर्ष ही थी। इस श्लोक को आधार बनाकर सीताजी की विवाह के समय आयु 6 वर्ष सिद्ध करने को हम रामायण आदि शास्त्रों से परीक्षा करेंगे।

1. जब ऋषि विश्वामित्र श्रीराम और श्री लक्ष्मण को लेकर जनक राज के समक्ष पधारे तो उन्हें देख कर राजा जनक ने आश्चर्यचकित हो हाथ जोड़कर विश्वामित्र से पूछा– हे मुनिवर! गज और सिंह के समान चाल वाले देवताओं के समान पराक्रमी तथा अश्विनी कुमारों के समान सुन्दर यौवन को प्राप्त कुमार कौन है ?

सन्दर्भ बालकाण्ड 50/17-19

इसी बालकाण्ड में सर्ग 48 राजा सुमति ने भी राम और लक्ष्मण को देखकर यौवन से भरपूर सुन्दर हथियार धारण किया हुआ कहा है, ये यहाँ श्री रामजी और श्री लक्ष्मणजी को कहा गया है, ऐसी अवस्था सुश्रत के अनुसार 25 वर्ष और की 16 वर्ष की आयु में ही होती है।

2. जब विश्वामित्र ने राजकुमारों की धनुष देखने की इच्छा व्यक्त की तो जनक ने सीता के विवाह के सन्दर्भ में धनुष भंग की चर्चा करते हुए कहा–

जब मेरी कन्या सीता वर्धमान प्राप्त यौवना हुई तो बहुत से राजा उसका हाथ माँगने आने लगे, पर सब असफल रहे।

सन्दर्भ – बालकाण्ड 66/15 (यहाँ सीता को यौवन प्राप्त युवती कहा गया हैं)

3. सीता ने अनुसुइया से कहा कि पिता ने जब मेरी पति संयोग सुलभ अवस्था देखी तो उनको बड़ी चिंता हुई। मेरे पिता को वैसी ही चिंता हुई जैसा किसी दरिद्र के धन का नाश होने पर होती है।

सन्दर्भ अयोध्याकाण्ड 118/34

किसी भी पिता के मन में अपनी बेटी के विवाह की चिंता जब वह 6 वर्ष की होती है, तब उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं है।

4. अयोध्या पहुँचने पर सबसे मिलने–जुलने के बाद चारों राजकुमार अपनी–अपनी पत्नियों को लेकर अपने– अपने महल में रमण करने लगे। –अयोध्याकाण्ड– 7/52

छह वर्ष की राजकुमारी महलों में खेलने लायक होती है, न कि पति के साथ रमण करने लायक।

5. बालकाण्ड 6/29–31 में सीता की शारीरिक अवस्था को सम्पूर्ण युवती वाला बताया गया है।

यदि गोस्वामी तुलसीदास की इन पंक्तियों को देखें तो भी सत्यता प्रमाणित होती है।

रंगभूमि जब सिय पगुधारी।
देखि रूप मोहे नर नारी।।

सीय चकित चित राम हि चाहा।
भये मोह बस सब नर नाहा।।

इन चौपाइयों को पढ़कर पाठक स्वयं समझ सकते है कि क्या छह साल की अपरिपक्व सीता का चित्त राम को चाहने लगा।

अतः यह निश्चित है कि विवाह के समय राम की आयु पच्चीस और सीता की 18 वर्ष की थी। वेद में कहा गया है–

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विंदते पतिम्।

ब्रह्मचर्य के पालन से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है। यदि विवाह के समय सीताजी की आयु 6 वर्ष की थी तो उनकी बहनों (श्रुतिकीर्ति मांडवी और उर्मिला) की उम्र तो 6 वर्ष से भी कम रही होगी।

इन सबसे सिद्ध होता है कि यह श्लोक मिलावटी है और विवाह के समय श्रीराम चन्द्रजी की आयु 15 वर्ष और सीताजी की आयु 6 वर्ष नहीं थी।

क्या सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ी ?



कपोल कल्पित रामायण अनुसार सीता अग्निपरीक्षा से बिना जले बाहर आ गईं। ये एक सबसे विवादित प्रश्न है। हिन्दू विरोधी कहते है कि ये स्त्री का अपमान था, श्रीराम जी ने गलत किया इत्यादि। लेकिन यदि आप वाल्मीकि रामायण पढ़ेंगे तो वहाँ आपको इसका कोई उल्लेख ही नही मिलेगा। तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में इसका जिक्र है।

इस लेख में सीता की अग्निपरीक्षा को तर्क की कसौटी पर पक्षपात रहित होकर परीक्षा करने पर ही हम अन्तिम निष्कर्ष निकालेंगे।

1. वैदिक काल में नारी जाति का स्थान समाज में मध्य काल के समान निकृष्ट नहीं था। वैदिक काल में नारी वेदों की ऋषिकाओं से लेकर गार्गी, मैत्री के समान महान विदुषी थी, कैकयी के समान महान क्षत्राणी थी जो राजा दशरथ के साथ युद्ध में पराक्रम दिखाती थी, कौशल्या के समान दैनिक अग्निहोत्री और वेदपाठी थी। सम्पूर्ण रामायण इस तथ्य को सिद्ध करता है कि रावण की अशोक वाटिका में बंदी सीता से रावण शक्तिशाली और समर्थ होते हुए भी सीता की इच्छा के विरुद्ध उसके निकट तक जाने का साहस न कर सका। यह उस काल की सामाजिक मर्यादा एवं नारी जाति की पत्नीव्रता शक्ति का उद्‌बोधक हैं। रामायण काल में सामाजिक मर्यादा का एक अन्य उदहारण इस तथ्य से भी मिलता है कि परनारी को अपहरण करने वाला रावण और परपुरुष की इच्छा करने वाली शूपर्णखा को उनके दुराचार के कारण राक्षस कहा गया जबकि सभी प्रलोभनों से विरक्त एवं एक पत्नीव्रत श्री राम और शूपर्णखा के व्यभिचारी प्रस्ताव को ठुकराने वाले लक्ष्मण जी को देव तुल्य कहा गया है। ऐसे महान समाज में विदुषी एवं तपस्वी सीता का सत्य वचन ही उसकी पवित्रता को सिद्ध करने के लिए पूर्ण था। इस आधार पर भी सीता की अग्निपरीक्षा एक मनगढ़त प्रसंग सिद्ध होता है।
2. वाल्मीकि रामायण के श्री रामचन्द्र महान व्यक्तित्व, मर्यादापुरुषोत्तम, ज्ञानी, वीर, महामानव, ज्येष्ठ–श्रेष्ठ आत्मा, परमात्मा का परम भक्त, धीर–वीर पुरुष, विजय के

पश्चात् भी विनम्रता आदि गुणों से विभूषित, महानायक, सद्गृहस्थ तथा आदर्श महापुरुष थे। ऐसे महान व्यक्तित्व के महान गुणों के समक्ष सीता की अग्निपरीक्षा कर पवित्रता को निर्धारित करना एक बलात् थोपी गई, आरोपित, मिथ्या एवं अस्वीकार्य घटना प्रतीत होती हैं। श्री राम के महान व्यक्तित्व एवं आदर्श विचारों के समक्ष यह प्रसंग अत्यंत तुच्छ हैं। इससे सिद्ध हुआ कि यह प्रसंग बेमेल हैं।

3. वैज्ञानिक दृष्टि से भी सोचे तो यह सम्भव ही नहीं है कि किसी मनुष्य के शरीर को अग्नि के सुपुर्द किया जाये और वह बिना जले सकुशल बच जाये। क्या अग्नि किसी की पवित्रता की परीक्षा लेने में सक्षम है? वैज्ञानिक तर्क के विरुद्ध सीता अग्निपरीक्षा को चमत्कार की संज्ञा देना मन बहलाने के समान हैं। केवल आस्था, विश्वास और श्रद्धा रूपी मान्यता से संसार नहीं चलता। किसी भी मान्यता को सत्य एवं ज्ञान से सिद्ध होने पर ही ग्रहण करने योग्य मानना चाहिए। इस आधार पर भी सीता की अग्निपरीक्षा एक मनगढ़त प्रसंग सिद्ध होता है।

4. सुग्रीव की पत्नी रूमा जिसे बाली ने अपना बंधक बना कर अपने महलों में रखा हुआ था को बाली वध के पश्चात जब सुग्रीव स्वीकार कर सकता है। तो श्री राम हरण की हुई सीता को क्यों स्वीकार नहीं करते? श्री राम को आदर्श मानने वाले इस तर्क का कोई तोड़ नहीं खोज सकते।

5. बाल्मीकी रामायण में उत्तरकांड नाम का कोई अध्याय ही नहीं है। सीता के त्याग का कोई सवाल ही नहीं है। यह बाद में जोड़ा गया प्रसंग है जो राम की सर्वोत्तम छवि को खराब करने के लिए जोड़ा गया है।

6. क्योंकि राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे तो उनके द्वारा इस तरह के कृत्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती कि अपनी गर्भवती पत्नी का त्याग करें। लेकिन आश्चर्य है कि उनको भगवान् का रूप कहने वाले दोहरे मापदंड पर उतर आते है।

7. महर्षि वाल्मीकि का आश्रम अयोध्या के पास ही था और राजा राम चंद्र के शासन का ही हिस्सा था। इसलिए ये कहना कि लवकुश का पता राम को बहुत बाद में चला ये कैसे हो सकता है? इसलिए बिना सिर पैर की तुक्के बाजी पर विश्वास न करें एवं महापुरुषों का सम्मान करें।

इस कथा को लिखने वाले और इस पर विश्वास करने वाले दोहरे चरित्र वाले हैं। क्योंकि एक तरफ कहते है कि राम भगवान हैं, अवतार हैं और त्रिदेव हैं व तीनो काल के ज्ञाता हैं। दूसरे उनके चरित्र पर लांछन लगाने से बाज नहीं आते कि अपनी पत्नी पर आजकल के युवाओं की तरह संदेह कर रहे हैं और अग्नि परीक्षा की बात हो रही है। अतः स्त्री का अपमान, अग्नि परीक्षा आदि बातें सिर्फ मिथ्या ही हैं।

सीता का धरती में समा जाना



प्रचलित कथा:– जब भगवान श्रीराम द्वारा अश्वमेध यज्ञ किया जा रहा था तब लव–कुश ने सभी को बंदी बना लिया और जब लव–कुश ने भगवान् श्रीराम के दरबार में उन्ही की गाथा सुनाई तब भगवान् श्रीराम को अहसास हुआ कि ये दोनों उन्ही के पुत्र हैं। सीता माता और श्रीराम का पुनः मिलन भी वहीं पर हुआ।

वाल्मीकि भी वहाँ पर उपस्थित थे उस वक्त भी सीता के चरित्र पर लोग लांछन लगाते थे, तब वाल्मीकि अति दरिद्र अवस्था में रोते हुए भगवान् श्रीराम से बोले मैंने अपने जीवन में कभी झूठ नहीं बोला सीता वही पवित्र स्त्री हैं, जिनको आप मिथिला देश से लेकर आये थे। अतः आप इनकी परीक्षा मत लीजिये। लेकिन जब दरबार ने सीता से उनके चरित्र का प्रमाण माँगा तो सीता माता ने ये कहा कि अगर मेरा चरित्र पवित्र है तो इसी क्षण मैं धरती में समा जाऊँगी, ठीक उसी क्षण धरती फट गई और धरती के गर्भ से माँ पृथ्वी आई और माँ पृथ्वी सीता माता को अपनी गोद में लेकर वापस अन्दर समा गई।

विश्लेषण:– ये कथा पूरी तरह असत्य है इसमें सृष्टि व वेद के प्रतिकूल बातें हैं।

1. राम को भगवान का अवतार बताने वाले स्वयं उन्ही की योग्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे और इस तरह के कथानक हमारे महा पुरुषों के लिए नहीं हैं।
2. रामायण का उत्तरकांड बाद में जोड़ा गया है, जो असत्य है, जिस पर विश्वास नहीं करना चाहिए।
3. पूरी रामायण में अधिकांश निर्णय में राम के साथ लक्ष्मण भी रहे हैं और अयोध्या आने के बाद भरत और शत्रुध्न भी साथ जुड़ गए। इस घटना में जो कि एक अन्याय का प्रतीक है किसी भी भ्राता, माता का कोई कथन सामने नहीं आने से स्पष्ट होता है कि घटना यानि कहानी तोड़ मोड़कर बनाई गई है।
4. वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता जी लव–कुश के साथ वाल्मीकि आश्रम में रहीं ताकि बच्चों को योग्य विद्वान और बलवान बनाया जा सके। शिक्षा पूरी होने के बाद बच्चे अपने पिता से काफी समय के बाद मिले।

5. इस प्रसंग को लेकर एक तर्कशास्त्री का अन्य विचार भी है कि विवाह के समय सीता की आयु विभिन्न विद्वानों के अनुसार 18 से 25 के बीच बतायी गयी है। इस प्रकार यदि देखा जाये तो लव–कुश के जन्म के समय उनकी आयु लगभग 32 वर्ष होनी चाहिए और युवा लव–कुश की जिस घटना का वर्णन किया है तब लगभग 47–50 वर्ष रही होगी। लव–कुश शिक्षा के बाद जब अपने पिता से मिले तो किसी कारण से सीता की ह्रदय गति रुकने से अल्प आयु में मृत्यु हुई, मृत्यु के बाद शरीर पाँच तत्व में विलीन हो जाता है जिसको ये संज्ञा दी गयी कि सीता माता धरती में समा गयी।

क्योंकि वाल्मीकि रामायण और अन्य ग्रंथों में किसी भी घटना का विस्तार से वर्णन नहीं हैं। इसलिए रामायण की घटनाओं को टीवी सीरियल में और अन्य काव्य लिखने वालों ने विस्तार देने के लिए अलंकार की भाषा का और अतिश्योक्ति का प्रयोग किया है, जिसके कारण पूरी सच्चाई सामने कभी नहीं आ सकती है। केवल अपनी बुद्धि और विज्ञान प्रकृति सम्मत बातों पर ही विश्वास करना ठीक होगा। अन्य कथाओं और किसी सटीक प्रमाण के अभाव में ये तर्क ज्यादा उचित लगता है।

अध्याय-3

हनुमान जी महाराज



हनुमान जी महाराज की माता का नाम अंजना था, उनके पिता का नाम महाराज पवन था और पितामह का नाम महाराज महेन्द्र था। इनकी माता अंजना ने सूर्य–विद्या के ऊपर गहन अध्ययन किया था और जब हनुमान जी गर्भावस्था में थे तब वे निरन्तर सूर्य की विद्या में मगन रहती थीं। सूर्य की किरणों पर रश्मियों पर नाना विधि से अनुसंधान करना तथा ऊष्मा काल से ही चिन्तन मनन करते हुए अपने गर्भाशय को पवित्र ऊँचा बनाने का सदैव प्रयास करती रहती थी। हनुमान जी का जन्म भी वन में हुआ था। इसलिए इन्हें बानर कहा जाता है। अतः उनके जीवन में माता के तप और त्यागमय जीवन का प्रभाव था।

बाल्यावस्था से ही हनुमान जी की सूर्य–विद्या के प्रति रूचि हुई और उन्होंने अपनी माता अंजना से कहा कि हे मातेश्वरी! मेरा हृदय तो ऐसा कह रहा है कि सूर्य की आभा को मैं पान कर लूं, इसे मैं अपने में धारण करना चाहता हूँ। माता ने कहा– "बेटा, वह समय भी आयेगा और देखो वही बालक समस्त सूर्य–विद्या का विशेषज्ञ बनेगा"। यह थी माता की शिक्षा द्वारा अनुपम कृपा जिससे कि उनका पुत्र हनुमान इतने महान् और तेजस्वी रूप में संसार में विख्यात हुआ कि आज का मानव तो यही कहता है कि हनुमान जी ने सूर्य को कंठ में धारण कर लिया अथवा निगल लिया और तुलसीदास जी ने यह लिख दिया–

बाल समय रवि भक्ष लियो तब तीनहुँ लोक भयो अंधियारो।

परन्तु मानव ने इसको ठीक प्रकार से विचारा नहीं किया वास्तव में तो हनुमान जी महाराज सूर्य की विद्या में पारंगत थे और इतने प्रवीण थे कि अलंकारिक रूप से लोक में यही विख्यात हो गया कि उन्होने तो सूर्य को मुख में धारण कर लिया है। क्योंकि उनको सूर्य की समस्त विद्याओं का, उसकी आभाओं एवं रहस्यों का पूर्ण रूपेण ज्ञान था।

वास्तव में यह तो उनकी गहन साधना (अध्ययन) का, तपस्या का फल था जिसमें उनकी तपस्वनी माता अंजना का भी पर्याप्त योगदान था। महाराज हनुमान का विद्यालय में भी विषय सूर्य की विद्या ही थी, जिसके ऊपर उन्होने अपने गुरु, ऋषियों की सहायता से उनकी देखरेख में अनुसंधान किया। वह नित्य प्रति प्रातःकालीन सूर्य की तपस्या करते रहते थे और विभिन्न प्रकार की रश्मियों पर अध्ययन करके उनके ज्ञान–विज्ञान को ऊँचा बनाते रहते थे। वह जब वेद मंत्रों का गायन द्वारा उच्चारण करते थे तो पक्षीगण मंत्रमुग्ध हो जाते थे और जब उसमें साम का पुट मिश्रण करते थे तो भयंकर वनों में आकाश अंधकारमय हो जाता था, वे मंत्रोच्चारण द्वारा वृष्टि भी कर सकते थे, वह दोनों प्रकार की क्रियात्मक सूर्य विद्या में पारंगत थे। यह विद्या उनकी माता अंजना के भ्राता हनुमानजी के मामा ने सिखलाई थी तथा उनके राजपुरोहित भी इस विद्या को जानते थे, जिसे उनकी माता अंजना भी जानती थी। अतः इन तीनों के द्वारा हनुमान जी ने इस अनुपम विद्या को जाना।

हनुमान जी महाराज ने कुछ समय काकभुशुण्ड मुनि से भी शिक्षा प्राप्त की थी, उनसे जल, थल और नभ में गति करने की अनेक प्रकार की विद्याओं को जाना जिससे उन्हें अन्तरिक्ष में उड़ान का भी ज्ञान था। उदान प्राण का नाग प्राण, कृकल व देवदत्त प्राणों से मिलान करके वे अपने शरीर को इतना हल्का बना लेते थे जिससे वे ऊर्ध्वा में चले जाते थे और आकुचंन क्रिया का भी विज्ञान उन्हें ऋषि काकभुशुण्ड से मिला। वे एक योगी की भाँति अपने शरीर को साध कर अस्थियों को प्राणर्पित करके मन को एकाग्र करके अनेक ऐसी क्रियाऐं करना जानते थे, जिनको पढ़कर मानव आश्चर्य में पड़ जाता था। इन्हीं विद्याओं की शक्ति के कारण वे लम्बी दूरी की छलांग लगा लेते थे और इसी प्रकार समुद्र को लाँघकर लंका पहुँच गये। इसी कारण हनुमान को कवियों – लेखकों ने पवनपुत्र की उपमा द्वारा सम्बोधित किया और चित्रकार उनकी उड़ती हुयी तस्वीर की कल्पना करते हैं।

हनुमान जी की पूँछ

वीर हनुमान जी राम की सेना के सेना नायक थे, सेना उनके निर्देशो पर कार्य करती थी। जिस तरह परिवार में हर मुख्य कार्य परिवार के मुखिया से पूछकर होते हैं और परिवार में मुखिया की पूछ होती है, उसी तरह राम के सेना में हनुमान सेना नायक की पूछ थी। नर–मादा का ऐसा भेद संसार में किसी भी वर्ग में देखने को नहीं मिलता। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि हनुमान जी, सुग्रीव आदि के पूँछ होना केवल एक चित्रकार की कल्पना मात्र हो सकती है। यहाँ भी अलंकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। फिर से समझें मेरी शादी में फूफा, जीजा, दूल्हा और माता–पिता की पूछ होती है। दफ्तर में बॉस की पूछ होती है, तो हनुमान जी की भी सेना में पूछ थी।

क्या हनुमान आदि वानर/बन्दर थे?



वाल्मीकि रामायण में मर्यादा पुरुषोतम श्रीरामचन्द्र जी महाराज के पश्चात परम् बलशाली वीर शिरोमणि हनुमान जी का नाम स्मरण किया जाता है। हनुमान जी का जब हम चित्र देखते हैं तो उसमें उन्हें एक बन्दर के रूप में चित्रित किया गया है, जिसके पूँछ भी है।

इस प्रश्न का उत्तर इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि अज्ञानी लोग वीर हनुमान का नाम लेकर परिहास करने का असफल प्रयास करते रहते हैं। आईये इन प्रश्नों का उत्तर वाल्मीकि रामायण से ही प्राप्त करते हैं। सर्वप्रथम वानर शब्द पर विचार करते हैं।

सामान्य रूप से वानर शब्द का अर्थ होता है– बन्दर। परन्तु हिंदी भाषा में एक–एक शब्द के अनेक अर्थ निकलते हैं इसलिए वानर शब्द के भी अन्य अर्थ हैं जो रामायण के मुख्य पात्र हनुमान और उसकी सेना के लिए प्रयोग हुआ है। जिस तरह शहर में रहने वाले को शहरी, गाँव में रहने वाले को ग्रामीण, पहाड़ी, चीनी, नेपाली, जापानी आदि उद्‌बोधन निवास स्थान को इंगित करते हैं ठीक उसी तरह यदि वानर शब्द का विश्लेषण करें तो वानर शब्द का अर्थ होता है वन में रहने वाले। वानर शब्द से किसी योनि विशेष जाति प्रजाति अथवा उपजाति का बोध नहीं होता।

सुग्रीव बाली आदि का जो चित्र हम देखते हैं, उसमें उनकी पूँछ दिखाई देती हैं परन्तु उनकी स्त्रियों के कोई पूँछ नहीं होती। नर–मादा का ऐसा भेद संसार में किसी भी वर्ग में देखने को नहीं मिलता। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि हनुमान आदि के पूँछ होना केवल एक चित्रकार की कल्पना मात्र है।

सुंदर कांड (30/18/20) में जब हनुमान अशोक वाटिका में राक्षसियों के बीच में बैठी हुई सीता जी को अपना परिचय देने से पहले हनुमान जी सोचते हैं–

"यदि द्विजाति (ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य) के समान परिमार्जित संस्कृत भाषा का प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर भय से संत्रस्त हो जाऐगी। मेरे इस वनवासी रूप को देखकर तथा नागरिक संस्कृत को सुनकर पहले ही राक्षसों से डरी हुई यह सीता और भयभीत हो जाऐगी। मुझको कामरूपी रावण समझकर भयातुर विशालाक्षी सीता

कोलाहल आरंभ कर देगी। इसलिए मैं सामान्य नागरिक के समान परिमार्जित भाषा का प्रयोग करूँगा।"

उपलब्ध इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि हनुमान जी चारों वेद व्याकरण और संस्कृत सहित अनेक विषयों के ज्ञाता भी थे। हनुमान जी के अतिरिक्त अन्य वानर जैसे कि बाली पुत्र अंगद का भी वर्णन वाल्मीकि रामायण में संसार के श्रेष्ठ महापुरुष के रूप में किष्किन्धा कांड 54/2 में हुआ है।

हनुमान, बाली पुत्र अंगद को अष्टांग बुद्धि से सम्पन्न चार प्रकार के बल से युक्त और राजनीति के चौदह गुणों से युक्त मानते थे। भला इतने गुणों से सुशोभित अंगद बन्दर कहाँ से हो सकता है? इन सब वर्णन और विवरणों को बुद्धि पूर्वक पढने के पश्चात् कौन मान सकता हैं कि हनुमान, बाली सुग्रीव आदि विद्वान एवं बुद्धिमान मनुष्य न होकर बन्दर आदि थे।

यह केवल मात्र एक कल्पना है और अपने श्रेष्ठ महापुरुषों के विषय में असत्य और अपमानजनक कथन है।

अन्य प्रमाण

1. हनुमान जी की माता जी का नाम अंजनी था और पिता जी का नाम पवन था इसीलिए हनुमान को पवनपुत्र भी कहते हैं ये दोनों मनुष्य थे एवं मनुष्यों के मनुष्य ही पैदा होते हैं बन्दर नही।

यदि बन्दर पैदा नहीं होते तो विचार करें जब हनुमान जी के माता पिता मनुष्य थे तो उनके बेटा श्री हनुमान जी भी तो स्वतः ही मनुष्य सिद्ध हुये।

2. यदि कोई छोटा बच्चा कहीं पर भीड़ में खो जाये तो एक बन्दर से कहो कि वह उस बच्चे का फोटो देख कर भीड़ में से उस बच्चे को पहचान कर ले आये, अब सोचिये क्या वह बन्दर भीड़ में से बच्चे को पहचान कर ले आयेगा? यदि नहीं तो क्या हनुमान जी सीता जी को लंका से ढूँढ कर उनकी खबर ले आये या नहीं, यदि वह उनकी खबर ढूँढ ले आये तो अब बताइये बन्दर तो यह काम नहीं कर सकता।

3 आपने रामायण सीरियल में बाली, सुग्रीव और उनकी पत्नियाँ तो देखी ही होंगी। उस सीरियल में बाली और सुग्रीव तो बन्दर दिखाए गए परन्तु उनकी पत्नियाँ मनुष्यों वाली स्त्रियाँ दिखाई गईं या बंदरियाँ दिखाईं। यदि उनकी पत्नियाँ मनुष्य जाति की थी तो उनके पति भी मनुष्य होने चाहिये।

अर्थात् :– बाली और सुग्रीव भी मनुष्य दिखने चाहिए थे परन्तु वे दोनों बन्दर दिखाए

गए, यदि वे बन्दर थे तो सोचिये क्या मनुष्यों की स्त्रियों की शादी बंदरों के साथ होती है ? या आजकल भी कोई मनुष्य स्त्रियाँ बंदरों के साथ शादी करने को तैयार हैं। यदि उनकी पत्नियाँ मनुष्य थीं, तो उनके पति बाली और सुग्रीव भी मनुष्य ही सिद्ध हुए और श्री हनुमान जी उनके महामंत्री थे, वे भी उसी जाति के थे तो श्री हनुमान जी भी मनुष्य सिद्ध हुए।

4. वाल्मीकि रामायण में श्री हनुमान जी की योग्यता लिखी है कि वे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के विद्वान थे तथा संस्कृत व्याकरण शास्त्र में बहुत कुशल थे। सोचिये क्या बन्दर ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तथा संस्कृत व्याकरण पढ़ सकता है? यदि नहीं तो बताइये श्री हनुमान जी बन्दर कैसे हुए?

5. हनुमान चालीसा के प्रारम्भ में चौथे पांचवें वाक्य में लिखा है कि–

काँधे मूंज जनेऊ साजे । हाथ बज्र और ध्वजा बिराजे ॥

अर्थात् :–श्री हनुमान जी के कंधे पर मूंज की जनेऊ अर्थात यज्ञोपवीत सुशोभित होता था, उनके एक हाथ में वज्र (गदा) और दूसरे हाथ में ध्वज रहता था।

अब सोचिये हनुमान चालीसा बहुत लोग पढ़ते हैं फिर भी इस बात पर ध्यान नहीं देते कि क्या बन्दर के कंधे पर मूंज की जनेऊ हो सकती है? क्या बन्दर के एक हाथ में गदा और दूसरे हाथ में ध्वज होता है? यदि नहीं तो श्री हनुमान जी बन्दर कैसे हुए?

मेरा विनम्र अनुरोध है कि वेदों के महान विद्वान महाबलवान ब्रह्मचारी तपस्वी श्री हनुमान जी को बन्दर बना कर उनका अपमान न करें। क्योंकि आदित्य ब्रह्मचारी, परम बलवान, चतुर और बुद्धिमान श्री रामचंद्र जी के परम मित्र और सहायक, वेदों और व्याकरण के पंडित अंजनी पुत्र श्री हनुमान बन्दर नहीं थे।

क्या हनुमान जी उड़कर समुद्र लांघ लंका पहुंचे थे?

सुन्दर काण्ड के पहले सर्ग में श्लोक संख्या १–६ वाल्मीकि रामायण में हनुमान जी के उड़ने जैसा कोई वर्णन कहीं प्राप्त नहीं होता है।

आखिर सच क्या है? आइये एक नजर वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड के पहले सर्ग में श्लोक संख्या 1–9 तक देखे और विचार करते हैं तो –

दुष्करं निष्प्रतिद्वद्वं चिकीर्षन्कर्म वानरः।
समुदग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ ॥1॥

दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन्कर्म वानरः।

समुद्रशिरशोग्रीवो गवां पतिरिवाबभौ ॥1॥

पवन् पवने कृतनिश्चयः।

ववृधे रामवृद्ध्यर्थे समुद्र इव पर्वसु ।।2।।

विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि।

पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ।।3।।

मेरुमन्दरसंकाशानुदयान्त्सुमहार्णवे।

अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान्यन्यनिव ।।4।।

तिमिनक्रझषाः कूर्माः क्षर्यन्ते विवृतास्तदा।

वस्त्रपाकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ।।5।।

येनासौ याति बलवान्वेगेन कपिकुञ्जरः।

तेन मार्गेण सहसा द्रोणिकृत इवार्णवः ।।6।।

प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन्।

योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः ।।7।।

सागरं सागरानूपान् सागरानूपजान्द्रुमान्।

सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत् ।।8।।

भावार्थ :– बड़ा कठिन, तुलना से रहित, कर्म करना चाहता हुआ, ऊँचे सिर और ग्रीवावाला वानर, सांड की तरह भासने लगा ।।1।।

हनुमान जी का निश्चय अटल था। उन्होंने रामकाज के लिए स्वयं को समुद्र के समान महान और अचल बना लिया।।।2।।

उस खारी जल में बड़े–बड़े दो लहरों के समूहों को चीरता हुआ वह वानर श्रेष्ठ मानो पृथ्वी पर (जल के फूल) बिखेरता हुआ खेवा करने लगा।।3।।

इस सारे सर्ग से अधिकतर हनुमान जी का समुद्र को फांद कर पार होना पाया जाता है जो कि असम्भव है? और ये कोई मिथक अथवा लोकोक्ति बनायी गयी लगती है। क्योंकि यहाँ सर्ग में ही स्वयं वाल्मीकि जी ने दूसरे श्लोक में हनुमान जी को डोंगी से तैर कर समुद्र पार करने का स्पष्ट इशारा किया है।

श्लोक 3 में लिखा है कि उस खारी जल में बड़े–बड़े लहरों के समूहों को चीरता हुआ वह वानर श्रेष्ठ, आप विचार करें बिना जल में कोई नौका चलाये ये काम असम्भव है।

श्लोक 4 में लिखा है कि मेरु मंदर के बराबर महासागर में उठती हुई लहरों को बड़े वेगवाला मानो गिनता हुआ गया स्वयं विचार करें लहरें उठती रहती हैं। समुद्र में

पर जैसे कोई सर्फिंग करने गया मनुष्य उन उठती लहरों के ऊपर संतुलन बनाकर वेग से चलता है, ठीक वैसे ही इस श्लोक में बताया गया उड़ना नहीं बताया।

श्लोक 4 में लिखा है कि बलवान वानर श्रेष्ठ वेग से जिस मार्ग से जा रहा था उस मार्ग से समुद्र सहसा द्रोण की तरह होता जाता था। (पानी में उसकी डोंगी के आकार बनते जाते थे।) इस श्लोक से तो सारी शंकाओं का पूर्ण समाधान ही हो गया जब भी पानी पर डोंगी, नाव कुछ भी चलेगी, वो पानी को चीरकर आगे बढ़ेगी जिससे उस मार्ग में पानी का रास्ता कटता हुआ दिखेगा जो नाव अथवा डोंगी के आकार का ही होगा।

श्लोक 9 में लिखा है कि सुन्दर नाना विविधरूपधारी वानर समुद्र के परले तीर पर पहुँचकर महासागर के किनारे पर उतरकर अमरावती के तुल्य लंका को देखता गया अब देखिये यहाँ स्पष्ट रूप से वर्णित है कि हनुमान जी समुद्र के पार लंका के किसी तीर (नदी अथवा समुद्र का किनारा) पर पहुंच कर लंका को देखने लगे।

यहाँ विचारने योग्य बात यह है कि यदि हनुमान जी उड़कर लंका गए होते तो किसी समुद्र किनारे उतरने की कोई आवश्यकता नहीं थी बल्कि वो सीधे ही लंका के महल पर उतरते या फिर जहाँ माता सीता को रखा गया था उस अशोक वाटिका में उतरते।

अधिक जानकारी के लिए सुन्दर काण्ड के दूसरे सर्ग की श्लोक संख्या 1–17 भी ध्यान से पढ़ लें। वहाँ लिखा है कि हनुमान जी नीले, हरे घास के उत्तम गंध वाले, मधु वाले और उत्तम वृक्षों वाले वनों के मध्य में से गये। (सुन्दर काण्ड सर्ग 2,श्लोक 3)

फिर उड़कर वनों के ऊपर से क्यों नहीं गए? इसके आगे के श्लोकों में भी हनुमान जी के उड़ने का कोई वर्णन नहीं बल्कि स्पष्ट लिखा है कि वो चतुराई से लंका में गए एवं इस कार्य के लिए उन्हें शाम तक इंतजार करना पड़ा।

यदि वह उड़ सकते होते तो शाम तक इंतजार करते क्या? रामायण या रामचरित मानस में एक शब्द लिखा है "लांघना" अर्थात् समुद्र को लांघना।

लांघने के अर्थ तैरना, कूदना या छलांग लगाना नहीं हैं बल्कि लांघने का अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने की क्रिया या वेग से पार करना। लांघना अर्थात् लघिमा शक्ति का प्रतीक, हनुमान जी का समुद्र को लांघने का वर्णन रामायण और रामचरित मानस के सुंदरकांड दोनो में मिलता हैं।

वाल्मीकि रामायण को तत्कालीन घटना को समझने के लिए ऋषि ग्रंथ के रूप मे प्रामाणिक माना जाना चाहिए। तुलसी द्वारा लिखित काव्य में उपमा अलंकार तुकबंदी, एक कवि की मजबूरी है। रामभक्त तुलसी महाकवियों मे सम्मान से गिने जाते हैं। उनकी कल्पना की उड़ान मिशाल है। जैसे– हनुमान तीव्र गति से संजीवनी बूटी लेने गए और अतिश्योक्ति से लिखा कि उड़ कर गए और पहाड़ ही उठा लाए।

मकरध्वज जन्म कथा विश्लेषण

पौराणिक कथा : श्रीराम की आज्ञा से हनुमान जी लंका में गए । जब रावण को इस बात का पता चला तो उसने अपने सबसे छोटे पुत्र अक्षयकुमार को हनुमान जी को रोकने भेजा। लेकिन हनुमान जी ने अक्षयकुमार को युद्ध में मार डाला। क्रोधित होकर रावण के बड़े पुत्र मेघनाद ने हनुमान जी को युद्ध में बन्दी बनाया और असुर नरेश रावण के दरबार में ले गया जहाँ रावण ने हनुमान जी की पूंछ को जला दिया लेकिन हनुमान जी ने अपनी जलती हुई पूंछ से सोने की लंका को ही जला कर राख कर दिया। आग की गर्मी से हनुमान जी को पसीना आ गया और उस पसीने को एक मछली ने खाद्य समझकर ग्रहण कर लिया जिससे वह मछली गर्भवती हो गई। एक दिन वह मछली पाताल लोक जा पहुँची जहाँ अहिरावण और महिरावण के सेवकों ने उस मछली के पेट को चीर दिया जिसमें एक शिशु निकला जिसके शरीर का ऊपरी हिस्सा वानर का और निचला हिस्सा मछली का था।

सत्य क्या है : इस कथा की सत्यता को समझने के लिए दो तीन भागों में विचार करते है।

वाल्मीकि रामायण क्या कहती है? महर्षि वाल्मीकि की रामायण ही प्रामाणिक ग्रंथ है जिसमें ऐसा कोई प्रसंग नही है और तुलसी की रामायण जो केवल लगभग 400 वर्ष पुरानी है उसमे उत्तर काण्ड बाद में विधर्मियो ने जोड़ा है।

राम का वनवास 14 वर्ष का था, और राम रावण युद्ध केवल 17–18 दिन चला। युद्ध रोकने या कहो समझौते की प्रक्रिया लगभग दो वर्ष रही । उपलब्ध प्रमाण के अनुसार सीताजी का अपहरण अंतिम तीन वर्षो में हुआ ।

जिस तरह युद्ध के अवसर पर मकरध्वज का दो बार उल्लेख है तब उसकी आयु पूर्ण पुरुष की यानि कम से कम 22 वर्ष होनी चाहिए। और गर्भ काल भी 9 माह का तथा बच्चे को विकसित होने में 7–8 साल लगते ही है। इस तरह हनुमान पुत्र की कथा असत्य है।

कुछ प्रश्नः

1. क्या हनुमान जी के पसीने मे वीर्य था?
2. क्या किसी बंदर से किसी मछ्ली को संतान हो सकती है?
3. क्या पानी के अंदर भी किसी को पसीना आता है?
4. जब पानी मे पसीना आया, तो वो पानी में नही मिला क्या?
5. जब सूरज को निगलते समय हनुमान को पसीना नही आया, तो लंका मे आग

लगाते समय पानी मे कैसे पसीना आ गया?

6 क्या किसी पसीने की बूँद से मछ्ली गर्भवती हो सकती है?

7. क्या मछ्ली और बंदर का डी एन ऐ एक ही होता है?

8. अंडे देने वाली मछली ने मकरध्वज को कैसे पैदा कर दिया

9. पताल लोक कहाँ पर है?

10. मछली के पेट को चीरने के बाद जिन्दा शिशु कैसे बाहर आया और इसका लालन पालन कैसे बिना माँ के हुआ?

ऐसे अनेकों प्रश्न सामने आते है, इसलिए अंधविश्वास छोड़ने में ही अच्छा है। किसी भी कथा, तथ्य, विश्वास आदि को विज्ञान और ईश्वर के नियम की दृष्टि से भी समझना चाहिए।

फिर क्या सम्भव है ?

1. ऐसा सम्भव है की हनुमान कि तरह दिखने वाला, सम शक्ति वाला कोई युवा उनकी सेना में हो और हनुमान से आमना सामना हुआ हो, फिर उसको हनुमान पुत्र की संज्ञा से सुशोभित किया हो।

2. हनुमान ब्रह्मचारी थे, परंतु वैदिक विचार ये भी है कि केवल संतान उत्पत्ति के लिए पत्नी के संयोग करना और फिर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला भी ब्रह्मचारी ही कहलाता हैं।

एक प्रचलित मान्यता के अनुसार शादी से पहले हनुमान जी से कहा था कि वह विवाह के बाद भी बाल ब्रह्मचारी ही रहेंगे क्योंकि सुर्वचला कन्या से शादी के बाद भी वे तप में लीन रहेंगे। इस तरह हनुमान जी भले ही शादी के बंधन में बंध गए हों लेकिन शारीरिक रूप से वे ब्रह्मचारी ही कहलाएंगे।

ये मान्यता उचित प्रतीत होती है। सत्य को समझने का प्रयास करें, किसी भी गप्प कथानक द्वारा महावीर हनुमान के चरित्र पर दाग लगाना ठीक नहीं।

पवनपुत्र ने सूर्य को लील लिया/हनुमान जी सूर्य को खा गए

वाल्मीकि रामायण में इसका कोई वर्णन नही है और रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने जो लिखा है। यह एक कवि की कल्पना है, जिसमें रूपक अलंकार का प्रयोग किया है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार हनुमान को अपनी बाल्यावस्था में सूरज को फल समझकर खाने की इच्छा हुई। बाल हनुमान सूरज को खाने के लिए निकल पड़े, इन्द्र

ने भी बालक हनुमान को रोकना चाहा लेकिन तब तक हनुमान जी सूर्य को निगलना शुरू कर चुके थे। सूरज को हनुमान जी के मुँह से निकालने के लिए इन्द्र ने अपने वज्र से प्रहार किया।



सवाल उठता है कि अगर हनुमान जी अपना आकार बड़ा कर सकते हैं तो उन्होंने कुम्भकर्ण के सामने ऐसा क्यों नहीं किया?

अब हम समझ लें कि सूर्य क्या हैं?

सूर्य अथवा सूरज सौरमंडल के केन्द्र में स्थित एक तारा जिसके चारों तरफ पृथ्वी और सौरमंडल के अन्य अवयव घूमते हैं। सूर्य हमारे सौर मंडल का सबसे बड़ा पिंड है और उसका व्यास लगभग 13 लाख 90 हजार किलोमीटर है जो पृथ्वी से लगभग १०९ गुना अधिक है। ऊर्जा का यह शक्तिशाली भंडार मुख्य रूप से हाइड्रोजन और हीलियम गैसों का एक विशाल गोला है। परमाणु विलय की प्रक्रिया द्वारा सूर्य अपने केंद्र में ऊर्जा पैदा करता है। इसकी मजबूत गुरुत्वाकर्षण शक्ति विभिन्न कक्षाओं में घूमते हुए पृथ्वी और अन्य ग्रहों को इसकी तरफ खींच कर रखती है।

सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी लगभग 14,96,00,000 किलोमीटर या 9,29,60,000 मील है तथा सूर्य से पृथ्वी पर प्रकाश को आने में 8.3 मिनट का समय लगता है। इसी प्रकाशीय ऊर्जा से प्रकाश–संश्लेषण नामक एक महत्वपूर्ण जैव–रासायनिक अभिक्रिया होती है जो पृथ्वी पर जीवन का आधार है। यह पृथ्वी के जलवायु और मौसम को प्रभावित करती है। सूर्य की सतह का निर्माण हाइड्रोजन, हीलियम, लोहा, निकेल, ऑक्सीजन, सिलिकन, सल्फर, मैग्निशियम, कार्बन, नियोन, कैल्सियम एवं क्रोमियम तत्वों से हुआ है।

सूर्य से पृथ्वी की दूरी– 149.6 मिलियन कि0मी0 149600000 कि0मी0

श्रीलंका से हिमालय की दूरी–2400 कि0मी0

और वापस आने जाने की दूरी–4800 कि0मी0

हनुमान जी जब बड़े थे, तब वे एक रात में हिमालय से लंका तक पहाड़ उठा लाए थे तो इस हिसाब से उनके उड़ने की स्पीड हुई 4800 / 10 = 480 कि0मी0 प्रति घंटा

जब हनुमान जी बच्चे थे तो 480 कि0मी0 प्रति घंटा की स्पीड से उड़ते थे।

मान लिया बच्चा बड़ों से कमजोर होता हैं तो बचपन में वे 300 कि0मी0 / घंटा की स्पीड से उड़ते होंगे तो सूर्य की दूरी तय करने में लगा समय 149600000 / 300 = 498666 घण्टे।

498666 / 24 = 20777 दिन 20777 / 365 = 57 साल।

एक तरफ विज्ञान के मुताबिक लगे 57 और दोनों तरफ के हुए 114 साल

114 साल बाद जब हनुमान जी वापस आए तो वो बड़े हो गए थे या बच्चे ही थे?

वास्तविक अर्थः-

यहाँ हनुमान की शक्ति का वर्णन अतिश्योक्ति अलंकार द्वारा किया गया है।

वेदों में प्रकृति का वर्णन है, जिसका अर्थ इस प्रकार है–

ऋग्वेद के 7 मंडल में एक मंत्र आया है उसमें ये लिखा है पवनपुत्र ने सूर्य को लील लिया

अब देखो रामायण काल लगभग 9 लाख साल पुराना है। वेदों को अस्तित्व में आये 2 अरब वर्ष होने वाले हैं। ये तो स्पष्ट है कि वेदों में हनुमान जी का वर्णन बिल्कुल नहीं है। पवन के पुत्र अर्थात् बादल ने सूर्य को ढ़क दिया जिससे अँधेरा हो उठा फिर सूर्य के किरण रूपी वज्र से इंद्र ने अर्थात् उसी सूर्य ने बादल पर प्रहार किया जिससे वह छिन्न भिन्न हो गया। वेदों के मन्त्र का वास्तविक अर्थ निकालने हेतु निरुक्त का अभ्यास होना चाहिए। पौराणिक कथाओं पर शतप्रतिशत विश्वास नहीं किया जा सकता।

अब आप बताइए इसमें सूर्य को खाने जैसी बात कहाँ तर्कसंगत लगती है?

हनुमान जी के शरीर पर सिंदूर लेप का सच

एक प्रश्न है कि मंदिर में हनुमान जी की मूर्ति पर सिन्दूर का लेप लगाते हैं। ऐसा क्यों है?

दरअसल हर मूर्खता, अज्ञानता के कार्य को वैज्ञानिक बताने और किसी न किसी किस्से कहानी से जोड़ने की प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आयी है और हिन्दू समाज हर तरह की दंत कथाओं पर अपनी संस्कृति को बचाने के नाम पर अपने को बाध्य समझता है। जबकि उसका कर्तव्य है कि यदि हिन्दू धर्म रूपी आभूषण में यदि कोई मैल आ रहा है तो सफाई करें।

प्रचलित कथाः

इस विषय में एक कथा सुनाई जाती है कि हनुमान जी ने सीता जी से पूछा कि माते आप सिन्दूर क्यों लगाती है? सीता माता ने उत्तर दिया कि भगवान राम की दीर्घायु के लिए सिन्दूर लगाती हूँ। यह सुनकर हनुमान जी ने कहा कि यदि सिन्दूर से भगवान की आयु दीर्घ होती है तो मैं पूरे शरीर पर सिन्दूर लगाऊँगा तब से अब तक हनुमान को सिन्दूर लग रहा है।

वैज्ञानिक विश्लेषणः– ध्यान दें कि ये सिन्दूर सिर्फ मंदिर में ही पत्थर की मूर्ति पर ही क्यों लगाते है? जो व्यक्ति रामलीला में हनुमान जी का रोल करता है उसके शरीर पर सिंदूर क्यों नहीं लगाते?

दरअसल सिंदूर पारे से बनाया जाता है और जो भी इसको शरीर पर इस तरह लगाएगा उसकी मृत्यु निश्चिंत है। फिर हनुमान ऐसा क्यों करेंगे?

1. यदि हनुमान जी की भी मृत्यु हुई है तो ये तर्क गलत सिद्ध होता है कि सिन्दूर लगाने से मृत्यु नही होगी।
2. वाल्मीकि रामायण में ऐसा कहीं नहीं लिखा है। रामायण काल 10000 वर्ष से ज्यादा का है। और कवि तुलसी की काव्य रामायण 16 वीं शताब्दी मे लिखी गईं। जिसमें महाकवि तुलसी ने काव्य के माध्यम से अलंकार भाषा में उपमा दे देकर अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है। परंतु वहाँ भी हनुमान का अपने शरीर पर सिंदूर मलने का कोई उल्लेख नही है।
3. मेरा एक कर्मचारी हनुमान भक्त था और वह हनुमान की मूर्ति का सिन्दूर उसने पुजारी की सलाह से चाटने लगा और वह कुछ दिन में पागल हो गया। नौकरी भी गई, हनुमान ने मदद नहीं की।
4. एक प्रमाण हनुमान चालीसा से दिया जाता है।

राम रसायन तुम्हरे पासा, सदा रहो रघुपति के दासा॥

हनुमान के शरीर पर सिन्दूर लगाने की बात हनुमान चालीसा मे यहाँ भी नहीं मिलती है।

इस विषय पर आगे खोज की तो जवाब मिल ही गया।

1. विवाहित महिलाओं द्वारा माथे पर सिंदूर पति की उम्र बढ़ाने के लिए नही लगाया जाता, इसके अन्य वैज्ञानिक कारण है।
2. माथे पर सिंदूर लगाने से पति की उम्र बढ़ेगी, ऐसा कहीं भी वैज्ञानिक या आयुर्वेदिक साहित्य का प्रमाण नहीं मिलता है।
3. हनुमान के द्वारा शरीर पर सिंदूर लगाने का कोई प्रमाण बाल्मीकी रामायण में भी नही है।
4. इस प्रकार की कथाएं हमारे महापुरुष, चारो वेदों के ज्ञाता, भगवान राम के सेना नायक महावीर हनुमान को मूर्ख सिद्ध करने के अलावा और कुछ नही है।
5. हमारी त्वचा का रंग गोरा, लाल, कहीं ताम्बे की तरह लाल होता है। पूरी तरह से लाल तो नहीं है। लेकिन समय–समय पर त्वचा का रंग लाल होने में देर भी

नहीं लगती जैसे गुस्से में लाल होना, धूप से लाल होना, चोट लगाने पर, तेल मालिश के समय आदि।

6. हनुमान का जन्म झारखण्ड राज्य के गुमला जिले के अंजनद्री नाम के छोटे से पहाड़ी गाँव में हुआ था।

चट्टानों की टूट–फूट और उनके भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन के फलस्वरूप जो अवशेष एक अलग रूप ग्रहण करता है, वह अवशेष ही मिट्टी कहलाता है। छोटानागपुर के पठारी भाग में मुख्यतः अवशिष्ट (Residual) प्रकार की मिट्टी पायी जाती है। यहाँ पाई जाने वाली मिट्टियों में विषमता रचना (Teuture), रंग (Colour) तथा उर्वरता (Fertility) से संबंधित है। झारखण्ड की मिट्टियों में फेरिकऑक्साइड तथा बॉक्साइट का अंश अधिक रहता है, जिससे मिट्टियाँ अधिक लाल रंग की होती हैं। अधिकांश जगह ग्रेनाइट तथा नीस के कारण लाल मिट्टियाँ अलग–अलग रूपों में पाई जाती है। मिट्टियों में बालू का अंश ज्यादा रहता है।

राँची, देवघर, गोइडा, दुमका, धनबाद, गिरिडीह, हजारीबाग जिले में नीस तथा ग्रेनाइट की बहुलता के कारण अधिकांश जगह मिट्टियाँ लाल रंग की पाई जाती हैं जबकि धनबाद, सिंहभूम की मिट्टियों में लाल एवं काली मिट्टी का मिश्रित रूप रहता है

हनुमान जी ब्रह्मचारी थे, तेल मालिश व्यायाम और पहलवानी भी करते थे। पसीने के कारण शरीर पर मिट्टी चिपक जाती है और कभी कभी पहलवान भी पसीना ठंडा करने के लिए शरीर पर मिट्टी लगाते है ।

चूँकि उस क्षेत्र की मिट्टी का रंग लाल है। जो कि पसीना आने से शरीर से चिपक गई है, इसलिए शरीर से चिपकी हुई लाल मिट्टी सूर्य की किरण पड़ने के कारण ऐसा प्रतीत होने लगता है कि शरीर पूरा लाल है जिसको अलंकार की भाषा में ऐसा कहा गया कि जैसे हनुमान ने शरीर पर लाल सिंदूर लगा लिया हो।

उपरोक्त कथन में सत्यता दिखती है जिसको आगे चलकर बिगाड़ दिया और सिंदूर की उपमा दे दी गयी। इस कहावत में तुलसी कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग किया है। हनुमान जी एक विद्वान व्यक्ति थे, श्री राम की सेना के सेनानायक थे अतः उनका गलत चित्रण ठीक नही है।

हनुमान जी की पूजा का मतलब है कि हनुमान के आदर्श पर चलें, व्यायाम करे, ब्रहमचारी बने, शरीर मजबूत करें और अपने स्वामी के प्रति वफादार बनें यदि उस पर कोई विपत्ति आए तो दिन रात उनका साथ दें।

क्या हनुमान जी संजीवनी बूटी के लिए पर्वत को उठा लाये थे?

रावण के पुत्र मेघनाद के बाण–शक्ति के प्रहार से राम के भाई लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं, उनके उपचार के लिए सुषैन वैद्य को बुलाया जाता है, जो आकर बताते हैं कि लक्ष्मण का उपचार सिर्फ हिमालय पर्वत पर मिलने वाली संजीवनी बूटी से ही किया जा सकता है। संजीवनी बूटी की खोज में गए हनुमान जी जब पर्वत पर पहुँचकर असमंजस में पड़ जाते है तो पूरा का पूरा पर्वत ही लेकर आ जाते हैं। उसमें से वैद्य जी संजीवनी बूटी को खोज कर लक्ष्मण का उपचार करते हैं और लक्ष्मण पुनः जीवित हो जाते हैं।

विश्लेषण

इस कथा को ध्यान से व्यावहारिक दृष्टि से लेने की जरुरत है। यहाँ अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है। जैसे हम अक्सर कह देते हैं कि पूरी दुकान को ले आया, पूरा बाजार खरीद कर ले आया आदि। वाल्मीकि रामायण में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता कि हनुमान जी पूरा पहाड़ उड़ कर हाथों से उठा लाए, ये महाकवि तुलसी के काव्य की कल्पना की उड़ान है।

यदि ऐसा होता तो इसके आगे पीछे भी कुछ और लिखा होता जैसे कि पहाड़ का वजन, आकार, उसको उठाने का समय आदि लंका से हिमालय की दूरी 2400 कि0मी0 हैं, जाना–आना 4800 कि0मी0 हुआ और वहाँ लगने वाला समय भी ध्यान में यदि रखा जाए और यह माना जाए कि 10 घंटे में हनुमान जी वापस आ गए तो उनकी यात्रा की गति लगभग 480 कि0मी0 प्रति घंटा होगी और पहाड़ के वजन से आप अंदाजा नहीं लगा सकते।

ये एक कवि की कल्पना है जिसमें अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है। महाकवि तुलसी ने तिल का ताड़ बनाया जो कि कवि ने गलत नहीं किया लेकिन उसी अतिश्योक्ति को सत्य मान लेना बुद्धिमानी नहीं है।

तथ्य यह है कि हनुमान जी वन में रहने वाले वानर जाति से थे। इसलिए उनको वन में मिलने वाली औषधियों की जानकारी थी। जब लक्ष्मण बेहोश हुए तो हनुमान जी तीव्र गति से पर्वत क्षेत्र में गए, जहाँ बहुत से वनस्पतियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं, वे जब वहाँ पहुँचे तो वहाँ बहुत सी औषधियों को देखकर उनके सामने असमंजस की स्थिति पैदा हो गयी। क्योंकि समय का अभाव था इसलिए हनुमान जी ज्यादातर जड़ी बूटी प्रचुर मात्रा में उठाकर साथ ले लाये ताकि वैद्य अपने अनुसार चिकित्सा कर सके। आयुर्वेद में वनस्पति की प्रयोग से कुछ वनस्पतियों को सुघांकर कुछ से द्रव्य निकालकर रस चिकित्सा के द्वारा रोगी को स्वस्थ्य किया जाता है। हनुमान की तरफ से इतना स्नेह और समर्पण देखकर सभी के मुँह से अनायास निकल गया– हनुमान जी तो पूरा पहाड़ ही उठा लाये। इसी कल्पना को महाकवि तुलसी दास जी ने काव्य में लिखा है।

अध्याय-4

दशानन रावण



रावण रामायण का एक प्रमुख प्रति चरित्र है। रावण लंका का राजा था जो महाप्रतापी, महापराक्रमी योद्धा अत्यन्त बलशाली, शास्त्रों का प्रखर ज्ञाता, प्रकाण्ड विद्वान, पंडित एवं महाज्ञानी था। रावण के शासनकाल में लंका का वैभव अपने चरम पर था और उसने अपना महल पूरी तरह स्वर्ण रजित बनाया था। इसलिए उसकी लंका नगरी को सोने की लंका अथवा सोने की नगरी भी कहा जाता है। ऋषि वाल्मीकि रामायण के रचयिता और श्रीराम के गुरु थे, उन्ही के द्वारा रचित वाल्मीकि रामायण में राम मर्यादा पुरुषोत्तम और सर्वगुण सम्पन्न है, जबकि उन्हीं की रामायण में रावण एक दुराचारी, अत्याचारी, विवाहिता स्त्री सीता का अपहरण कर्ता है। गुरु रविदास भी अपने दोहों में श्रीराम की स्तुति करते हैं। कमाल यह है कि इन्हीं दोनों को अपना आध्यात्मिक गुरु मानने वाले इन्हीं के उपदेशों की अवहेलना करने वाले अपना उल्लू सीधा करने के लिए सत्य को सिरे से नकार रहे हैं।

रावण का इतिहास रावण कोई द्रविड़ देश का अनार्य राजा नहीं था। लंका पति रावण सारस्वत ब्राह्मण, पुलस्त्य ऋषि का पौत्र और विश्रवा का पुत्र था। वह वेदों की शिक्षा को भूलकर गलत रास्ते पर चल पड़ा था, जिसकी सजा श्रीरामचंद्रजी ने उसे दी, फिर किस आधार पर रावण को कुछ नव–बौद्ध, अम्बेडकरवादी अपना पूर्वज बताते हैं? इसका कोई आधार नहीं बल्कि केवल कोरी कल्पना मात्र है।

दक्षिण भारत कोई द्रविड़ देश जैसा कोई भिन्न प्रदेश नहीं था, यह श्रीराम के पूर्वज

राजा इक्ष्वाकु का क्षेत्र था। वाल्मीकि रामायण के किष्किंधा कांड का प्रमाण देखिये, श्रीराम बाली से कहते हैं :–

इक्ष्वाकूणामीयं भूमि सशैलवनकानना।
मृगपक्षीमनुष्याणां निग्रहानुग्हेष्वपि॥

श्रीराम कह रहे हैं कि वन, पर्वतों सहित यह भूमि इक्ष्वाकु राजाओं की अर्थात् हमारी है। अतः यहां के वन्यपशु, पक्षियों और मनुष्यों को दंड देने का उन पर अनुग्रह करने में हम समर्थ हैं।

क्या रावण भी आर्य था ?

बाली, सुग्रीव से लेकर रावण भी आर्य थे। इसका प्रमाण पढिए –

आज्ञापयतदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः।
औध्वर्य देहिकुमारस्य क्रियतामानुकूलतः॥

अर्थात् :– यहाँ सुग्रीव बाली के अंतिम संस्कार के लिए आदेश दे रहें हैं और कहते हैं कि इस आर्य का अंतिम संस्कार आर्योचित रीति से किया जाये। रावण राम के साथ युद्ध में घायल हो अचेत हो गया तो उसका सारथी उसे युद्ध क्षेत्र से बाहर ले गया, होश आने पर रावण उसे दुत्कारते हुए कहता है कि–

त्वयाद्यः हि ममानार्य चिरकाल मुपार्जितम।
यशोवीर्य च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशिताः॥

अर्थात् :– हे अनार्य तूने चिरकाल से उपार्जित मेरे यश, वीर्य, तेज और स्वाभिमान को नष्ट कर दिया। यहाँ रावण क्रोध से भरकर अनार्य शब्द का प्रयोग कर रहा है। इससे यही सिद्ध हुआ कि वह अपने आपको श्रेष्ठ अर्थात् आर्य मानता था।

हालांकि सत्य यह है कि रावण अपने कर्मों से आर्य कुल में उत्पन्न होने के पश्चात भी अनार्य हो चुका था। रावण एक विलासी और अत्याचारी राजा बन चुका था। अनेक देश–विदेश की सुन्दरियाँ उसके महल में थीं, फिर भी वह स्वयं को आर्य कहलाना ही पसंद करता था। ऐसे में उसकी पूजा करने का दावा करने वाले लोगों को विचार करना चाहिए कि यदि रावण ही स्वयं को आर्य मान रहा है तो उसका अनुयायी होने का दावा करने वाले लोग स्वयं को अनार्य क्यों कह रहे हैं ?

रावण के दस शीश और बीस भुजायें

हमको रावण के दो तरह के रूप दिखाई देते हैं। एक में एक सिर है तो दूसरे मे 10 सिर हैं। राम लीला में भी उसका विशाल पुतला बनाया जाता है और उसके भी



दस शीश तथा बीस भुजायें बनायीं जाती हैं। इतना ही नहीं उसके मध्य सिर के ऊपर एक गधे का सिर भी बनाया होता है।

इतना ही नहीं राम लीलाओं में और फिल्मो में प्रदर्शन किया जाता है जिसमें ऐसा दिखाते हैं कि जब रामचन्द्र जी महाराज का रावण से युद्ध हुआ तो उसके सिरों को अपने वाणों से काट गिराते थे और तत्काल नए सिर पैदा हो जाते थे।

क्या रावण के वास्तव में दस सिर और बीस भुजायें थी? क्या ऐसा सम्भव हैं कि सिर शरीर से अलग हो जाए और तुरंत दूसरा सिर भी आ जाए?

विश्लेषण

इस विषय में जब पड़ताल की तो कई अलग–अलग विचार सामने आये इसलिए सभी विचारों पर ध्यान देकर सत्यता की पड़ताल करते हैं।

1. पहला विचार है कि रावण के दस सिर नहीं थे किंतु वह दस सिर होने का भ्रम पैदा कर देता था इसी कारण लोग उसे दशानन कहते थे। जैन शास्त्रों में उल्लेख हैं कि रावण के गले में बड़ी–बड़ी गोलाकार नौ मणियाँ होती थीं। उक्त नौ मणियों में उसका सिर दिखाई देता था जिसके कारण उसके दस सिर होने का भ्रम होता था।
2. एक अन्य विद्वान के अनुसार रावण के दस सिर होने मे, मैं इस परिप्रेक्ष्य में स्वीकार करता हूँ। कि दसों दिशाओं में उसकी ताकत और ज्ञान की तूती बोलती थी। दसों दिशाओं में उसकी और उसके ज्ञान बल की चर्चा होती थी।
3. एक अन्य विद्वान के अनुसार रावण दस मस्तक, बड़ी दाढ़ी, ताम्बे जैसे होंठ और बीस भुजाओं के साथ जन्मा था। वह कोयले के समान काला था और उसकी दस ग्रीवा की वजह से उसके पिता ने उसका नाम दशग्रीव रखा था। इसी कारण से रावण दशानन दसकंधर आदि नामों से प्रसिद्ध हुआ।
4. वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण छह दर्शन और चारों वेद का ज्ञाता था, इसीलिए उसे दसकंठी और दशानन भी कहा जाता था। दसकंठी कहे जाने के कारण प्रचलन में उसके दस सिर मान लिए गए।

विभिन्न मान्यताओं से तो यही अर्थ निकलेगा कि अपनी–अपनी ढपली अपना–अपना राग, ऐसा तब होता है जब एक ही वाक्य या सन्देश के कई अर्थ निकाले जायें और

असलियत को समझने या गहन चिंतन का कोई प्रयास न करे क्योंकि एक शब्द है, क्या फरक पड़ता है? श्रोता पाठक शांत हैं और अंधविश्वासी हैं। तथा कथाकार की फिल्म द्व ारा भरपूर मनोरंजन हो रहा है जिसमें एक विलेन हैं तो एक हीरो।

हम लोगों की समझ संकीर्ण है और किसी ने भी ये चेष्टा नहीं की कि रामायण का मूलरूप और मूलभाव को समझना चाहिए। रामायण जो टीवी पर हमने देखी हैं वो एक मनोरंजन हैं और टीवी के सीरियल की शुरुआत में ही लिख दिया है कि ये सीरियल प्रमाणिक नहीं है।

एक और विशेष तथ्य यह भी है कि विकृत शरीर वाला व्यक्ति अपंग होता है, निष्क्रिय होता है और या तो दूसरों की दया, कृपा पर जीवित रहता है, उसकी और दुर्गति होती है या जल्दी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। आज तक ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता है कि कोई 10 सिर 20 भुजा वाला पैदा हुआ है। इससे लगता है कि ये एक कहावत है।

जैन साहित्य में जो 10 मणियों वाली बात भी है उससे प्रतीत होता हैं कि रावण के गुणों को छुपाने के लिए तुकबंदी की गई है।

सिर काट दिया, फिर जुड़ गया इसका कारण बता दिया कि रावण मायावी था। इस सिर काटने वाले खेल में हाथ, पैर का कटने और फिर से जुड़ने का वर्णन नहीं हैं। क्या यदि १० सिर २० भुजायें मान ली जायें तो २० पैर क्यों नहीं ?

ये बात भी प्रकृति एव विज्ञान के विरुद्ध है और बिल्कुल नकारने योग्य है।

यदि १० दिशाओं में उसके ज्ञान की तूती बोलने की बात को देखा जाए तो ये बात भी वहीं विद्वान कह रहे हैं। जो पहले 10 सिर और 20 भुजाएँ बता रहे हैं यानी उनका विचार भी एक जगह नहीं हैं और रामायण में कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि उसकी 10 दिशाओं में ज्ञान की तूती बोलती थी इसलिए दशानन कहा गया।

लेकिन उपरोक्त वाक्य समझने लायक हैं क्योंकि यहाँ अलंकार का प्रयोग साफ दिखाई देता है। इस आलोक में वाल्मीकि रामायण का सहारा ले तो मालूम होता है कि रावण छह दर्शन और चारों वेद का ज्ञाता था जो कि उसको कंठस्थ थे। इसलिए उसको सम्मान के रूप में दशानन या फिर दसकंठी भी कहा गया।

रावण एक विद्वान व्यक्ति था और आर्य था परन्तु उसकी गलतियों के कारण लोगों ने विद्वान मानने से मना कर दिया और दशानन या दसकंठी की उपाधि को विकृत रूप दे दिया, ये रावण के प्रति क्रोध के कारण किया गया ताकि इतिहास में उसको विद्वान न स्वीकार किया जाए।

दसकंठी या दशानन कहे जाने के कारण प्रचलन में उसके दस सिर मान लिए गए

हम इस आधुनिक युग में रहते हुए इस बात को स्वीकार कैसे कर सकते हैं कि रावण के दस सिर थे क्योंकि दस सिरों के साथ वह अपना रहन–सहन की व्यवस्था कैसे करता होगा? ये अपने आप में ही एक सवाल है। वहीं दूसरी ओर बीस भुजाओं के बारे में हम आज के युग में कह सकते हैं कि यदि किसी व्यक्ति के यहाँ दस कर्मचारी काम मे मदद करते हैं तो कहेंगे कि वह बीस हाथों से काम करता है। उदाहरण के लिए श्री मुकेश अम्बानी जी हजार हाथों से काम करते हैं।

रावण द्वारा वैधनाथ धाम शिवलिंग की स्थापना का सच



1 मान्यता है कि वैद्यनाथ धाम शिवलिंग की स्थापना रावण ने कैलाश से लंका जाने के समय लघु–शंका लगने के कारण विवश हो के वैद्यनाथ धाम में की थी तो ये वैद्यनाथ धाम एक तो हिमाचल में, दूसरा झारखंड में है। दोनों धाम की एक ही पौराणिक कहानी भी है, तो इसमें से कौन सही है?

2 कैलाश पर्वत से सीधे श्रीलंका – 2578 कि.मी. पर हिमाचल से श्रीलंका आकाश मार्ग से – 3898 कि.मी. तो रावण क्यों लंका जाने के लिए पहले हिमाचल गया था?

3 अब कैलाश से झारखंड 900 कि.मी. झारखंड देवघर से लंका की दूरी 3300 कि. मी. यानि सीधे लंका कैलाश से 2600 कि.मी. न जा के 4200 कि.मी. के रास्ता का रावण ने क्यों चुनाव किया?

4 अभी तक मुझे महादेव भक्त विद्यापति की कोई रचना बाबा धाम पर नहीं मिली हैं। यदि किसी को मिले तो मुझे अवश्य भेजें। उन्होने रचना क्यों नहीं की?

साथ ही एक भी रचना विद्यापति से पहले के किसी भी मिथिला के विद्वानों द्वारा नहीं मिल रही, क्यों?

यदि 15 वीं शताब्दी से पहले की कोई रचना किसी इतिहासकार, मैथिल विद्वानों की बाबा धाम की उपलब्ध हो तो मुझे भेजे।

यस्तु तर्केणनानुर्याणोति ।
सः धर्मवेद्नेत्रे ॥ - मनुस्मृति

जो तर्क प्रमाण से धर्म का अनुसंधान करता है, वही धर्म को प्राप्त करता है एवं वही धार्मिक है। चमत्कार व पाखण्ड का कोई स्थान नही।

रावण की नाभि में अमृत होना और उसे श्रीराम द्वारा सुखा देने का वर्णन

प्रचलित कथाः– युद्ध में जब राम काफी हतोत्साहित हो गए थे और किसी भी तरह से रावण को परास्त नहीं कर पा रहे थे तो विभीषण ने राम की मदद की थी।

विभीषण ने बताया कि रावण की नाभि में अमृत है जिस वजह से उसे कोई भी व्यक्ति युद्ध में परास्त नहीं कर सकता था जब भगवान श्रीराम ने रावण के साथ युद्ध किया राम ने जब उसके सिर व भुजा पर वार किया तब अनेक बार उसका सिर बार–बार कट कर नीचे गिरता था और वापस लग जाता था। उसी तरह उसकी भुजा बार–बार काट कर नीचे गिर जाती थी और वापस लग जाती थी।

जिस पर विभीषण ने राम को यह सलाह दी कि जब तक राम रावण की नाभि पर वार नहीं करेंगे तब तक रावण को मारना असम्भव है। क्योंकि रावण के नाभि में अमृत है और उस अमृत के सूखे बिना रावण नहीं मर सकता है, तब विभीषण की राय पर राम ने रावण की नाभि पर वार किया जिससे नाभि में स्थित अमृत सूख गया और रावण की मृत्यु हो गई।

विश्लेषणः– यह कथा केवल रामचरितमानस में है, वाल्मीकि रामायण में ऐसा कोई वर्णन नहीं है। यह सब कपोल कल्पना है। नाभि में अमृत की कल्पना व कथा कहने व मानने वाले बहुत से लोग हैं।

1. रावण की नाभि में अमृत नहीं था यह सिर्फ भ्रमित करने वाली बात है। यदि उसकी नाभि में अमृत था तो वह उस अमृत को नाभि में क्यों रखा था? उसे पी क्यों नहीं लिया? अमृत पीकर वह अमर हो सकता था। प्रश्न वही आता है कि अमृत होता तभी तो पीता। यदि वहाँ अमृत नहीं था तो क्या था? इसका रहस्य किसे पता है? हमारे ग्रंथों में रामायण काव्य के रूप में मिलती हैं जिसमें बहुत से अलंकार एवं उपमा का प्रयोग किया है और कथावाचकों ने और रोचक बनाने के लिए मसाला मिला दिया हैं।
2. एक अन्य विचार के अनुसार रावण दशानन तो था ही और योगी भी था। प्राणायाम द्वारा उसने स्वयं को मजबूत बनाया हुआ था ये बात नाभि के कुंडलिनी चक्र की निर्भय शक्ति सम्बन्धित हैं। भय का स्थान नाभि में होता है, जिनका नाभि चक्र कमजोर होता है वो भयभीत जल्दी होते हैं तथा छोटी– छोटी बात पर जल्दी भयभीत या डर जाते हैं और जिनका नाभि चक्र मजबूत होता है वो निर्भय (अभय)

हो जाते हैं। आपने काफी बार देखा या महसूस किया होगा कि जब आप या कोई अचानक भयभीत होता है, तो उसका पेशाब या दस्त निकल जाते हैं। क्योंकि नाभि या पेट एकदम उस भय के दबाव को सहन नही कर पाता और अपने आप को खाली करने के लिए सक्रिय हो जाता है।

आपने देखा होगा कि जब कोई भयभीत या डरा हुआ होता है तो उसके चहरे का रंग उड़ जाता है, ये रंग उड़ना भाव शरीर ही है जो आप के भाव दिखाता है। एक चीज और देखी होगी जब आप या अन्य कोई व्यक्ति चिंता में होता है तो उसे भूख भी नही लगेगी क्योंकि चिंता भी भय का ही रूप है और जब नाभि स्थान (पेट) चिंता भय या डर से भरा होगा तो पेट को भूख भी नही लगेगी। जैसे ही चिंता खत्म होती है तो पेट भय या डर से खाली हो जाता है और भोजन खाने की इच्छा होती है। मगर यदि नाभि चक्र को ध्यान द्वारा मजबूत किया जाए तो कोई भी चीज, कोई भी बात, कोई भी घटना, या कोई भी स्थिति उसको डरा ही नही सकती और वो उन पर विजय करता हुआ आगे बढ़ जाता है। रावण ने भी नाभि कुंडलिनी चक्र को मजबूत बना लिया था, जिसकी वजह से श्रीरामचन्द्रजी द्वारा चलाये गए किसी भी अस्त्र–शस्त्र से रावण भयभीत नही हुआ और कुंडलिनी चक्र से मिली निर्भर (अभय) शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति तो मौत को भी हरा सकता है।

ये बात विभीषण जी को पता थी जिस कारण उन्होंने श्रीराम जी को रावण की नाभि का छेदन करने के लिए कहा जिससे रावण के नाभि चक्र की सारी शक्ति नष्ट हो जाये और रावण भयभीत होकर हार जाए और उसकी मृत्यु हो जाये, बस यही रहस्य और कुंडलिनी विज्ञान था। रावण की नाभि के अमृत कुंड का जो निर्भयता (अभय) शक्ति से भरा हुआ था।

3. नाभि (चिकित्सकीय भाषा में Umbilicus के रूप में ज्ञात और Navel के नाम से भी जानी जाती है।) पेट पर एक गहरा निशान होता है जो नवजात शिशु से गर्भनाल को अलग करने के कारण बनता है। सभी अपरा सम्बन्धी स्तनपाइयों में नाभि होती है, यह मानव में काफी स्पष्ट होती हैं। नाभि मानव शरीर का केन्द्र है। नाभि ही गर्भस्थ शिशु का जीवन स्रोत तथा माता एवं गर्भ के मध्य सेतु का कार्य करती है। कुदरती रूप से हमारे शरीर में नाभि–चक्र एक निर्धारित स्थान पर स्थित रहता है। मनुष्य मात्र के स्वास्थ्य के संरक्षण व संवर्धन के लिए नाभि चक्र का अपने नैसर्गिक स्थान पर स्थित होना अत्यावश्यक है।
4. गोस्वामी तुलसी दास द्वारा रचित रामचरितमानस एक नाट्य ग्रन्थ है और यदि राम, रावण के विषय में सत्य को जानना है तो आपको प्रमाणिक ग्रंथ के रूप में महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण को ही प्रमाणित मानना चाहिए वाल्मीकि रामायण में ऐसा कोई वर्णन नहीं है।

अध्याय-5

अन्य पात्र

राजा जनक

राजा जनक विदेह क्यों कहलाए?



राजा जनक भी रामायण के एक प्रमुख पात्र है। ये मिथिला के एक प्रसिद्ध राजा थे,और माता सीता के पिता थे। राजा जनक को 'विदेह' के नाम से भी जाना जाता है। राजा जनक को अपने ज्ञान, वैराग्य और न्यायप्रियता के लिए जाना जाता था।

राजा जनक को तत्त्वज्ञान और अध्यात्म का विद्वान माना जाता था। वे हमेशा ज्ञान की खोज में रहते थे और सांसारिक सुखों से दूर थे।

राजा जनक के पास एक शक्तिशाली धनुष था, जिसे स्वयंवर में सीता के लिए शर्त के रूप में रखा गया था।

राजा जनक का जीवन और शिक्षाएं आज भी लोगों को प्रेरित करती हैं। दूर–दूर से लोग उनके पास धर्म सम्बन्धी जिज्ञासा का समाधान करने आते थे। एक बार एक महात्मा व्यक्ति उनसे मिलने आये। उन्होंने चंचल मन के पाश से छूटने का उपाय पूछा। राजा जनक अपने स्थान से उठे और एक वृक्ष को जोर से पकड़ कर बोले– ''अगर यह वृक्ष हमें छोड़ दे तो हम आपके प्रश्न का उत्तर दे पाये।'' प्रश्न पूछने वाले महात्मा का दिमाग चकरा गया। उसके मन में शंका हुई क्या यही राजा जनक है जो सम्पूर्ण भू मण्डल में ब्रह्म विद्या के ज्ञाता के रूप में प्रसिद्ध है और एक वृक्ष को पकड़ कर कह रहे हैं की अगर यह वृक्ष हमें छोड़ दे तो हम आपके प्रश्न का उत्तर दे पाये। महात्मा बोले–

महाराज! आपको जड़ वृक्ष कैसे पकड़ सकता है? यह तो आपने स्वयं ही पकड़ा हुआ है। आप वृक्ष छोड़ दे, आप स्वयं छूट जायेंगे। महाराज जनक ने कहा– क्या आपको दृढ़ विश्वास ह की यह छूट जायेगा? महात्मा बोले महाराज यह तो बिलकुल प्रत्यक्ष है कि आप वृक्ष छोड़ दें तो आप छूट जायेंगे। महाराज जनक ने कहा, ''बस इसी भाँति आपने मन को पकड़ा हुआ है। यदि आप मन को वश में कर ले और इसके फंदे में न आयें तो मन कुछ नहीं कर सकता। आप इस जड़ मन को चाहे सुमार्ग पर चलाये, चाहे कुमार्ग पर। यह आपके अधीन है। बिना जीव कि इच्छा के मन में संकल्प नहीं हो सकते। इसलिये मन को वश में करना व्यक्ति के अधीन है।'' यह सुनकर ब्राह्मण प्रश्न ह राजा जनक के ब्रह्मज्ञानी होने की प्रशंसा करने लगा।

पहले ये समझना चाहिए कि विदेह का वास्तविक अर्थ क्या है? विदेह शब्द उन महापुरुषों, विद्वानों के लिए प्रयोग होता हैं जो इस संसार में तो रहते हैं, उच्च पद पर विराजमान भी हैं लेकिन पद प्रतिष्ठा आदि का उनको कोई लालच नहीं होता और ये सभी उनके लिए गौण हैं, ये तत्वज्ञानी पुरुष स्वयं में जीते हैं, एक उदाहरण कबीर का आता हैं कि कोई उनको अशर्फी देने आया तो कबीर ने कहा झोपड़ी में रख दो। उसने रख दी। कुछ वर्ष बाद वह वापस अशर्फी लेने आया तो कबीर ने कहा जहाँ रखी है वहीं से ले आओ।

एक कथा राजा जनक के विषय मे प्रचलित है जिससे उनके विदेही होने का ज्ञान होता हैं।

गुरु ने शिष्य से कहा "तुझे अब व्यावहारिक ज्ञान की दीक्षा के लिए राजा जनक के पास जाना होगा। राजा जनक राज–काज करते हुए राज महलों में रहकर भी सद्ज्ञान को प्राप्त हो गये हैं उन्हें विदेह कहा जाता है" शिष्य बड़ी उलझन में पड़ गया कि ख्याति लब्ध गुरु के पास वर्षों रहा, घोर तप किया किन्तु फिर भी ज्ञान प्राप्त न हो सका। भला राज महलों में किस तरह ज्ञान मिलेगा। किन्तु गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर शिष्य राजा जनक के राज दरबार में पहुँचा। देखा राजा जनक काज में व्यस्त है। राजमहलों में सुख सुविधा की प्रचूर सामग्री सुलभ है। नाच, गाना, संगीत में पूरा राज दरबार डूबा है। वह बड़ा हैरान हुआ कि इस राजा से क्या ज्ञान मिलने वाला है। किन्तु फिर भी राजा को अपने आने का मन्तव्य कह सुनाया।

राजा जनक ने कहा कि "आज तो वह राज महलों को घूम कर देख लें। कल सत्संग और ज्ञान की बात करेंगे और एक दीपक हाथ में थमाकर कहा कि देखना यह दीपक बुझ न जाय अन्यथा महल के रास्ते विकट है। भूल भुलैयों में भटकने का डर है"।

शिष्य ने पूरा महल घूमा तो किन्तु मन में डर बैठा ही रहा कि यदि दीपक बुझ गया तो रास्ते से भटक सकता है। अतः महल भली प्रकार न देख सका। पूरा ध्यान दीपक सम्हालने में ही लगा रहा।

रात्रि में सोने को सुन्दर, सुकोमल विस्तर पलंगों की व्यवस्था तो थी किन्तु शयन कक्ष में पलंग के ठीक ऊपर नंगी तलवार पतले धागे से लटकती देखकर शिष्य रात भर न सो सका। रात भर सोचता रहा कि गुरु ने किस मुसीबत में फँसा दिया। यहाँ क्या ज्ञान मिलेगा? जान बच जाय यह क्या कम है। प्रातः शिष्य राजा जनक के पास जाकर बोला "महाराज अब क्या आज्ञा हैं? राजा ने पूछा– "रात को नींद कैसी आई पहले यह तो बताइए" उसने कहा "बिस्तर पलंग आदि की व्यवस्था बहुत अच्छी थीं, किन्तु सिर पर नंगी तलवार लटकती देखकर रात भर नहीं सो सका। इससे तो अच्छी नींद हमें हमारे झोपड़ों में ही आती थी।"

अब सम्राट ने कहा ठीक है। आओ भोजन करलें। सुस्वाद भोजनों का थाल परोसकर शिष्य के सामने रखा और कहा भोजन करें। किन्तु एक संदेश आपके गुरु का आया है कि शिष्य को सत्संग में ज्ञान प्राप्त होना ही चाहिए। यदि न हो तो फिर सूली लगवा दें।"

यह समाचार सुनकर शिष्य स्वादिष्ट भोजन का स्वाद भूल गया अब तो उसको सूली सामने नजर आने लगी। बड़े बेमन से भोजन किया और उठकर चल दिया और हाथ जोड़ कर राजा से प्रार्थना कि महाराज अब नहीं करना सत्संग, प्राण बच जाये तो यही बहुत है।

राजा जनक ने कहा "सत्संग तो हो चुका, तुम इतना भी नहीं समझ सके"।

शिष्य ने कहा वह कैसे? राजा ने कहा– "जैसे तुम रात दीपक लेकर महल में घूमें किन्तु दीपक बुझने के भय से महल का सुख न भोग सके। इस प्रकार मुझे हर समय यह ध्यान बना रहता है कि यह जीवन का दीपक बुझने ही वाला है अतः मैं रास रंग में रमता नहीं मात्र दृष्टा बना रहता हूँ। राज काज करता अवश्य हूँ किन्तु लिप्त नहीं होता।"

"रात को नंगी तलवार लटकती देखकर तुम सो नहीं सके। इसी प्रकार मुझे प्रतिपल मृत्यु का ध्यान रहता है। मृत्यु कभी भी घट सकती है अतः मैं रास रंग में कभी डूबता नहीं। सुस्वाद भोजन में तुम्हें जिस तरह सूली का संदेश सुनकर स्वाद नहीं आया। इसी प्रकार संसार में सब कुछ चल रहा है, घट रहा है किन्तु मुझे भी उस शाश्वत अन्तिम सन्देश का प्रतिपल स्मरण रहता है। अतः माया, ममता, लोभ और आकर्षणों में मैं कभी लिप्त नहीं होता। मैं महल में अवश्य हूँ किन्तु महल मुझ में नहीं। ज्ञानी का यही परम लक्षण है कि वह संसार में अवश्य है किन्तु संसार रंचमात्र भी उसमें नहीं है। वह कर्म करते हुए भी लिप्त नहीं होता"। शिष्य को उसी क्षण परम ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। विदेह से वह सही अर्थों में तत्वदर्शन की दीक्षा ले चुका था।

अंगद का पांव



किसी शत्रु देश पर आक्रमण करने से पूर्व वहाँ के राजा के पास अपना दूत भेजकर युद्ध को टालने का प्रयास सदा सर्वत्र किया जाता रहा है।

लंका में राम और रावण के बीच हुए युद्ध के विषय में महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है, राम रावण युद्ध अर्थात् राम और रावण के बीच ऐसा युद्ध हुआ वैसा युद्ध दूसरा कोई नहीं हुआ। इसलिए उसकी उपमा उसी से दी गई है। ऐसे भीषण युद्ध को टालने का प्रयास न किया जाता यह कैसे हो सकता था? मंत्रिपरिषद में इस विषय में विचार हुआ। जामवंत ने इस कार्य के लिए बाली पुत्र अंगद का नाम प्रस्तुत किया, यही अच्छी सलाह सबको पसंद आई। बुद्धि बल और गुणों की दृष्टि से अंगद से बढ़कर कोई नहीं था। उसके लंका में रावण के सम्मुख पहुँचने पर दोनों में बहुत देर तक नोक झोंक होती रही। अंततः अंगद ने सभा के बीच में अपना पाँव जमा दिया और घोषणा कर दी–

जो मम चरन सकसि सठ टारी।
फिरहिं राम सीता मैं हारी।

अरे दुष्ट! जो तू मेरा पाँव हटा दे तो रामचंद्र जी लौट जाएँगे और मैं सीता जी को हार जाऊँगा।

सीता तो स्वामी राम की पत्नी थी, अंगद को पर स्त्री को हारने का क्या अधिकार था? इससे पहले पाँचवी चौपाई में अंगद ने कहा था।

मैं तव दसन तोरिबे लायक।
आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक।।

मैं तेरे दाँत तोड़ने लायक हूँ पर क्या करूं, रघुनाथ जी ने मुझे आज्ञा नहीं दी है। रावण के दाँत तोड़ने के लिए अंगद को राम की आज्ञा दरकार थी पर राम की पत्नी को हारने के लिए नही। बड़ी विचित्र बात है पर न तो अंगद का पांव हटा और न राम लौटे, परिणामस्वरूप सीता जहाँ की तहाँ रहीं।

वाल्मीकि रामायण में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

जामवंत रीछ (भालू)



यह भी एक भ्रान्ति है। रामायण में वर्णन मिलता है कि जब युद्ध में लक्ष्मण मेघनाद के ब्रह्मास्त्र से घायल हो गए थे, तब किसी को भी उस संकट से बाहर निकलने का उपाय नहीं सूझ रहा था तब विभीषण और हनुमान जामवंत के पास परामर्श लेने गये। तब जामवंत ने हनुमान को हिमालय जाकर ऋषभ नामक पर्वत और कैलाश नामक पर्वत से संजीवनी नामक औषधि लाने को कहा था।

युद्ध कांड सर्ग (74/31–34) में यह प्रसंग मिलता है।

आपदाकाल में बुद्धिमान और विद्वान जनों से ही संकट का हल पूछा जाता है। युद्ध काल में ऐसा निर्णय किसी अत्यंत बुद्धिवान और विचारवान व्यक्ति से पूछा जाता है। पशु–पक्षी आदि से ऐसे संकट काल में उपाय पूछना सर्वप्रथम तो सम्भव ही नहीं है, दूसरे बुद्धि से परे की बात है इसलिए स्वीकार्य नहीं है।

इसलिए जामवंत का रीछ (भालू) जैसा पशु नहीं अपितु महाविद्वान होना ही संभव है।

इन सब वर्णन और विवरणों को बुद्धिपूर्वक पढ़ने से यह सिद्ध होता है कि हनुमान, बाली, सुग्रीव, जामवंत, जटायु आदि विद्वान एवं बुद्धिमान मनुष्य थे। उन्हें पशु–पक्षी आदि मानना केवल मात्र एक कल्पना है और अपने श्रेष्ठ महापुरुषों के विषय में यह असत्य कथन और पूर्वजों का निरादर जबकि हमारे धर्म शास्त्रों में पितरों के सम्मान का विधान है।

जटायु



वाल्मीकि रामायण के आधार पर इसका उत्तर देखते हैं। जहाँ ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि जटायु गिद्ध था। यह एक अलंकार हैं और एक व्यक्ति के गुणों की तुलना और उसके दिखने की तुलना के आधार पर उसको एक पक्षी की उपमा दी गई है, ऐसा आज भी होता है कि एक व्यक्ति के कई नाम होते हैं और एक नाम बिगड़ा हुआ जैसे किसी को हाथी, कौवा, घोड़ा, स्वर कोकिला आदि नाम से मजाक में

पुकारना शुरू कर दें और बाद में वो इसी नाम से मशहूर हो जाए।

जटायु एक घने बालों वाला और तेज नेत्र शक्ति वाला व्यक्ति था। जिसको काफी दूर तक साफ–साफ दिखाई देता था। घने बालों यानी जटाओं के कारण उसका नाम जटायु हुआ और दूर तक देखने की शक्ति के कारण उसको गिद्ध की उपमा दी गई।

अतः जटायु शब्द से किसी योनि विशेष, जाति, प्रजाति अथवा उपजाति का बोध नहीं होता।

जटायु कोई गिद्ध नामक पक्षी नहीं था

जिस समय रावण सीता का अपहरण कर उसे ले जा रहा था तब जटायु को देख कर सीता ने कहा

जटायो पश्य मम आर्य ह्रयमाणम् अनाथ वत्।
अनेन राक्षसेद्रेण करुणम् पाप कर्मणा ॥

अरण्यक (49/38)

अर्थात्:– हे आर्य जटायु! यह पापी राक्षस पति रावण मुझे अनाथ की भाँति उठाये ले जा रहा है।

कथम् तत् चन्द्र संकाशम् मुखम् आसीत् मनोहरम् ।
सीतया कानि च उद्रानि तस्मिन् काले द्विजोत्तम ॥

(68/6)

अर्थात् – यहाँ जटायु को आर्य और द्विज कहा गया है। यह शब्द किसी पशु–पक्षी के सम्बोधन में नहीं कहे जाते।

रावण को अपना परिचय देते हुए जटायु ने कहा।
जटायुः नाम नाम्ना अहम् गृध्र राजो महाबलः ।

अरण्यक (50/4)

अर्थात् :– मैं गृध कूट का भूतपूर्व राजा हूँ और मेरा नाम जटायु है।

यह भी निश्चित है कि पशु–पक्षी किसी राज्य का राजा नहीं हो सकते। इन सभी प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि जटायु पक्षी नहीं था। अपितु एक मनुष्य था जो अपनी वृद्धावस्था में जंगल में वास कर रहा था।

कुम्भकरण की छह महीने सोने की कहानी का सच

कुम्भकरण रावण का भाई था, कुम्भकरण दिखने में बहुत ही ज्यादा बलशाली और भीमकाय था और आम लोगों से कई गुना ज्यादा भोजन करता था। इसलिए विशाल



शरीर, कुम्भ और बड़े कान (कर्ण) होने के कारण इसका नाम कुम्भकर्ण पड़ा।

तुलसीदास की रामचरित मानस में इसके विषय में ये वर्णन मिलता है कि वह छह महीने सोता था और छह महीने जागता था। इसके बाद फिर से खा पीकर पुनः छह मास के लिये सो जाता था।

विश्लेषणः– कोई भी कवि कितनी भी काव्य की उड़ान भरे और अपने काव्य के आकाश में पंछी की भाँति, समुद्र में मछली की भाँति अपनी कल्पनाओं को ले जाए और लेकिन अवैज्ञानिक बातों से परहेज करे इससे अज्ञान फैलता है और वास्तविकता खो जाती है जिससे पात्र के साथ अन्याय होता रहता है।

वाल्मीकि रामायण में कुम्भकरण के विषय में ऐसा विवरण नहीं मिलता है, ये सिर्फ तुलसी के काव्य की उपज है जो पूरी तरह से अवैज्ञानिक, अप्राकृतिक तथा ईश्वर के नियम विरुद्ध है।

वास्तविकता यह थी कि कुम्भकर्ण का भाई रावण लंका का राजा था। राज्य के कार्य में उसके भाई और परिवार के सदस्य भी सहयोगी थे। कुम्भकरण एक महान वैज्ञानिक था और उसकी अपनी अनुसंधानशाला हिमालय पर्वतों की उपत्यका में थी और वहाँ जाकर वह छह मास तक नहीं लौटता था। यह उसका नियम था कि छह महीने अपनी अनुसंधान कार्यशाला में कार्य करता था और छह महीने लंका में रहता था। क्योंकि वह लंका से प्रतिवर्ष छह मास हिमालय पर्वत की अनुसंधानशाला में व्यतीत करता था, इसलिये लंका में उसकी अनुपस्थिति रहती थी।

रामायण काव्य में तुलसी ने भक्तिवश राम को महाशक्ति और रावण एवं उसके परिवार को महामूर्ख दुष्ट दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इसके कारण वास्तविकता कहीं खो गई। इसी तर्ज पर कुम्भकर्ण की कार्यप्रणाली को यह लिखना कि छह माह का भोजन करके छह माह के लिए निद्रा की संज्ञा देना अनुचित है।

सूपर्णखाँ की नाक काटने की वास्तविकता

इस किस्से को सुनने के बाद पहला प्रश्न यह उठता है कि नाक ही क्यों काटी सीधे–सीधे गला भी तो काट सकते थे?

इस विषय में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं :–



पहला तर्क :– कि यदि कोई स्त्री किसी क्षत्रिय को शादी के लिए कहे तो वो मना नहीं कर सकते। बहुपत्नी रखना तो एक आम बात थी परन्तु इस प्रस्ताव से नाराज होकर लक्ष्मण ने उसकी नाक काट दी।

दूसरा तर्क :– ये कि नाक इसलिए काटी क्योंकि उसने सीता को मारने की कोशिश की थी। यदि ऐसा ही था तो जान बचाने के लिए उसकी हत्या करने का तो लक्ष्मण के पास पूरा–पूरा अधिकार था। फिर जान से क्यों नहीं मारा, केवल नाक काट कर ही क्यों छोड़ दिया ?

तीसरा तर्क :– एक कामाग्नि में जलती राक्षसी कामातुर महिला श्रीराम उनके भाई श्री लक्ष्मण जैसे आकर्षक व्यक्तित्व वाले पुरुष को जंगल में देखती है तो स्वाभाविक रूप से उन्हें पाने को लालायित हो उठती है। चूंकि वो एक असुर स्त्री है इसलिए सीधे जाकर प्रणय के लिए कहती है, जिसे श्रीराम अपने विवाहित और एक पत्नीव्रता होने का कारण मना कर देते हैं, तब वो लक्ष्मण के पीछे पड़ जाती है तो लक्ष्मण भी उसे वही कारण बता देते है। विवाहित तथा एक पत्नीव्रता जानने के बाद भी वो अपने संयम में नहीं रख पाती है और उसका प्रणय निवेदन के स्थान पर बलात् होने लगता है।

भाष्य ग्रंथों और उनके रूपांतरों में वर्णन मिलता ही है। जब वह लक्ष्मण के पीछे पड़ गयी अब ऐसी हालात में एक मर्यादित पुरुष को क्या करना चाहिए ? किसी भी उन्माद की स्थिति से मनुष्य को निकालने का सबसे असरदार तरीका होता है तत्क्षण उसे कोई चोट पहुँचाना।

इसलिए एक कामवासना से पीड़ित उन्मादी स्थिति में पहुँची हुई सूपर्णखाँ की लक्ष्मण ने केवल चोट पहुँचाने के उद्देश्य से उसकी नाक काट दी।

कृपया अपने विवेक का प्रयोग करें ! भगवान् राम को मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहते हैं। लक्ष्मण उनके साथ वन में थे और भाई के आदेश का पालन करना उनका धर्म था। किसी महिला पर हाथ उठाना, उसको चोट पहुँचाना उनकी मर्यादा के विरुद्ध है।

मतलब साफ है यह नाक काटना यह एक अलंकार के रूप में प्रयोग किया गया है। सूपर्णखाँ एक राज घराने से सम्बन्ध रखती थी।

उसने जो भी प्रस्ताव रखा उसके पीछे उसकी मंशा और अहंकार ये होगा कि कोई उसको मना नहीं कर सकता है। लेकिन उसका प्रस्ताव पहले राम ने और फिर इसके बाद लक्ष्मण ने जब ठुकरा दिया तो उसके सम्मान को अति ठेस पहुँची, हो सकता है कि कुछ समय के लिए वह मित्र रिश्तेदारों के सम्मुख मुँह दिखने के लायक भी नहीं रही हो। जिसकी उसको उम्मीद बिल्कुल नहीं थी। इसलिए ये अलंकार प्रयोग हुआ कि लक्ष्मण ने सूपर्णखाँ की नाक काट दी।

मेघनाद

मेघनाथ अथवा इंद्रजीत रावण के पुत्र का नाम है। मेघनाथ पितृभक्त पुत्र था, इसका नाम रामायण में इसलिए लिया जाता है क्योंकि इसने राम–रावण युद्ध में अहम् भूमिका निभाई थी। इसका नाम उन योद्धाओं में लिया जाता है। जो कि ब्रह्मास्त्र, वैष्णवास्त्र तथा पाशुपतास्त्र के धारक कहे जाते हैं। मेघनाद ब्रह्मविद्या का विशारद था, उसका पांडित्य रावण से भी कहीं बढ़कर था। विस्फोटक व विंध्वसक अस्त्रों का तो इस युद्ध में खुलकर प्रयोग हुआ था जिसमें ब्रह्मास्त्र सबसे खतरनाक था।

मेघनाथ की वैधशाला में शस्त्रयुक्त स्यंदन (राकेट) का भी निर्माण होता था। मेघनाथ ने युद्ध में जब इस स्यंदन को छोड़ा तो यह अंतरिक्ष की ओर बहुत ही तेज गति से बढ़ा। इन्द्र और वरूण स्यंदन शक्ति से परिचित थे अतः उन्होंने मतालि को संकेत कर दूसरा शक्तिशाली स्यंदन छुड़ाया और मेघनाथ के स्यंदन को आकाश में ही नष्ट कर दिया और इसके अवशेष को समुद्र में गिरा दिया।

लंका में यानों की व्यवस्था प्रहस्त के सुपुर्द थी तथा यानों में ईंधन की व्यवस्था प्रहस्त ही देखता था। लंका में सूरजमुखी पौधे के फूलों से तेल (पेट्रोल) निकाला जाता था (अमेरिका में वर्तमान में जेट्रोफा पौधे से पेट्रोल निकाला जाता है।) अब भारत में भी रतनजोत के पौधे से तेल बनाए जाने की प्रक्रिया में तेजी आई है। लंकावासी तेल शोधन में निरंतर लगे रहते थे।

लड़ाकू विमानों को नष्ट करने के लिए रावण के पास भस्मलोचन जैसा वैज्ञानिक साधन था जिसने एक विशाल दर्पण यंत्र का निर्माण किया था, इससे प्रकाशपुंज वायुयान पर छोड़ने से यान आकाश में ही नष्ट हो जाते थे। लंका से निष्कासित किये जाते वक्त विभीषण भी अपने साथ कुछ दर्पण यंत्र ले आया था। इन्हीं दर्पण यंत्रों में सुधार कर अग्निवेश ने इन यंत्रों को चौखटों पर कसा और इन यंत्रों से लंका के यानों की ओर प्रकाश पुंज फेंका जिससे लंका की यान शक्ति नष्ट होती चली गई, बाद में रावण ने अग्निवेश की इस शक्ति से निपटने के लिए सद्धासुर वैज्ञानिक को नियुक्त किया।

ब्रह्मास्त्र के प्रस्तुत परिणामों से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मास्त्र परमाणु बम ही था। राम द्वारा सेना के साथ लंका प्रस्थान के समय द्रुमकुल्य देश के सम्राट समुद्र ने रावण से मैत्री होने के कारण राम को अपने देश से मार्ग नहीं दिया तो राम ने अगस्त्य के

अमोध अस्त्र (ब्रह्मास्त्र) को छोड़ दिया, जिससे पूरा द्रुमकुल्य (मरूकान्तार) देश ही नष्ट हो गया। यह अमोध अस्त्र हाइड्रोजन बम अथवा एटम बम ही था। मेघनाथ की वैधशाला में शीशे (लेड) की भट्टियाँ थीं जिनमें कोयला और विद्युत धारा प्रवाहित की जाती थी। इन्हीं भट्टियों में परमाणु अस्त्र बनते थे और नाभिकीय विखण्डन की प्रक्रिया की जाती थी।

विश्वामित्र

विश्वामित्र गाधि नामक राजा के पुत्र थे, वे जन्म से क्षत्रिय थे। वह प्रजाप्रिय अति बलशाली राजा कौशिक थे एवं अपने समय के वीर और ख्यातिप्राप्त राजाओं में गिने जाते थे। उन्होंने लम्बे समय तक सफलता पूर्वक राज्य किया।



लम्बे समय तक राज्य करने के बाद वे पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकले। पुरुषार्थ, सच्ची लगन, उद्यम और तप की गरिमा के रूप में महर्षि विश्वामित्र के समान शायद ही कोई हो।

परन्तु उन्होंने अपनी हठ पुरुषार्थ एवं तपस्या के बल से क्षत्रियत्व से ब्रह्मत्व प्राप्त किया और राजर्षि से महर्षि बन गए।

यहाँ पर सर्ग सत्तावन का अर्थ सत्तावन वर्ष की आयु से है। विश्वामित्र ने कुछ धार्मिक विषयों पर वशिष्ठ मुनि से वार्ता की तो उन्हें पता चला कि उनका ज्ञान अधूरा है। इसलिए विश्वामित्र दक्षिण दिशा की ओर राजपाठ छोडकर अध्ययन के लिए चले गये और वर्षों तक वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया। जिसको यहाँ पर अलंकार की भाषा में हजारों वर्षों तक की तपस्या के रूप में चित्रित किया गया है।

क्योंकि विश्वामित्र एक राजा थे इसलिए उनको सम्मान पूर्वक राज्यश्री की उपाधि से सम्मानित किया गया। बाकी ये सब कपोल कल्पित है कि त्रिशंकु को इंद्र ने स्वर्ग से नीचे धकेल दिया लेकिन विश्वामित्र ने बीच में ही रोक दिया ये गप्प का बड़ा गप्प है, ये पाठक समझ गए होंगे।

गप्प कथा:- नकली रामायण में व्यर्थ की गप्प कथा

सर्ग इकसठ में शुनःशेप की कथा वर्णित है। विश्वामित्र जी दक्षिण में अपने तपस्या में अनेक विघ्न देख पुष्कर आ गए, उसी समय अयोध्या के महाराज अम्बरीष यज्ञ करने की तैयारी में थे। उनके यज्ञ का पशु इन्द्र चुरा ले गए। राजा अम्बरीष पशु के बदले पैसे से पशु खोजते हुए ऋचिक मुनि के पास गए और उनके तीन पुत्रों में से एक छोटे पुत्र शुनःशेप को लेकर आ गए।

सर्ग 62 श्लोक 2 में लिखा है कि शुनःशेप पुष्कर में तपस्या कर रहे अपने मामा से मिलकर अपनी रक्षा के लिए निवेदन किया। विश्वामित्र जी ने अपने चारों पुत्रों को यज्ञ का पशु बन जाने एवं शुनःशेप को बचा लेने की बात कही परन्तु उन चारों पुत्र ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। मुनि विश्वामित्र ने कुपित होकर अपने उन चारों पुत्रों को भी वशिष्ठ के सौ पुत्रों के समान श्राप देकर मार दिया और उन्हीं के तरह कुत्ते का माँस खाने वाले मुष्टिक जाति में जन्म लेने का श्राप दिया, साथ ही शुनःशेप को इन्द्र और विष्णु को प्रसन्न करने का मंत्र सिखाया, जिसको जपने से वह यज्ञ पशु बनने पर भी मरने से बच गया। इसके पश्चात पुनः एक हजार वर्षों तक मुनि विश्वामित्र जी घोर तपस्या करते रहे। सर्ग तिरसठ में लिखा है कि एक हजार वर्षों के पश्चात् पुनः ब्रह्मा जी आकर उन्हें ऋषि की पदवी देकर चले गए, उससे भी विश्वामित्र जी को प्रसन्नता नहीं हुई और पुनः तपस्या करने लगे।

इस बार तपस्या के फल के रूप में एक मेनका नामक अप्सरा से उनका साठ–गांठ हो गया और अपने पत्नी के साथ रहते हुए भी वे उस मेनका को कामवासना से वशीभूत होकर अपने आश्रम में रख लिया। श्लोक 11–12 में लिखा है कि दस वर्षों के पश्चात् उन्हें पता चला कि मैं काम, मोह से ऐसा अक्रांत हो गया कि मेरे दस वर्ष एक दिन रात कि तरह बीत गए, यह मेरी तपस्या में बहुत बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया। वहाँ से कौशिकी तट पर जाकर उन्होंने पुनः एक हजार वर्षों तक तपस्या की, जिस कारण देवताओं को विश्वामित्र से भय लगने लगा। पुनः ब्रह्मा जी आए और उन्हें महर्षि का पद दिया साथ ही कहा कि तुम अभी जितेंद्रिय नहीं हुए हो इस कारण और तपस्या करो। इसके बाद पुनः उन्होंने एक हजार वर्षों तक तपस्या की।

विश्लेषण

पाठक गण! क्या व्यर्थ की कथा है? राज श्री विश्वामित्र कौन थे? इसका इनको कुछ नहीं मालूम ये एक पराक्रमी राजा थे, जिन्होंने राज पाठ छोड़कर वेद आदि का अध्ययन किया और क्षत्रिय वर्ण छोड़कर ब्राह्मण वर्ण धारण किया। लेकिन गप्प कथाकारों ने उनको भी नहीं छोड़ा क्या इतने हजारों वर्षों के तपस्या के पश्चात् भी विश्वामित्र जी कामी और क्रोधी ही रह गए तो वह तपस्या किस काम की?

किसी विद्वान के लिए ऐसी कल्पना करना भी गलत है, यदि स्वयं पर कोई ऐसा कथानक लगाए तो मालूम होगा। इसलिए इन गप्प कथाओं पर ध्यान न दें।

रामायण कथा में गिलहरी और उसके शरीर पर तीन रेखाएं होने की बात

प्रचलित कथाः– जब लंका पहुँचने के लिए सेतु का निर्माण किया जा रहा था तो पूरी वानर सेना पत्थरों को उठा–उठा कर ला रही थी तथा नल और नील इन पत्थरों पर राम का नाम लिखते जा रहे थे। जिसके बाद उन पत्थरों को पानी में फेंकते तो वो तैरने



लगते थे। ऐसे में एक गिलहरी भी छोटे–छोटे पत्थर उठाकर ला रही थी तो जब राम ने उसे देखा तो वो प्रसन्न हो गए और उसकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरा जिससे उनकी उंगलियाँ उसकी पीठ पर छप गयीं जो गिलहरी की पीठ पर काली–काली धारियाँ दिखती हैं, वो श्रीराम की उँगलियों के निशान हैं।

पड़ताल:–रामचरितमानस के अनुसार राम सेतु का निर्माण नल एवं नील दोनों ने किया था क्योंकि उन्हें पत्थरों की परख थी और पुल बनाने की कला का ज्ञान था। बाकी सब कपोल कल्पना है कि उनको श्राप मिला था, कि उनके हाथ से छुई वस्तु पानी में नहीं डूबेगी। नल एवं नील असाधारण शिल्पी थे इसी कारण रामसेतु को नल सेतु भी कहा जाता है उन्होनें अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य किया।

यहाँ पुल बनाने में गिलहरी की सामर्थ्य नगण्य में हैं, उसकी क्षमता का आकलन भी संभव नहीं है। परंतु उसकी लगन क्रियाशीलता और उसके सहयोग करने के भाव अनमोल हैं।

एक कहावत है बूँद–बूँद से घड़ा भरना, एक चींटी भी हाथी को मार सकती है। ठीक इसी प्रकार का अलंकार यहाँ जोड़ा गया है कि एक गिलहरी ने भी समुद्र में पुल बनाने में सहयोग किया। ये एक अच्छा सन्देश है कि टीम वर्क से सभी कार्य करें। जैसा कि उनकी आँखों को देखकर पता चलता है कि इनकी दृष्टि बहुत अच्छी होती है। जो कि वृक्षों पर रहने वाली प्रजातियों के लिए बहुत जरूरी है, चढ़ने और मजबूत पकड़ के लिए इनके पंजे भी बहुत उपयोगी होते हैं।

गिलहरी उष्ण कटिबंधीय वर्षा युक्त वनों से लेकर अर्ध शुष्क रेगिस्तान तक में रह सकती है और यह सिर्फ उच्च ध्रुवीय क्षेत्रों व अति शुष्क स्थानों पर रहने से बचती है। वे मुख्य रूप से शाकाहारी होती हैं और बादाम और बीजों पर जीवित रहती हैं। परन्तु याद रहे कि समुद्र के किनारे या आसपास गिलहरी नहीं मिलती है।

इस प्रकरण में एक अन्य बात ये कही जाती है कि राम ने गिलहरी की पीठ पर हाथ फेरा तो तीन धारियाँ बन गयी जो पूरी दुनियाँ में पैदा होने वाली सभी गिलहरियों के पीठ पर आज तक दिखाई देती हैं। ये पूरी तरह निराधार, प्रकृति और विज्ञान विरुद्ध है। यदि राम इतने मायावी थे तो पुल बनाने के लिए इतना कष्ट क्यों किया ? इन बातों में बहुत बड़ा विरोधाभास है, इनका मतलब ये है कि राम ने इस गिलहरी के माध्यम से बाकी गिलहरियों का डीएनए बदल दिया? पशु पक्षियों के शरीर पर धारी होना प्रकृति

की देन है। जैसे चीता के शरीर पर धारियाँ होती है और इन्ही धारियों के द्धारा एक दूसरे की पहचान की जा सकती है। रामायण काव्य के कवि ने जब ये कल्पना लिखी होगी तो उसके मष्तिष्क में ये आया होगा कि उस समय राम भी पुल बनाने में व्यस्त थे और उनके हाथ मिट्टी, बालू में सने होंगे तो कवि की कल्पना की उड़ान ने राम द्वारा गिलहरी के ऊपर हाथ फिराते समय उनकी तीन अंगुलियों के निशान भी बना दिये। वाल्मीकि रामायण में इस तरह की कथा का कोई विवरण नहीं मिलता। गिलहरी का योगदान था ये एक मात्र उदाहरण हो सकता है कि किसी बड़े लक्ष्य में अपनी सामर्थ्यनुसार सहयोग देना।

अध्याय-6

लक्ष्मण

लक्ष्मण और उनका चरित्र



लक्ष्मण, हिन्दू महाकाव्य रामायण के एक प्रमुख पात्र हैं। वे भगवान राम के छोटे भाई और राजा दशरथ तथा रानी सुमित्रा के पुत्र थे। उन्होंने राज पथ के भोग का आनंद त्याग स्वयं ही राम के साथ वन में जाने का निर्णय लिया और राम –रावण युद्ध में उनकी प्रमुख भूमिका रही। कहते है की लक्ष्मण हमेशा राम की कुटिया के बाहर रहकर उनकी सुरक्षा की। एक प्रसंग आता है कि जब रावण ने सीता का अपहरण करके विमान में लेकर गया तो सीता ने रस्ते में अपने कुछ आभूषण गिरा दिए ताकि अपहरण स्थल तक पहुंचा जा सके। लक्ष्मण उनके गले के आभूषण नहीं पहचान पाया अपितु उनके पैरो के आभूषण को पहचान लिया ,क्योकि लक्ष्मण माता सीता के चरण स्पर्श रोजाना करते थे। लक्ष्मण, के विषय में बहुत ज्यादा रामायण में जानकारी उपलब्ध नहीं है ,लेकिन जो प्रसंग मिलते है ,उन पर चर्चा करना जरूरी है।

रामायण में वर्णित लक्ष्मण रेखा की सच्चाई

कथा:– जब रामचंद्र जी हिरण के शिकार के लिए गए थे तो लक्ष्मण और सीता ने उनकी आवाज सुनकर अंदाजा लगाया कि राम का जीवन खतरे में है तो सीता जी ने

लक्ष्मण को तुरंत वहाँ जाकर राम की रक्षा करने के लिए जाने को कहा परंतु लक्ष्मण नहीं जाना चाहते थे। इसलिए सीता ने क्रोध में आकर लक्ष्मण को कुछ कहा रामायण में दिए गए वर्णन के अनुसार दोनों मे कुछ समय क्रोध से वार्तालाप हुआ और बिना इच्छा के लक्ष्मण उधर चल दिए। लेकिन जाने के समय सीता की रक्षा के लिए कुटिया के आगे एक लकीर खींच गए ताकि सीता तक कोई न पहुँच सके। परंतु लक्ष्मण के जाते ही रावण भेष (रूप) बदल कर सीता का अपहरण कर ले गया। – इस लकीर को लक्ष्मण रेखा कहा गया है।

विश्लेषणः– ये बात कुछ समझ में नहीं आयी कि क्या कोई रेखा वाकई लक्ष्मण जी ने खींची थी, तो फिर सीता माता का अपहरण कैसे हो गया? इस रेखा के लिए किस धातु, केमिकल आदि का प्रयोग हुआ और जंगल में रहने वाले बनवास काट रहे इस परिवार के पास कहाँ से आया?

प्रकृति के विरुद्ध कोई चमत्कार या कार्य विश्वास करने योग्य नही है। जादूगर भी अपनी कला के पीछे अभ्यास और विज्ञान का प्रयोग बताते हैं। इसलिए यदि ये माना जाए कि लक्ष्मण मायावी थे तो उनको रावण के बिछाए जाल का पता क्यों नहीं लगा ?

आइये एक नजर वाल्मीकि रामायण पर डालते हैं। लेकिन हमें ये भी ध्यान रखना चाहिए कि रामायण विषय पर प्रमाणिकता केवल वाल्मीकि ऋषि द्वारा रचित वाल्मीकि रामायण की ही है।

1. यहाँ तर्क की दृष्टि से देखा जाये तो लक्ष्मण रेखा से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता क्योंकि यदि एक लक्ष्मण रेखा से ही माता सीता की सुरक्षा हो सकती थी तो प्रभु राम भाई लक्ष्मण को साथ क्यों नहीं ले गए?
2. ऋषि वाल्मीकि लिखते हैं कि जब श्रीराम मृग रूप में मारीच को पकड़ने जाते हैं और मृग (मारीच) श्रीलक्ष्मण को श्रीराम की आवाज में पुकारता है तब माता सीता द्वारा मार्मिक वचन कहे जाने पर श्रीलक्ष्मण माता सीता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं।

रक्षन्तुत्वामइपुनरागतः श्लोक-34

अरण्यकाण्ड पञ्चचत्वाविंशः

अर्थात् :– विशाललोचने! वन के सम्पूर्ण देवता आपकी रक्षा करें क्योंकि इस समय मेरे सामने बड़े भयंकर अपशकुन प्रकट हो रहे हैं, उन्होंने मुझे संशय में डाल दिया है। क्या मैं श्रीरामचंद्र जी के साथ लौटकर पुनः आपको कुशल देख सकूँगा ? माता सीता लक्ष्मण जी के ऐसे वचन सुनकर व्यथित हो जाती हैं और प्रतिज्ञा करती हैं कि श्रीराम से बिछड़ जाने पर वे नदी में डूबकर गले में फाँसी लगाकर पर्वत–शिखर से कूदकर या तीव्र विषपान कर अग्नि में प्रवेश कर प्राणान्त कर लेंगी लेकिन पर–पुरुष का स्पर्श नहीं

करेंगी। श्लोक–36–37 उपरोक्त माता सीता की प्रतिज्ञा सुन व् उन्हें आर्त होकर रोती देख लक्ष्मण जी ने मन ही मन उन्हें सांत्वना दी और झुककर प्रणाम कर बारम्बार उन्हें देखते श्रीराम चंद्र जी के पास चल दिए। श्लोक–39–40 से स्पष्ट है। इस पूरे प्रकरण में कहीं भी लक्ष्मण जी ने कोई रेखा नहीं खींची।

3.श्रीराम ने लक्ष्मण जी को निर्देश दिया प्रदक्षिणे नाती

शङ्कितः श्लोक–51 अरण्यकाण्ड त्रिचत्वारिनशः –लक्ष्मण

बुद्धिमान गिद्धराज जटायु बड़े ही बलवान और सामर्थ्यशाली हैं। उनके साथ ही यहाँ सदा सावधान रहना मिथिलेश कुमारी को अपने संरक्षण में लेकर प्रतिक्षण सब दिशाओं में रहने वाले राक्षसों की ओर चौकन्ने रहना। यहाँ भी श्रीराम लक्ष्मण जी को यह निर्देश नहीं देते कि यदि किसी परिस्थिति में तुम सीता की रक्षा में अक्षम हो जाओ तो रेखा खींचकर सीता की सुरक्षा सुनिश्चित कर देना।

4. यदि कोई रेखा खींचकर माता सीता की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती थी तो लक्षमण माता सीता को मार्मिक वचन बोलने हेतु विवश ही क्यों करते? वे श्रीराम पर संकट आया देख या सुन रेखा खींचकर तुरंत श्रीराम के समीप चले जाते। अतः लक्ष्मण रेखा का कोई औचित्य नहीं लगता।

5. श्री वेद व्यासजी द्वारा रचित अध्यात्म रामायण में भी सीता हरण प्रसंग के अंतर्गत लक्ष्मण जी द्वारा किसी रेखा के खींचे जाने का कोई वर्णन नहीं है।

6. अरण्य–काण्ड में सीता हरण के प्रसंग में सीताजी द्वारा लक्ष्मणजी को मर्म वचन कहे जाने पर लक्ष्मण जी उन्हें वन और दिशाओं आदि को सौपकर वहाँ से चले जाते हैं। मरम वचन जब सीता बोला हरि प्रेरित लछिमन मन डोला! बन दिसि देव सौपी सब काहू, चले जहाँ रावण ससि राहु! पृष्ठ–५८७ अरण्य काण्ड, लक्ष्मण जी द्वारा कोई रेखा खींचे जाने और उसे न लांघने का कोई निर्देश यहाँ उल्लिखित नहीं हैं।

7. जब लक्ष्मण इतने बड़े विद्वान है कि एक रेखा सीता माता की रक्षा के लिए खींच सकते हैं तो सीता माता भी अपनी रक्षा ऐसा कोई दूसरा उपक्रम कर सकती थीं। इससे प्रतीत होता है कि लक्ष्मण रेखा की बात काल्पनिक है। रामायण के अनुसार धनुष इतना बड़ा था कि वह ८ पहिये वाली लोहे की पेटी में रखा था और राम–लक्ष्मण को देखने के लिए ५००० वीर पुरुष धनुष को बाहर लाये जबकि सीता रोजाना हाथ से उठाकर एक जगह से दूसरी जगह रख देती थी और रावण इस धनुष को हिला भी नहीं पाया। यदि ऐसा है तो रावण कैसे सीता का अपहरण करके ले गया ?

8. लक्ष्मण रेखा का प्रसंग कितना प्रसिद्ध है ये हम सभी जानते हैं। किन्तु इसका वर्णन केवल रामचरित मानस में है जबकि वाल्मीकि रामायण में ऐसा कोई वर्णन नहीं है।

लक्ष्मण रेखा का वास्तविक अर्थ : लक्ष्मण रेखा का अर्थ कोई पंचवटी में कुटिया के द्वार पर खींची गयी रेखा नहीं बल्कि प्रत्येक नर–नारी के लिए ऋषियों द्वारा बनाये नियम और निर्धारित आदर्श लक्षणों से प्रतीत होता है। यह नारी–मात्र के लिए ही नहीं वरन सम्पूर्ण मानव जाति के लिए आवश्यक है कि विपत्ति–काल में वह धैर्य बनाये रखे किन्तु माता सीता श्रीराम के प्रति अगाध प्रेम के कारण मारीच द्वारा बनायी गयी श्रीराम की आवाज से भ्रमित हो गयी। माता सीता ने न केवल श्रीराम द्वारा लक्ष्मण जी को दी गयी आज्ञा के उल्लंघन हेतु लक्ष्मण को विवश किया बल्कि पुत्र भाव से माता सीता की रक्षा कर रहे लक्ष्मण जी को मर्म वचन भी बोले। माता सीता ने उस क्षण अपने स्वाभाविक व् शास्त्र सम्मत लक्षणों धैर्य, विनम्रता के विपरीत देवर श्री लक्ष्मण को जो क्रोध में मार्मिक वचन कहे उसे ही माता सीता द्वारा सुलक्षण की रेखा का उल्लंघन कहा जाये तो उचित होगा।

माता सीता स्वयं स्वीकार करती हैं –

हाँ लक्ष्मण ! तुम्हार नहीं दोसा, सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा! पृष्ठ–५८८ अरण्यकाण्ड
(हे! लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है, मैंने क्रोध किया उसका फल पाया। श्री जानकी जी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं।)

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि लक्ष्मण रेखा को सीता–हरण के सन्दर्भ में उल्लिखित कर स्त्री के मर्यादित आचरण मात्र से न जोड़कर देखा जाये। यह समस्त मानव–जाति के लिए निर्धारित सुलक्षणों की एक सीमा है। जिसको पार करने पर मानव–मात्र को दण्डित होना पड़ता है। यह एक ऐतिहासिक गलती लक्ष्मण और सीता के बीच हुई जिसने महायुद्ध को जन्म दिया। इसी आलोक में ये कहावत शुरू हुई कि कृपया लक्ष्मण रेखा पार न करें अन्यथा हानि हो सकती है।

लक्ष्मण को किसने मूर्छित किया?

गोस्वामी तुलसीदास रचित श्री रामचरित मानस के अनुसार युद्ध भूमि में लक्ष्मण रावण पुत्र मेघनाद द्वारा छोड़ी गई शक्ति से मूर्छित हुए लेकिन आदि कवि राम रावण के समकालीन महर्षि वाल्मीकि के युद्ध कांड में वर्णित वर्णन के अनुसार लक्ष्मण को रावण ने मूर्छित किया था। वाल्मीकि रामायण में 1 नहीं 6 से अधिक श्लोक इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि करते हैं। जो इस प्रकार है। जब विभीषण की सहायता ३ दिन ३रात चले द्वंद युद्ध में लक्ष्मण ने मेघनाद का वध किया जिसका समय स्थान सहित आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण में विस्तृत वर्णन किया है । अपने परम प्रतापी प्रिय पुत्र की मृत्यु

की सूचना लंका में रावण को अपने मंत्रियों से प्राप्त हुई रावण क्रोध में लाल होकर युद्ध भूमि मे आता है विभीषण को देखते ही उस पर बर्छी से प्रहार करता है। परम प्रतापी लक्ष्मण अपने 3 बाणों से उस बर्छी को हवा में ही काट देते हैं। तब रावण क्रुद्ध होकर लक्ष्मण से बोलता है।

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेवं विभीषणः।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्तवीयं विनिपतात्यते॥

एषा ते हृदय भित्वा शक्ति लोर्हतलक्षण।
मद्बबाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति॥

इत्युक्तवा विपुला शक्ति कालेनापि दुरासाम्।
मयेन मायाविहिताममोघा शत्रुघातनिम्॥

(वाल्मीकि रामायण, युद्ध कांड सर्गः 55)

हे सराहनीय बलशाली लक्ष्मण! तूने विभिषण को तो बचा लिया। अतः मैं इस शक्ति को अब तेरे ऊपर छोड़ता हूँ। मेरे हाथ से छूटी हुई यह शक्ति तेरे हृदय को चीर कर तेरे प्राण निकाल कर ले जाएगी। ऐसा कहकर उस शक्ति को जो मयदानव की बनाई हुई थी जो कभी व्यर्थ ना जाने वाली और काल के लिए भी दुर्धर्ष थी। जो शत्रु का विनाश करने वाली और अपनी चमक से अग्नि की भाँति प्रदीप्त हो रही थी। वह शक्ति रावण ने क्रोध में भरकर लक्ष्मण को लक्ष्य करके फेंकी और बहुत जोर से गर्जना की। भयंकर गर्जना करती हुई वह शक्ति बड़े जोर से रण क्षेत्र में डटे हुए लक्ष्मण को लगी। महावेगशाली वह शक्ति लक्ष्मण की छाती में लगी जिससे उनका हृदय फट गया और वह पृथ्वी पर मूर्छित होकर गिर पड़े।

यह सब घटनाक्रम देखकर श्री राम आँखों में आंसू भरे हुए सोचते रहे कि इस समय क्या किया जाए। फिर वह अग्नि की भाँति क्रोध से भड़क उठे और युद्ध करने के लिए उत्साहित हुए श्री राम ने सोचा कि यह समय विषाद करने का नहीं है। ऐसा सोचकर रावण के वध का निश्चय करके प्रचंड युद्ध करने में प्रवृत्त हुए श्री राम ने वानरों से कहा प्रतिज्ञा पूर्वक।

अस्मिन् मुहूर्ते न चिरात् सत्यं प्रतिश्रणोमी वः
अरावणमरामं वा जगद् द्रक्षयथ वानराः॥

(युद्ध कांड वाल्मीकि रामायण्त 55वा सर्ग)

हे वानरो ! मैं तुम लोगों के समक्ष प्रतिज्ञा पूर्वक सत्य कहता हूँ कि तुम लोग शीघ्र ही इस संसार को रावण या राम से रहित देखोगे।

राम रावण में बहुत भीषण संग्राम होता है। आदि कवि ने बहुत रोचक ओजपूर्ण

इसका वर्णन किया है। आदि कवि ने लिखा है रावण रणभूमि छोड़कर पराजित होकर भाग खड़ा हुआ। राम के पराक्रम के सम्मुख नहीं टिक पाया। राम ने स्वर्ण जड़ित ७ बाणों से उसे घायल किया।

वाल्मीकि रामायण के श्लोकों के अवलोकन से हमें भली–भाँति बोध हो जाता है कि लक्ष्मण को मेघनाद ने नहीं लंकापति रावण ने मूर्छित किया था। इतिहास के विषय में समकालीन व्यक्ति की सम्मति निर्णायक व प्रमाणित मानी जाती है। वाल्मीकि रचित आदि महाकाव्य रामायण मूल महाकाव्य इतिहास ग्रंथ है इस ग्रंथ की छाया लेकर समय–समय पर अनेक भाषाओं में क्षेत्रीय रामायण लिखी गई है भारत ही नहीं भारत के बाहर अन्य राजनीतिक भूभागों पर भी लेकिन सब के मूल में आदि कवि वाल्मीकि रामायण ही है। ऐसे एक नहीं अनेक प्रसंग है जो रामचरितमानस में वर्णित है लेकिन मूल वाल्मीकि रामायण जो संस्कृत देववाणी में लिखी गई है उनमें उनका कोई उल्लेख नहीं है इतना ही नहीं तुलसी के मानस में वर्णित अनेक प्रसंग घटनाएँ तो युक्ति प्रमाण तर्क विज्ञान सृष्टि नियम की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

इसी प्रसंग पर जब हम वाल्मीकि रामायण के ५५ से लेकर ५६ सर्ग के श्लोकों का अवलोकन करते हैं जहाँ लक्ष्मण की चिकित्सा की जाती है। हनुमान जी हिमालय पर्वत से संजीवनी बूटी लाते हैं। मूर्छित लक्ष्मण की चिकित्सा करने वाले वैद्य जिनका नाम सुषेण था, को तुलसी ने लंका का राज वैद्य बताया है। जबकि आदि कवि वाल्मीकि के द्वारा वर्णित वर्णन के अनुसार सुषेन वानरों के सेनापति थे युद्ध विद्या में निपुण होने के साथ–साथ आयुर्वेद में भी पारंगत थे। वानरों के चिकित्सा प्रकोष्ठ के अध्यक्ष थे। सुषेन वैद्य के लिये वाल्मीकि रामायण में वानर युथपति से लेकर हरियूथपः जैसे विशेषणों का अनेक बार का प्रयोग किया गया है।

मूल वाल्मीकि रामायण से हमें यह बोध होता है रामायण कालीन चिकित्सा विज्ञान बहुत उन्नत था। वैद्य सुषेण ऐसा लेप घायल वानर पक्ष के योद्धाओं के शरीर पर लगाते थे जिससे लगाने के पश्चात बाणो की पैनी नोके अपने आप शरीर से बाहर निकल पड़ती थी। अवतार और चमत्कार के लिए वाल्मीकि रामायण में कोई स्थान नहीं है। आदि कवि वाल्मीकि की रामायण ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल, युक्ति, श्रद्धा, पवित्रता तथा वैदिक परिवार और समाज के मूल्यों को स्थापित करते हुए रघुकुल शिरोमणि राजाराम के जीवन संघर्ष को आम जनमानस के सम्मुख प्रस्तुत करती है। यदि आदि कवि वाल्मीकि आज जीवित होते तो वह सबसे पहला प्रश्नचिन्ह तुलसी पर ही लगाते। उनके अद्‌भुत परिश्रम, साहित्यिक कृति रचना, वाल्मीकि रामायण को, उसमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाक्रम प्रसंगों को तोड़ने मरोड़ने का अधिकार तुलसीदास को किसने दिया।

घटनाओं के यथार्थ वर्णन के स्थान पर कल्पनाशीलता का सहारा लेकर आर्ष लेखन पद्धति के विकृतिकरण का अधिकार तुलसीदास को किसने दिया?

हद तो तब हो जाती है जब महर्षि वाल्मीकि के नाम पर समता समरसता की गवाही देने वाले लोग उनकी जयंती अर्थात वाल्मीकि जयंती के अवसर पर आदि संस्कृत वाल्मीकि रामायण का पाठ वाचन ना कर रामचरितमानस का पाठ करते हैं। कितना अन्याय उस महर्षि के साथ हम करते हैं। धार्मिकता, सांस्कृतिकता का सहारा लेकर।

जब हमारे पास आदि कवि वाल्मीकि रचित रामायण महाकाव्य है तो क्या हमें शोभा देता है उस महाकाव्य का आश्रय लेकर लिखे गए किसी ऐसे ग्रंथ को उसके स्थान पर सुशोभित करने का जो जिस ग्रंथ का लेखक मुगलकालीन था, ना राम रावण का समकालीन था, ना वाल्मीकि जैसा परम महर्षि था।

अध्याय-7

महर्षि वाल्मीकि



प्रचलित कथा

समय और चरित्र का भी कोई मेल नहीं है, ऐसी किवदंती है कि महर्षि वाल्मीकि अपने यौवनकाल में रत्नाकर नामक लुटेरे थे। एक दिन नारद जी से भेंट के दौरान उनके अंतर्मन की आँखें खुल गयीं और नारद जी के चरणों में गिर पड़े और तब से उन्होंने यह काम छोड़ दिया और राम–राम जप कर महर्षि पद प्राप्त किया। जप के दौरान उनके शरीर के चारों तरफ चीटियों ने अपनी बाम्बी बना दी थी। जिसकी वजह से उनका नाम वाल्मीकि पड़ गया।

वाल्मीकि के सम्बन्ध में सत्य का विश्लेषणः– प्राचीन पात्रों हेतु सर्वमान्य प्रमाणिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं होते हैं। अतएव साहित्यिक स्रोत विविध संदर्भो एवं किंवदंतियों के आधार पर आस्था रखनी होती है। अतएव वाल्मीकि के पूर्व जीवनकाल के लिए स्पष्ट प्रमाण नहीं दिए जा सकते।

वाल्मीकि नाम शरीर पर चीटियाँ आने से पड़ गया बिल्कुल बेहूदा और असत्य है। कोई व्यक्ति लगातार इस तरह की अवस्था में नहीं बैठ सकता उसको भोजन, स्नान, मूत्र आदि के लिए तो उठना ही पड़ता है। प्राचीन काल से अब तक ५ दैनिक यज्ञ बताये हैं, जिनका पालन पुरातनकाल से होता आया हैं। जिसमें प्रातः उठना, स्नान, यज्ञ आदि शामिल है, जो प्रत्येक व्यक्ति का साधक का नित्य कर्म हैं। इसलिए ये कथा विश्वास के योग्य नहीं हैं।

महर्षि वाल्मीकि विद्या और कला दोनों के सुयोग्य अधिकारी विद्वान थे। अमर ऐतिहासिक महाकाव्य वाल्मीकीय रामायण के अतिरिक्त भी उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना

की थी, वो विमान निर्माण कला के एक प्रमुख आचार्य थे। उन्हीं के शिष्य भरद्वाज ने यंत्रकला पर यंत्रसर्वस्व नामक एक ग्रंथ रचा था। इस ग्रंथ में 40 प्रकरण थे, इनमें से एक का नाम वैमानिक प्रकरण हैं। वैमानिक प्रकरण मूलतः 8 अध्याय 100 अधिकरण और 500 सूत्रों में रचा गया है। इस समय यह ग्रंथ बृहद् विमानशास्त्र के नाम से अधूरा उपलब्ध होता है। विमान निर्माण कला सम्बन्धी इस वैज्ञानिक तकनीकी ग्रंथ पर यति बोधानंद ने वृत्ति टीका लिखी है। वृत्तिकार बोधानंद ने अपनी इस महत्वपूर्ण टीका में वाल्मीकि द्वारा रचित बाल्मीकीय गणितम् नामक ग्रंथ के अनेक अंशों को कई स्थलों पर उद्धृत किया है। बाल्मीकीय गणितम् से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि मुनि को आकाश परिमंडल के रेखामार्ग मंडल, कक्ष्य शक्तिपथ और केंद्रमंडल आदि की निश्चित संख्या का ज्ञान था। जिनका उन्होंने इस गणित शास्त्र में सविस्तार उल्लेख किया है। (बृहद् विमान शास्त्र) वस्तुतः महर्षि वाल्मीकि 32 विद्याओं और विविध कलाओं के असाधारण ज्ञाता थे जो व्यक्ति अपने गुण कर्म के अनुरूप शास्त्र में वर्णित ब्राह्मकर्म, क्षत्रिय कर्म अथवा वैश्य कर्म को कुशलता पूर्वक धारण करने में समर्थ नहीं उसकी जीविका का निर्वहन कैसे हो ? इस प्रश्न के उत्तर में शास्त्र का कथन है कि ऐसा व्यक्ति यदि किसी के अधीन रहना नहीं चाहता तो वह अपने जीवन यापन के लिये कला पक्ष का विकास करे। इस प्रकार वह आत्मनिर्भर हो सकता है।

वाल्मीकि के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न उत्तरों का भी अवलोकन करते हैं।

प्रश्न1:– महर्षि वाल्मीकि जी के नाम पर एक कौम का नाम वाल्मीकि क्यों पड़ा ?

उत्तर:– वाल्मीकि नाम किसी कौम का नाम नहीं हैं, ये गाँधी की देन हैं। वाल्मीकि समाज ने महर्षि वाल्मीकि के नाम से वाल्मीकि कौम की कल्पना कर स्वयं को संदेहास्पद बना दिया है। वाल्मीकि कौम की कल्पना का अभिप्राय तो यह हुआ कि जो अशास्त्रीय वर्ण व्यवस्था मात्र जन्म पर आधारित मानने की महती भूल से भारत के चतुर्दिक् पतन का कारण बनी उसी जन्म पर आधारित कथित वर्णव्यवस्था को प्रकारांतर से स्वीकार कर लेना शास्त्र के अनुसार वर्ण, गुणकर्म के आधार पर माना गया है। कौम की कल्पना जन्ममात्र पर आधारित होती है। जब आप स्वयं ही कौम शब्द का प्रयोग करके अपने आप को जन्म पर आधारित करने लगे हैं। तब आप सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक समानता कैसे प्राप्त करेंगे ? फिर तो वही बात हो गई कि किसी वेदों के विद्वान ब्राह्मण के घर में जन्म लेने मात्र से उनके अनपढ़ बेटे को केवल इसलिये वेदों का विद्वान मान लिया जाये क्योंकि उसके पिता वैदिक विद्वान हैं।

कौम शब्द में निहित संकीर्णता को महर्षि वाल्मीकि के उदार विचारों के समतुल्य बैठाना उचित नहीं हैं। इस शब्द में निहित आसुरी विचार महर्षि के धर्मसम्मत शास्त्रीय विचारों से मेल नहीं खाते। इसीलिए यदि वाल्मीकि समाज स्वयं को महर्षि का सच्चा और श्रद्धावान अनुयायी मानता है तो उसे अपने आप को कौम मान लेने का राष्ट्रघाती

विचार त्यागना होगा। वैदिक वर्णव्यवस्था के अनुसार उसे ज्ञान द्वारा ब्राह्मण बनने का पूरा अधिकार है, यही महर्षि का उपदेश है।

प्रश्नः-2 महर्षि जी ने शिक्षा कहां प्राप्त की जबकि हरिजनों के लिये स्कूल के दरवाजे चार हजार साल बंद रहे ?

उत्तरः– आपका प्रश्न भ्रांतिकारक हैं, इसमें सबसे बड़ी भ्रांति है महर्षि वाल्मीकि को हरिजन समझ लेना और वह भी चार हजार वर्ष पूर्व का। प्राचीन भारत में शिक्षा गुरुकुलों में दी जाती थी, उस समय हरिजन शब्द का प्रयोग कहीं नहीं होता था, इस शब्द का प्रयोग गाँधी ने किया। प्राचीन काल की गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक भारतीय के लिये पढ़ना अनिवार्य था, यदि पाठशालाओं में जाकर कोई सीख न सके वह दूसरी बात थी। वस्तुतः किसी के लिये भी पाठशाला के द्वार बंद नहीं थे।

प्रश्नः-3 महर्षि वाल्मीकि जी ने रामायण में अपने लिये दो शब्द क्यों नहीं लिखे ? जबकि उन्हें समाज द्वारा चोर डाकू कहा गया है ?

उत्तरः– महर्षि वाल्मीकि ने बाल्मीकीय रामायण में अपने कुल का परिचय दिया है। आश्चर्य है कि उनके अनुयायी होते हुये भी आपने रामायण के उस विशेष स्थल का अध्ययन नहीं किया। उनका कुल और उनके कुल से शिक्षा प्राप्त विद्वान मनीषी वंदनीय हैं। वाल्मीकि मुनि को भ्रमवश चोर–डाकू कहा जाता है।

प्रश्न :-4 महर्षि वाल्मीकि जी ने श्रीराम के पुत्रों को शिक्षा दी। क्या एक भी अछूत शिक्षा के काबिल नहीं था ?

उत्तरः– निवेदन है कि महर्षि वाल्मीकि त्रेता युग में हुये थे। उस प्राचीन काल में अछूतपन की कल्पना भी नहीं थी। छूआछूत सम्बन्धी कल्पना मुस्लिम–अंग्रेजी गुलामी काल की देन है। अतः इस निराधार कल्पना को त्रेता युग में देखना कदापि उचित नहीं हैं। विशेषकर अंग्रेजों और उनके मानसपुत्रों ने अछूत प्रसंग को अतिरंजित रूप से उभारा था। इन मानसपुत्रों ने इसे सम्प्रदायिक वैमनस्य की राष्ट्रघाती सीमा तक उभार दिया। वामपंथी लेखक भी दशकों से इस घातक प्रसंग को उछाले जा रहे हैं।

प्रश्नः-5 महर्षि जी जब इतने अज्ञानी थे कि जब उन्हें राम–राम के दो शब्द भी याद नहीं रहे और वह मरा–मरा रटने लगे तो इतनी बड़ी रामायण उन्होंने कैसे लिख दी?

उत्तरः– महर्षि वाल्मीकि अज्ञानी नहीं थे क्योंकि अज्ञानी व्यक्ति किसी साधारण से काव्य की भी रचना नहीं कर सकता। रामायण जैसी अति श्रेष्ठ कृति की रचना करना तो बहुत दूर है। रामायण काव्य मात्र नहीं अपितु यह एक काव्यात्मक ऐतिहासिक ग्रंथ हैं जो अधर्म और अन्याय पर धर्म और न्याय की महत्वपूर्ण विजय का प्रतीक है। भारतवर्ष के प्राचीन मनीषियों के मत में किसी पूर्वघटित घटना विशेष को लेखनीबद्ध कर देना मात्र इतिहास नहीं है। किसी लेखनीबद्ध घटना में जबतक पुरुषार्थ चातुष्टय सम्बन्धी

दिशा निर्देश न हो तब तक वह इतिहास नहीं कहला सकती। अतः इतिहास की एक विशिष्ट परिभाषा है।

इतिहास पूर्ववर्ती सत्य घटनाओं की स्मृति पर आधारित होता है। दीर्घदर्शी वाल्मीकि की स्मृति जन्म–जन्मांतर तक का ज्ञान रखती थी। राम–राम के स्थान पर मरा–मरा रूप उल्टे मंत्र को जपना किसी अज्ञानी का नहीं अपितु महाज्ञानी का काम है। बाल्मीकीय रामायण का प्रारम्भ "तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्" शब्दों से होता है। जिस ग्रंथ का प्रारम्भ ही तप और स्वाध्याय (कर्म और विद्या) से होता हो उसका रचयिता कदापि अज्ञानी नहीं हो सकता।

क्या तुलसी की रामायण प्रामाणिक रामायण ग्रंथ हैं ?

तुलसी रामभक्त महाकवियों मे सर्वोत्तम थे जिन्होंने 16 वीं शताब्दी में रामायण महाकाव्य की रचना की इसी तरह सूरदास ने कृष्ण को काव्य में उतारा। कवि की श्रद्धा और कल्पना की उड़ान को कोई नहीं माप सकता जिसमें अतिशयोक्ति अलंकार, उपमा अलंकार, रूपक अलंकार का भारी प्रयोग किया हैं।

आजकल कई पुस्तकें रामायण के नाम से जानी जाती हैं।

1. वाल्मीकि रामायण
2. तुलसीदास जी की रामचरित मानस
3. वामपंथी लेखक परियार की रामायण।

इसमें से वाल्मीकि रामायण श्रीराम जी के समय में लिखी गई है। आजकल प्राप्त वाल्मीकि रामायण में 7 काण्ड (अध्याय) है जो कि अंतिम काण्ड उत्तर काण्ड है। तपस्वी शम्बूक का वध, लवकुश से युद्ध तथा गर्भवती माता सीता जी का त्याग दोनों इसी काण्ड में आते हैं। परंतु सच्चाई यह है कि महर्षि वाल्मीकि ने जो रामायण लिखी थी उसमें 6 काण्ड ही थे। सातवाँ उत्तर काण्ड बाद में (17वीं –18वीं शताब्दी में) मिलाया गया है।

प्रमाणः-1 वाल्मीकि रामायण की संस्कृत में 3 टीका मिलती हैं। उसमें से सबसे मुख्य तथा पुरानी टीका श्री गोविन्दराज जी की है। गोविन्दराज जी ने अपना व् अपने गुरु का परिचय बालकाण्ड में रामायण के आरम्भ में तथा युद्ध काण्ड के अंत में दिया है, बीच में कहीं पर भी अपना परिचय नहीं दिया है। यदि गोविन्दराज जी के सामने उत्तर काण्ड होता तो वह अपना परिचय युद्ध काण्ड में न देकर उत्तर काण्ड में देते। सन 1900 के आसपास तक जो भी गोविन्दराज की टीका सहित वाल्मीकि रामायण छपी है उनमें उत्तरकाण्ड की टीका नहीं है। परन्तु 1930 के संस्करण में गोविन्दराज की उत्तर काण्ड पर टीका मिलती है उसके उत्तर काण्ड पर जो टीका दी गई है वह पिछले 6

काण्डों की टीका से बिल्कुल अलग है और उत्तर काण्ड को रामायण का हिस्सा दिखाने के लिए बनाई है।

प्रमाणः-2 क्षेत्रीय भाषाओं में मिलने वाली रामायण और उत्तर भारत में वाल्मीकि रामायण को आधार बनाकर कई प्रादेशिक भाषाओं में रामायण लिखी गई है। जैसे कम्ब रामायण (तमिल में), रंगनाथ तेलुगु (तेलुगु में), तोरवे रामायण (कन्नड़ में) तथा तुलसीदास जी की रामचरित मानस (अवधी में) अब हम क्रम से इन पर विचार करते हैं।

1. **कम्ब रामायणः**— इसका रचना काल लगभग बारहवीं शताब्दी का है। संस्कृत से भिन्न उपलब्ध भाषाओं में यह सबसे पुरानी रामायण है, इसके लेखक महाकवि कम्बन हैं। इसकी मूल भाषा तमिल है अब तक इसके हिन्दी में (पहला अनुवाद 1962 में बिहार राजभाषा परिषद्) कई अनुवाद हो चुके हैं। इसमें भी बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक 6 ही काण्ड हैं। यह भी भगवान् श्रीराम जी के राज्य अभिषेक व् श्रीराम जी द्वारा दरबार में सभी के लिए प्रशंसा वचन के साथ पूरी होती हैं। यह बहुत अधिक वाल्मीकि रामायण से मिलती है। यदि महाकवि कम्बन जी के सामने वाल्मीकि रामायण में उत्तर काण्ड होता तो वह इसका वर्णन जरुर करते परन्तु उनके सामने जो वाल्मीकि रामायण उपलब्ध थी उसमें 6 काण्ड ही थे।

2- **रंगनाथ रामायणः**— इसका रचना काल लगभग 1380 इस्वी हैं, इसकी भाषा तेलुगु है। परन्तु अब हिंदी में अनुवाद (1961 में बिहार राजभाषा परिषद द्वारा) चुका है। यह रामायण श्रीराम जी के राज्य अभिषेक व् दरबार के दृश्य के साथ पूरी हो जाती हैं। इसमें बालकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक 6 काण्ड हैं। यदि इसके रचियता के सामने उपलब्ध वाल्मीकि रामायण में उत्तर काण्ड होता तो वह अवश्य ही उसका उल्लेख करते परन्तु उनके सामने जो वाल्मीकि रामायण उपलब्ध थी उसमे 6 काण्ड ही थे।

3. **तोरवे रामायणः**— इसका रचना काल लगभग 1500 इस्वी हैं। इसकी मूल भाषा कन्नड़ है परन्तु अब इसका हिंदी में अनुवाद चुका है, इसके लेखक तोरवे नरहरी जी हैं, यह रामायण श्रीराम जी के राज्यभिषेक, सुग्रीव आदि को विदा करना, रामराज्य में सुख—शान्ति, दरबार के दृश्य तथा रामायण पढने के लाभ के वर्णन के साथ पूरी हो जाती है। इसमें बालकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक 6 काण्ड हैं। यदि इसके रचियता के सामने उपलब्ध वाल्मीकि रामायण में उत्तर काण्ड होता तो वह अवश्य ही उसका उल्लेख करते परन्तु उनके सामने जो वाल्मीकि रामायण उपलब्ध थी, उसमें 6 काण्ड ही थे।

4 **रामचरित मानसः**— गोस्वामी तुलसीदास जी की राम चरित मानस में उत्तर—काण्ड है। परंतु उसकी विषय—वस्तु वाल्मीकि जी के उत्तरकाण्ड से पूरी तरह अलग है।

इसमें न तो शम्बूक हैं, न लव–कुश हैं एवं न सीता को वनवास भेजने का विवरण है। अतः तुलसीदास जी के समय भी यह उत्तरकाण्ड रामायण का हिस्सा नहीं था। श्रीराम जी के राज्याभिषेक का वर्णन वाल्मीकि जी छठे काण्ड में करते हैं, तो तुलसीदास जी सातवें काण्ड में।

यदि महर्षि वाल्मीकि जी ने उत्तरकाण्ड लिखा होता तो वह इसे उत्तर–काण्ड के अन्त में देते। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि संस्कृत के सभी ग्रन्थों में समय–समय पर मिलावट की जाती रही है। इन मिलावटी श्लोकों के कारण ही सनातन धर्म के महापुरुषों का अपमान होता रहा है। उदाहरण के तौर पर कम्युनिस्ट लेखिका मृणाल पाण्डे ने एक बार अखबार में एक लेख लिखा जिसमें माता सीता द्वारा (पूजा के तौर पर) गंगा नदी में शराब के घड़े डालने की बात लिखी थी बाद में ढूँढने पर पाया कि यह श्लोक केवल एक संस्करण में है जो किसी शराब पीने वाले ने मिलाया है। इसी तरह केवल एक संस्करण में सीता द्वारा घूँघट करने का जिक्र मिलता है जो साफ–साफ बाद में मिलाया गया है।

पेरियार के रावण बनाम वाल्मीकि के श्री राम

पेरियार ने भगवान राम और माता सीता के लिए बहुत ही बुरा लिखा है और रावण को महान बताया है। राम के बारे में पेरियार का मत है कि वाल्मीकि के राम विचार और कर्म से धूर्त थे। झूठ, कृतघ्नता, दिखावटीपन, चालाकी, कठोरता, लोलुपता, निर्दोष लोगों को सताना और कुसंगति जैसे अवगुण उनमें कूट–कूट कर भरे थे। पेरियार कहते हैं कि जब राम ऐसे ही थे और रावण भी ऐसा ही था तो फिर राम अच्छे और रावण बुरा कैसे हो गया?

पेरियार राम में तो इतनी कमियाँ निकालते हैं, किन्तु रावण को वे सर्वथा दोषमुक्त मानते हैं। वे कहते हैं कि स्वयं वाल्मीकि रावण की प्रशंसा करते हैं और उनमें दस गुणों का होना स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार रावण महापंडित, महायोद्धा, सुन्दर, दयालु, तपस्वी और उदार हृदय जैसे गुणों से विभूषित था। जब हम वाल्मीकि के कथनानुसार राम को पुरुषोत्तम मानते हैं तो उसके द्वारा दर्शाये इन गुणों से सम्पन्न रावण को उत्तम पुरुष क्यों नहीं मान सकते? सीताहरण के लिए रावण को दोषी ठहराया जाता है, लेकिन पेरियार कहते हैं कि वह सीता को जबदरस्ती उठाकर नहीं ले गया था, बल्कि सीता स्वेच्छा से उसके साथ गई थी। इससे भी आगे पेरियार यह तक कहते हैं कि सीता अन्य व्यक्ति के साथ इसलिये चली गई थी क्योंकि उसकी प्रकृति ही चंचल थी और उसके पुत्र लव और कुश रावण के संसर्ग से ही उत्पन्न हुए थे। सीता की प्रशंसा में पेरियार एक शब्द तक नहीं कहते।

महर्षि वाल्मीकि क्या कहते हैं?

भीमसैनिक, ओशोवादी, वामपंथी जैसे कि सुरेंद्रकुमार अज्ञात व राकेश नाथ, पेरियार आदि रावण को खूब महान बताते हैं। रावण का चरित्र हम वाल्मीकीय रामायण से प्रस्तुत करते हैं। पाठकगण समझ जायेंगे कि रावण कितना "चरित्रवान" थाः–

(क) रावण यहां वहां से कग्र स्त्रियां हर लाया था

रावण संन्यासी का कपट वेश त्यागकर सीताजी से कहता हैः–

बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥28॥

मैं यहाँ वहाँ से अनेकों सुंदर स्त्रियों को हरण करके ले आया।उन सबमें तू मेरी पटरानी बन,इसमें तेरी भलाई है।।28।।

(अरण्यकांड सर्ग 47/28)

परस्त्रीगमन राक्षसों का धर्म हैः–

रावण ने सीता से कहाः –

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वथैव न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा ॥5॥

"भीरू! तू ये मत समझ कि मैंने तुझे हराकर कोई अधर्म किया है। दूसरों की स्त्रियों का हरण व परस्त्रियों से भोग करना राक्षसों का धर्म है–इसमें संदेह नहीं ।।5।।"

(सुंदरकांड सर्ग २०/५)

लीजिये महाराज! रावण ने खुद स्वीकार किया है कि वो इधर उधर से परस्त्रियों को हरकर उनसे सम्भोग करता है। अब हम आपकी मानें या रावण की? निश्चित ही रावण की गवाही अधिक माननीय होगी, क्योंकि ये तो उसका अपना अनुभव है और आप केवल वकालत कर रहो हैं।वाल्मीकीय रामायण से इस विषय पर सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं।

मंदोदरि का रावणवध के बाद विलाप करते हुये रोती है तथा कहती है।

धर्मव्यवस्थाभेत्तारं मायाम्रष्टारमाहवे ।
देवासुरनृकन्यानां आहर्तारं ततस्ततः ॥ 53 ॥

आप(रावण) धर्म की व्यवस्था को तोड़ने वाले,संग्राम में माया रचने वाले थे। देवता, असुर व मनुष्यों की कन्याओं को यहाँ वहाँ से हरण करके लाते थे।।53।।

(युद्धकांड सर्ग 111)

लीजिये, अब रावण की पटरानी, बीवी की गवाही भी आ गई कि रावण परस्त्रीगामी था।

अंततः जब उसने देवी सीता को चुराया, तो उसकी सीताजी पर भी गंदी दृष्टि थी। पर जीते जी उनसे सम्भोग न कर सका और उन पतिव्रता देवी के पातिव्रत्य तेज से जलकर खाक हो गया! देखिये, मंदोदरि के शब्दों में:–

ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च ।
सीतां सर्वानवद्याङ्गीं अरण्ये विजने शुभाम् ।

आनयित्वा तु तां दीनां छद्मनाऽऽत्मस्वदूषणम् ॥ 22 ॥
अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसंगमे कृतम् ।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोखसि मे प्रभो ॥ 23 ॥

प्राणनाथ! सर्वांगसुंदरी शुभलक्षणा सीता को वन में आप उनके निवास से,छल द्वारा हरकर ले आये, ये आपके लिये बहुत बड़े कलंक की बात थी। मैथिली से सम्भोग करने की जो आपके मन में कामना थी, वो आप पूरी न कर सके उलट उस पतिव्रता देवी की तपस्या में भस्म हो गये अवश्य ऐसा ही घटा है।।22–23।

(युद्धकांड सर्ग 111)

एक पत्नी व्रती भगवान राम और पतिव्रताओं की आदर्श भगवती माता सीता का अपमान करने वाला पेरियार मेरे लिए खलनायक है और रहेगा।

काल्पनिक राम का जनाजा ?

अम्बेडकरवादी, बौद्ध,ईसाई व मुसलमान लोग भगवान राम कृष्ण गीता रामायण वेद उपनिषद मनुस्मृति व आर्यों को लेकर बहुत दुष्प्रचार कर रहे हैं। काल्पनिक राम का जनाजा नामक एक लेख में कुछ धूर्तों ने इतिहास को तोड़ मरोड़ कर पेश किया है और मनमाने दोष लगाये हैं। इस लेख की समीक्षा इस प्रकार है:–

1. आक्षेप –श्रीलंका का नाम 'लंका' 1972 में ही पड़ा, इससे पहले इस 'श्रीलंका' नाम का देश पूरे संसार में भी नहीं था

समीक्षक : गलत, 1972 से पूर्व भी नाम लंका था। सिंहल भाषा में श्रीलंका कहा जाता था. तामिल भाषा में इलंका कहते थे। आज से लगभग 5150 वर्ष पूर्व लिखित इतिहास–ग्रन्थ महाभारत में भी इस टापू को 'लंका' ही कहा गया था। आज से लाखों वर्ष पूर्व शूद्र वाल्मीकि जो बाद में ऋषि कहलाये, उनके द्वारा लिखित इतिहास–ग्रन्थ रामायण में भी इस टापू का नाम लंका ही वर्णित है.

2. आक्षेप –'अयोध्या' को पहले 'साकेत' कहा जाता था। 2,000 साल पूर्व अयोध्या नाम का शहर भारत में नही था।

समीक्षक अयोध्या को साकेत गौतम बुद्ध के काल में कहा जाने लगा पूर्व में तो अयोध्या ही नाम था, जिसे कोशल राज्य की राजधानी कहा जाता था वाल्मीकि रामायण में भी अयोध्या ही वर्णित है

अ = नहीं

योद्धया = जिसे युद्ध में जीता जा सके

अतः अयोध्या का अर्थ जिससे युद्ध ना किया जा सके

3. आक्षेप – 12,000 साल पूर्व 'भारत' से 'श्रीलंका', "सड़क–मार्ग" से जा सकते थे, क्योकि समुद्र का जलस्तर कम होने के कारण दोनो देशों के बीच 1 जव 80 किमी. तक चौड़ा जमीनी मार्ग था । ऐसे में 17,00,000 लाख साल पुर्व में जन्मे भगवान राम ने कौन सी 'अयोध्या' से किस 'लंका' पर चढ़ाई की और वह 'रामसेतु' कहाँ बनाया ? यह समझ परे की बात हैं।

समीक्षक : गलत, आपकी बातें निराधार हैं, भारत और श्रीलंका के बीच में बहुत बडा पर्वत है, जो की समुद्र के तल के नीचे है, और करोडों वर्ष पुराना है श्रीरामसेतु का निर्माण इस पर्वत के आधार से ही हुआ वाल्मीकि–रामायण में हनुमान का समुद्र को पार करना और बाद में उसी मार्ग में सेतु निर्माण का विस्तार से वर्णन है

4. आक्षेप – कहीं ऐसा तो नही की 'रामायण' कल्पनात्मक ढंग से लिखी गई हो और प्रचार होने पर किसी शहर का नाम 'अयोध्या' तो किसी देश का नाम 'श्रीलंका' रख दिया हो।

तथ्य और प्रमाणः –'श्रीलंका' अब चुँकी आम लोग नाम के आधार पर 'श्रीलंका' को 'रावण' की लंका मानते हैं और वहाँ स्थित प्राचीन बौद्ध–स्थलों को भी रावण की राजधानी से जोड़ रहे हैं। पर शोधकर्ता इससे सहमत नहीं हैं। उस देश का नाम भी 'श्रीलंका' नही था! आप 'श्रीलंका' का इतिहास पढ़ सकते हैं। 1972 से पूर्व 'श्रीलंका' नाम से संसार में भी कोई देश नही था । भारत के दक्षिण में स्थित इस देश की दूरी भारत से मात्र 31 किलोमीटर है। 1972 तक इसका नाम सीलोन (अंग्रेजी :Ceylon) था, जिसे 1972 में बदलकर लंका तथा 1978 में इसके आगे सम्मानसूचक शब्द "श्री" जोड़कर श्रीलंका कर दिया गया। आप इंटरनेट पर 'श्रीलंका' का इतिहास पढ़ सकते हैं । लंका से पहले यह देश 'सीलोंन' नाम से जाना जाता था । 'सीलोंन' से पूर्व इसे 'सिंहलद्वीप' कहा जाता था । इससे भी पूर्व यह दीपवंशा, कुलावंशा, राजावेलिया इत्यादि नामों से जाना जाता था। मगर 'लंका' कभी नही, क्योंकि स्वयं 'लंकावासियों' को भी राम, रामायण, और रावण का कोई अता–पता नही था। तीसरी सदी ईसा पूर्व में मौर्य सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र के यहाँ आने पर 'बौद्ध धर्म' का आगमन हुआ।

मगर भारत के 'चोल' शासकों का ध्यान जब इस द्वीप पर गया तो वे इसका सम्बन्ध रावण की लंका से जोड़ने लगे । हालांकि तब भी श्रीलंकावासी स्वयं इस तथ्य से अनभिज्ञ ही थे। 'रामायण' में जिस 'लंका' का उल्लेख किया गया है वह प्राचीन भारत का कोई ग्रामीण क्षेत्र था जो लम्बे–चौड़े नदी–नालों से आमजन से कटा हुआ था । कई इतिहासकारों के अनुसार यह स्थल 'दक्षिण–भारत' का ही कोई क्षेत्र था।

समीक्षक : सीलोन शब्द श्रीलंका से ही व्युत्पन्न (derived) है। जिसे अंग्रेजों ने बिगाडा था।

श्री = सी

लंका = लोन

आप भी इन्टरनेट पर पढ़ लीजिये कि इसका नाम अनेक ग्रन्थों में श्रीलंका था,

https//en.wikipedia.org/wiki/Sri&Lanka

आप जिन शोधकर्त्ताओं की बात कर रहे हैं, वो जो वामपन्थी देशद्रोही मानसिकता से पीडित हैं, या तो अंग्रेजों एवं ईसाई मिशनरियों के तलवे चाटते हैं जो की हवा में बात करते हैं, भारत के प्राचीन इतिहास–ग्रन्थों को Epic या मनगढंत कहानी कहते हैं उनकी बातें निराधार और अप्रामाणिक होने से अमान्य हैं।

सिंहलद्वीप तो बहुत नया नाम है, और सिंगापुर को सिंहपुर (City of Lions) कहते थे प्राचीनतम नाम लंका ही है।

5. आक्षेप द्वितीय– भारत और 'श्रीलंका' के बीच में "कोरल्स" की चट्टानें है उन्हें पत्थर नहीं कहा जा सकता है । इन 'कोरल्स' की संरचना 'मधुमक्खियों' के छत्ते के समान होती है, जिनमे बारीक़ रिक्त स्थान होते है। अतः किसी भी हल्की वस्तु का आयतन, पानी के घनत्व के कम होने पर वह तैरने लगती है !!!

अयोध्या' यहीं नही अपितु राम की कथित 'अयोध्या' भी दो हजार वर्ष पूर्व अस्तित्व में नहीं थी। आज जिसे अयोध्या कहते है उसे पहले 'साकेत' कहा जाता था । 'मौर्यकाल' के बाद 'शुंगकाल' में ही "साकेत" का नाम अयोध्या रखा गया। बौद्धकालीन किसी भी ग्रंथ में अयोध्या नाम से कोई स्थान नही था। 'साकेत' का ही नाम बदलकर 'अयोध्या' रखा गया।

समीक्षक : बौद्धों का अस्तित्व तो केवल 2500 वर्षों से है, यह कुछ संकीर्ण मानसिकता से युक्त बौद्धों का षड्यन्त्र ही है, कि उनके ग्रन्थों में अयोध्या शब्द को स्थान नहीं दिया गया. राजीव दीक्षित जी के वीडियों में श्रीरामसेतु से सम्बन्धित अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये गए है –

https://www.youtube.com/watch\v=jT8jejtjGHY

https://www.youtube.com/watch\v=c&pAo4Oo2vw

6.आक्षेप : वैज्ञानिकों के अनुसार धरती पर 'आधुनिक–मानव' (Homo – sapiens) की उत्पति 1 लाख, तीस–हजार साल पूर्व 'अफ्रीका' में हुई थी। कालांतर में आज से एक लाख साल पूर्व वहाँ से मानव का भिन्न–भिन्न कबीलों के रूप में भिन्न–भिन्न 'द्वीपों' और 'महाद्वीपों' की ओर अलगाव होता रहा।

हमारे 'भारत' में मानव का 67,000 साल पूर्व आना बताया गया है। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि जो घटनायें आज समाज के सामने प्रस्तुत की जाती हैं उनका गहराई से अध्ययन ज़रूर करना चाहिये तभी सत्यता को समझा जा सकता है। अन्यथा कल्पनाओं में डुबोकर लोगों को पाखण्ड और अंधविश्वास के सहारे सिर्फ मारा ही जा सकता है आधुनिक विकाश से इसका कोई वास्ता नही हो सकता है वैसे भी गौरतलब तथ्य तो यही है कि धूर्तों का तथाकथित अन्यायी राम था तो बहुजन मूलनिवासियों का हत्यारा और दुश्मन ही यह बात भारतीय बहुजन मूलनिवासियों को जितनी जल्दी समझ में आ जाय उतनी ही जल्दी इस राम का जनाजा उठने में इस देश को मदद मिलेगी....

समीक्षक : वैज्ञानिकों के अनुसार नहीं, डार्विन लालबुझक्कड़ के अनुसार, तथाकथित होमो–सेपियन्स की उत्पत्ति 1 लाख से 2 लाख वर्ष पूर्व के बीच हुई थी ये बताईये कि जब आदम (Adam) प्रथम बुद्धिमान मनुष्य था, तो और जब आदम अधिकतम 7000 वर्ष पूर्व हुआ था, तो 1 लाख 30 हज़ार वर्ष पूर्व Homo – sapiens कैसे हो गया ?

150 वर्ष पूर्व तथाकथित वैज्ञानिक सृष्टि की उत्पत्ति 10000 वर्ष पूर्व की बताते थे। दिनों–दिन सृष्टि की अवधि तथाकथित वैज्ञानिक बढाते चले जा रहे हैं भारतीय वैदिक विद्वानों के अनुसार, सृष्टि की उत्पत्ति 1 अरब 97 करोड वर्ष पूर्व हुई थी, और 1 अरब 96 करोड वर्ष पूर्व मनुष्यों की उत्पत्ति हुई. विकासवाद का सिद्धान्त झूठा है, और इस पर विस्तृत समालोचना पण्डित रघुनन्दन शर्मा जी ने "वैदिक सम्पत्ति" नामक पुस्तक में लिखी है.

एक तरफ तो आप श्रीराम की सत्ता को अस्वीकार करते हो, दूसरी तरफ उन्हें अन्यायी और हत्यारा कहते हो, जो सूचित करता है, कि या तो आपकी बुद्धि का दिवाला निकल गया है, या अपनी बुद्धिमत्ता को क्रिश्चन मिशनरियों के हाथों बेच चुके हैं

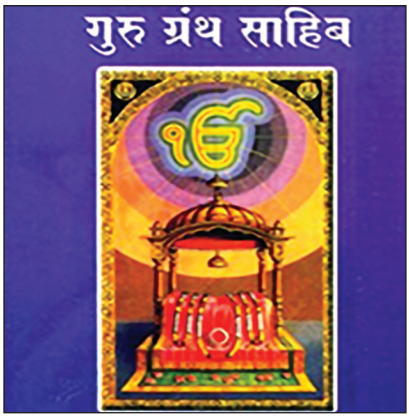
वामपन्थियों के चेलों और अंग्रेजों के तलवे चाटने वाले देशद्रोही ही श्रीराम जैसे महापुरुषों की निन्दा करते हैं, और उनके अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं

श्रीराम ही एकमात्र राजा हैं जिनके अस्तित्व का प्रमाण पूरे विश्व में मिलता है, विस्तृत जानकारी के लिए पढ़िए " वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास (4 भागों में)" –लेखकः पुरुषोत्तम नागेश ओक–

अध्याय-8

सिख पंथ में राम के प्रति आस्था

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में राम का नाम और इसका वास्तविक अर्थ



श्री गुरु ग्रंथ साहिब में परमात्मा की स्तुति करने के लिए राम, रामा और राम राजे का उल्लेख 2533 बार हुआ है। श्री गुरु नानक देव जी, पाँचवें नानक यानि गुरु अर्जुन देव जी और नौवें गुरु हिंद दी चादर गुरु तेग बहादुर जी ने इसका उपयोग किया है। श्री गुरु नानक देव जी 'आसा दी वार' (गुरुबाणी) की शुरुआत करते हैं कि 'हरि अमृत भिन्ने लोइणिां मनु प्रेम रतन्ना राम राजे।। मन रामि कसवटी लाएआ कंचनु सोविंना' अर्थात् मेरी आंखें अमृत से भरी हुई हैं और मन राम नाम यानि परमात्मा के प्रेम से भरा है।

गुरु नानक के अनुसार राम–नाम या शब्द या हुक्म एक परम चेतन, निराकार सत्ता से है। यह वह अकथ कथा है जिसको "ज़बान प्रकट नहीं कर सकती, कान सुन नहीं सकते, कलम लिख नहीं सकती और भाषा जिसका वर्णन नहीं कर सकती।" यह इन्सानी मन–बुद्धि से परे की हकीकत है । यह हर प्रकार के द्वैत, हर तरह के परिवर्तन से परे का वह सच है जो सृष्टि की हर वस्तु और हर प्राणी में रमा हुआ है ।

रामायण के सुंदर कांड का पाठ -वास्तविक सन्देश

सुंदरकाण्ड मूलतः वाल्मीकि कृत रामायण का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री रामचरित मानस तथा अन्य भाषाओं के रामायण में भी सुन्दरकाण्ड उपस्थित है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान जी द्वारा किये गये महान कार्यों का वर्णन है। रामायण पाठ में सुन्दरकाण्ड के पाठ का विशेष महत्व माना जाता

है। सुंदरकाण्ड में हनुमान का लंका प्रस्थान, लंका दहन से लंका से वापसी तक के घटनाक्रम आते हैं। इस सोपान के मुख्य घटनाक्रम है– हनुमान जी का लंका की ओर प्रस्थान, विभीषण से भेंट, सीता से भेंट करके उन्हें श्री राम की मुद्रिका देना, अक्षय कुमार का वध, लंका दहन और लंका से वापसी।

मान्यता : रामायण का सुंदरकांड बहुत प्रसिद्ध है। गायकों की टोलियाँ घर–घर जाकर या उत्सव में हनुमान की मेधा, पराक्रम और विजय का सुंदर वर्णन करते हैं। सुंदरकांड में माता सीता की खोज करके हनुमान की सफलता का वर्णन है। जिसको सुनकर मनुष्य का आत्मविश्वास बढ़ता है, जिससे मनुष्य को भय से मुक्ति मिलती है परिण ाम स्वरूप आध्यात्मिक और मानसिक शांति मिलती है।

वास्तविक सन्देश : जैसी कि मान्यता है कि सुंदरकांड का पाठ करने से मनुष्य का आत्मविश्वास बढ़ता है, जिससे मनुष्य को भय से मुक्ति मिलती है परिणाम स्वरूप आध्यात्मिक और मानसिक शांति मिलती है, ये बिल्कुल सत्य है।

जैसे कि वीर गाथायें हमारे देश में आज भी गयी जाती हैं जिनमें आल्हा, चंद्रवरदायी, पद्मनी का जौहर, रानी झाँसी की वीर गाथा इत्यादि को सुनकर निर्बल शरीर में जोश आ जाता है, जैसे चित्र से चरित्र का ज्ञान होता है, उसी प्रकार रामायण के सुंदरकांड में हनुमान की वीर गाथा सुनकर आत्म–विश्वास में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

सुंदरकांड में हनुमान के मुख्य पराक्रम का वर्णन है जैसे कि – हनुमान ने आसानी से लंका जाने के मार्ग में आने वाली सभी बाधाएँ, सीता से मिलना, रावण का सामना करना से ये शिक्षा मिलती है कि अगर जीवन में बाधाएँ बढती जा रही हों, अगर शत्रु बहुत शक्तिशाली हो तब भी हिम्मत और चतुराई से कार्य करना चाहिये जिससे सफलता अवश्य मिलती है।

रामायण के सुंदर कांड के पाठ का विश्लेषण

अब सुंदर कांड का पाठ करना एक फैशन हो गया है, ये माना जाने लगा है कि गायक पंडित की टोली मनोरंजन संगीत से जो सुंदरकांड कथा सुनाती है इसके सुनने मात्र से कल्याण हो जायेगा और हनुमान जी प्रसन्न होकर सभी दुःख दूर कर देंगें और इसलिए तथाकथित साधक मनुष्य में ये भावना बस गयी है कि कर्म कैसे ही हों सुंदर कांड का पाठ करो जिसके गायन से या सुन लेने से काम बन जायेंगे। सुंदर कांड के पाठ को मनोरंजन का साधन नहीं बनाना चाहिए।

क्या मीठा–मीठा कहने से मिठाई का कार्य हो जायेगा, ट्रेन–ट्रेन कहने से ट्रेन के डिब्बे में सवारी मिलेगी ? बीमार आदमी जब तक दवा नहीं लेगा तब तक ठीक नहीं हो सकता, परीक्षा पास करने के लिए अच्छी तरह से पढ़ाई की जरुरत होती है अन्यथा

फेल होना निश्चित है। जीवन में इसी तरह यदि वीर हनुमान की वीर गाथा सुनकर हम आत्मविश्वास के साथ कठिन कार्य करने का संकल्प लेकर हिम्मत से कार्य नहीं करेंगे तो कुछ नहीं होने वाला बल्कि सिर्फ पाखंड ही कहलायेगा। बहुत से लोग रोज इस काव्य का पाठ करते है परन्तु व्यवहारिक जीवन में हनुमान की तरह ब्रह्मचर्य, स्वामी भक्ति, देश भक्ति आदि को आचरण में नहीं लाते, वे व्यर्थ में अपना कीमती समय बर्बाद कर रहे हैं, मानव जीवन अमूल्य है इसको व्यवहारिक बनाये तभी आपका कल्याण होगा और हनुमान प्रसन्न होकर सभी दुःख दूर कर देंगें। हनुमान के गुण स्वयं में धारण करना ही वास्तविक हनुमान भक्ति है और यही सुंदर कांड का सन्देश है।

रामायण में अमूल्य सन्देश-चौदह प्रकार के लोग जो मृततुल्य हैं

राम–रावण युद्ध चल रहा था, तब अंगद ने रावण से कहा– तू तो मरा हुआ है, मरे हुए को मारने से क्या फायदा?

रावण बोला ..मैं जीवित हूँ, मरा हुआ कैसे?

अंगद बोले, सिर्फ साँस लेने वालों को जीवित नहीं कहते –साँस तो लुहार की धौंकनी भी लेती है!

तब अंगद ने मृत्यु के 14 प्रकार बताए–

कौल कामबस कृपिन विमूढ़ा।
अतिदरिद्र अजसि अतिबूढ़ा।।

सदारोगबस संतत क्रोधी।
विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी।।

तनुपोषक निंदक अघखानी।
जीवत शव सम चौदह प्रानी।।

1. **कामवशः** जो व्यक्ति अत्यंत भोगी हो, कामवासना में लिप्त रहता हो, जो संसार के भोगों में उलझा हुआ हो, वह मृत समान है। जिसके मन की इच्छाएं कभी खत्म नहीं होतीं और जो प्राणी सिर्फ अपनी इच्छाओं के अधीन होकर ही जीता है, वह मृत समान है। वह अध्यात्म का सेवन नहीं करता है, सदैव वासना में लीन रहता है।

2. **वाममार्गीः** जो व्यक्ति पूरी दुनियाँ से उल्टा चले, जो संसार की हर बात के पीछे नकारात्मकता खोजता हो, सत्य वैज्ञानिक नियमों, परम्पराओं, धर्म एवं लोक व्यवहार के खिलाफ चलता हो, वह वाममार्गी कहलाता है। ऐसे काम करने वाले लोग मृत समान माने गए हैं।

3. **कंजूस**: अति कंजूस व्यक्ति भी मरा हुआ होता है। जो व्यक्ति धर्म कार्य करने में, आर्थिक रूप से किसी कल्याणकारी कार्य में हिस्सा लेने में हिचकता हो, दान एवं यज्ञ करने से बचता हो, ऐसा आदमी भी मृतक समान ही है।

4. **अति दरिद्र**: गरीबी सबसे बड़ा श्राप है। जो व्यक्ति धन, आत्म–विश्वास, सम्मान और साहस से हीन हो, वह भी मृत ही है। अत्यंत दरिद्र भी मरा हुआ है। गरीब आदमी को दुत्कारना नहीं चाहिए, क्योंकि वह पहले ही मरा हुआ होता है। दरिद्र मानकर उनकी मदद करनी चाहिए। उनके प्रति करुणा का भाव रखना चाहिए।

5. **विमूढ़**: अत्यंत मूढ़ यानी मूर्ख व्यक्ति भी मरा हुआ ही होता है। जिसके पास बुद्धि–विवेक न हो, जो खुद निर्णय न ले सके, यानि हर काम को समझने या निर्णय लेने में किसी अन्य पर आश्रित हो, ऐसा व्यक्ति भी जीवित होते हुए मृतक समान ही है, मूढ़ अध्यात्म को नहीं समझता।

6. **अजसि**: जिस व्यक्ति को संसार में बदनामी मिली हुई है, वह भी मरा हुआ है। जो घर–परिवार, कुटुम्ब–समाज, नगर–राष्ट्र, किसी भी ईकाई में सम्मान नहीं पाता, वह व्यक्ति भी मृत समान ही होता है।

7. **सदा रोगवश**: जो व्यक्ति निरंतर रोगी रहता है, वह भी मरा हुआ है। स्वस्थ शरीर के अभाव में मन विचलित रहता है। नकारात्मकता हावी हो जाती है। व्यक्ति मृत्यु की कामना में लग जाता है। जीवित होते हुए भी रोगी व्यक्ति जीवन के आनंद से वंचित रह जाता है।

8. **अति बूढ़ा**: अत्यंत वृद्ध व्यक्ति भी मृत समान होता है, क्योंकि वह अन्य लोगों पर आश्रित हो जाता है। शरीर और बुद्धि, दोनों अक्षम हो जाते हैं। ऐसे में कई बार वह स्वयं और उसके परिजन ही उसकी मृत्यु की कामना करने लगते हैं, ताकि उसे इन कष्टों से मुक्ति मिल सके।

9. **सतत क्रोधी**: २४ घंटे क्रोध में रहने वाला व्यक्ति भी मृतक समान ही है। ऐसा व्यक्ति हर छोटी–बड़ी बात पर क्रोध करता है। क्रोध के कारण मन और बुद्धि दोनों ही उसके नियंत्रण से बाहर होते हैं। जिस व्यक्ति का अपने मन और बुद्धि पर नियंत्रण न हो, वह जीवित होकर भी जीवित नहीं माना जाता। पूर्व जन्म के संस्कार लेकर यह जीव क्रोधी होता है। क्रोधी अनेक जीवों का घात करता है और नरकगामी होता है।

10. **अघ खानी**: जो व्यक्ति पाप कर्मों से अर्जित धन से अपना और परिवार का पालन–पोषण करता है, वह व्यक्ति भी मृत समान ही है। उसके साथ रहने वाले लोग भी उसी के समान हो जाते हैं। हमेशा मेहनत और ईमानदारी से कमाई

करके ही धन प्राप्त करना चाहिए। पाप की कमाई पाप में ही जाती है और पाप की कमाई से नीच गोत्र, निगोद की प्राप्ति होती है।

11. तनु पोषकः ऐसा व्यक्ति जो पूरी तरह से आत्म संतुष्टि और खुद के स्वार्थों के लिए ही जीता है, संसार के किसी अन्य प्राणी के लिए उसके मन में कोई संवेदना न हो, ऐसा व्यक्ति भी मृतक समान ही है। जो लोग खाने–पीने में, वाहनों में स्थान के लिए, हर बात में सिर्फ यही सोचते हैं कि सारी चीजें पहले हमें ही मिल जाएं, बाकी किसी अन्य को मिलें न मिलें, वे मृत समान होते हैं। ऐसे लोग समाज और राष्ट्र के लिए अनुपयोगी होते हैं। शरीर को अपना मानकर उसमें रत रहना मूर्खता है, क्योंकि यह शरीर विनाशी है, नष्ट होने वाला है।

12. निंदकः अकारण निंदा करने वाला व्यक्ति भी मरा हुआ होता है। जिसे दूसरों में सिर्फ कमियाँ ही नजर आती हैं, जो व्यक्ति किसी के अच्छे काम की भी आलोचना करने से नहीं चूकता है, ऐसा व्यक्ति जो किसी के पास भी बैठे, तो सिर्फ किसी न किसी की बुराई ही करे, वह व्यक्ति भी मृत समान होता है। परनिंदा करने से नीच गोत्र का बंध होता है।

13. परमात्म विमुखः जो व्यक्ति ईश्वर यानि परमात्मा का विरोधी है, वह भी मृत समान है। जो व्यक्ति यह सोच लेता है कि कोई परमतत्व है ही नहीं ये हम जो करते हैं, वही होता है, संसार हम ही चला रहे हैं, जो परमशक्ति में आस्था नहीं रखता, ऐसा व्यक्ति भी मृत माना जाता है।

14. श्रुति संत विरोधीः जो वेदादि सत्य सत्य आर्ष शास्त्रों एवं संत पुरुषों विरोधी है, वह भी मृत समान है। श्रुत और संत, समाज में अनाचार पर नियंत्रण (ब्रेक) का काम करते हैं। अगर गाड़ी में ब्रेक न हो,तो कहीं भी गिरकर एक्सीडेंट हो सकता है। वैसे ही समाज को संतों की जरूरत होती है, वरना समाज में अनाचार पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाएगा।

अतः मनुष्य को उपरोक्त चौदह दुर्गुणों से यथासम्भव दूर रहकर स्वयं को मृतक समान जीवित रहने से बचाना चाहिए।

राम को विष्णु क्यों कहा गया है?

ईश्वर अवतार नही लेता, ईश्वर सर्वशक्तिशाली है और समस्त भू–लोक में एक ही समय में विराजमान है, अवतारवाद पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है।

राम विष्णु के अवतार थे इस बात का उत्तर इसी वाक्य में छिपा है कि राम विष्णु थे? या विष्णु तुल्य थे? ये बात कहाँ से शुरु हुई इसकी भी पड़ताल जरूरी है। इस विषय में कुछ अन्य प्रश्न सामने आएः

1. क्या राम को पता था कि वो विष्णु के अवतार थे?
2. वाल्मीकि के राम को पता नहीं था कि वे विष्णु के अवतार हैं किन्तु तुलसी के राम को कैसे पता लगा कि राम विष्णु के अवतार है ?
3. श्री राम यदि स्वयं श्री विष्णु भगवान के अवतार थे और आदि अनन्त सबके ज्ञाता थे तो उन्होंने लंका विजय के पश्चात सीता जी की अग्नि परीक्षा क्यों करवाई?
4. क्या रामायण काल में अयोध्या के लोगों को पता था कि श्रीराम भगवान विष्णु के अवतार हैं?

विश्लेषण

राम के विषय में बाल्मीकि की रामायण एक प्रमाणिक इतिहास ग्रंथ है, इसके कई हजार साल बाद कुछ कवियों ने राम को लेकर महाकाव्य की रचना की जिसमे प्रचुर मात्रा में उपमा और अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया, बाद में कुछ वामपंथी और नास्तिक भी रामचरित लिखने लगे इस कारण से रामायण में भरपूर मिलावट हुई है।

1. रामायण काल मे अयोध्या के लोगो को नही पता था कि ईश्वर ने मानव के रूप में जन्म लिया। फिर अचानक इन कवियों को कैसे ज्ञात हुआ कि श्री राम वाकई विष्णु अवतार थे ?

यह कुछ लोगों की, या यह कहें कि पुराणों की अपनी मान्यता है। वरना रामायण पढ़ने से तो यही सिद्ध होता है कि राम एक आदर्श राजा और मर्यादा पुरुषोत्तम थे।

2. विष्णु अर्थात् ईश्वर, ईश्वर अर्थात् सच्चिदानन्द और सुखस्वरूप। जहां दुःख का लेशमात्र भी नहीं है। जबकि सीता की खोज में भटकते हुए राम कहते हैं कि यह दुःख मेरे पूर्व जन्म का ही फल है।
3. ईश्वर सर्वज्ञ है। ऐसे में सीता का पता क्यों नहीं लगा पाए ? और यदि पता था तो इस प्रकार का मिथ्या आचरण क्यों ?

इसी प्रकार की अनेक बातें हैं जिनसे सिद्ध होता है कि राम ईश्वर नहीं थे। वेद भी कहते हैं कि ईश्वर कभी भी शरीर धारण नहीं करता और न ही अवतार ग्रहण करता है।

राम एक आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम थे, इसलिए हो सकता है कि अति सम्मान के रूप में, उपाधि के रूप में उनको सच्चा ईश्वर पुत्र, विष्णु पुत्र कहा गया हो और समय के साथ सीधे विष्णु का अवतार ही बता दिया हो। इस पर इतना ही समझना चाहिए।



भाग– 2
महाभारत से सम्बंधित भ्रांतियाँ



महाभारत का युद्ध और उससे प्रेरणा



यधपि महाभारत काल को एक युद्ध का काल कहा जाता है जिसमे मुख्य रूप से योगिराज कृष्ण ने अपने दिव्य ज्ञान का परिचय दिया और योध क्षेत्र में गीता का उपदेश दिया। महाभारत में जीवन से जुड़ी कई बातें हैं जो हमें आधुनिक जीवन में भी काम आ सकती है। महाभारत युद्ध के बाद शांति पर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर को जो ज्ञान दिया उसे आज भी राजनीति और सामाजिक मामलों का सबसे बेहतर ज्ञान माना जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व में सबसे ज्यादा पढ़ा जाने वाला आध्यात्मिक ग्रन्थ है । विश्व की लगभग सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है । गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग व राजयोग के अतिरिक्त समत्वं योग, सन्यास योग, सांख्य योग, श्रद्धात्रय योग व मोक्ष का अद्भुत संगम है । गीता में कुल अठारह (18) अध्याय हैं जिनमें कुल सात सौ (700) श्लोकों का वर्णन किया गया है । गीता के इन सात सौ श्लोकों को चार व्यक्तियों द्व ारा बोला और सुना गया है । जिनमें से राजा धृतराष्ट्र ने केवल एक ही श्लोक बोला है । इसके बाद संजय ने कुल बयालीस (42) श्लोक बोले हैं । अर्जुन ने कुल चौरासी (84) श्लोक बोले हैं और शेष पाँच सौ तिहत्तर (573) श्लोकों के वक्ता स्वयं योगी श्रीकृष्ण हैं । गीता में सबसे ज्यादा श्लोक योगीराज श्रीकृष्ण द्वारा ही बोले गए हैं ।

गीता का ज्ञान हमें जीवन को सही तरीके से जीने का ढंग बताता है । आज हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि किस प्रकार से हम अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी भावनाओं को सन्तुलित रखते हुए व्यवहार करें ? अनुकूलता आने पर व्यक्ति में अहम का भाव व प्रतिकूलता होने पर तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । यह दोनों ही परिस्थितियाँ हमारे लिए घातक अथवा हानिकारक होती हैं । अब प्रश्न उठता है कि अनुकूल व प्रतिकूल अवस्थाओं में हमारा व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए ? ताकि

अहम व तनाव दोनों से ही बचा जा सके । गीता के अनुपम ज्ञान से हमें इस प्रश्न का अत्यंत सटीक उत्तर प्राप्त होता है ।

गीता का उपदेश श्रीकृष्ण ने आज से लगभग पाँच हजार वर्ष (5000) पूर्व हरियाण ा प्रदेश में स्थित कुरुक्षेत्र नामक स्थान पर अपने प्रिय मित्र अर्जुन को दिया था । गीता महाभारत के भीष्म पर्व का अंग है । गीता का वर्णन महाभारत के भीष्म पर्व के पच्चीसवें (25) से आरम्भ होता है और अध्याय बयालीस (42) तक किया गया है । इसलिए इसे भीष्म पर्व का अंग कहा जाता है । गीता को प्रस्थानत्रयी का भी एक अंग माना जाता है । बहुत सारे विद्यार्थियों का यह प्रश्न होता है कि यह प्रस्थानत्रयी क्या होता है ? इसका उत्तर बहुत ही सरल है । प्रस्थान शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से हम कही पर भी जाने के लिए करते हैं । जैसे– कृपा आप भोजन के लिए प्रस्थान करें । प्रस्थान शब्द का अर्थ किसी उद्देश्य के लिए चलना अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिए किसी विशेष स्थान पर जाना होता है । यहाँ पर प्रस्थान शब्द का प्रयोग जीवन के परम लक्ष्य अथवा उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक निश्चित मार्ग पर चलना है और त्रय शब्द का अर्थ तीन होता है । अतः हमारे वैदिक साहित्य के तीन प्रमुख शास्त्रों (उपनिषद, गीता व वेदान्त दर्शन) की शिक्षाओं पर चलकर मोक्ष मार्ग को प्राप्त करने को ही प्रस्थानत्रयी कहा जाता है । या यूँ कहें कि मुक्ति अथवा मोक्ष प्राप्त करने के लिए उपनिषद, गीता व वेदान्त दर्शन की शिक्षाओं पर चलना ही प्रस्थानत्रयी कहलाता है ।

महाभारत कथा एवं प्रमुख पात्रों के प्रति भ्रांतियाँ एवं निराकरण

महाभारत काल के पात्रो की यदि हम बात करें तो योगीराज श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर धनुर्धारी अर्जुन आदि का नाम आना स्वाभाविक हैं। कृष्ण ने युद्ध के समय अर्जुन को उपदेश दिया जो संकलन के रूप में गीता का उपदेश कहलाया। लेकिन लम्बे समय तक देश की गुलामी में इतिहास को बदल दिया गया। कथा वाचक कृष्ण को माखनचोर 16000 रानियों वाला बताकर उनकी रासलीला का वर्णन करते दिखेंगे तो कोई गोपियों के कपड़े चुराने का वर्णन करेंगें आगे द्रौपदी को पाँच पतियों वाली पत्नी बताते हैं। इस तरह की बहुत सी झूठी बाते महाभारत में जोड़ दी गयी जिनका विश्लेषण जरुरी हैं।

कथावाचकों ने एक मन्त्र और गढ़ दिया कि कथन कहते है कि जब–जब धर्म की हानि होगी मैं वापस आऊँगा यानि मेरा जन्म होगा। ये सब भारत में ही क्यों होता हैं? अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंगलादेश, सीरिया आदि देशो में ये भगवान् जन्म क्यों नहीं लेता? जहाँ इंसानियत समाप्त हो चुकी है, पशु और मानव का खून सड़क पर निर्दयता से बहाया जा रहा है? ये कथावाचक हमेशा से खुद तो कायर ही रहे और साथ में वीर लोगों को भी प्रतीक्षा में बैठा दिया कि कुछ मत करो, इसी कारण धर्म की हानि होने पर प्रभु खुद आ जायेंगे। हिन्दू मंदिर लूटे गये जैसे कि सोमनाथ का मन्दिर। चमत्कारों से

प्रभावित होकर उत्पन्न हुई श्रद्धा धर्म के विनाश का कारण बनती हैं। लेकिन जिन्होंने गीता के सच्चे अर्थों को जाना हैं। जिन्होंने योगीराज श्रीकृष्ण के विचारों को आत्म सात किया वह इस चक्कर में फँस ही नहीं सकते।

श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों की जिंदगी एक बार नहीं लिखी जाती शायद सदी में बार बार लिखी जाती है हजारों लोग लिखते हैं, हजारों व्याख्या होती चली जाती हैं, फिर धीरे–धीरे श्रीकृष्ण की जिंदगी किसी व्यक्ति की जिंदगी नहीं रह जाती श्रीकृष्ण एक संस्था हो जाते हैं।

महाभारत का दुर्योधन मन का प्रतीक है।मन के जितने अवगुण होते हैं, वे सब दुर्योधन के व्यक्तित्व में निहित हैं।

"दुर्योधन अर्थात् दुर्गुण प्रधान" हमेशा, वैर, विरोध, ईर्ष्या, राग द्वेष में रहता है, दूसरों के साथ द्रोह घात करता है दुर्योधन की उग्रता का एक उदाहरण एक युधिष्ठिर और अर्जुन जैसे– उनके भाई भले ही न दें, पर भीम को चुप रह जाने और सह लेने का स्वभाव नहीं मिला था इसलिए वह दुर्योधन को जैसे को तैसा का पाठ पढ़ाने में कोई कसर नहीं रखता था। बार–बार अपमानित और परास्त होने पर दुर्योधन के मन में सभी पाण्डु–पुत्रों के प्रति ईर्ष्या गहरी होती गयी और भीम के प्रति तो वह ईर्ष्या बाल्यकाल से ही द्वेष भावना में परिणत हो चुकी थी। सभी को सदा के लिये रास्ते से हटा देने की योजना को कार्य रूप में परिणत किया। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि दुर्योधन की प्रवृत्ति सद्गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों की ओर अधिक थी और उस विनाशकारी युद्ध का मूल कारण भी उसी अमर्यादित महत्वकांक्षा और अन्यायपूर्ण हठ में निहित था।

ध्यान से पढ़े तो भागवत के श्रीकृष्ण में और महाभारत के श्रीकृष्ण में ताल–मेल समझना कोई बड़ी बात नहीं। दोनों में बड़ा अंतर दिखेगा। गीता के श्रीकृष्ण बड़े गम्भीर हैं। धर्म, आत्मा–परमात्मा योग और मोक्ष की बात करते हैं। कहते हैं। जब मनुष्य आसक्ति रहित होकर कर्म करता हैं। तो उसका जीवन यज्ञ हो जाता हैं। किन्तु भागवत के श्रीकृष्ण एकदम गैर गम्भीर वे माखन चुरा रहे हैं। नहाती हुई लड़कियों के कपड़े चुरा रहे हैं। कितना अन्तर हैं दोनों में एक तरफ दिव्य आत्मा हैं जो परम को जानता हैं, जो रण में निराश अर्जुन को आरम्भ और अंत की व्याख्या सहज भाव से गम्भीर मुस्कुराहट के साथ समझा रहे हैं कि अर्जुन तू रुक भाग मत क्योंकि जो भाग गया स्थिति से वह कभी भी स्थिति के ऊपर नहीं उठ पाता जो परिस्थिति से पीठ कर गया वह हार गया। दूसरी ओर भागवत में एक स्वरचित पात्र हैं जो चोरी कर रहा हैं और माँ से झूठ बोल रहा हैं। क्या दोनों एक हो सकते हैं?

महाभारत में धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक, नैतिक, लौकिक व परलौकिक आदि विषयों का गहन अध्ययन हुआ है। गृहस्थ व सन्यासी जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं

रहा है। धर्म, राजनीति, पारिवारिक, अनुशासन, जप, तप, यज्ञ, हवन, शिष्टाचार, सदाचार, आध्यात्म, वीरता, शरणागत, वत्सलता, दया, क्षम, तितिक्षा, परोपकार आदि संसार को सुखमय शांतिमय और तेजस्वी बनाने वाले प्रंसग ही केवल इसमें नहीं अपितु संसार के प्राणिमात्र का कल्याण करने वाली सूक्तियाँ भी दी गई हैं।

महाभारत के पात्र भारतीय जनता के लिये जीवन के अमर नायक बन गये हैं। भारतीय समय में भीष्म के नाम के साथ उनके ब्रहाचर्य, विलक्षण त्याग, निग्रह, पराक्रम, और ज्ञान गौरव की कथा भारतीय इतिहास में अमर है और हमेशा अमर रहेंगी। युधिष्ठिर का सत्यादि, द्रौपदी का पातिव्रत्य, पाण्डवों का बन्धुत्व भाव आदि भारतीय समाज के आदर्श हैं।

इस अध्याय में महाभारत से जुड़ी बहुत सी घटनाओं और प्रमुख पात्रों के विषय में विश्लेषण किया गया हैं।

पाण्डवों का जन्म

प्रचलित कथा : पाँचों पांडवों का जन्म बिना पिता के वीर्य के हुआ था। एक बार राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियों कुन्ती तथा माधुरी के साथ आखेट के लिये वन में गये। वहाँ उन्हें एक मृग का मैथुनरत जोड़ा दृष्टिगत हुआ। पाण्डु ने तत्काल अपने बाण से उस मृग को घायल कर दिया। मरते हुये मृग ने पाण्डु को शाप दिया, ''राजन! तुम्हारे समान क्रूर पुरुष इस संसार में कोई भी नहीं होगा। तूने मुझे मैथुन के समय बाण मारा है अतः जब कभी भी तू मैथुनरत होगा तेरी मृत्यु हो जायेगी।''

इस श्राप से दुःखी पाण्डु अपनी पत्नी के साथ वन में रहने लगे, इसी दौरान राजा पाण्डु ने अमावस्या के दिन ऋषि–मुनियों को ब्रह्मा जी के दर्शनों के लिये जाते हुये देखा और उन्होंने उन ऋषि–मुनियों से स्वयं को ब्रह्मलोक साथ ले जाने के लिए कहा परन्तु ऋषि–मुनियों ने कहा संतानहीन व्यक्ति ब्रह्मलोक जाने का अधिकारी नहीं होता, अतः हम आपको अपने साथ ले जाने में असमर्थ हैं।''

ऋषि–मुनियों की बात पर कुन्ती बोली, ''हे आर्यपुत्र! दुर्वासा ऋषि ने मुझे ऐसा मन्त्र प्रदान किया है जिससे मैं किसी भी देवता का आवाहन करके मनोवांछित वस्तु प्राप्त कर सकती हूँ। आप आज्ञा करें मैं किस देवता को बुलाऊँ।'' इस पर पाण्डु ने धर्म को आमन्त्रित करने का आदेश दिया। धर्म ने कुन्ती को पुत्र प्रदान किया जिसका नाम युधिष्ठिर रखा गया। कालान्तर में पाण्डु ने कुन्ती को पुनः दो बार वायुदेव तथा इन्द्रदेव को आमन्त्रित करने की आज्ञा दी। वायुदेव से भीम तथा इन्द्र से अर्जुन की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् पाण्डु की आज्ञा से कुन्ती ने माद्री को उस मन्त्र की दीक्षा दी। माद्री ने अश्वनीकुमारों को आमन्त्रित किया और नकुल तथा सहदेव का जन्म हुआ।

सत्यता की परख

पाण्डवों एवं कर्ण का जन्म उनकी माताओं के गर्भ से ही हुआ था। कुंती और माद्री वास्तविक रूप से गर्भवती हुईं थीं। वे धारवाहिकों में जैसा दिखाते हैं वैसे देवताओं द्वारा ऐसे ही प्रकट नही हो गए थे। ऐसा कहना बिल्कुल असम्भव अवैज्ञानिक और अप्राकृतिक है। इस तरह की बेतुकी कथा लिखने और इन पर अँधा विश्वास करने से बचना चाहिए इससे हमारे धर्म और महापुरुषों के चरित्र को बिगड़ने का दोष लगता है।

पाण्डवों के पिता का नाम पाण्डु था वे बड़े ही प्रतापी कुरुवंशीय राजा थे। राजा पाण्डु की दो पत्नियाँ थीं – कुन्ती तथा माद्री। युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन की माता कुन्ती थी और नकुल एवं सहदेव माद्री के पुत्र थे।

इस कथा का कोई वास्तविक प्रमाण, साक्षी भी नहीं है। महाभारत की घटना हजारों वर्ष पुरानी है किसी लेखक ने तुक्काबाजी करते समय ईश्वर के विधान और विज्ञान को दिमाग में नहीं रखा।

महाभारत के विषय मे तत्कालीन प्रमानिक साहित्य

महाभारत से सम्बन्धित 'महाभारत' तीन पर्वो मे विभाजित है। महाभारत के तीन पर्वों शांति, अनुशासन और वनपर्व से कुछ खास सीख जो हर इंसान को जीवन में कभी ना कभी, कहीं ना कहीं काम आ सकती हैं। ये हैं वो 8 सीखें

1. धर्म में अस्था न रखने वाले और सज्जन या ज्ञानी लोगों का मजाक उठाने वाले लोगों का विनाश जल्दी ही हो जाता है। – (महाभारत, वनपर्व)
2. झूठ बोलना या झूठ का साथ देना एक ऐसा अज्ञान है, जिसमें डूबे हुए लोग कभी भी सच्चे ज्ञान या सफलता को नहीं पा सकते। – (महाभारत, शांतिपर्व)
3. धरती पर अच्छा ज्ञान या शिक्षा ही स्वर्ग हैं और बुरी आदतें या अज्ञान ही नरक है। – (महाभारत, शांतिपर्व)
4. मोह या लालच से मनुष्य को मृत्यु और सत्य से लंबी आयु और सुखी जीवन मिलता है। – (महाभारत शांतिपर्व)
5. जिस काम को करने के पुण्य की प्राप्ति हो या दूसरों का भला हो, उसे करने में देर नहीं करनी चाहिए। जिस पल वे काम करने का विचार मन में आए, उसी पल उसे शुरु कर देना चाहिए। – (महाभारत, शांतिपर्व)
6. पुण्य कर्म जरुर करना चाहिए, लेकिन उनका दिखावा बिल्कुल भी न करें। जो मनुष्य लोगों के बीच तारीफ पाने के लिए या दिखावे के उद्देश्य से पुण्य कर्म करता है, उसे उसका शुभ फल कभी नहीं मिलता। – (महाभारत, अनुशासनपर्व)

7. सभी लोगों के साथ एक सा व्यवहार करने वाला और दूसरे के प्रति मन में दया और प्रेम की भावना रखने वाला मनुष्य जीवन में सभी सुख पाता है। – (महाभारत, वनपर्व)

8. अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले मनुष्य को जीवन में किसी भी तरह के कष्ट का सामान नहीं करना पड़ता है। ऐसे मनुष्य के मन में दूसरों का धन देखकर भी जलन जैसी भावनाएं नहीं आती। – (महाभारत, वनपर्व)

अध्याय- 1

योगीराज श्रीकृष्ण जी महाराज



महापुरुष कृष्ण का जन्म उस काल में हुआ था जब राजा सत्ता की भूख में विवेकशून्य हो चुके थे और राजाओ का ध्यान जन सेवा के लिए नहीं अपितु इन्द्रियवासनाओं की तृप्ति और ऐश्वर्य–प्रदर्शन की तरफ रह गया था। चारो तरफ बाह्य आडम्बर का प्रसार दिखाई देता था। भारत में चारों ओर परस्पर इर्ष्यालु अनेक छोटे बड़े स्वतन्त्र राज्य फैले हुए थे। वे धन, धान्य आदि सुखोपभोग की सभी सामग्रियों से समृद्ध थे और उनके नरेश शस्त्रविद्यापारङ्गत और वीर होते हुए भी मद्यपान और द्यूतक्रीड़ा आदि विविध दुर्व्यसनों में रत रहते थे। उनमें कोई चक्रवर्ती राजा न था।

यद्यपि उस समय मगध नरेश जरासंध की शक्ति की धाक सर्वत्र बैठी हुई थी, उसने बहुत से राजाओं को अपने यहाँ बन्दी बना रखा था। सब राजा उसके अत्याचार से डरते रहते थे और उसके बल का लोहा मानते थे । चेदिदेश का राजा शिशुपाल को भी उस समय महाशक्तिशाली समझा जाता था । प्राग्ज्योतिष (आसाम) का राजा नरकासुर भी बड़ा दुराचारी और बलवान् माना जाता था ।प्राग्ज्योतिषपुर, जिसका अर्थ है ''पूर्वी रोशनी का शहर'', वर्तमान गुवाहाटी का प्राचीन नाम है। यह असम राज्य के गुवाहाटी क्षेत्र में स्थित था और वर्मन राजवंश के कामरूप राज्य की राजधानी भी था, उसने अपने दुराचार के लिए असंख्य सुन्दरी कुमारियाँ अपने यहाँ बन्दी बना कर रखी हुई थीं।

उस समय कोई सर्वोपरि सम्राट् विद्यमान न था। उसी समय शूरसेन (मथुरा) के राजा कंस की राज्यलोलुपता इस सीमा तक बढ़ चुकी थी कि वह अपने वृद्ध पिता महाराज उग्रसेन को बन्दी बना कर स्वयं सिंहासनारूढ़ हो गया था। हस्तिनापुर के विशाल राज्य में राज्य सिंहासन के लिये कौरव और पाण्डवों में भयंकर गृह कलह मच रहा था। उस

समय राजाओं और राजघरानों का चरित्र बहुत ही गिर चुका था। सत्यवती और कुन्ती के कानीन पुत्रों की उत्पत्ति, द्रौपदी का पञ्चपतित्व, कौरवों का लाक्षागृह, युधिष्ठिर की द्यूतक्रीड़ा, द्रौपदी का भरी सभा में अपमान और अर्जुन का सुभद्राहरण इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। कुन्ती के कानीन पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव थे। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन कुन्ती के पुत्र थे, जबकि नकुल और सहदेव माद्री के पुत्र थे।

जब राजा और राजपुरुष ही चरित्रहीन हो जाये तो प्रजा का चरित्र कैसे उच्च रह सकता है ? उनमें भी इन्द्रियासक्ति और दुर्योधनादि के अत्याचारों के प्रति विरक्ति तथा कायरता प्रसार पा चुकी थी। ''यथा राजा तथा प्रजा'' के अनुसार जनता भी अपने प्रभुओं का अनुकरण करती थी। उसमें विलासिता और अर्थलोलुपता दिनों दिन बढ़ रही थी। अनेक विद्या विशारद बाह्मण धन के लालच में दास होकर राजकुलों की सेवा स्वीकार करने लगे थे, जैसा कि गुरु द्रोणाचार्य कौरवों के अर्थक्रीत दास बन कर उनके द्रौपदी के प्रति किये हुए महान् अत्याचार पर भी चुप रहे थे और उनकी ओर से महाभारत युद्ध में सेनापति बन कर लड़े थे।

वैश्य, शूद्र और स्त्रियों को हीन समझा जाने लगा था, जिसका कि श्रीमद्भगवद्गीता में उल्लेख पाया जाता है। एकलव्य को केवल शूद्र होने के कारण द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या नहीं सिखलाई थी। वेद का पठन–पाठन भी शनैः शनैः घट रहा था। भीष्म पितामह जैसे परम ज्ञानी भी वेद में प्रवेश न रखते थे, इसका उल्लेख शान्ति पर्व में विद्यमान है। महाभारत युद्ध की कई घटनाएँ बता रही हैं कि उस समय धर्म का ह्यस और अधर्म की वृद्धि हो रही थी। ऐसे धर्मसंकट के अवसरों पर ही परम पिता परमात्मा की परम्परागत धर्म–रक्षाकारिणी व्यवस्था के अनुसार धर्मोद्धारक महापुरुषों का आविर्भाव हुआ करना है, जिनकी असाधारण प्रतिज्ञा व कार्यों को देखकर जनता में उनके नित्य, शुद्ध, बुद्ध, विसु, मुक्त, अकाय, अजन्मा परमब्रह्म के अवतार होने (शरीर धारण करने) का मिथ्याज्ञान संसार में फैल जाता है। यदि अवतार का अर्थ परमेश की विभूतियों से विशिष्ट (क्योंकि उपासक अपने उपास्य देव की विभूतियों और गुणों को उपासना द्वारा सदैव ग्रहण करते रहते हैं) अनेक जन्म की संस्कारसम्पन्न आत्माओं के धराधाम पर पुनः अवतीर्ण होने व जन्मने का लिया जाय, तो इसमें वैदिक सिद्धान्त की कुछ भी क्षति नहीं है।

ऐसे ही जन्मजन्मान्तर के संस्कृतात्मा तथा विविध विभूति विशिष्ट एक महापुरुष का लोकाभ्युदय–कारक अवतार व आविर्भाव आज (संवत् 1981 वि०) से 5252 वर्ष पूर्व भाद्रपद वदि अष्टमी, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र में उत्तर भारत के शूरसेन देश की राजधानी मथुरा में हुआ था। इसी शूरसेन देश के राजा उग्रसेन को उसका दुराचारी पुत्र कंस गद्दी से उतार कर आप राजा बन बैठा था।

कंस को जरासन्ध की दो पुत्रियाँ अस्ति और प्राप्ति नामक ब्याही थीं और अपने अत्याचारी श्वशुर के बूते पर वह हजारों अत्याचार कर रहा था। प्रजा उसके उत्पीड़न

से तंग आ गई थी, प्रजा को कंस के अत्याचार से बचाने का जो लोग प्रयास करते थे, उनको कैद में डाल दिया जाता था।

उस समय वसुदेव नामक एक वीर कंस के प्रति आवाज उठाने में सबसे आगे था, वह अत्यंत न्याय प्रिय था, इसलिये कंस उससे सदैव जलता रहता था और भयभीत भी रहता था। उग्रसेन के कनिष्ठ भ्राता देवल की कन्या अर्थात् कंस की चचेरी भगिनी देवकी श्री वसुदेवजी को ब्याही थी। कंस, वसुदेव तथा देवकी की तेजस्विता से आशंकित रहकर उनके नाश के प्रयत्न में सदा तत्पर रहता था । अन्त को उसने वसुदेव देवकी को उनके गृह में अवरुद्ध (नजरबन्द) कर दिया। किसी ने उसको यह सुझा दिया था कि देवकी के पुत्र के हाथ से तुम्हारा वध होगा, इसलिए उसने देवकी के छः पुत्रों को जन्मते ही मार डाला। सातवें गर्भ का, भावी नाश के भय से, मध्य में ही पात हो गया। श्री वसुदेवजी अपनी जेष्ठा गर्भवती भार्या रोहिणी को कंस के अत्याचार की आशंका से गोकुल निवासी अपने मित्र नन्द नामक गोपाधिपति के घर पहुँचा आए थे।

भाद्रपद कृष्णाष्टमी की अंधियारी आधी रात को घोर वृष्टि के समय देवकी के आठवें पुत्र का जन्म हुआ। वर्षा की शीतल वायु ने पहिरेदारों को थपकी देकर घोर निद्रा की गोद में सुला दिया। उसी समय वसुदेव उस बालक को रातों रात यमुना पार करके नन्द के यहाँ गोकुल में पहुंचा आए और उसी रात नन्द के यहाँ उसकी स्त्री यशोदा की कोख से तुरन्त की जन्मी हुई कन्या को उसके बदले में उठा लाए और उसको देवकी के पास लाकर लिटा दिया। कंस ने उसको देवकी की कन्या समझ कर मार डाला । इसके पहिले ही नन्द के यहाँ रहने वाली वसुदेव की ज्येष्ठा भार्या रोहिणी के यहाँ भी पुत्र का जन्म हो चुका था। इसका नाम बलराम रक्खा गया था। देवकी का पुत्र भी कृष्ण नाम से गोकुल में नन्द के यहाँ गोपों में पलता रहा।

उस समय भारत में नगरों के निकट बड़े –बड़े वन चारो तरफ फैले हुए थे, जिनमें लाखो गौवें चर कर भव्य भारत को घृत और दुग्ध के प्रभाव से आप्यायित करती रहती थीं। मथुरा राजधानी के चारों ओर भी ऐसा ही विशाल वन विद्यमान था। उसी में गोपाधिप नन्द का अगणित गौवों का कुल रहता था और वह स्थान अपने अन्वर्थ नाम से गोकुल विख्यात था । वस्तुतः गौओं के ब्रज (समूह) के आवास के कारण ही मथुरा के चारों ओर की वनस्थली की व्रज वा बज–मण्डल संज्ञा हो गई थी। गोप लोग उसी ब्रज–मण्डल के निवासी थे। वे अपने गोसमूह को साथ लिए हुए यत्र–तत्र कुछ दिन बसते हुए घूमते रहते थे। ये लोग स्वभाव के सरल, सहृदय तथा शरीर के हुष्ट–पुष्ट और बलिष्ठ होते थे । मन और आत्मा को आनन्दित करके शान्ति देने वाला संगीत (गीत–वाद्य), शारीरिक विकास के अद्वितीय साधन गोदुग्ध और घृत का आहार तथा मल–कला का अभ्यास उनके अहर्निश के समय–यापक प्रिय व्यापार थे । ऐसे लोगों में पल कर श्रीकृष्ण दिनोदिन चन्दमा के समान वृद्धि को प्राप्त होने लगे। गोपों का

निष्कपट प्रेम, वनों का बलप्रद यमुना तीरवर्ती स्वतन्त्र धीर समीर और आनन्दमय सरल जीवन का निष्पाप वायुमण्डल, इन बातों ने मिल कर सहज सुन्दर श्याम शरीर श्रीकृष्ण को निष्कपट प्रेमी और अतुल पराक्रमी बना दिया।

बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भ्राता अन्य गोप–बाल बालिकाओं के साथ क्रीड़ा में रत रहकर नन्द, यशोदा, रोहिणी और गोकुल के गोपमात्र को अपनी बाल लीला से हर्षित करते रहते थे। गोपों के साथ रह कर श्रीकृष्ण मल्ल कला और वेणुवादन वा वंशी बजाने में अति प्रवीण हो गए। उनकी सुरीली मुरली के कारण ही उनका नाम मुरलीमनोहर वा मुरलीधर पड़ गया था । वे मल्लकला में भी पूर्ण सिद्धहस्त हो गए थे। संगीत और मल्लकला में वे सब गोपों में अग्रणी माने जाने लगे। श्रीकृष्ण अपने इन गुणों तथा प्रेम और पराक्रम से गोपों के अत्यंत प्रेमपात्र बन गए। बाल्यकाल में ही उन्होंने शारीरिक बल का अद्‌भुत परिचय दिया। ब्रज के उत्तर ओर यमुना के एक हद में एक (महाभयंकर काला अजगर रहता था, जो कलियाँ नाम से प्रसिद्ध था। उसके भय से आसपास के पशु पक्षी यमुना के उस तट पर नहीं जाते थे। किशोर श्रीकृष्ण ने उस अजगर को वहाँ से मार भगाया।

गोवर्धन पर्वत के उत्तर ओर यमुना के तट पर लालवन में वनगर्दभ बड़ा उपद्रव मचाते थे । इनमें से एक बड़े बलवान् धेनुक नामक गर्दभ–राज को बलराम ने अपनी मल्लकला के बल से मार डाला, जिससे वह वन उन वनगर्दभों के उपद्रव से रहित हो गया। श्रीकृष्ण को उन्मत्त बैलों के गुद्ध देखने की बड़ी रुचि थी। अन्य गोप भी ऐसे दृश्यों से बड़े प्रसन्न होते थे। यदि कोई अत्यन्त उन्मत्त बैल अवश्य वा बेकाबू होकर दर्शकों पर पलट पड़ता था तो श्रीकृष्ण ही उसको अपने बाहुबल से वश में लाते थे। इसी प्रकार श्रीकृष्ण तथा बलराम के शारीरिक बल की ख्याति चारों ओर फैलने लगी और वह धीरे धीरे कंस के कानों तक भी जा पहुंची। उसके गुप्तचरों ने खोज करके पता पा लिया कि श्रीकृष्ण और बलराम वस्तुतः वसुदेव के पुत्र हैं और उसने उनको नन्द के यहाँ गुप्तरूप से सुरक्षित रख छोड़ा है। यह जानकर कंस को बड़ी चिन्ता हुई और उसने नन्द के यहां ही कृष्ण के वध के अनेक उपाय किए, पर वे सब विफल हुए ।

उसने कृष्ण को मारने के लिए नरपिशाची पूतना तथा अघासुर आदि अनेक नृशंसों को ब्रज में भेजा, पर उन्होंने पराक्रमी श्रीकृष्ण के अमोध भुजदण्ड से मृत्यु के मुख में प्रवेश पाया।

श्रीकृष्ण के इन असाधारण पराक्रमपूर्ण बालचरित्रों को श्रीमद्‌भागवत आदि में चमत्कार रूप में वर्णन किया गया है, जो श्रीकृष्ण को साक्षात् ब्रह्म का पूर्णावतार मानने वालों के लिए स्वाभाविक ही है। किन्तु यदि उन सारे कृत्यों को ऐतिहासिक व मानवीय दृष्टि से देखा जाय तो उनमें कुछ भी अस्वाभाविकता व अलौकिकता नहीं है।

महापराक्रमी महापुरुष अपने भावी उत्कर्ष का परिचय अपनी बाल्यावस्था से ही दिया करते हैं। और वे सर्वसाधारण के अपवादस्वरूप होते हैं। अपने प्रयत्नों में विफल मनोरथ होकर कंस ने श्रीकृष्ण और बलराम के नाश के लिए एक और षड्यंत्र रचा। उसने मल्लकला में मल्लों के नैपुण्य प्रदर्शनार्थ एक मलयुद्ध की प्रदर्शनी की आयोजना की और अपने यहाँ के प्रसिद्ध मल्ल चाणूर और मुष्टिक के साथ मल्लयुद्ध करने के लिए कृष्ण और बलराम को बुलाने को व्रजमण्डल में अक्रूर नामक वृद्ध यादव को भेजा। अक्रूरं वहां जाकर कृष्ण और बलराम को अन्य बहुत से ब्रजवासियों सहित मथुरा लिवा लाया। वहां पहुंच कर प्रथम तो श्रीकृष्ण ने अपने अमोध बल से अपना मार्ग रोकने वाले कंस के हाथी को उसका दांत उखाड़ कर मार गिराया और फिर कंस के विख्यात मल्लों मुष्टिक और चाणूर को मल्लयुद्ध में वध करके कंस को भी चोटी पकड़ कर उसके सिंहासन से नीचे घसीट लिया और तत्काल उसकी मृत्यु हो गयी और उसके पापी देह से सदा के लिए विदा कर दिया।

श्रीकृष्ण कंस को मार कर उसके सिंहासन के अधिकारी स्वयं नहीं बने। वे उसके पिता उग्रसेन को सम्मान पूर्वक राजगद्दी पर बिठला कर आप एक सामान्य प्रजाजन के समान अपने माता–पिता वसुदेव देवकी के पास मथुरा में रहने लगे। मथुरा की इस राज्यक्रान्ति से भारत में सर्वत्र श्रीकृष्ण की ख्याति फैल गई। और उस समय के अत्याचारी राजा उनको अपना शत्रु समझने लगे ।

मगध नरेश जरासन्ध कंस का वध सुनकर अत्यंत क्रोधित हुआ। श्रीकृष्ण पर उसके कोप की सीमा न रही। उसने भारी सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण किया। श्रीकृष्ण ने यादवों की वीरवाहिनी से जरासन्ध के आक्रमण को विफल करके उसको वहाँ से मार भगाया । परन्तु कुछ दिनों पश्चात् जरासन्ध ने नई सेना लेकर अपने मित्र नरेशों सहित मथुरा पर फिर चढ़ाई की। मथुरा के वीर पूर्वायुद्ध से श्रांत थे, इसलिए इस बार उन्होंने जरासन्ध का सामना करना उचित न जाना और यह उपाय सोचा गया कि मथुरा को इस संकट से बचाने के लिए श्रीकृष्ण पर्वतों पर चले जायें । वहाँ पर्वतों में जरासन्ध को दक्षिण की ओर के उनसे युद्ध करना कठिन हो जायगा । तदनुसार श्रीकृष्ण मथुरा से दक्षिण के गोमन्त पर्वत पर चले गए । जरासन्ध भी ससैन्य उनका पीछा करता हुआ वहीं पहुँचा। गोमन्त पर्वत पर श्रीकृष्ण ने जरासन्ध की सेना के छक्के छुड़ा दिए और वहां से उसको अपने प्राण लेकर भागना पड़ा । दक्षिण में ही श्रीकृष्ण ने यादवकुलोत्पन्न करवीर–नरेश शृगाल को युद्ध में मार कर उसके पुत्र को उसके राज्यसिंहासन पर बैठाया और वहां से चलकर वे फिर मथुरा लौट आए ।

नन्द के यहाँ बाल और किशोर अवस्था बिताते हुए श्रीकृष्ण ने नियम पूर्वक गुरुकुल में रहकर विद्याभ्यास न किया था, न उनका अभी तक यथाशास्त्र उपनयन संस्कार ही हुआ था, इसलिए मथुरा आने पर अब 21 वर्ष की आयु में उनका और बलराम

का यज्ञोपवीत–संस्कार करके उनको उज्जयिनी में सान्दीपनिकाश्य के गुरुकुल में नियमपूर्वक शास्त्र और शस्त्रविद्या के अभ्यास के लिए भेजा गया। वहाँ रह कर वे शीघ्र ही सांगोपाङ्ग वेदों और धनुर्विद्या के पारङ्गामी हो गए।

गुरुकुल में वे अपने सहाध्यायी सुदामा आदि के साथ वन में समिधा, कुश और फल लाने तथा गो–पालन आदि गुरुसेवा में समान रूप से तत्पर रहते थे। गुरुकुल में विद्या समाप्त करके अपना समावर्तन करा कर वे पुनः मथुरा लौट आए और अपने माता–पिता के पास रहने लगे। इसी समय उनको अपने सम्बन्धियों का परिचय पाने और उनसे मिलने का अवसर मिला । उनके पिता वसुदेव की भगिनी प्रथा उपनाम कुन्ती हस्तिनापुर के राजा पाण्डु को विवाही थी। वानप्रस्थी पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् वह अपने छोटे पुत्रों की रक्षा के लिए अपने मातृधर्म के पालनार्थ उनको लेकर हिमालय से हस्तिनापुर आ गई थी। श्रीकृष्ण ने अक्रूर को उसके पास यह सन्देश देकर भेजा कि पराक्रमी कृष्ण तुम्हारे बालकों के सदा संरक्षक रहेंगे। उन्होंने हस्तिनापुर के अधिराज धृतराष्ट्र, भीष्म और द्रोणादि से भी यह कहला भेजा कि मेरे फुफेरे भाइयों का यथोचित पालन कीजिए । उस समय कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की अवस्था क्रमशः 7, 6 और 5 वर्ष की थी। श्रीकृष्ण उस समय 25 वर्ष के युवा थे ।।

चेदि देश के राजा दमघोष की स्त्री अर्थात् शिशुपाल की माता भी महाराज वसुदेव की भगिनी और श्रीकृष्ण की बुआ थी, किन्तु उसका पुत्र शिशुपाल कृष्ण से शत्रुता रखता था। उन्हीं दिनों विदर्भ (वर्तमान बरार) के राजा भीष्मक ने अपनी राजधानी कुण्डिनपुर में अपनी रूपवती कन्या रुक्मिणी का स्वयंवर रचाया। भीष्मक और उसका पुत्र रुक्मी जरासंध के दल में थे, इसलिए उन्होंने श्रीकृष्ण को स्वयंवर का निमन्त्रण नहीं भेजा, परन्तु रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पराक्रमों की कथा सुनकर उनको मन ही मन अपना पति वर चुकी थी। श्रीकृष्ण भी गुप्त रूप से इसका समाचार पाकर स्वयंवर में जा पहुँचे। परन्तु जरासन्ध और शिशुपाल आदि श्रीकृष्ण के इर्ष्यालु राजाओं ने कृष्ण के मूर्धाभिषिक्त राजा न होने का बहाना बनाकर उनको स्वयंवर में सम्मिलित न होने दिया और इस गड़बड़ में स्वयंवर ही विलम्बित कर दिया गया।

अब तीसरी बार जरासंध ने फिर मथुरा पर चढ़ाई की। उसने पश्चिम की ओर से सम्भवतः भारतीय सीमा के बाहर से कालयवन को उभार कर मथुरा पर आक्रमण कराया और स्वयम् पूर्व की ओर से चढ़ दौड़ा। श्रीकृष्ण ने इस सम्मिलित शत्रुसेना का सामना करने में यादवों को अशक्त पाकर पूर्व ही मथुरा को त्याग कर आनर्त (वर्तमान गुजरात देश) के निकट कुशस्थली द्वीप से अपने बन्धुबान्धवों को जा बसाया और उस नई बसीयत का नाम द्वारिका रखा, जो समय पाकर यादवों की समृद्धिशालिनी राजधानी तथा पुराणों की सप्तपुरियों में प्रसिद्ध द्वारिकापुरी बन गई और श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी वहाँ के सम्राट् अभिषिक्त हुए । कालयवन और जरा–सन्ध की सेना कृष्ण सा पीछा करती हुई

पर्वतों में पहुँच कर नष्ट–भ्रष्ट हो गई और कालयवन भी वहीं मृत्यु का ग्रास बन गया। फिर जरासन्ध को कृष्ण पर चढ़ाई करने का साहस न हुआ ।

कृष्ण का विवाह



पुराण–लेखकों ने श्री कृष्ण पर बहुविवाह के जो मिथ्या आरोप लगाये हैं वे सब कपोल–कल्पित हैं। वस्तुतः रुक्मिणी ही कृष्ण की एकमात्र विवाहिता पत्नी थी । यह विदर्भराज भीष्मक की पुत्री थी । 'भागवत' में लिखा है कि राजा भीष्मक भी अपनी पुत्री का विवाह श्री कृष्ण के ही साथ करना चाहते थे, परन्तु उनके पुत्र रुक्मी की इसमें सम्मति नहीं थी। वह चेदिराज दमघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहता था।(भागवत १०, अध्याय 52) अन्त में पुत्र की इच्छा की ही विजय हुई और शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के विवाह का निश्चय हो गया ।

रुक्मिणी स्वय कृष्ण के अपूर्व रूप एवं गुणों की चर्चा सुन चुकी थी । उसे यह समाचार सुनकर बड़ा खेद हुआ कि उसका विवाह उसकी इच्छा के प्रतिकूल हो रहा है। उसने एक वृद्ध ब्राह्मण द्वारा अपना प्रणय–संदेश श्री कृष्ण के पास द्वारिका भेजा। रुक्मिणी के सन्देश का अभिप्राय यह था कि अमुक दिन शिशुपाल मेरा परिणय करने के लिए आयेगा परन्तु मैंने तो अपने को आपके प्रति समर्पित कर दिया है। आप मेरे उद्धारार्थ आयें, मैं नगर के बाहर निश्चित समय पर आपकी प्रतीक्षा करूंगी।

रुक्मिणी का उपर्युक्त संदेश पाकर कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने सारथी को रथ तैयार करने और विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर चलने का आदेश दिया। नियत समय पर रथारूढ़ होकर उन्होंने विदर्भ की ओर प्रस्थान किया। उधर शिशुपाल को भी यह समाचार मिल गया कि कृष्ण रुक्मिणी–हरण का प्रयत्न अवश्य करेंगे । इसलिये वह भी विवाह के अवसर पर अपने मित्र राजाओं को सेना–सहित लेकर कुण्डिनपुर पहुँचा । नियत समय पर रुक्मिणी नगर के बाहर उद्यान में भ्रमणार्थ आई और वहाँ पहले से ही उपस्थित कृष्ण ने उसके द्वारा दिये संकेत को समझकर उसे अपने रथ पर बिठाया और द्वारिका के लिए प्रस्थान किया। रुक्मिणी को इस प्रकार आसानी से कृष्ण के द्वारा अपहृत होता देखकर शिशुपाल के क्रोध का पार न रहा। उसने कृष्ण पर आक्रमण किया, किन्तु बलराम अपने यादव–दल के साथ कृष्ण की सहायता हेतु वहाँ पर उपस्थित थे। उन्होंने शिशुपाल की सेना को मार भगाया। जब रुक्मिणी के हरण का समाचार रुक्मी को मिला तो उसने श्री कृष्ण का पीछा किया, किन्तु वह कृष्ण के हाथों परास्त हुआ और कृष्ण

ने दण्डस्वरूप अपने शस्त्र से उसके सिर का मुण्डन कर उसे विरूप कर दिया। अन्त में रुक्मिणी और बलराम के कहने से वे अपने साले को छोड़ देने पर राजी हुए। इस प्रकार विरोधी को पराजित कर वे सकुशल द्वारिका पहुँचे। वहाँ वैदिक विधि से उन्होंने रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया।(भागवत, दशम स्कन्ध, उत्तरार्द्ध, अध्याय 52,53,54)

प्रश्न -क्या कृष्ण और रूक्मणी का विवाह शास्त्रों के अनुसार निषेध था?

उत्तर– ये प्रश्न विधर्मी अक्सर उनपर को चरित्रहीन सिद्ध करने का प्रयास करते है। 'मनुस्मृति' में वर्णित आठ प्रकार के विवाहों में एक प्रकार राक्षस विवाह का भी है। (अध्याय 6।21) इसके अनुसार कन्या का बलात् हरण कर उससे विवाह किया जाता है। उक्त स्मृति ने राक्षस–विवाह को क्षत्रियों के लिए प्रशस्त बताया है। इस विवाह के अच्छे–बुरे दोनों पहलू हैं। यदि कन्या की इच्छा के प्रतिकूल उसका अपहरण किया जाता है तब तो यह स्पष्ट ही अधर्म–कृत्य है। परन्तु एक परिस्थिति ऐसी आ सकती है जबकि कन्या तो वर को पसन्द करे किन्तु उसके माता–पिता की सम्मति उसे इच्छुक वर के साथ ब्याह देने की नहीं होती। ऐसी स्थिति में प्राचीन काल में कन्या–हरण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रहता था। अतः,यह कहना कि राक्षस–विवाह निश्चित रूप से अन्यायपूर्ण, अत्याचारयुक्त अथवा बलात्कार का प्रतीक है, अनुचित होगा । यहाँ रुक्मिणी–हरण के प्रसंग में भी जो कुछ घटनायें घटीं, वे रुक्मिणी की इच्छा के अनुकूल ही थीं।

कृष्ण के साथ सम्बन्ध होने से रुक्मिणी को प्रसन्नता ही हुई क्योंकि रूप, गुण और योग्यता की दृष्टि से कृष्ण ही उसके अनुकूल पति हो सकते थे। आज चाहे राक्षसविवाह का विधान विद्यमान सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से कितना ही अनुचित अथवा आपत्तिजनक क्यों न दीख पड़े, परन्तु कृष्ण के युग में परिस्थितियाँ भिन्न थीं । उस युग में राक्षस–विवाह को अनुचित नहीं माना जाता था, अतः तत्कालीन आचार–शास्त्र के मापदण्डों से ही हमें रुक्मिणी–हरण की घटना की आलोचना करनी चाहिए। जब हम 'महाभारत'–युग की सामाजिक मान्यताओं के आधार पर इस घटना की समीक्षा करते हैं तब हमें उसमें कुछ भी अनुचित नहीं दिखता।

शादी के पश्चात् रुक्मणी और उनके पति कृष्ण ने 12 वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत के लिए घोर तपस्या करके एक पुत्र पैदा किया, जिसका नाम प्रद्युम्न था, जो कृष्ण जी के अनुसार ही शरीर सौष्ठव एवं शरीर बनावट से पूर्णतया श्री कृष्ण जी के अनुसार ही मिलता जुलता था। वही शरीर, वही कद काठी थी। कभी–कभी पीछे से माता रुक्मणी को भी संदेह हो जाया करता था कि कृष्ण जी हैं अथवा प्रद्युम्न बेटा है। श्री कृष्ण जी महाराज के पास सुदर्शन चक्र एक वैज्ञानिक यंत्र था। जिसका अनुप्रयोग उन्होंने धर्म की स्थापना करने के लिए विशेष प्रतिकूल परिस्थितियों में ही किया। कभी अपने सुदर्शन चक्र का एवं शक्ति का दुरुपयोग श्री कृष्ण जी ने नहीं किया। जहाँ किया वहाँ धर्म की स्थापना के लिए प्रयोग किया गया।

इधर श्रीकृष्ण ने अपने पराक्रम और बाहुबल से द्वारिका में समृद्ध राज्य स्थापित कर, गृहस्थ–सुख भोग रहे थे। उधर गङ्गा के तीर पर हस्तिनापुर में कौरव और पाण्डयों में राज्यप्राप्ति के लिए षड्यन्त्र चल रहे थे। पाँचों पाण्डव युवक अपनी माता कुन्ती सहित वारणावत के मेले में दुर्योधन के लाक्षा–गृह से बच कर इधर उधर भ्रमण करते हुए पाञ्चाल (चम्बल नदी और हिमालय का मध्यवर्ती देश) के नरेश पद की राजधानी काम्पिल्य (वर्तमान फर्रुखाबाद जिले का कम्पिल कसबा में उसकी पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में पहुंचे। श्रीकृष्ण भी अपने पुत्र प्रद्युझ के लिए पत्नी प्राप्ति की इच्छा से सपरिवार उस स्वयंवर में गए थे। परन्तु स्वयंवर के मत्स्यवेध पण को कोई भी पूरा न कर सका। अन्त में ब्राह्मण–वेशधारी मध्यम पाण्डव अर्जुन ने धनुष उठा कर मत्स्यवेध कर द्रौपदी से वरमाला पा कर उसका पाणिग्रहण किया। ब्राह्मण वेशधारी पुरुष के अर्जुन ज्ञात होने पर श्रीकृष्ण अपने पितृष्वस्त्रेय (फुफेरे) पाण्डवों और पितृस्वसा कुन्ती से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए । अन्धराज धृतराष्ट्र ने कृष्ण और द्रुपद की सहायता प्राप्त पाण्डवों से भयभीत होकर तथा लोकलज्जा से पाण्डवों को हस्तिनापुर बुला कर और दुर्योधन को समझा–बुझा कर उन को आधा राज्य बाँट कर दे दिया। दुर्योधन के भाग में धनधान्य–पूर्ण हस्तिनापुर (वर्तमान जिला मेरठ) की ओर का राज्य आया और पाण्डवों को यमुनातीरवर्ती निर्जन खाण्डव वन मिला। परन्तु पाण्डवों ने अपने पराक्रम और परिश्रम से खाण्डव वन को जला कर यमुना तट पर खाण्डवप्रस्थ नगरी बसा कर उसको अपनी राजधानी बनाया । वह कुछ ही वर्षों में पाण्डवों के धर्म और न्यायानुमोदित शासन से समृद्धिशालिनी महानगरी बन कर इन्द्रप्रस्थ कहलाने लगी और राजपूती काल में दिल्ली के नाम से प्रसिद्ध होकर अब भी भारत की राजधानी बनी हुई है। पाण्डवों के राज्य की यहाँ तक उन्नति हुई और उन में ओर श्रीकृष्ण में सौहार्द यहाँ तक बढ़ा कि उन्होंने श्रीकृष्ण की अनुमति और सहायता से चारों दिशओं का दिग्विजय कर के राजसूय यज्ञ करने का संकल्प किया । अब से पूर्व श्रीकृष्ण ने सेना के बिना अर्जुन और भीम के साथ जरासन्ध की राजधानी राजगृह में पहुंच कर भीम से उस का शखरहित बाहुगुद्ध करा कर जरासन्ध को उसके हाथ से परलोक पहुंचवाया और उसका राजसिंहासन उसके पुत्र सहदेव को दे कर सानन्द इन्द्रप्रस्थ लौट आए । इसी अन्तराल अर्जुन ने उत्चर, भीम ने पूर्व, सहदेव ने दक्षिण और नकुल ने पश्चिम का दिग्विजय करके सब राजाओं को युधिष्ठिर का वशवर्ती बना दिया और ससमारोह राजसूय यज्ञ की योजना की गई।

महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास इस यज्ञ के ब्रह्मा, याज्ञवल्क्य अध्वर्यु, धनंजय उद्गाता तथा पैल और धौम्य होता बनाए गए। स्वस्तिवाचन कर के सोने के हल से यज्ञ भूमि तैयार की गई और यज्ञायतन बनाए गए। महाराज युधिष्ठिर को यज्ञ दीक्षा दी गई। देश–देशान्तरों से आए हुए राजे महाराजों और कौरवों को यज्ञ के अतिथि सत्कार आदि सब कार्य बाँट दिए गए । अवभृथ–स्नान से पूर्व सर्वश्रेष्ठ पुरुप की पूजा का अवसर

आया। युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से इस विषय में प्रश्न किया। उन्होंने श्रीकृष्ण को अग्रपूजा का अधिकारी बतलाया।

श्रीकृष्ण के पुराने शत्रु उन के पितृष्वस्त्रेय शिशुपाल से उन का यह मान न सहा गया। वह क्रुद्ध हो कर श्रीकृष्ण को अपशब्द बकने लगा। भीष्म पितामह ने उस को बहुत समझाया किन्तु उसका बोध भड़कता ही जाता था। जब वह श्रीकृष्ण पर आक्रमण करने को दौड़ा तो उन्हों ने अपने सुदर्शनचक्र से उसका सिर काट लिया। इस के अनन्तर महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ को विधिपूर्वक पूरा किया। उस में सम्मिलित सब ऋषि मुनियों और राजाओं ने युधिष्ठिर को भारत के साम्राज्य वैभव और उन के मय–दानव निर्मित प्रशस्त राज्य प्रासादों को देख कर दुर्योधन को अत्यंत ईष्या हुई। इसी दौरान एक स्थान पर उसको स्फटिक के फर्श देख कर जल की भ्रान्ति हो गई और वह अपने वस्त्र ऊपर उठा कर उस पर चलने लगा। वहाँ जल न पा कर वह बहुत लज्जित हुआ, दूसरे स्थल पर उसने जलपूर्ण सरोवर को स्फटिकशिला समझ कर और उस में गिर कर अपने वस्त्र भिगो लिए। इस पर द्रौपदी और पाण्डवों को हँसी आ गई। दुर्योधन के हृदय में इस से गहरा घाव हो गया और वह हस्तिनापुर लौट कर पाण्डवों के सर्वनाश का उपाय सोचने लगा।

पाण्डवों से बदला लेने के लिए दुर्योधन ने अपने शठ सभासदों से कुमन्त्रणा कर के उसने युधिष्ठिर को अपने यहाँ बुला कर यूतक्रीड़ा में फंसाया। दुर्योधन के मामा सिद्धहस्त जुआरी शकुनि ने छल से युधिष्ठिर का सारा राज्य, उसकी सहधर्मिणी द्रौपदी और चारों आताओं सहित जुए में जीत लिया । दृष्ट दुःशासन द्वारा भरी सभा में एकवस्त्रा द्रौपदी को उसके केश पकड़ कर घसिटवा मंगाया और भरी सभा में उसको दासी कह कर अपमानित किया । इस तरह की अनेको घटनाये श्री कृष्ण के जीवन चरित्र में मिलती है।

जब श्रीकृष्ण की आयु 70 वर्ष के लगभग थी, वे गृहस्थाश्रम को पूरा करके और पौत्र अनिरुद्ध का मुख देख कर वैदिक मर्यादानुसार तृतीय आश्रम में प्रवेश की तैयारी कर रहे थे और ऋषियों से ज्ञान श्रवण और योगाभ्यास के लिए काम्यक वन में आए थे। बाल्यकाल तथा यौवन के मल्ल श्रेष्ठ और वीरवर श्रोकृष्ण अव योगिराज बन गए थे ।

वनवास और अज्ञातवास को पूरा करके पाण्डव राजा विराट् की राजधानी विराट् नगरी (वर्तमान वैरट जो जयपुर से 40 मील उत्तर है) में प्रगट हुए । तब श्रीकृष्ण भी अपनी भगिनी सुभद्रा, जो अर्जुन को विवाही थी, भागिनेय अभिमन्यु तथा अन्य यादवों सहित उनसे वहीं आकर मिले । विराट्–राज ने अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्तु के साथ कर दिया। विवाह के पश्चात् सबने सम्मति करके कौरवों के पास दूत भेज कर पाण्डवों को उनका राज्य वापिस कर देने का सन्देश दिया।

राजर्षि भीष्म ने भी उनको यही परामर्श दिया, परन्तु दुर्योधन को यह बात न भाई

और उसने यह बहाना बनाया कि पांडव 14 वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही प्रकट हो गए हैं, अतः उनको राज्य वापिस नहीं हो सकता। यह उत्तर सुन कर पाण्डवों ने युद्ध की तैयारी की। उन के पास अपनी सेना न थी। विराट् और द्रुपद आदि सम्बन्धियों ने अपनी अपनी सेनाओं और युद्ध सामग्री से उनको सहायता दी। श्रीकृष्ण भी पाण्डवों के सहायक बने। युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व श्रीकृष्ण ने एक बार फिर स्वयं कौरवों के पास जाकर सन्धि कराने का प्रयास किया। वे हस्तिनापुर पहुँच कर प्रथम विदुर के यहाँ वास करने वाली अपनी बुआ कुन्ती से मिले । कुन्ती ने उन को कौरवों का दुराग्रह और दुश्चरित्र सुना कर युद्ध की अवश्यम्भाविता बतलाई। उसने कहाः –

यदय क्षत्रिया सूते तस्य कालोखयमागतः ।

अर्थ– क्षत्राणियाँ जिस लिए पुत्रों को उत्पन्न करतीं हैं उसका समय अब आ गया है।

श्रीकृष्ण ने कौरवों की राजसभा में जाकर कहाः–

कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत ।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः ॥

अर्थ– हे दुर्योधन ! वीरों के नाश के बिना ही कौरवों और पाण्डवों की शान्ति हो जाय, मैं यह याचना करने के लिए आया हूँ ।

किन्तु दुर्योधन ने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया और यही कहा –– सूचयमं न प्रदास्यामि बिना युद्धेन केशव ।

अर्थ– हे केशव ! बिना गुद्ध के मैं सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा ।

अन्त में विवश होकर श्रीकृष्ण वापस चले आए और दोनों सेनाएँ मारकाट करने के लिए कुरुक्षेत्र (वर्तमान थानेसर, जि० करनाल) के मैदान में आमने–सामने आ डटीं ।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के श्वेत घोड़ों वाले रथ के सारथि बन कर, उसको पाण्डव सेना के अग्रभाग में ला खड़ा किया। कौरववाहिनी के सेनापति 170 वर्ष के वृद्ध भीष्मपितामह भी अपने रथ में अपनी सेना के आगे आ उपस्थित हुए । दोनों सेनाओं ने अपने अपने जयघोष से स्वसेनापतियों का स्वागत किया। बहुत से शंखों के नादों, भेरियों और नगाड़ों की ध्वनियों, हाथियों की चिघाड़ों और घोड़ों की हिनहिनाटों से आकाश प्रतिध्वनित हो उठा। दोनों सेनाओं में वीर रस का पूर्ण संचार हो रहा था। इतने में अर्जुन को कौरव सेना में भीष्म, द्रोण आदि पूज्यों और निकट सम्बन्धियों को युद्ध में मरने मारने के लिए उद्यत देख कर मोह उत्पन्न हो गया। उसने श्रीकृष्ण से कहा कि जिस युद्ध में अपने महा–मान्यों और प्रियों का अपने हाथों से मुझ को हनन करना पड़ेगा, उसमें मैं प्रवृत्त न हूँगा । इस अवसर पर श्रीकृष्ण ने उसको उसके मोह–निवारण के लिए जो कर्मयोग का उपदेश दिया है, वही सारे उपनिपदों का सार कृष्णद्वैपायन की कीर्ति को अमर

करने वाली 'श्रीमद्भगवद्गीता' है। उसके विषय में नीचे लिखा हुआ प्रचलित पद्य सर्वथा यथार्थ ही हैः–

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृत महत् ॥

अर्थ – सब उपनिपद गौ हैं, श्रीकृष्ण उनका दुहने वाला है, अर्जुन उसका बछड़ा है, बुद्धिमान् लोग उस दुग्ध का उपभोग करने वाले हैं और गीतारूप महा–अमृत ही यह दुग्ध है।

इसी बीच कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया उसके संग्रह को भगवत गीता के उपदेश के रूप में जाना जाता है। यघपि आजकल इसमें बहुत मिलावट हो गयी है और संस्कृत के मंत्रो का अनर्थ किया जाने लगा है। इसमें इस्कॉन नामक संस्था सबसे आगे है।

गीता में कुल अठारह (18) अध्याय हैं जिनमें कुल सात सौ (700) श्लोकों का वर्णन किया गया है । गीता के इन सात सौ श्लोकों को चार व्यक्तियों द्वारा बोला और सुना गया है । जिनमें से राजा धृतराष्ट्र ने केवल एक ही श्लोक बोला है । इसके बाद संजय ने कुल बयालीस (42) श्लोक बोले हैं । अर्जुन ने कुल चौरासी (84) श्लोक बोले हैं और शेष पाँच सौ तिहत्तर (573) श्लोकों के वक्ता स्वयं योगी श्रीकृष्ण हैं । गीता में सबसे ज्यादा श्लोक योगीराज श्रीकृष्ण द्वारा ही बोले गए हैं ।

गीता का ज्ञान हमें जीवन को सही तरीके से जीने का ढंग बताता है । आज हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि किस प्रकार से हम अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी भावनाओं को सन्तुलित रखते हुए व्यवहार करें ? अनुकूलता आने पर व्यक्ति में अहम का भाव व प्रतिकूलता होने पर तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । यह दोनों ही परिस्थितियाँ हमारे लिए घातक अथवा हानिकारक होती हैं । अब प्रश्न उठता है कि अनुकूल व प्रतिकूल अवस्थाओं में हमारा व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए ? ताकि अहम व तनाव दोनों से ही बचा जा सके । गीता के अनुपम ज्ञान से हमें इस प्रश्न का अत्यंत सटीक उत्तर प्राप्त होता है ।

महाभारत का युद्ध किस प्रकार 18 दिन तक चलता रहा, किस प्रकार उसमें भारत के ज्ञानी, मानी वीर योद्धा और गौरवधन एक एक करके धराशायी हुए, उसमें कैसे कैसे कूटनीति के कुचक्र चले और अन्त में यही कुछ पापकर्म के नाश के साथ भारत के सर्वनाश का भी कैसे कारण बना।

अन्त में पांडव विजयी हुए तो श्रीकृष्ण ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर को हस्तिनापुर के राजसिंहा–सन पर अभिषिक्त करके अपने विशेष प्रोतिपात्र परममित्र अर्जुन के संग हस्तिनापुर के निकटवर्ती तीर्थों, वनों, पर्वतों और सर–सरिताओं की सैर के साथ साथ

तत्वज्ञानचर्चा और विविध विषयों के वार्तालाप का आनन्द उठा कर सब से प्रेमपूर्वक विदा लेकर सुभद्रा और कुन्ती सहित द्वारिका लौट आए ।

श्रीकृष्ण के द्वारिका लौटने पर उनके पौत्र अनिरुद्ध के विवाह की तैयारी हुई । विदर्भ के रुक्मी की भगिनी रुक्मिणी श्रीकृष्ण को विवाही थी । रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का विवाह हुआ था और उसकी पौत्री रोचना का विवाह श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ हुआ था । द्रौपदी के पांचों पुत्र और सुभद्रा से उत्पन्न अर्जुन का पुत्र बीर अभिमन्यु भी इस युद्ध में काम आए । अभिमन्यु की श्री उत्तरा पूर्व से गर्भवती थी। उसके एक मृत पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कृष्ण के उपचार कौशल से जीवित हुआ और पाण्डओं ने वंश को आगे जीवित रखने वाला – परीक्षित नाम धारण करके पाण्डवों के हिमालय में चले जाने पर हस्तिना–पुर के राजसिहासन पर बैठा था।

आगे चलकर श्रीकृष्ण का यदुकुल भी मद्य–पान के दुराचार के दुष्परिणाम से न बच सका । यद्यपि उसमें श्रीकृष्ण जैसे तत्वज्ञानी और योगिराज विद्यमान थे, परन्तु कुकर्मों के कुफल से कौन किसीको बचा सकता है? यदुकुल ने अपने दुष्कृत्यों का दण्ड पाया उसके सर्वनाश शुरु हो गया।

कहते है ना की "विनाश काले विपरीत बुद्धि", इस प्रकार है कि यादवों के दुराचारों के दुर्विपाक से द्वारिका में नाना प्रकार के आधिदैविक और आधिभौतिक उत्पात होने लगे । कभी वेगवती वात्या आती, कभी उग्र उल्कापात होता, कभी भयङ्कर भूकम्प आता । एकवार त्रयोदशी में अमावास्या का संयोग हुआ और उसीमें सूर्यग्रहण पड़ा । इस अवसर पर सारे यादव समुद्र में सरस्वती नदी के संगम स्थान प्रभास तीर्थ में स्नान के मेले में गए। वहां की प्राकृतिक शोभा देख कर उन लोगों को मद्यपान की सूझी। बलराम, सात्यकिगढ़, बभ्रु, तथा कृत्यवर्मा आदि श्रीकृष्ण के सम्मुख ही निर्लज्ज हो कर मद्य पीने लगे । सब के सब क्षण भर में चुल्ल में उल्लू बन गए और परस्पर गाली–गलोच और मार–पीट करने लगे। इस शुष्क कलह ने बढ़ कर संग्राम का रूप धारण कर लिया और वहां एकत्रित भोज, अन्धक, यादव और श्रीकृष्ण के सारे पारिवारिक जन आपस में लड़ कर कट मरे। केवल स्त्रियाँ ही बचीं, जिनको श्रीकृष्ण ने द्वारिका पहुंचा दिया । यादवों का इस प्रकार संहार देखकर श्रीकृष्ण और बलराम द्वारिका को छोड़कर वन में तप करने चले गए। वहां बलराम ने योग द्वारा अपने प्राणों को प्रह्मरन्ध्र से बाहर निकाल कर इस नश्वर शरीर को त्याग दिया ।

एक दिन श्रीकृष्ण भी ब्रह्मासन लगाकर योगनिद्रा में वहीं लेटे थे। एक जरा नामक व्याध ने दूर से उनको हरिण समझ कर, उनके बाण मारा, जो उनके पैर के पंजे में आकर लगा और उसी से उनका देहान्त हो गया। इस प्रकार वसुदेव–देवकी और नन्द–यशोदा के ब्यारे पुत्र, गोकुल के गोपसखा गोपाल, मधुरा और वृन्दावन के प्राण, कंस, जरासन्ध, कालयवन, शिशुपाल आदि के काल, द्वारिका के विधाता, पाण्डवों के परित्राता, धर्म

के उपदेष्टा, नीति के तत्ववेत्ता, राजा और प्रजा के गुरु, धर्मभूष्ट क्षत्रियकुल के संहा–रक, धर्मराज्य के संस्थापक, दीनों के उद्धारक, वेदशास्त्रपारङ्गत, चतुर–शिरोमणि, सर्वगुणागार, सकल–संसारादर्श, मृत्युञ्जय, योगीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने चारुचरित्र से संसार को मुग्ध करके 155 वर्ष की अवस्था में इहलोक लीला संवरण की। उनके वृद्ध पिता वसुदेवजी इस दारुण शोक को न सह सके और इस संसार से चल बसे । सर्वत्र शोक की काली घटा छा गई। अर्जुन इस दुर्घटना की सूचना पाकर शोकसंतप्त होकर हस्तिनापुर से द्वारिका आए और श्रीकृष्ण के परिवार के बालकों और विधवाओं को अपने साथ हस्तिनापुर ले गए। मार्ग में किरातों ने उनकी सम्पति लूट ली। महाभारत के महावीर योद्धा अर्जुन के गांडीव धनुष ने इस समय कुछ भी काम न दिया। सच है, प्रताप छींण होने पर सब सहायक निःसहाय हो जाते हैं। अन्त में उद्विग्न पांचों पाण्डवों ने भी हस्तिनापुर के राज्यसिंहासन पर अपने पौत्र परीक्षित को बिठला कर, और अपनी पुरानी राजधानी इन्द्रप्रस्थ का राज्य श्रीकृष्ण के प्रपौत्र अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को दे कर हिमालय के लिए महाप्रस्थान किया।

श्रीकृष्ण ने वीरयोद्धा के रूप में संसार क्षेत्र में प्रवेश करके, पूर्ण राजनीतिज्ञ, सुचतुर सेनापति और परम तत्वदर्शी के उज्ज्वल दृश्य दिखलाए । उनको 16 कलाओं में पारंगत था और आज तक ऐसा कोई बलशाली योगिराज पृथ्वी पर नहीं हुआ ।

श्रीकृष्ण जी के विषय में फैलाई जा रही भ्रांतियाँ और निराकरण

सन 2005 में उत्तर प्रदेश में पुलिस अफसर डी के पांडा राधा के रूप में सिंगार करके दफ्तर में आने लगे और कहने लगे कि मुझे कृष्ण से प्यार हो गया है और मैं अब उनकी राधा हूँ। अमरीका से उनकी एक भगत लड़की आकर साथ रहने लग गई उनकी पत्नी वीणा पांडा का कथन था कि यह सब ढ़ोंग हैं।

इस्लाम को मानने वाले जो बहुपत्नीवाद में विश्वास करते हैं और सदा श्रीकृष्ण जी महाराज पर 16000 रानी रखने का आरोप लगा कर उनका माखोल करते हैं।

प्रसिद्ध समाज सुधारक एवं वेदों के प्रकांड पंडित स्वामी दयानंद जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में श्री कृष्ण जी महाराज के बारे में लिखते हैं। कि पूरे महाभारत में श्री कृष्ण के चरित्र में कोई दोष नहीं मिलता एवं उन्हें आप्त (श्रेष्ठ) पुरुष कहा है स्वामी दयानंद श्रीकृष्ण जी को महान विद्वान सदाचारी, कुशल राजनीतिज्ञ एवं सर्वथा निष्कलंक मानते हैं। फिर श्रीकृष्ण जी के विषय में चोर, गोपियों का जार (रमण करने वाला), कुब्जा से सम्भोग करने वाला, रणछोड़ आदि प्रसिद्ध करना उनका अपमान नहीं तो क्या हैं? श्रीकृष्ण जी के चरित्र के विषय में ऐसे मिथ्या आरोप का आधार क्या हैं? इन गंदे आरोपों का आधार हैं पुराण। आइये हम सप्रमाण अपने पक्ष को सिद्ध करते हैं।

पूतना वध की कहानी

पौराणिक कथा : गोकुल में नन्दबाबा ने पुत्र का जन्मोत्सव बड़े धूम–धाम से मनाया। कुछ दिनों पश्चात् कंस ढूँढ़–ढूँढ़ कर नवजात शिशुओं का वध करवाने लगा। उसने पूतना नाम की एक क्रूर राक्षसी को ब्रज में भेजा। पूतना नाम की एक बड़ी क्रूर राक्षसी थी। उसका एक ही काम था– बच्चों को मारना। कंस की आज्ञा से वह नगर, ग्राम और अहीरों की बस्तियों में बच्चों को मारने के लिए घूमा करती थी।

पूतना के शरीर का वर्णन

पूतना का शरीर बड़ा भयानक था, उसका मुँह हल के समान, तीखी और भयंकर दाढ़ों से युक्त था, नथुने पहाड़ की गुफा के समान गहरे, स्तन पहाड़ से गिरी हुई चट्टानों की तरह बड़े–बड़े थे। लाल–लाल बाल चारों ओर बिखरे हुए थे। भयंकर भुजाऐं, जाँघें और पैर नदी के पुल के समान तथा पेट सूखे हुए सरोवर की भाँति जान पड़ता था।

घटना क्रम का वर्णन

पूतना ने अति मनोहर नारी का रूप धारण किया। वह आकाशमार्ग से चल सकती थी। इसलिए वह आकाश मार्ग से गोकुल पहुँच गई। गोकुल में पहुँच कर वह सीधे नन्दबाबा के महल में गई और शिशु के रूप में सोते हुये श्रीकृष्ण को गोद में उठाकर अपना दूध पिलाने लगी। उसकी मनोहरता और सुन्दरता ने यशोदा और रोहिणी को भी मोहित कर लिया, इसलिये उन्होंने बालक को उठाने और दूध पिलाने से नहीं रोका।

पूतना के स्तनों में हलाहल विष को अन्तर्यामी श्रीकृष्ण सब गये और वे क्रोध करके अपने दोनों हाथों से उसका कुच थाम कर उसके प्राण सहित दुग्धपान करने लगे। उनके दुग्धपान से पूतना के मर्म स्थलों में अति पीड़ा होने लगी और उसके प्राण निकलने लगे। वह चीख–चीख कर कहने लगी– "अरे छोड़ दे! छोड़ दे! बस कर! बस कर!" वह बार–बार अपने हाथ पैर पटकने लगी और उसकी आँखें फट गईं। उसका सारा शरीर पसीने में लथपथ होकर व्याकुल हो गया। वह बड़े भयंकर स्वर में चिल्लाने लगी। उसकी भयंकर गर्जना से पृथ्वी, आकाश तथा अन्तरिक्ष गूँज उठे। बहुत से लोग बज्रपात समझ कर पृथ्वी पर गिर पड़े। पूतना के शरीर ने गिरते–गिरते भी छह कोस के भीतर के वृक्षों को कुचल डाला। उसका राक्षशी स्वरूप प्रकट हो गया और उसका सिर फट गया और उसके प्राण निकल गये।

जब यशोदा, रोहिणी और गोपियों ने उसके गिरने की भयंकर आवाज को सुनकर जब उसके पास गईं तो देखा कि बालक कृष्ण पूतना की छाती पर लेटा हुआ स्तनपान कर रहा है तथा एक भयंकर राक्षसी मरी हुई पड़ी है। उन्होंने बालक को तत्काल उठा

लिया और पुचकार कर छाती से लगा लिया। वे कहने लगीं– "भगवान चक्रधर ने तेरी रक्षा की। भगवान गदाधर तेरी आगे भी रक्षा करें।" इसके पश्चात् गोप ग्वालों ने पूतना के अंगों को काट–काट कर गोकुल से बाहर ला कर लकड़ियों में रख कर जला दिया।

विश्लेषण : आप स्वयं निर्णय ले कि कथा कितनी सच और कितनी गप्प है। देवताओं ने पहले ही कंस को कृष्ण के जन्म की सूचना दे दी, किसी का भविष्य तो ईश्वर भी नहीं जानता क्योंकि ईश्वर ने मुनष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता दी है।

दरअसल कृष्ण के बाल्य काल को चमत्कारिक और मनोरंजक सिद्ध करने के लिए कथाकारों ने इस प्रकार की उलझूल कहानियाँ रची है जिनको एक एक घंटे तक मनोरंजन के साथ हरमोनिया तबले बाजे के साथ सुना सुनकर श्रोताओं को बाँधे रखना है।

पूतना के शरीर का क्या शानदार वर्णन किया है कि उसके नथुने पहाड़ की गुफा के समान गहरे थे और स्तन पहाड़ से गिरी हुई चट्टानों की तरह बड़े–बड़े थे। लाल–लाल बाल चारों ओर बिखरे हुए थे। भयंकरय भुजाऐं, जाँघें और पैर नदी के पुल के समान तथा पेट सूखे हुए सरोवर की भाँति जान पड़ता था।

वास्तविकता से इस घटना का कोई लेना देना नहीं है। दरअसल महापुरुष कृष्ण को मायावी सिद्ध करने के लिए इस तरह की असत्य परी कथाएं लिखी गयी है।

ज्ञान वर्धन के लिए वास्तविक गीता सही भावार्थ के साथ पढ़ना चाहिए अन्यथा योगिराज कृष्ण का अपमान ये कथाकार पौराणिक ऐसे ही करते रहेंगे।

पुराण में गोपियों से कृष्ण का रमण करने का मिथ्या वर्णन

विष्णु पुराण अंश 5 अध्याय 13 श्लोक 59–60 में लिखा हैं।

वे गोपियाँ अपने पति–पिता और भाइयों के रोकने पर भी नहीं रूकती थी रोज रात्रि को वे रति विषय भोग की इच्छा रखने वाली कृष्ण के साथ रमण "भोग" किया करती थी। कृष्ण भी अपनी किशोर अवस्था का मान करते हुए रात्रि के समय उनके साथ रमण किया करते थे।

कृष्ण उनके साथ किस प्रकार रमण करते थे। पुराणों के रचियता ने श्री कृष्ण को कलंकित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी हैं।

भागवत पुराण स्कन्द 10 अध्याय 33 शलोक 17 में लिखा हैं।

कृष्ण कभी उनका शरीर अपने हाथों से स्पर्श करते थे कभी प्रेम भरी तिरछी चितवन से उनकी और देखते थे कभी मस्त हो उनसे खुलकर हास विलास 'मजाक' करते थे। जिस प्रकार बालक तन्मय होकर अपनी परछाई से खेलता हैं। वैसे ही मस्त होकर कृष्ण ने उन ब्रज सुंदरियों के साथ रमण काम क्रीड़ा 'विषय भोग किया।

भागवत पुराण स्कन्द 10 अध्याय 29 शलोक 45–46 में लिखा हैं।

कृष्णा ने जमुना के कपूर के सामान चमकीले बालू के तट पर गोपियों के साथ प्रवेश किया। वह स्थान जलतरंगों से शीतल व कुमुदिनी की सुगंध से सुवासित था। वहाँ कृष्ण ने गोपियों के साथ रमण बाहें फैलाना, आलिंगन करना, गोपियों के हाथ दबाना, उनकी चोली पकरना, जांघो पर हाथ फेरना, लहंगे का नारा खींचना, स्तन पकड़ना, मजाक करना, नाखूनों से उनके अंगों को नोच–नोच कर जख्मी करना, विनोदपूर्ण चितवन से देखना और मुस्कराना तथा इन क्रियाओं के द्वारा नवयोवना गोपियो को खूब जागृत करके उनके साथ कृष्णा ने रात में रमण (विषय भोग) किया। ऐसे अभद्र विचार कृष्णा जी महाराज को कलंकित करने के लिए भागवत के रचियता नें स्कन्द 10 के अध्याय 29, 33 में वर्णित किये हैं।

भगवान् कृष्ण का जीवन महान था। और उन्होंने आजीवन कभी कोई ऐसा कर्म नही किया जो आप्त पुरुषों की नहीं करना चाहिये। उनकी केवल एक ही पत्नी थी। जिसको विविध नामों से पुकारा गया था। इसी प्रकार एक अन्य कथनाक पुराणों में आता है कि एक समय कुछ गोपिकायें यमुना में नग्न स्नान कर रही थी। और उन्होने अपने वस्त्र तट पर रख दिये थे। तो कृष्ण आये और उनके वस्त्रों को लेकर वृक्ष पर चढ़ गये तथा उनसे कहा कि अपने दोनों हाथ जोड़कर सूर्य स्तुति करो तब वस्त्र देंगे। इस वार्ता का भी अलंकारिक अर्थ लगाना हैं जैसा कि पूर्व कहा हैं कि गोपिक तो वेद की ऋचाओं को कहते हैं और भगवान् कृष्ण इन ऋचाओं के अर्थों को समझने हेतु इनको भली प्रकार से नंगी निर्वस्त्र अथवा आवरणहीन कर देते थे जो इन पर शब्दों का ओढ़ना हैं। उसे उघाड़ कर ठीक आशय को जान लेते थे। केवल यही इसका अर्थ जानना उचित हैं कि वे वेद की ऋचाओं का जो सार तत्व अथवा मक्खन हैं अर्थात गोपिकाएं तो वेद की ऋचां और मक्खन रूपी सार या रहस्य को पूर्णरूपेण खा जाते थे। अर्थात ह्रदयंगम कर लेते थे तो यह भी इनका अर्थ सुंदर बनता है।

महाभारत की राधा

श्रीकृष्ण और श्री राधा दोनों ही भारत की संस्कृति में इस तरह रचे बसे हैं कि इन दोनों को अलग–अलग करके देखना एक प्रकार से असंभव है।

श्री कृष्ण के नाम के साथ राधा जी का नाम स्मरण होता ही है। आधुनिक काल के कृष्ण मंदिरों में उन्हें राधा जी के साथ ही देखा जाता है। मान्यतानुसार राधा ही वह आदि शक्ति हैं जिनसे श्री कृष्ण संपूर्णता को प्राप्त होते हैं। वैष्णव साहित्य तो श्री राधा को श्री कृष्ण से भी अधिक महत्वपूर्ण दर्जा प्रदान करता नजर आता है। और कृष्ण भक्ति के लिए प्रसिद्ध इस्कॉन भी यही मानता है।

राधा के नाम से कृष्ण का चरित्र हनन ––कुछ विधर्मी राधा कृष्ण के विषय में लिविंग रिलेशन का नाम देकर महापुरुष योगी राज कृष्ण के विषय मजाक बनाते हैं। कुछ गीत गाते है – मेरी प्यारी राधा ''ऐसे हजारो गीत मिलेंगे, कुछ तो अभिवादन भी राधे राधे'' बोलकर करते है। होली आदि पर्व में सार्वजनिक रूप से राधा और कृष्ण के नाच, प्रेम लीला दिखाते हैं, दोनों को एक दूसरे के गले लगाते है। सर्वोच्च न्यायालय में भी ऐसा एक बयान दिया जा चुका है कि दोनों लिविंग रिलेशनशिप में थे। इसलिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस विषय पर चर्चा आवश्यक है। विडम्बना तो यह है कि श्री कृष्ण के भक्त कहलाने वाले भी श्रीकृष्ण को समझने के बजाय इस प्रकार से लांछित कर गौरवान्वित होते रहे हैं।

भारत का इतिहास लिखने वाले इतिहासकारों ने पुराणों को ऐतिहासिक स्रोत के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया। लेकिन विडंबना दखिये कि नग्नता का प्रवेश कराने के लिए इन्हीं लोगों ने पुराणों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत कर दिया।

इस विषय में श्री जगदीश सिंह गहलोत ने 'राजस्थान के राजवंशों का इतिहास' मे जो लिखा है उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है, वे लिखते है **'पुराण एक गपोड़ गाथाओं का भण्डार है जो सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ के पं. चिन्तामणि विनाया वैद्य के मतानुसार ई. सन् 300 से 900 के बीच बने हैं। पुराणों को शुद्ध इतिहास का महत्त्व नहीं दिया जा सकता।'**

पंडित रघुनंदन शर्मा द्वारा अपनी पुस्तक ''वैदिक संपत्ति'' में कृष्ण की ''ब्रजलीला और विभूतियां'' नामक आलेख में प्रष्ठ संख्या 72 पर इस पर प्रमाणिक ढंग प्रकाश डाला है। तदनुसार- **राधा, राधा, गौ, ब्रज, गोप, वृक्षभानु, रोहिणी, और अर्जुन सभी संस्कृत के शब्द है जो वेद मंत्रों में भी मिलते हैं और इनका भावार्थ अलंकारिक भाषा में होने के कारण वास्तविकता समझने मे भूल हुई हैं।**

कृष्ण के विषय में झूठे प्रचारित चमत्कार देखो–

- जन्म के समय श्रीकृष्ण चतुर्भुज रूप में आये कारागार में उनके माता–पिता के बंधन अपने आप टूट गये।
- उन्होंने बाल्यावस्था में ही पूतना, शकटासुर जैसे अनेक विकराल राक्षसों को मारा, सैकड़ों फनों वाले कालिया नाग का मर्दन किया।
- गोवर्धन पर्वत कई दिनों तक अपनी उंगली पर उठाए रखा।
- उनकी 16108 रानियाँ थीं व उनके सभी से 10–10 पुत्र हुए।
- आकाश में कहीं स्वर्ग है जहाँ इन्द्र शासन करता है आदि।

क्या राधा का वर्णन महाभारत में है?

बहुत लोगों को ये जान कर हैरानी होगी कि राधा का वर्णन मूल व्यास महाभारत में है ही नहीं। राधा का नाम ना तो गीता में, ना महाभारत में ना भागवत में कही आया है। तो क्या राधा जी का चरित्र काल्पनिक है?

राधा का पहला उल्लेख लगभग 1,000 वर्ष पुराने उत्तरकालीन प्राकृत साहित्य में पाया गया है, उसका निरूपण लगभग 800 साल पहले जयदेव द्वारा संस्कृत में लिखे गए 'गीत गोविंद' नामक कविता में पूरी तरह से विकसित हुआ। विष्णु पुराण की तरह प्रारंभिक पुराणों में, जो 1,500 वर्ष से अधिक पुराने हैं, राधा का कोई उल्लेख नहीं है।

होली पर या अन्य धार्मिक अवसरों पर राधा कृष्ण का नाच दिखाए जाते है, और फिल्म उद्योग ने तो गीत भी लिख दिया जिसके बोल है –राधा कैसे ना जले। परंतु किसी ने यह नहीं समझाया कि राधा कौन थी और इनका कृष्ण जी के साथ क्या संबंध था अगर कोई विद्वान कृष्ण और राधा के बीच में किसी भी प्रकार के संबंध की व्याख्या करने के बाद उनके प्रेम संबंधों को सप्रमाण पोष्ट एवं सिद्ध कर देगा तो हम उसको स्वीकार कर लेंगे। अन्यथा ये प्रार्थना करेंगे कि वो महान विद्वान, योगिराज कृष्ण के चरित्र पर लांछन ना लगाए, कृष्ण भक्त बने और कृष्ण भक्त बनने के लिए नाच गाना नहीं, कृष्ण के आदर्शो को अपने जीवन में उतारना होगा।

कथाकार और राधा ––आजकल भागवत् कथा करने वाले पंडितों की बाढ़ आ गयी है, लम्बे–लम्बे बाल लंबा चौड़ा टीका, चमकीला कुर्ता, धोती और उनकी पीठ पीछे या आसपास संगीत मण्डली इनकी पहचान है। कृष्ण महाराज को बदनाम करने के लिए उनकी पत्नी रुक्मणी की जगह है एक काल्पनिक प्रेयसी राधा बनाकर उनके चरित्र खराब किया है।

रोचक कथा और साज बाजे के साथ गीत गा गाकर नाच गाने के साथ ये बड़ा अच्छा मनोरंजन करते है। इससे मेरा कोई एतराज नहीं, दुःख तब होता है जब ये धर्म के नाम पर योगिराज कृष्ण का चरित्र हनन और तुक्केबाजी करके श्रोता को मूर्ख बनाने का प्रयास करते है। ये संगीत की धुन ऐसी निकलते हैं कि महिलाएं स्वयं को राधा समझकर नाचना सुरु कर देती है और मनोरंजन में चार चांद लग जाते हैं

ये नकली राधा बनाकर ये भागवत कथा करने वाले पोंगे पंडे भोले भाले हिंदुओं को पागल बनाकर लाखों रुपए कथा के नाम पर ठग रहे हैं।

झूठ की कुछ बानगियाँ: कथाकर ने कहा – भागवत के स्कन्द 9, अध्याय 10 और श्लोक 40 में राधा का नाम आया है।

सच क्या है ?

1 योगिराज कृष्ण की पत्नी एक ही थी जिसका नाम रुक्मणि था

2 भागवत के स्कन्द 9, अध्याय 10 और श्लोक 40 –इस प्रकार है –

कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पतितस्वशिरोक्षिभिः ।
यद्यतायुधदोर्दण्दैराधावन्तो भटान्मृधे।।

यहा राधावन्तो शब्द अकेला नहीं है, ये शब्द संज्ञा नही क्रिया है। इसका मतलब –नहीं दौडते हुए होता है, संधि शब्द है, इसको अधावन्तः बोला जायेगा।

एक उदाहरण से समझे =**शब्द है आप आराम करो**

यहां प्रयुक्त शब्द राम को मर्यादा पुरुषोत्तम राम समझना भारी भूल और मूर्खता होगी।

भागवत कथा कराने और सुनने के अलग अलग लाभ भी बताए जाते हैं जिनका कोई प्रमाण नहीं, सिर्फ भक्तो को लोली पॉप दिखाया जाता है ताकि पंडित की महिमा बरकरार रहे ।

काल्पनिक राधाा नाम से कृष्ण का चरित्र हनन– राधा का नाम पुराणों में आता है। सम्पूर्ण महाभारत में केवल कर्ण का पालन करने वाली माँ राधा को छोड़कर इस काल्पनिक राधा का नाम नहीं हैं। भागवत् पुराण में श्रीकृष्ण की बहुत सी लीलाओं का वर्णन हैं। पर यह राधा वहाँ भी नहीं हैं। राधा का वर्णन मुख्य रूप से ब्रह्मवैवर्त पुराण में आया हैं। यह पुराण वास्तव में कामशास्त्र है जिसमें श्रीकृष्ण राधा आदि की आड़ में लेखक ने अपनी काम पिपासा को शान्त किया है। मुख्य बात यह है कि इस एक ही ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के राधा के साथ भिन्न–भिन्न सम्बन्ध दर्शाये हैं। जो स्वतः ही राधा को काल्पनिक सिद्ध करते हैं।

देखियेः– ब्रह्मवैवर्त पुराण ब्रह्मखंड के पाँचवें अध्याय में श्लोक 25/26 के अनुसार राधा को कृष्ण की पुत्री सिद्ध किया है क्योंकि वह श्रीकृष्ण के वामपार्श्व से उत्पन्न हुई बताया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड अध्याय 48 के अनुसार राधा कृष्ण की पत्नी (विवाहिता) थी। जिनका विवाह ब्रह्मा ने करवाया था।

इसी पुराण के प्रकृति खण्ड अध्याय 49 श्लोक 35, 36, 37, 40, 47 के अनुसार राधा श्रीकृष्ण की मामी थी क्योंकि उसका विवाह कृष्ण की माता यशोदा के भाई रायण के साथ हुआ था।

वास्तविकता क्या हो सकती है ––कृष्ण जी की मात्र एक ही पत्नी थी रुकमणि । उन्हीं को सत्यभामा भी कहा जाता है।

कृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मणि के बीच अत्यंत प्रेम था। जहाँ पत्नी के मध्य अत्यंत प्रेम और आपसी सामजस्य का भाव हो वहाँ धन शक्ति में दिन रात बढ़ोत्तरी होती है। राधा का शाब्दिक अर्थ है समृद्धि, सफलता, पूर्णता, और धन आदि। एक तर्कशास्त्री के अनुसार महाराजा शिव की पत्नी उमा जो कि पर्वत क्षेत्र की रानी थी उनको सम्मान में पार्वती उपनाम दिया गया, ऐसी तरह माता सीता जो की राजा जनक की पुत्री है उनको जानकी उपनाम से सम्बोधित किया गया। इसी आलोक में तर्कशास्त्री का कहना है कि कृष्ण की पत्नी रुक्मणि और कृष्ण के अत्यंत प्रेम, जिनका साथ कृष्ण को हमेशा मिला, कृष्ण ने गीता का सफल उपदेश दिया, इसी आलोक में सम्मान स्वरूप रुक्मणि को ही राधा उपनाम के रूप में प्रस्तुत किया हो, ये शायद राधा के विषय में ठीक प्रतीत होता है।

राधा का वेदों में वर्णन ––वेदो में यदि राधा शब्द का प्रयोग हुआ है तो इसका मतलब ये नहीं कि किसी शरीरधारी राधा के लिए उपयोग हुआ है। राधा शब्द अनेको बार वेद मंत्रो में आया है जैसे कि ऋग्वेद में राधा के 28 संदर्भ मिले, सामवेद में राधा के 9 संदर्भ मिले, अथर्ववेद में राधा के 5 संदर्भ मिले और कुल मिलकर राधा के 42 सन्दर्भ मिले है। यहाँ राधा का भावार्थ अलग लग है। **संक्षेप में राधा शब्द का अर्थ ''समृद्धि, सफलता, पूर्णता और धन''** है। जो कि अलग अलग भावार्थ में प्रयोग हुआ है। वेदों में इतिहास नहीं इसलिए वेद मंत्रो में राधा वह नहीं जो आप समझ रहे हैं।

वेद मंत्रों कृष्ण, राधा, रोहिणी, गौ आदि शब्दो के प्रमाण देखें:

1 स्तोत्रं राधानां पते। ऋग्वेद 1/30/5

2 गवामप वज्रं वृधि ––ऋग्वेद 1/10/7

3 दासपत्नीरहिगोप अप्तिष्ठत –– ऋग्वेद 1/32 /11

4 त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वी कृष्णास्वागने अरुषो वि भाहि।––ऋग्वेद 3/15/3

5 तमेतदाधारयः कृष्णासु रोहिणीसु च।––ऋग्वेद 8/93/13

6 कृष्णा रुपान्यर्जुना वि वो मदे। ––ऋग्वेद 10/21/3

इन उपरोक्त मंत्रों में राधा, गौ, ब्रज, गोप, वृषभानु, रोहिणी, कृष्ण और अर्जुन सभी मंडली एकत्र हो गई है। इसी मंडली के आधार पर भागवत की रचना हुई है। परंतु मंत्रों में आए हुए अन्य शब्दों को देखने पर पता लगेगा कि यह सब आकाशीय पदार्थ हैं।

ऋग्वेद 6/9/1 में कहा है कि –– 'अहश्च हास्य कृष्णमहर्जुनम च'

क्या महाभारत के कृष्ण की 16000 रानियाँ थीं?

श्रीकृष्ण महाराज की एक ही रानी थी जिसका नाम रुकमणी था। योगीराज कृष्ण राजा थे। उस समय उनका राज्य पूर्ण रूप से संपन्न था। कृष्ण ने गौ वर्धन आदि द्वारा

सबको संपन्न बनाया। इनके राज्य में कोई छोटा बड़ा नहीं था। सभी सामान अधिकार रखते थे। सम्पन्नता इतनी की सभी महिलाओं को अपने नाम के साथ रानी लगाने का अधिकार दिया गया। जैसे आज भी बहनें/माताएँ अपने नाम के आगे रानी शब्द जोड़ती हैं। उदाहरण के तौर पर ममता रानी कुसुम रानी 16000 रानी, वाली बात एक अलंकार है।

कृष्ण राजा थे और प्रजा उनकी संतान। उस समय जनसँख्या के आधार पर ऐसा कहा कि कृष्ण की 16000 रानियाँ थीं। ये 16000 वाली बकवास भागवत पुराण जैसे मिथ्या ग्रन्थ में लिखी है। भला 16000 रानियों से सम्भोग करने वाला कृष्ण जीवित कैसे बचता और मान लें एक रात एक रानी के पास रुकता तो अपनी 365 वीं रानी तक पहुँचने में उसको एक वर्ष लग जाता और एक वर्ष हर दिन सम्भोग करने वाले व्यक्ति का हाल क्या होगा जरा सोचें? यह भागवत पुराण मिथ्याचारियों ने अपने पाप छुपाने के लिये कृष्ण पर मिथ्या दोष लगाये हैं।

वास्तविक अर्थः– उनके सोलह हजार एक सौ आठ रानियां थी परन्तु हमने इसके वास्तविक अर्थ को नहीं जाना। वेदो में सहस्रों ऋचाये हैं। और कृष्ण महाराज ने सोलह हजार एक सौ आठ ऋचाओं को आत्मसात् किया था। क्योंकि गौ नाम ऋचा का भी हैं। आज जो वेद उपलब्ध हैं। उनमें कुल बीससहस से कुछ ऊपर मंत्र हैं। और यदि जो मंत्र एक से अधिक बार आये हैं। उनकी केवल एक बार ही गिनती करे तो यह संख्या सोलह हजार एक सौ आठ ही रहती हैं अतः यही इसका आशय है और जैसा कि पूर्व लिख आये हैं। भगवान कृष्ण इन वेदों की ऋचाओं में रात्रि भी तल्लीन रहते थें यही इसका अभिप्राय है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उंगली पर उठा लिया



कथाः– प्राचीन काल में कान्हा (श्रीकृष्ण को कान्हा भी बुलाया जाता हैं।) की नगरी मथुरा में स्थित 'गोवर्धन' नामक पर्वत उस समय में दुनिया का सबसे बड़ा पर्वत हुआ करता था। कहते हैं कि वह इतना बड़ा था कि सूर्य के प्रकाश को भी ढक लेता था। इसी गोवर्धन पर्वत को 'भगवान श्री कृष्ण चन्द्र' ने द्वापर युग में अपनी उँगली पर उठा लिया था ताकि उस समय के इन्द्र देवता के प्रकोप से बचने के लिए ब्रज को लोगों की मदद की थी। मथुरा को लोग ब्रज भी कहते हैं

विश्लेषणः– क्या यह सम्भव हो सकता है ? जी हाँ! यह कदाचित भी सम्भव नहीं है क्योंकि किसी भी मनुष्य में इतनी शक्ति नहीं हो सकती है कि वह असंभव को संभव कर सके! यह एक कहावत भी हो सकती हैं या जैसे रोजमर्रा की भाषा में लोग मिसाल देते हैं। बढ़ा–चढ़ा कर कहते हैं। उसका शरीर वज्र जैसा हैं। अर्थात् उस का शरीर सख्त हैं। उसी प्रकार उस समय के लोकप्रिय कवि सूरदास ने ऐसा कह दिया इस वाक्य को ध्यान से समझने की जरूरत है कि क्या ऐसी संभव हैं? या किसी कवि की मात्र कल्पना है।

- श्री कृष्ण महाराज को लेकर सूरदास ने महाकाव्य की रचना की। उन्होंने अपनी एक कविता में श्रंगार रास का वर्णन किया है और श्री कृष्णचंद्र को गोपियों और बहु–पत्नी वाला बता दिया।
- इसी तरह इस्कॉन मन्दिर वालों ने **'श्रीमद्भगवद्गीता'** की अपने मनमाने ढंग से अलग अर्थों से व्याख्या की है और उन्होंने राजा श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार मान लिया हैं उछलकूद कर नाच–नाच कर कृष्ण नाम का बारंबार गान करते हैं और स्वयं को कृष्ण भक्त समझते हैं। इसी को वैदिक धर्म में अन्धश्रद्धा और अन्धविश्वास कहते हैं। इसलिए दूसरे मतों वाले भी हिन्दुओं का मजाक उड़ाते रहते हैं।
- योगीराज श्रीकृष्ण महाराज के चरित्र को वर्तमान लेखकों और कवियों ने विवादस्पद और हास्यास्पद बनाकर रख दिया है।
- श्री कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उँगली पर उठाया यह शब्द स्थूल रूप में रह गया। साधारण लोग कवियों की सूक्ष्म भाषा नहीं समझते।
- श्रीकृष्ण का गौ प्रेम (गाय के प्रति प्रेम) किसी से छुपा नहीं हैं। उनकी मुरली की ध्वनि पर गायें दौड़कर आती थीं श्रीकृष्ण जी के पिता नन्दलाल के यहाँ एक लाख गायें पलती थीं इसलिए उनके यहाँ दूध की नदियाँ बहती थीं अर्थात् उनके घर में दूध मक्खन की कोई कमी नहीं थी।

  यह सच है कि एक वैदिक विद्वान राजा क्या नहीं कर सकता। अपनी योग्यता से राज्य की उन्नति के लिए सब कुछ कर सकता है बड़ी से बड़ी समस्या को विवेक शक्ति से सोच समझ कर समयानुसार सब हल कर सकता है।
- महाभारत युद्ध के समय दरिद्रता और स्वास्थ्य सबन्धित अनेक समस्याओं की बाढ़ सी आ गई थी और जनता पर कष्टों की तो जैसे अचानक बारिश सी आ गई हो जो थमने का नाम नहीं ले रहीं थी।
- ऐसे में श्रीकृष्ण जी का गौ–वर्धन सूत्र काम आया श्रीकृष्ण महाराज ने मथुरा

निवासियों को एक सूत्र में बाँधने का एक मन्त्र (विचार) दिया और गौवर्धन पर विषय पर व्यवसाय का मन्त्र दिया।

- गौ–वर्धन के अनेक योजनाएँ महाराज श्रीकृष्ण ने जनता को दीं और उन्हें समझाया कि गोवर्धन अर्थात् गायों का वर्धन कैसे किया जाए इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रीकृष्ण ने गौरक्षा एवं गोवर्धन कार्यक्रम का आयोजन वहाँ सब जगह किया। उन्होंने जगह–जगह 'गोवर्धन' की संस्थाएँ स्थापित की और गौशालाओं का निर्माण कराया इस प्रकार हजारों गायों का रक्षण, वर्धन और पोषण होता रहा इसलिए कि वहाँ की प्रजा को घर–घर दूध दही और शुद्ध घी इत्यादि सभी चीजें बराबर मिल सकेंगी।
- श्रीकृष्ण महाराज उस समय राजा थे और उनकी प्रजा में उनका इतना सम्मान था कि उनका सुझाव सब ने तत्काल सहर्ष स्वीकार किया। जिस के परिणाम स्वरूप प्रजा का रहन–सहन और स्वस्थ्य में बहुत सुधार हुआ। इस प्रकार वहाँ शीघ्र ही कष्टों की घनी पड़ने वाली बारिश थम गयी और हर घर में स्वास्थ्य और सम्पन्नता फिर से वापस आने लगी ऐसा लगा कि श्री कृष्ण महराज ने एक छोटी सी उँगली के इशारे से सब समस्याओं का हल निकाल दिया हो
- इसलिए उपरोक्त गोवर्धन की कथा एक अतिशोक्ति बन गई कि श्रीक्रृष्ण जी ने एक ऊँगली पर (अर्थात् एक साधारण दृष्टिकोण से) गोवर्धन पर्वत पर तथा आस–पास के रहने वाली प्रजा को सम्वर्धन दे दिया था। अन्य शब्दों में गोवर्धन उठा लिया!
- अल्पमति लोगों ने समय–समय पर इस कथा में और रूपक व्यर्थ में कुछ न कुछ न घरन्त किस्से जोड़ते गए और इस प्रकार मूल तथ्य से अलग होते गए और स्वयं अंधविश्वास में धँसते गए।

कथा सारांशः– कृष्ण कन्हैया कान्हा की नगरी मथुरा में स्थित 'गोवर्धन पर्वत' एक समय में दुनिया का सब से बड़ा पर्वत माना जाता था। कहा जाता हैं कि यह इतना बड़ा था कि सूर्य को भी ढक लेता था। इस पर्वत को भगवान श्रीकृष्ण ने द्वापर युग में अपनी उँगली पर उठाकर इंद्र के प्रकोप से बचने के लिए ब्रज के लोगों की मदद की थी।

कृष्ण जी का उपदेश

(1) ईश्वर जन्म तथा मृत्यु से परे हैं। वह अवतार नहीं लेता। –(8.3)

(2) ईश्वर अत्यन्त सूक्ष्म होने से बाहर की आंख तथा त्वचा से जानने योग्य नहीं। ईश्वर न आता हैं और न ही कहीं जाता हैं क्योंकि वह दूर तथा पास सब स्थानों पर विद्यमान है पर निराकार होने से दिखायी नहीं देता। ––(13.15.)

(3) हे अर्जुन! यदि तू इस निराकार अत्यन्त सूक्ष्म और सर्वव्यापक ईश्वर को जानना चाहता है तो अपने ह्रदय में ही ध्यान करके जान सकता है वहीं मिल सकता है जहां आत्मा भी हो दोनों का वास ह्रदय में ही है बाहर नहीं हैं। ––(18.31.)

(4) हे अर्जुन! वह परमात्मा ही व्याप्त होकर इस सारे संसार को यन्त्र के समान चलाता हैं। ––(18.31.)

(5) हे अर्जुन! उसी निराकार सर्वव्यापक संसार को बनाने तथा चलाने वाले की शरण में पूर्ण भावना सहित जा। उसी की शरण में जाने से सर्वोत्तम शान्ति तथा शाश्वत सुख मिल सकता हैं। ––(18.62)

ओउम् का जप और योगेश्वर कृष्ण

(1) प्राणायाम के साथ दोनों आँखों के मध्य में ध्यान लगाकर ओंम् का जाप करो। ––(8,10,13)

(2) यह ओ३म ही उस ब्रह्म सर्व सृष्टिकर्ता परमात्मा का मुख्य नाम हैं। इसी ओ३म को (मेरे से पूर्व भी) सब वैदिक विद्वानों ने ध्याया और गाया हैं। –(8.11.)

(3) इसी प्यारे ओ३म को जो भक्त नित्य नियम से जपता हैं। वह बार–बार के जन्म तथा मृत्यु के दुःख से बचकर परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता हैं। –(8–14,15)

दो शंकाएं

1. कृष्ण जी महाराज की गीता में वेद का खण्डन किया गया है?

समाधानः– अभी–अभी हम गीता के श्लोक 8.11 तथा श्लोक 3.15 द्वारा यह लिख चुके हैं, कि श्रीकृष्ण ओ३म के जप तथा यज्ञ को वेद का आदेश कहकर अनिवार्य रुप से उसे आचरण में लाने का उपदेश कर रहे हैं। अन्यत्र भी गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि वेदों में मैं सामवेद हैं। –(गीता–10/12)।

इससे पता चलता हैं। कि उनकी वेद के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी। इतिहास को देखने से पता चलता हैं कि उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य काल में आचार्य श्री सन्दीपन ऋषि के चरणों में बैठकर वेद का अभ्यास किया था। जो लोग त्रैगुण्य विषया वाले श्लोक से वेद का खण्ड़न दिखाने वाली बात किया करते हैं। वे स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा गीता में आये वेदों के प्रति श्रद्धा रखने वाले आदेशों का खण्ड़न करके कृष्ण महाराज के विरोधी सिद्ध होते हैं।

यहां इस त्रैगुण्यं विषया वेदा वाले श्लोक में भी गीता ने वेद का खण्डन न करके वेदों के नाम से प्रचलित दूसरे वेदविरुद्ध कर्मों का ही खण्ड़न किया हैं। आज भी लोगों ने अपनी मर्जी से पुराणों को बनाकर उसको पांचवां वेद कहना शुरु कर दिया हैं।

(2) शंकाः- श्रीकृष्ण स्वयं अर्जुन को कहते हैं कि अर्जुन तू मेरा अनुसरण कर। इससे तो यही पता चलता हैं कि श्रीकृष्ण ही ईश्वर थे।

समाधानः— नहीं ऐसी बात नहीं हैं। यदि श्रीकृष्ण स्वयं ईश्वर होते तो वे अध्याय 18 के 61, 62 तथा अध्याय 13 के 13,15 श्लोक में निराकार सर्वव्यापक ईश्वर की चर्चा न करके अपनी चर्चा करते। हम पूर्व इन श्लोकों के अर्थ लिख चुके हैं। ध्यान से पढ़े और गीता में भी देख लें।

वास्तविकता यह है कि जहाँ–जहाँ गीता में अपने आपको ईश्वर के स्थान पर मैं या मेरा ऐसा करके कहा है वहां भी उनका संकेत ईश्वर की ही ओर है। जब कोई योगी व्यक्ति ईश्वर भक्ति या समाधि में लीन हो जाता है तो वहां पर केवल परमात्मा के ही आनन्द को मुख्य रुप से अनुभव किया करता है। इसके साथ ही यह भी जानने योग्य है कि जहाँ–जहाँ कृष्ण महाराज ने मेरा ध्यान करो मेरे पीछे चलो ऐसा कहा है वहां वे ईश्वर की भक्ति में रंगे हुए यही कह रहे हैं कि मेरे भगवान् ओ३म् का जाप करो और जिस ईश्वर के मार्ग पर मैं चलता हूं। तुम भी उसी मार्ग पर मेरे पीछे चलो।

मैंने एक युवक का कल्याण करने के लिए उपदेश किया कि प्रतिदिन व्यायाम प्राणायाम तथा अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय करो। यदि जीवन दुःखों से छुड़ाना चाहते हो तो मेरे पीछे चलो।

यहां मेरे पीछे चलो का अर्थ यह नहीं कि अब मैं यदि सहारनपुर से दिल्ली जा रहा हूँ तो वह भी मेरे साथ गाड़ी में बैठ जायें और आगे जैसे–जैसे मैं गाड़ियों को बदलूं वैसा ही वह भी करते जायें। जैसा यहाँ पर पीछे चलने का वास्तविक अर्थ यही है कि वह मेरे बताये सत्यसनातन वैदिक मार्ग पर चलें। ठीक यही अभिप्राय योगेश्वर कृष्ण को बताने का अर्जुन को था।

वेदान्त दर्शन में इसी बात को सूत्र 1.1.29 द्वारा समझाया गया है कि जहाँ–जहाँ ईश्वर–भक्त ईश्वर के ध्यान में डूबा मैं शब्द का प्रयोग करता हैं। वहाँ उसको ईश्वर के लिए समझना चाहिये न कि उस कहने वाले व्यक्ति के लिए।

अतः इससे यही निश्चित होता हैं कि श्रीकृष्ण ईश्वर अवतार न थे अपितु वे तो ईश्वर तथा वेदों के भक्त थे और हम मनुष्यों को भी अपना कल्याण चाहने के लिए ईश्वर के मुख्य नाम ओ३म का श्रद्धापूर्वक जप करना व यज्ञ करना चाहिये।

अतः गीता पढ़ने वालों को चाहिये कि वे वेद की अवहेलना न करें।

कृष्ण के उपदेश के संग्रह श्री भगवत गीता की गलत व्याख्याः

1 गीता का वचन है :–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।4.7।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।4.8।।

अर्थात् :–कहने वाले बताते हैं। कि इस में श्रीकृष्ण जी ने वचन दिया है! कि जब–जब धर्म की ग्लानि (हानि) होगी, अधर्म की वृद्धि होगी, तब–तब मैं साकार रूप में स्वयं को प्रकट करता हूँ। ।।4.7।।

अर्थात्:– साधु पुरुषों की रक्षा पाप कर्म के विनाश धर्म की स्थापना के लिए में युग–युग में प्रकट होता हूँ। ।।4.8।।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि :–

अफगानिस्तान (जो भारत का ही हिस्सा था) वहाँ आज स्त्रियों के ऊपर अत्याचार हो रहे हैं। दुराचार–शोषण–हिंसा हो रही हैं। ऐसे में धर्म की स्थापना के लिए उनकी रक्षा के लिए श्रीकृष्ण जी का यह वचन कब फलीभूत होगा।

यदि अब नहीं तो कब कहाँ तो एक समय था। जब अवतार बात–बात पर होते थे। जैसेः–

(1) हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को चटाई जैसे लपेट लिया तो भगवान् विष्णु ने वराह–अवतार ले लिया।

(2) प्रह्लाद को पिता हिरण्यकश्यप ने कहा जाओ बेटा! पढ़ाई करो पर बेटा पढ़ता नहीं जाप करता था। अतः दुखी पिता ने पिटाई की (जो की हर माता–पिता करते हैं) ऐसे दुखी भक्त को देखकर भगवान् विष्णु ने नर–सिंह–अवतार ले लिया।

मतलब दो भाइयों को मारने के लिए दो बार अवतार.?

परन्तु अफगानिस्तान में अवतार नहीं हो रहा। अफगानिस्तान की हालत वर्षों से खराब हैं। पर एक छोटे–मोटे अवतार का नाम नहीं क्यों? घोर कलियुग आ गया क्या। भगवान् भी कलियुग ग्रस्त हो गए।

सत्य यह है कि ईश्वर अजन्मा है। अमर है। जन्म–मरण के चक्र में नहीं फँसता। जन्म–मरण के चक्र में वही फँसता है। जो सर्वव्यापक नहीं होता। जो सर्वव्यापक होता हैं उसे जन्म लेने की आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि ईश्वर वहाँ पहले से उपस्थित है। विद्यमान हैं। जो सृष्टि का निर्माण बिना जन्म लिए कर सकता हैं। प्रलय भी बिना जन्म लिए कर सकता है तो फिर एक छोटे से व्यक्ति (रावण, कंस, जरासंध) को नहीं मार सकता।

गीता के इन दोनों श्लोकों को समझने में गलती हुई है! गीता–कथाकारों ने हमें गलत पढ़ाया सच्चाई यह है कि श्रीकृष्ण जी ने इच्छा व्यक्त की है कि जब–जब धर्म की हानि अधर्म की वृद्धि हो सात्त्विक पुरुषों को मारा जाए और तामसी आसुरी वृत्ति के लोग सक्रिय हों तब तब उनका विनाश करने के लिए मैं जन्म लेता रहूँ।

जिस प्रकार हम भी कई बार कहते हैं कि भगवान् मेरा जन्म भारत में ही हो या परमात्मा!! मुझे हर जन्म में यही माता–पिता मिलते रहें। जो भी व्यक्ति सुख–सन्तोष की अनुभूति करता है। वह–वह व्यक्ति यह प्रार्थना करता हैं। अपने सन्तोष–आनन्द को वह व्यक्ति शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करता है और यही अभिव्यक्ति श्रीकृष्ण जी की गीता में हैं।

2 गीता में एक श्लोक (2/47) इस प्रकार है :

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'' ।

और इसका भावार्थ इस तरह समझाया जाता है की मनुष्य तू कर्म करता रह और फल यानि परिणाम की चिंता ना कर। परिणाम तो ईश्वर के हाथ में है। ये भावार्थ पूरी तरह गलत और व्यावहारिक नहीं है क्योकि ––

1. मनुष्य एक कर्म योनि है वो कर्म करता है तो उसके परिणाम की इच्छा के साथ। उसको ईश्वर ने सद्बुद्धि दी है कि पूरा नहीं तो आंशिक रूप से उसको परिणाम का आभाष भी होता है। परिणाम का आभाष उसको गलत कार्य से रोकता है। कोई व्यक्ति नदी में आत्महत्या के लिए कूद जाता है तो उसको मालूम है की मृत्यु होने की पूरी–पूरी सम्भावना है।

मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, पर फल भोगने में परतन्त्र। इस सिद्धान्त का साररूप में इस प्रकार वर्णन हैः–तुम्हारा कर्म करने में अधिकार है, फल में कदाचित् नहीं। यह उचित भी है। उदाहरण–विद्यार्थी परीक्षा देता है, उसकी योग्यता का मूल्यांकन प्राध्यापक करता है। यदि वह स्वयं ही अपने उत्तर का मूल्यांकन करने लगे, पहले तो उसके पास यथोचित ज्ञान नहीं कि कौन–सा उत्तर ठीक है और कौनसा नहीं दूसरा सम्भवतः स्वयं को कुछ अधिक ही अंक देने की चेष्टा करे। इसके अतिरिक्त, मनुष्य अपने अच्छे कर्मों के लिये फल की अभिलाषा करता है परन्तु बुरे कर्मों के फल से बचने की चेष्टा करता है। उससे बचने के लिये झूठ बोलता है अर्थात् एक और बुरा कर्म करता है। अपनी सुख–सुविधा के लिये अन्यों का हक मारता है। इस प्रकार के कुकर्मों का निर्णय उसके ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता। अतःयह न्याय संगत एवं युक्ति–युक्त है कि वह कर्म करने में स्वतन्त्र हो और फल भोगने में परतन्त्र।

गीता में कहा गया है कि निष्काम कर्म करने से मनुष्य कर्मों से लिप्त नहीं होता।

इस विषय पर 'मोक्ष सिद्धान्त' के अन्तर्गत विचार व्यक्त किये गये हैं। यहाँ प्रकरण कर्म बन्धन का है ।

महर्षि व्यास

महर्षि वेद व्यास जन्म कथाः

हमारे अधिकांश महापुरुष ऋषियों और विदुषी महिलाओं पर आक्षेप जिस तरह से लगाए गए हैं और पौराणिक समाज उसी गप्प के आधार का अनुसरण करता रहा है। ये अति दुःख का विषय है और निंदनीय है। इसी झूठ की कड़ी में महर्षि वेद व्यास को भी नही बक्शा।

प्रचलित कथाः– पौराणिक कथाओं के अनुसार प्राचीन काल में सुधन्वा नाम के राजा एक दिन आखेट के लिये वन गये। उनके जाने के बाद ही उनकी पत्नी रजस्वला हो गई। उसने इस समाचार को अपनी शिकारी पक्षी के माध्यम से राजा के पास भिजवाया। समाचार पाकर महाराज सुधन्वा ने एक दोने में अपना वीर्य निकाल कर पक्षी को दे दिया। पक्षी उस दोने को राजा की पत्नी के पास पहुँचाने आकाश में उड़ चला। मार्ग में उस शिकारी पक्षी को एक दूसरा शिकारी पक्षी मिल गया। दोनों पक्षियों में युद्ध होने लगा, युद्ध के दौरान वह दोनों पक्षी के पंजे से छूटकर यमुना में जा गिरा। यमुना में ब्रह्मा के श्राप से मछली बनी एक अप्सरा रहती थी। मछली रूपी अप्सरा दोने में बहते हुये वीर्य को निगल गई तथा उसके प्रभाव से वह गर्भवती हो गई। गर्भ पूर्ण होने पर एक निषाद ने उस मछली को अपने जाल में फँसा लिया। निषाद ने जब मछली को चीरा तो उसके पेट से एक बालक तथा एक बालिका निकली। निषाद उन शिशुओं को लेकर महाराज सुधन्वा के पास गया। महाराज सुधन्वा के पुत्र न होने के कारण उन्होंने बालक को अपने पास रख लिया जिसका नाम मत्स्यराज हुआ। बालिका निषाद के पास ही रह गई और उसका नाम मत्स्यगंधा रखा गया क्योंकि उसके अंगों से मछली की गंध निकलती थी। उस कन्या को सत्यवती के नाम से भी जाना जाता है। बड़ी होने पर वह नाव खेने का कार्य करने लगी। एक बार पराशर मुनि को उसकी नाव पर बैठकर यमुना पार करना पड़ा। पराशर मुनि सत्यवती रूप–सौन्दर्य पर आसक्त हो गये और बोले देवी! मैं तुम्हारे साथ सहवास करना चाहता हूँ।

सत्यवती ने कहा मुनिवर! आप ब्रह्मज्ञानी हैं और मैं निषाद कन्या। हमारा सहवास सम्भव नहीं हैं । तब पराशर मुनि बोले बालिके! तुम चिन्ता मत करो। प्रसूति होने पर भी तुम कुमारी ही रहोगी। इतना कहकर उन्होंने अपने योगबल से चारों ओर घने कुहरे का जाल रच दिया और सत्यवती के साथ भोग किया। तत्पश्चात् उसे आशीर्वाद देते हुये कहा तुम्हारे शरीर से जो मछली की गंध निकलती है। वह सुगन्ध में परिवर्तित हो जायेगी।

समय आने पर सत्यवती गर्भ से वेद–वेदांगों में पारंगत एक पुत्र हुआ। जन्म होते ही वह बालक बड़ा हो गया और अपनी माता से बोला माता तू जब कभी भी विपत्ति में मुझे स्मरण करेगी मैं उपस्थित हो जाऊगाँ। इतना कहकर वे तपस्या करने के लिये द्वैपायन द्वीप चले गये। द्वैपायन द्वीप में तपस्या करने तथा उनके शरीर का रंग काला होने के कारण उन्हे कृष्ण द्वैपायन कहा जाने लगा। आगे चलकर वे वेदव्यास के नाम से विख्यात हुये।

कथा की सत्यता:

1 मछली से पैदा होने वाली ये महागप्प कथा किसी धूर्त (वाममार्गी) मानव की बनाई हुई है। गप्प कथा लिखने वाले से ये पूछो कि ये घटनाक्रम कितने समय का है और वह उस समय कहाँ पर उपस्थित था, क्या उसके पास प्रमाण हैं ? देखा जाये तो सम्पूर्ण घटनाक्रम में कम २०–२५ साल तो लगे होंगे और पूरे समय की घटना को इस तरह धूर्त ने पिरोया है कि जैसे कि वो एक दृष्टा हो।

2 आप जानते हैं कि मछली का गर्भाशय कैसा होता हैं? माता का जैसा गर्भाशय होगा वैसी ही उसकी संतान होगी अर्थात् मानव स्त्री के गर्भाशय से मानव और मछली के गर्भाशय से मछली, ऐसा परमात्मा का प्राकृतिक नियम हैं। इसमें कहीं भी अपवाद तक नहीं मिलता। यहीं विज्ञान की मान्यता भी है।

3 इस कथाकार से एक अन्य प्रश्न है कि क्या योगीजन् अपने योग की शक्ति से परमात्मा के नियम विरुद्ध भी कुछ कर सकते हैं? ये असम्भव है। योग क्या है? अष्टांग योग के जो आठ अंग है ––यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि । ये सभी मानव को सांसारिकता से दूर ले जाकर ईश्वर से जोड़ते हैं। जिसमे मनुष्य के पाँच दोष जो की काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार है। वह इन सबसे दूर रहता है। जो व्यक्ति योगी परमात्मा के निकट पहुंच जाता है, तो वह परमात्मा के ज्ञान को जानने वाला बन जाता हैं। वह परमात्मा के नियम के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा। पारा मुनि एक ऐसे व्यक्ति नहीं थे कि वह परमात्मा के नियम के विरुद्ध कोई कार्य करते। यह तो हो सकता है कि मानव के हृदय की गति चंचल हो जाए परंतु ऐसे महान ऋषि तुरंत ही उस पर अपना नियंत्रण कर लेते हैं।

4 मछली के गर्भ से मानव कन्या जन्म होना तो स्वतः ही नियम के विरुद्ध हैं। इसको तो कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी स्वीकार नहीं करेगा क्योंकि परमात्मा के बनाए नियम तो अटल हैं, सत्य हैं। तीनों कालों में एक से हैं। परमात्मा की चलाई परम्परा को कोई भी तोड़ नहीं सकता। चाहे महर्षि हो, चाहे योगी हो और चाहे मुनि हो।

5 हमको परमात्मा के नियमों को स्वीकार कर लेना चाहिए। इससे हमारा भी जीवन बनेगा और उसी में हमारा महत्व है। महर्षि पारा मुनि के दो पुत्र थे जो उनकी धर्म पत्नी के गर्भ से ही उत्पन्न हुए थे। एक महर्षि व्यास मुनि महाराज और दूसरे धुंधऋषि महाराज।

मत्स्योदरी के दो बालक थे जो कि मत्स्योदरी के साथ शांतनु का विवाह संस्कार होने के पश्चात उत्पन्न हुए थे। महर्षि व्यास ने तो केवल यह कहा है कि वह गंगेश्वरी राजा की पुत्री गंगा थी। उसकी मृत्यु के पश्चात महाराज शांतनु ने मल्लाह की अत्यंत सुंदरी कन्या मत्स्योदरी से विवाह संस्कार किया। मानव को सच मानने में कोई किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

6 वेद व्यास जी महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महाभारत ग्रंथ के रचयिता है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महर्षि पराशर और सत्यवती निषाद के पुत्र थे। वेदव्यास महाभारत के रचयिता ही नहीं, बल्कि उन घटनाओं के साक्षी भी रहे हैं, जो क्रमानुसार घटित हुई हैं। महाभारत के बाद धर्म कर्म बिल्कुल नष्टप्राय हो गए थे। इन्होंने वेद मंत्रो का भाष्य भी किया, और वेद ज्ञान का प्रचार किया इसलिए ये वेदव्यास कहलाये।

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि के बाद व्यास ही सर्वश्रेष्ठ कवि हुए हैं। इनके लिखे काव्य 'आर्ष काव्य' के नाम से विख्यात हैं। महाभारत में उपाख्यानों का अनुसरण कर अनेक संस्कृत कवियों ने काव्य, नाटक आदि की सृष्टि की है।

ऐसे विद्वान और महान ऋषि के विषय में अनावश्यक बातें करना, असत्य कथाये जोड़कर हमारे ऋषियों का अपमान किया गया है, जो ठीक नहीं, निंदनीय है।

गर्भ में बच्चा कैसे बनता है?

गर्भ की प्रक्रिया समझने के लिये स्त्री के प्रजनन अंगों को समझना जरुरी है। स्त्री के प्रजनन अंगों को चार भागों में बांटा गया है– ओवरी, डिम्बवाहिनी नली, गर्भाशय और योनि। ओवरी बादाम की तरह और लगभग उसी के आकार की दो ग्रथियाँ होती हैं। स्त्रियों में मौजूद इन्हीं ओवरियों में मनुष्य को जन्म देने वाले लगभग चार लाख जीवित अण्डे किशोरावस्था के आने तक सुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं। प्रथम मासिक–धर्म के शुरू होते ही इस बात की सूचना मिल जाती है कि लड़की अब किशोरी हो गई है। इसके साथ ही उसके सम्पूर्ण संतानोत्पादक अंग सचेत होकर अपने–अपने कार्य में जुड़ जाते हैं। किशोरावस्था के आरम्भ होते ही ओवरी में सोए हुए अंडे सचेत होकर बाहर निकलने का प्रयास करने लगते हैं। साधारणतः लगभग 28 दिनों के अंतराल से दोनों ओवरियों में से किसी एक ओवरी में एक साथ कई अंडे पकने शुरू हो जाते हैं, लेकिन अंतिम रूप से केवल एक ही अंडा पककर बाहर निकलने योग्य हो पाता है, बाकी सब सूखकर बेकार हो जाते हैं।

मासिक धर्म के बाद लगभग 10 दिनों तक यह अंडा ओवरी के अंदर अपनी छोटी सी पुटिका में बंद होकर पुटिका सहित बढ़ता रहता है। अंत में यह ओवरी के ऊपरी सतह पर उभरकर एक छोटा सा छाला बनकर दिखता है। पक जाने पर यह पुटिका फट जाती है और पका हुआ अंडा ओवरी से अलग हो जाता है। स्त्री की संपूर्ण आयु में लगभग 30 वर्षों तक प्रति माह एक अंडा (डिम्ब) ओवरी से बाहर निकलता है। इस प्रकार ओवरी के अंदर कुल चार लाख अंडों में से केवल 400 या 445 अंडे ओवरी से बाहर निकलते हैं। बाकी अंडे पूरी तरह न पक सकने के कारण नष्ट हो जाते हैं या उनके पकने की कभी बारी ही नहीं आती।

ओवरी से ज्यों ही पका हुआ अंडा बाहर निकलता है। डिम्बवाहिनी के सिरे पर झूमते हुए रेशे उस अंडे को हाथी की सूंड की तरह पकड़कर नली के मुख छिद्र में डालकर अंदर धकेल देता है। अब यह डिम्ब लहराती हुई नली से रोमाभ (रोम की तरह बाल के रेशे) की पकड़ में आ जाता है। यह रोमाभ इस नए मेहमान को आदर सहित धीरे–धीरे धकेलकर नली के दूसरी ओर गर्भाशय में प्रवेश कराने के लिए आगे बढ़ाते रहते हैं। डिम्बवाहिनी नली की यात्रा पूर्ण करने में प्रायः 3 से 6 दिन तक का समय लग सकता है।

मासिक–धर्म के प्रायः 10 दिन बाद डिम्ब ओवरी से बाहर निकलता है जिसे ओवूलेशन क्रिया कहते हैं। इस दिन यदि वह स्त्री किसी पुरुष से समागम करती है तो पुरुष के वीर्य में उपस्थित करोड़ों स्पर्म किसी न किसी तरह गर्भाशय के मुख छिद्र में प्रवेश कर ऊपर डिम्बवाहिनी नलियों में पहुँच कर वहां पहले से उपस्थित पके हुए डिम्ब से मिल जाने का प्रयत्न करते हैं। इन शुक्राणुओं का शरीर बहुत सूक्ष्म धागे की तरह होता है। इसके 2 भाग होते हैं– एक सिर तथा दूसरा पूंछ।

यह शुक्राणु इतने छोटे और चंचल होते हैं कि इनके लिए 5 या 6 इंच की यह छोटी सी यात्रा कठिन प्रतीत होती है। इस कठिन परिस्थिति में एक शुक्र के शायद जीवित बचने की आशा करना व्यर्थ है। इस बात को ध्यान में रखकर प्रकृति भी इस कठिनतम परीक्षा के लिए एक साथ करोड़ों शुक्राणुओं को निमंत्रण देती है। जीवन–मरण की इस दौड़ में शायद एक या दो शुक्राणु सफल हो पाते हैं, क्योंकि योनि से लेकर डिम्बवाहिनी नली तक के मार्ग में अनेक बाधाएँ इन नन्हे यात्रियों के प्राण ले लेती हैं।

अब इस गर्भित अंडे में अनेक नए परिवर्तन होने लगते हैं और तब यह अंडा शीघ्रता से एक जगह जमकर बैठने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज करता हुआ डिम्बवाहिनी नली से बाहर निकलकर गर्भाशय में प्रवेश करता है।

गर्भाशय के चारों ओर मुलायम माँस की रस भरी गद्दियाँ बनकर बिछ जाती हैं ताकि गर्भिक अंडे को कहीं भी जमकर अंकुरित होने की सुविधा मिल सके। इसके अतिरिक्त ओवरियों को भी गर्भाधान की सूचना तुरंत मिल जाती है। जिससे इन ओवरियों में अगले

9 महीने अंडे का पककर निकलना बंद हो जाता है और न ही कोई शुक्राणु अंदर आ पाता है। मासिक–धर्म का क्रम भी रुक जाता है। स्त्री गर्भवती हो जाती है।

मछलियों में प्रजनन को भी समझ लेने जरुरी है क्योंकि अनेकों पौराणिक कथाओं में मछली से उत्पन्न होने की कथायें मिलती है

मछलियों में प्रजनन के अनेक तरीके हैं, मछलियों में बाहरी जनन होता है। इनके शरीर में मूत्र, विष्टा व अंडे, शुक्राणु के निकलने का एक ही रास्ता होता है। मछलियों की कुछ प्रजाति मार्च अप्रैल में जनन करती हैं और कुछ जुलाई के महीने में। जब जनन का समय होता है उस समय नर मछली मादा के करीब आती है और दोनों पानी में अठखेलियाँ करती हैं। मादा आगे आगे चलकर अंडे छोड़ती जाती है और नर उसके पीछे पीछे चलकर शुक्राणु छोड़ता चलता है। वहीं पानी में अंडे और शुक्राणुओं का मिलन हो जाता है इसे निषेचन कहते हैं। निषेचन के बाद ये किसी लकड़ी या पत्ते के साथ चिपक जाते हैं। एक सप्ताह के बाद इनमें से बच्चे निकल जाते हैं । इन्हें स्पान कहते हैं। ये स्पान बड़े होकर मछली बनते हैं।

मछलियाँ प्रायः मीठे पानी की मछलियाँ तली में या पौधों के बीच अंडे देती हैं। चिपकने वाली जैली द्वारा ये अंडे आपस में व आधार से चिपके रहते हैं। युवा और विशेष रूप से अंडे की मृत्यु दर बहुत अधिक है, और सैकड़ों, हजारों अंडों में से (कुछ मामलों में लाखों अंडों में से) केवल कुछ ही शिशु मछलियाँ परिपक्वता तक पहुँच पाती हैं। मछलियों के अंडों को स्पॉन तथा जनन प्रक्रिया को स्पॉनिंग कहा जाता है।

नर मत्स्य शुक्राणु का उत्पादन करते हैं, जो आमतौर पर एक दूधिया सफेद पदार्थ के रूप में होता है, जिसे मिल्क कहा जाता है। मादाओं मत्स्य में अंडे दो अंडाशय (कभी–कभी केवल एक) में बनते हैं और अंडाशय से मूत्रोजनन द्वार में होकर बाहर की ओर गुजरते हैं।

प्रायः मछलियों में निषेचन की प्रक्रिया शरीर से बाहर जल में पूर्ण होती है, लेकिन कुछ मछलियों में अंडों को आंतरिक रूप से भी निषेचित किया जाता है लेकिन विकसित होने से पहले उन्हें शरीर से बाहर कर दिया जाता है।

हमें टीवी धारावाहिकों को अंतिम प्रमाण नहीं मानना चाहिए क्योंकि इन्होंने भी तथ्यों को सही ढंग से प्रस्तुत नहीं किया है। हमने आपके समक्ष यह तथ्य महाभारत के माध्यम से ही प्रस्तुत किए हैं।

लाक्षागृह का सच

पांडवो की कीर्ति से धृतराष्ट्र चिंतित रहता था। और धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन भी पांडवों के प्रति और भी अधिक जलन रखने लगा था। वह नहीं चाहता था कि युधिष्ठिर और

उसके भाई जीवित रहें। उसकी इच्छा थी कि जैसे भी हो पांडवों का विनाश हो जाए और वह स्वयं भरत वंश का सम्राट बनने का गौरव प्राप्त करे। अपनी इसी प्रकार की सोच को क्रियान्वित करते हुए दुर्योधन ने अपने पिता धृतराष्ट्र को इस बात के लिए सहमत किया कि युधिष्ठिर और उसके भाइयों को वारणाव्रत भेजा जाएँ। वहाँ पर दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि के साथ मिलकर युधिष्ठिर और उसके अन्य भाइयों का विनाश करने की योजना बनाई ।

इस योजना के अंतर्गत वहाँ पर एक लाक्षागृह का निर्माण किया गया। इस लाक्षागृह में एक सही समय पर आग लगा देनी थी। जिसमें पांचों पांडवों का जलकर मर जाना निश्चित था।

इसी कड़ी में उसका मामा शकुनि पांडवों से दुर्योधन की जलन को और भी अधिक बढाने का काम करता था। जब भी अनुकूल अवसर आता तभी शकुनि अपने भांजे दुर्योधन को पांडवों के विरुद्ध भड़काकर अपना काम पूरा करता था।

इसलिए शकुनी ने लाक्षागृह जैसी विनाशकारी योजना का कपटपूर्ण जाल बिछाने में किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी।

दुर्योधन इस योजना को लेकर अपने पिता धृतराष्ट्र के पास पहुँचा और अपने पिता को अकेला देखकर उससे अपने मन की बात कहनी आरम्भ की। उसने अपने पिता से स्पष्ट कह दिया कि "पिताजी ! जिस प्रकार नगर निवासी परस्पर चर्चा करते हुए युधिष्ठिर को राजा बनाने की बात करते हैं वह मुझसे सहन नहीं होती । ये नगर निवासी युधिष्ठिर का इस प्रकार गुणगान करके आपका और पितामह भीष्म का अनादर कर रहे हैं। यदि युधिष्ठिर को आप राजा बनाते हैं तो पितामह भीष्म जी तो इस बात को स्वीकार कर लेंगे, क्योंकि उन्हें स्वयं कभी राजा नहीं बनना। परंतु मैं इसे कदापि स्वीकार नहीं करूंगाँ। यदि आपके अधिकार का अतिक्रमण कर पांडु उस समय अपने पिता का राज्य प्राप्त करने में सफल हो गया था तो मैं अब ऐसा नहीं होने दूंगा। मैं चाहूंगा कि पांडु के द्वारा किए गए उस अनैतिक और अधर्मयुक्त कार्य का इस समय प्रतिशोध लिया जाए। मैं नहीं चाहता कि आज इस राज्य को पांडु पुत्र युधिष्ठिर प्राप्त करने में सफल हो और उसके पश्चात उसकी पुत्र परंपरा इस राज्य को भोगने के लिए स्वाभाविक रूप से उत्तराधिकारी मान ली जाए। यदि ऐसा होता है तो उस समय हम अर्थात आपके पुत्र पौत्रादिक लोगों की अवहेलना और अनादर के पात्र बन जाएंगे।"

इस प्रकार की भावनात्मक बातें करके दुर्योधन ने अपनी कुटिलता से अपने पिता धृतराष्ट्र को गुमराह करना चाहा। धृतराष्ट्र भीष्म पितामह, विदुर और द्रोणाचार्य जैसे विद्वान और वेदवेत्ताओं के समक्ष न्यायशील बनने का प्रयास करता था। वह इस प्रकार का प्रदर्शन करता था कि वह धर्मशील है और वही कार्य करेगा जो धर्मयुक्त और भरत

वंश की परंपरा के अनुकूल होगा। परंतु जब उसके पुत्र दुर्योधन के द्वारा उसे अकेले में इस प्रकार समझाया जाता था तो उसका चित्त डांवाडोल हो जाता था । इसका कारण यह था कि वह मूल रूप में स्वयं भी पांडु के राज्याभिषेक के समय हुए अपने अनादर को अभी भूला नहीं था। वह अपने जन्म से अंधे होने को अपने लिए अभिशाप मानता था और यह सोचता था कि यदि वह जन्मांध नहीं होता तो वह स्वयं ही इस राज्य का स्वामी होता और इसके पश्चात मेरे पुत्र पौत्रादिक इस राज्य को देर तक भोगते रहते।

दुर्योधन को समझाते हुए धृतराष्ट्र ने कहा कि बेटा दुर्योधन! युधिष्ठिर सन्तानों में सबसे बड़ा है इसलिये इस राज्य पर उसी का अधिकार है. फिर भीष्म तथा प्रजा भी उसी को राजा बनाना चाहते हैं.'' धृतराष्ट्र के वचनों को सुन कर दुर्योधन ने कहा, ''पिताजी! मैंने इसका प्रबन्ध कर दिया है, बस आप किसी तरह पाण्डवों को वारणाव्रत भेजने के लिए कह दें.''

अकेले में पिता पुत्र के बीच हुए इस संवाद से धृतराष्ट्र भी पूर्णतया सहमत हो गया कि किसी भी तरह पांडवो का विनाश होना चाहिए।

दुर्योधन ने शकुनि के साथ मिलकर एक खतरनाक साजिश को अंजाम दिया. शकुनि ने दुर्योधन को लाक्षागृह में पांडवों को मारने की युक्ति बताई. दुर्योधन अपने मामा शकुनि की बातों में आ गया और साजिश को चरणबद्ध तरीके से अंजाम देने में जुट गया.

विशेष ढंग से बनवाया गया था लाक्षागृह

दुर्योधन ने पांडवों के रहने के लिए पुरोचन नामक शिल्पी से एक भवन का निर्माण करवाया था। यह पूरा महल लाख, चर्बी, सूखी घास आदि से बना था. इस महल को बनवाने में ऐसी चीजों का अधिक प्रयोग किया गया था जो जल्दी आग पकड़ लें. इसके पीछे दुर्योधन की सोच यह थी जब पांडव इस महल में गहरी नींद में सो जाएंगे तो इसमें आग लगा दी जाएगी, जिससे यह महल तुरंत ही जलकर राख हो जाए और किसी को बच निकलने का कोई मौका न मिले.

दुर्योधन ने पिता को अपनी बातों से मना ही लिया था. इसलिए धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को वाणावृत जाने का आदेश दिया। धृतराष्ट्र के आदेश का पालन करते हुए युधिष्ठिर माता और सभी भाइयों के साथ महल में प्रवेश किया और परिवार के साथ रहने लगे.

पांडवों को लाक्षागृह से बचाने में दो लोगों का योगदान था

(1) विदुर जी : जिनके गुप्तचरों ने पता लगा लिया था कि दुर्योधन की साजिश क्या है (पांडवों को जला देने की), उन्होंने गुप्त रूप से यह कहकर कि जंगल की आग में कौन सा जानवर सुरक्षित रहता है (चूहा) क्योंकि वो भूमिगत बिल में छुप जाता है, ये कह के पांडवों को आगाह कर दिया था।

(2) वो खनिक, जिसने सुरंग खोद के राजकुमारों को जमीन का रास्ता बना के बाहर निकाला था

ऐसे बच निकले पांडव

योजना की भनक लगने के बाद पांडव अपने बचाव के लिए उपाय करने लगे. जब युधिष्ठिर वाणावृत जा रहे थे तो विदुर ने आश्वाशन दिया कि सुरंग बनाने वाले कारीगर को चुपके से तुम लोगों के पास भेज दूँगा. लेकिन तब तक सावधानी से महल में रहना. युधिष्ठिर ने विदुर को धन्यवाद दिया.

सुरंग तैयार हो गई. फिर एक दिन युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा, ''भीम! अब दुष्ट पुरोचन को इसी लाक्षागृह में जला कर हम सभी लोगों को यहाँ से निकल लेना चाहिए. '' भीम ने उसी रात्रि पुरोचन बन्दी लिया और महल में आग लगा दी। युधिष्ठिर माता कुन्ती और भाइयों के साथ सुरंग के रास्ते सुरक्षित निकल आए। लेकिन जब पांडवों के बच निकलने की जानकारी दुर्योधन को हुई तो उसे अपनी योजना के विफल होने पर बहुत क्रोध आया और पुनः नई योजना की तैयारी करने लगा।

इस प्रकार लाक्षाग्रह की योजना का अंत हुआ।

अध्याय- 2

द्रौपदी



द्रौपदी महाभारत के सबसे प्रसिद्ध पात्रों में से एक है। इस महाकाव्य के अनुसार द्रौपदी पांचाल देश के राजा द्रुपद की पुत्री है। महाभारत ग्रंथ की मूल कथा में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों से आर्य–संस्कृति का रूप काफी दयनीय स्थिति को प्राप्त हुआ है। द्रौपदी के पाँच पति वाली कथा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। महाभारत की द्रौपदी तथा पूर्ववर्ती किसी भाष्यकार द्वारा प्रक्षिप्त व बाद में बनी परम्परागत कही कहाई कहानी के आधार पर द्रौपदी के दो परस्पर विरोधी चरित्र पढ़ने और सुनने को मिलते हैं। एक तरफ उसे पंचकन्या, सती, चिरकुमारी आदि सम्मानजनक स्थान दिया गया है तो दूसरी ओर उसे पंच पतियों की पत्नी कहकर चरित्र हनन भी किया गया है। द्रौपदी पंच–कन्याओं में से एक मानी जाती हैं, उसे चिर–कुमारी भी कहा जाता है। वह कृष्णा, यज्ञसेनी, महाभारती, सैरंध्री अदि अन्य नामो से भी विख्यात है। द्रौपदी के ऊपर आरोप हैं कि उसने दुर्योधन को अंधे का पुत्र अंधा कहकर अपमान किया।

द्रौपदी द्वारा कर्ण को सूतपुत्र कहकर अस्वीकारना कुछ प्रक्षिप्त संस्करणों मे उल्लिखित हैं। परंतु उनमे भी द्रौपदी ने अपनी इच्छा से ही कर्ण को अस्वीकारा था इसमे श्रीकृष्ण की कोई भूमिका नही थी जैसा धारावाहिकों मे दिखाया जाता हैं।

द्रौपदी ने कभी भी किसी को भी कोई भी श्राप नही दिया ना ही उसने जब तक कोई दुःशासन का रक्त नहीं ला दे तब तक अपने केश खुले रखने का जैसा कोई प्रण लिया था। द्रौपदी और हिडिंबा कभी नही मिले तो उन दोनों का एक–दूसरे के पुत्रों को मृत्यु का श्राप देने का कोई प्रश्न ही नही उठता। द्रौपदी ने पाण्डवों के समक्ष उनकी अन्यपत्नियों के लिए इंद्रप्रस्थ मे निवास करने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया था। कुंती

द्रौपदी से अपने पुत्रों से भी अधिक स्नेह करती थी। उन दोनों के मध्य कोई सास–बहू वाला झगड़े का कोई विवरण नही मिलता हैं।

इसके अतिरिक्त आरोप हैं कि उसने अपने पुत्र कर्ण को त्याग दिया था। इस तरह के अनेक आरोप द्रौपदी पर लगे हैं। जिनको समझना जरुरी हैं।

द्रौपदी की जन्म कथा

गप्प कथा लिखने वालो ने सीता माता,द्रौपदी ,हनुमान ,और भी हमारे अनेको महापुरुष है जिनके जन्म को लेकर दुष्प्रचार किया गया। कथाकारों ने लिख दिया कि द्रौपदी गर्भ से नहीं यज्ञ कुण्ड से उत्पन्न हुई।

पौराणिक कथा क्या है ? द्रौपदी के जन्म से जुड़ी पौराणिक कहानी अवश्य ही समझनी होगी, जो संक्षेप में कुछ इस प्रकार है पौराणिको के अनुसार महाराज द्रुपद ने द्रोणाचार्य से प्रतिशोध लेने के लिए कर्मकांडी ब्राह्मणों याज और उपयाज द्वारा यज्ञ करवाया और उस यज्ञ से उन्हें पुत्र धृष्टद्युम्न और पुत्री कृष्णा (द्रौपदी) की प्राप्ति हुई।

आगे ये भी लिख दिया है की द्रौपदी जन्म से ही युवा स्वरूप सुंदरी के रूप में पैदा हुई। इस विषय पर महाभारत के कुछ श्लोको का अर्थ इस प्रकार है :

कुमारी चापि पाञ्चाली वेदिमध्यात्समुत्थिता।
प्रत्याख्याते पृषत्या च याजके भरतर्षभ॥ (44)

भावार्थ : तत्पश्चात यज्ञ की वेदी में से एक कुमारी कन्या भी प्रकट हुई, जो पांचाली कहलायी। वह बड़ी सुंदरी एवं सौभाग्यशालिनी थी। उसका एक एक अंग देखने योग्य था, उसकी श्याम आँखे बड़ी–बड़ी थी। (44)

उसके शरीर की कांति श्याम थी। नेत्र ऐसे जान पड़ते मानो खिले हुए कमल के दल हो। केश काले काले और घुंघराले थे। नख उभरे हुए और लाल रंग के थे। भौहे बड़ी सुन्दर थी। दोनों उरोज (स्तन) स्थूल और मनोहर थे। (45)

वह ऐसी जान पड़ती मानो देवी दुरत ही मानवशरीर धारण करके प्रकट हुई हो। उसके अंगो से नील कमल की सी सुगंध प्रकट होकर एक कोस तक चारो ओर फैल रही थी (46)

उसने परम सुन्दर रूप धारण कर रखा था। उस समय पृथ्वी पर उसके जैसी सुन्दर स्त्री दूसरी नहीं थी। देवता, दानव और यक्ष भी उस देवोपमय कन्या को पाने के लिए लालायित थे। (47)

सुंदर कटिप्रदेश वाली उस कन्या के प्रकट होने पर भी आकाशवाणी हुई ''इस कन्या का नाम कृष्णा है। यह समस्त युवतियों में श्रेष्ठ एवम् सुंदरी है और क्षत्रियों का संहार करने के लिए प्रकट हुई है। (48)

यह सुमध्यम समय पर देवताओ का कार्य सिद्ध करेगी। इसके कारण कौरवो को बहुत बड़ा भय प्राप्त होगा। (49)

विश्लेषण

1 आज का युग विज्ञान का है, वे कथित स्वघोषित मजहबी पुस्तके जिनमे विज्ञानं का लेशमात्र भी समावेश नहीं है। ऐसी गप्प कथाये आज पूरे विश्व के लिए एक बड़ी समस्या और चुनौती बन गयी हैं। और कथाकारों ने और भी अंधविश्वास को जन्म दिया है कि जो कुछ भी हिन्दू इतिहासिक ग्रंथो में लिखा गया, वह सब सत्य है, चाहे वह हनुमान जी का वानर के स्थान पर बन्दर रूप होना हो, द्रौपदी के मनगढंत चीरहरण की कथा हो, महासती द्रौपदी के पाँच पति की अवधारणा हो, कृष्ण जैसे योगीराज की अनेको पत्नियाँ और गोपियों के साथ रास रचाने की घृणित कथा हो आदि।

2 शिशु का जन्म कैसे होता है ? महीने में एक बार महिलाओं के अण्डाशय (ओवरी) से एक अण्डा (ओवम) निकलता है। पुरुषों के अण्डकोष (टेस्टिकल्स) में से शुक्राणु (स्पर्म) निकलते हैं। शुक्राणु वीर्य (सीमेन) में पाया जाता है। वीर्य एक तरल पदार्थ जिसमे लाखों छोटे शुक्राणुओं होते हैं और यह मूत्राशय के ठीक पीछे ग्रंथियों द्वारा निर्मित होता है। यदि एक अण्डा किसी एक शुक्राणु द्वारा निषेचित (फर्टिलाइज) हो जाये, तो गर्भावस्था होती है।प्रसव को आम तौर पर तीन चरणों में बाँटा जाता है। पहला चरण लगभग सबके लिए सबसे लम्बा होता है, लेकिन इसकी लम्बाई बहुत ही परिवर्तनशील होती है। एक घंटे से लेकर 20 घंटों के बीच तक की कोई भी अवधि सामान्य मानी जाती है।प्रसव की शुरुआत शिशु से मिलने वाले हॉर्मोनल ट्रिगर्स की अनुक्रिया के रूप में होती है। शिशु की एड्रीनल ग्लैंड (अधिवृक्क ग्रंथि) विकसित होकर कॉर्टीसोन नामक हॉर्मोन का स्राव करना शुरु करती है। इसकी अनुक्रिया में माँ के अंदर प्रोस्टाग्लैंडिंस नामक हॉर्मोनों का स्राव होता है और यही वे हॉर्मोन होते हैं जो गर्भाशय के संकुचन की प्रक्रिया आरम्भ कराते हैं।

3 महाभारत में दिये गए उपरोक्त श्लोकों से तीन बाते बताई है–पहली द्रौपदी युवा अवस्था में यज्ञकुंड के मध्य से उत्पन्न हुई और द्रौपदी से पहले उसका भाई धृष्टद्युम्न उत्पन्न हुआ वह भी युवा ही था। दूसरी बात यहाँ धृष्टद्युम्न के शरीर की चर्चा केवल 2–3 श्लोक में बताकर इतिश्री कर दी गयी, मगर द्रौपदी के रूप, शरीर, उरोज, कटिप्रदेश (कमर) आदि का विस्तारपूर्ण विवरण दिया गया थोड़ा अश्लीलता के साथ, अतः ये सिद्ध है ये भेदभाव व्यासमहाराज जी कभी नहीं करते, तीसरी बात यज्ञ किया गया था गुरु द्रोण का वध करने हेतु एक पुरुष संतान की प्राप्ति हेतु, मगर यज्ञ से दो संतान एक पुरुष और एक स्त्री की प्राप्ति हुई जिससे

कौरवो के नाश की भविष्यवाणी बताई गयी, क्या द्रुपद महाराज का यज्ञ कौरवो के नाश के लिए भी किया गया था ? ये कितना बड़ा झूठ है, आप स्वयं निर्णय करने में समर्थ है।

4 द्रौपदी का जन्म रहस्यमयी नहीं, सामान्य स्थिति में ही हुआ था। यहाँ द्रुपद महाराज द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया गया था, यह पुत्रेष्टि यज्ञ बिल्कुल उसी प्रकार है जैसे श्रीराम आदि बंधुओ को प्राप्त करने हेतु महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया था, यदि पुत्रेष्टि यज्ञ से पुत्र व पुत्री हवन कुंड से उत्पन्न होते तो श्रीराम आदि बंधू भी पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने पर हवन कुंड से उत्पन्न हो सकते थे, मगर ऐसा नहीं हुआ, पुत्रेष्टि यज्ञ एक विज्ञानं सम्मत यज्ञ है जिसमे यज्ञ द्वारा, चुनिंदा और संयमित समिधा, सामग्री आदि द्वारा इच्छित संतान की उत्पत्ति हेतु वैज्ञानिक आधार पर वीर्य और गर्भ को उत्तम और परिपक्व किया जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे आज निःसंतान दम्पत्ति के लिए अनेको प्रकार की दवाये उपलब्ध होती हैं, जो संतानप्राप्ति हेतु वीर्य और गर्भ के लिए आवश्यक हो।

5 द्रौपदी का जन्म रहस्यमयी नहीं, सामान्य स्थिति में ही हुआ था यह बात महाभारत ही स्वयं सिद्ध करती है, देखिए :

द्रुपदेषा हि सा जज्ञे सुता वै देवरूपिणी

(महाभारत आदिपर्व, वैवाहिकपर्व, 1961)

व्यासजी ने कहा : द्रुपद ! यह वही मुनिकन्या तुम्हारी पुत्री के रूप में पुनः उत्पन्न हुई है।

यदि द्रौपदी यज्ञ की वेदी से उतपन्न हुई, तो यहाँ व्यासजी ने द्रुपद के कुल में उत्पन्न हुई ऐसा क्यों कहा ? वनपर्व, आरण्यकपर्व, आदि अनेको स्थान पर महाभारत में द्रौपदी को द्रुपद कुल में उत्पन्न हुई ऐसा कहा है।

श्रीमदभागवत पुराण ने भी पुष्टि की है, महाराज द्रुपद से द्रौपदी, धृष्टद्युम्न उत्पन्न हुए, यही नहीं द्रौपदी और धृष्टद्युम्न से पूर्व भी द्रौपदी के ४ भाई धृष्टकेतु आदि पहले से उत्पन्न थे, इसी धृष्टकेतु के नाम पर धृष्टद्युम्न नाम भी रखा गया।

अन्य प्रमाण

इसके अतिरिक्त वन पर्वान्तर्गत, मार्कण्डेयसमस्यापर्व अध्याय 183 श्लोक 25 में कृष्ण महाराज, द्रौपदी और उनके भाइयो को सहोदर (एक ही गर्भ से उत्पन्न) बताते हैं, देखिये :

राज्ये राष्ट्रीश्च निमन्त्यमाणाः
पित्र च कृष्णे तव सोदरैश्च।

न यज्ञसेनस्य न मातुलानां
गृहेषु बाला रतिमाप्नुवन्ति ॥

उपरोक्त श्लोक में कृष्ण महाराज द्वारा द्रौपदी और उनके धृष्टद्युम्न आदि भाइयो को सहोदर अर्थात एक ही गर्भ से उत्पन्न भाई–बहन बताया गया है।

द्रौपदी का एक ही पति था- युधिष्ठिर

द्रौपदी महाभारत की एक आदर्श पात्र है। लेकिन द्रोपदी जैसी विदुषी नारी के साथ हमने बहुत अन्याय किया है। सुनी सुनाई बातों के आधार पर हमने उस पर कई ऐसे लांछन लगाये हैं जिससे वह अत्यंत पथभ्रष्ट और धर्म भ्रष्ट नारी सिद्ध होती है। एक ओर धर्मराज युधिष्ठर जैसा परमज्ञानी उसका पति है, जिसके गुणगान करने में हमने कमी नही छोड़ी। लेकिन द्रोपदी पर अतार्किक आरोप लगाने में भी हम पीछे नही रहे।

लेकिन आर्य नागरिको के अथक प्रयास का ही परिणाम है कि मूल महाभारत के अध्ययन बाद सबके सामने द्रौपदी के पाँच पति के दुष्प्रचार का सप्रमाण खण्डन किया जा रहा है। अब ध्यानपूर्वक पढ़ें–

द्रौपदी पर एक आरोप है कि उसके पाँच पति थे। यह आरोप महाभारत की साक्षी के आधार पर नही बल्कि सुनी–सुनाई कहानियों के आधार पर लगा दिया है। बड़ा दुःख होता है जब कोई पढ़ा लिखा व्यक्ति भी इस आरोप को अपने लेख में या भाषण में दोहराता है।

प्रक्षिप्त व बाद में बनी असत्य कथा : पांचाल–नरेश द्रुपद ने अपनी पुत्री द्रौपदी के विवाह के लिए स्वयंवर रचा उस स्वयंवर में ब्राह्मण–वेशधारी पाँच पाण्डव भी सम्मिलित हुए अनेक छोटे–बड़े देशों के राजा, ब्राह्मण, देवता, आदि सभी अपने–अपने स्थान पर सभासीन थे। एक ओर धनुष–बाण पड़ा था और दूसरी ओर आकाश में कृत्रिम यंत्र में लिपटा हुआ उसका संभाव्य लक्ष्य इस लक्ष्य को जो कुलीन एवं वीर व्यक्ति विद्ध कर दे, वही द्रौपदी का अभिमत पति होगा। परंतु इस लक्ष्य को कोई भी राजा विद्ध न कर सका. कर्ण उठा, तो द्रौपदी ने ''नाहं वरयामि सूतं'' कहकर उसकी बेइज्जती तक कर डाली थी। तब मृगचर्मधारी अर्जुन अपने आसन से उठे और तेजस्वी अर्जुन ने लक्ष्य का वेध कर दिया और द्रौपदी ने उसके पराक्रम के प्रसन्न होकर उसके गले में जयमाला डाल दी।

द्रौपदी को लेकर जब अर्जुन कुंती के पास पहुँचे और कहने लगे कि माँ, हम भिक्षा ले आये हैं, तो कुंती ने कहा– 'पाँचों भाई बाँट खाओं.' पर जब बाहर निकलकर उसने द्रौपदी को देखा, तो वह अपने पर पश्चत्ताप करने लगी. बस यहीं से द्रौपदी के पाँच पति

वाली कथा का स्रोत प्रारम्भ होता है। यह प्रक्षिप्त व बाद में बनी कही–कहाई कहानी तो है परन्तु सत्य नहीं है।

इतिहासकारो और कथाकारों ने यह द्रौपदी के लिए उचित नहीं था. द्रौपदी जैसी विदुषी नारी के साथ बहुत अन्याय किया है।प्रक्षिप्त व सुनी सुनाई बातों के आधार पर हमने उस पर कई ऐसे लांछन लगाये हैं, जिससे वह अत्यंत पथभ्रष्ट और धर्म भ्रष्ट नारी सिद्ध होती है। एक ओर धर्मराज युधिष्ठिर जैसा परमज्ञानी उसका पति है, जिसके गुणगान करने में हमने कमी नही छोड़ी. दूसरी ओर द्रौपदी पर अतार्किक आरोप लगाने में भी हम पीछे नही रहै। यह एक गम्भीर आरोप है कि उसके पाँच पति थे।

सच कथा क्या है ?––द्रौपदी वीर्यशुल्का थी ,मतलब जो भी स्वयंवर की शर्त पूरी करेगा वो द्रौपदी को जीत लेगा। इसीलिए कर्ण के साथ भी उसकी शादी हो जाती अगर कर्ण शर्त पूरी कर देता पर वो हार गया था। जिस समय द्रौपदी का स्वयंवर हो रहा था उस समय पांडव अपना वनवास काट रहे थे। ये लोग एक कुम्हार के घर में रह रहे थे और भिक्षाटन के माध्यम से अपना जीवन यापन करते थे। तभी द्रौपदी के स्वयंवर की सूचना उन्हें मिली, स्वयंवर की शर्त को अर्जुन ने पूर्ण किया. शर्त पूरी होने पर द्रौपदी को उसके पिता द्रुपद ने पांडवों को भारी मन से सौंप दिया. राजा द्रुपद की इच्छा थी कि उनकी पुत्री का विवाह किसी पांडुपुत्र के साथ हो, क्योंकि उनकी राजा पांडु से गहरी मित्रता रही थी।राजा द्रुपद पंडितों के भेष में छुपे हुए पांडवों को पहचान नही पाए. इसलिए उन्हें यह चिंता सता रही थी कि उनकी बेटी का विवाह उनकी इच्छा के अनुरूप नही हो पाया।

धृष्टद्युम्न (पांचालराज द्रुपद का तेजस्वी पुत्र) ने उन सबका वीरोचित संवाद सुना थाः– राजा द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न पांडवों के पीछे–पीछे उनका सही ठिकाना जानने और उन्हें सही प्रकार से समझने के लिए भेष बदलकर आ रहे थे। उन्होंने पांडवों की चर्चा सुनी उनका शिष्टाचार देखा पांडवों के द्वारा दिव्यास्त्रों, रथों, हाथियों, तलवारों, गदाओं और फरसों के विषय में उनका वीरोचित संवाद सुना जिससे उनका संशय दूर हो गया और वह समझ गये कि ये पाँचों लोग पांडव ही हैं। इसलिए वह खुशी–खुशी अपने पिता के पास दौड़ लिये. उन्होंने अपने पिता से जाकर कहा, ''पिताश्री! जिस प्रकार वे युद्ध का वर्णन करते थे उससे यह मान लेने में तनिक भी संदेह रह जाता कि वह लोग क्षत्रिय शिरोमणि हैं। हमने सुना है कि वे कुंती कुमार लाक्षागृह की अग्नि में जलने से बच गये थे। अतः हमारे मन में जो पांडवों से सम्बम्ध करने की अभिलाषा थी, निश्चय ही वह सफल हुई जान पड़ती है''।

राजकुमार से इस सूचना को पाकर राजा को बहुत प्रसन्नता हुई। तब उन्होंने अपने पुरोहित को पांडवों के पास भेजा कि उनसे यह जानकारी ली जाए कि क्या वह महात्मा पांडु के पुत्र हैं?

तब पुरोहित ने जाकर पांडवों से कहा–––'वरदान पाने के योग्य वीर पुरूषो! '' वर देने में समर्थ पांचाल देश के राजा द्रुपद आप लोगों का परिचय जानना चाहते हैं। इस वीर पुरूष को लक्ष्यभेद करते देखकर उनके हर्ष की सीमा न रही। राजा द्रुपद की इच्छा थी कि मैं अपनी इस पुत्री का विवाह पांडु कुमार से करूं। उनका कहना है कि यदि मेरा ये मनोरथ पूरा हो जाए तो मैं समझूगा कि यह मेरे शुभकर्मों का फल प्राप्त हुआ है।

तब पुरोहित से धर्मराज युधिष्ठर ने कहा–पांचाल राज द्रुपद ने यह कन्या अपनी इच्छा से नही दी है, उन्होंने लक्ष्यभेद की शर्त रखकर अपनी पुत्री देने का निश्चय किया था। उस वीर पुरूष ने उसी शर्त को पूर्ण करके यह कन्या प्राप्त की है, परंतु हे ब्राह्मण! राजा द्रुपद की जो इच्छा थी वह भी पूर्ण होगी, (युधिष्ठर कह रहे हैं कि द्रोपदी का विवाह उसके पिता की इच्छानुसार पांडु पुत्र से ही होगा) इस राज कन्या को मैं (यानि स्वयं अपने लिए, अर्जुन के लिए नहीं) सर्वथा ग्रहण करने योग्य एवं उत्तम मानता हूँ पांचाल राज को अपनी पुत्री के लिए पश्चात्ताप करना उचित नही है।तभी पांचाल राज के पास से एक व्यक्ति आता है, और कहता है–राजभवन में आप लोगों के लिए भोजन तैयार है। तब उन पांडवों को वीरोचित और राजोचित सम्मान देते हुए राजा द्रुपद के राज भवन में ले जाया जाता है।

महाभारत में आता है कि सिंह के समान पराक्रम सूचक चाल ढाल वाले पांडवों को राजभवन में पधारे हुए देखकर राजा द्रुपद, उनके सभी मंत्री, पुत्र, इष्टमित्र आदि सबके सब अति प्रसन्न हुए। पांडव सब भोग विलास की सामग्रियों को छोड़कर पहले वहां गये जहां युद्ध की सामग्रियाँ रखी गयीं थीं। जिसे देखकर राजा द्रुपद और भी अधिक प्रसन्न हुए, अब उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि ये राजकुमार पांडु पुत्र ही हैं।

तब युधिष्ठर ने पांचाल राज से कहा ––राजन! आप प्रसन्न हों क्योंकि आपके मन में जो कामना थी वह पूर्ण हो गयी है। हम क्षत्रिय हैं और महात्मा पांडु के पुत्र हैं। मुझे कुंती का ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठर समझिए तथा ये दोनों भीम और अर्जुन हैं। उधर वे दोनों नकुल और सहदेव हैं।

महाभारतकार का कहना है कि युधिष्ठर के मुँह से ऐसा कथन सुनकर महाराज द्रुपद की आँखों में हर्ष के आँसू छलक पड़े। शत्रु संतापक द्रुपद ने बड़े यत्न से अपने हर्ष के आवेग को रोका, फिर युधिष्ठर को उनके कथन के अनुरूप ही उत्तर दिया। सारी कुशलक्षेम और वारणाव्रत नगर की लाक्षागृह की घटना आदि पर विस्तार से चर्चा की। तब उन्होंने उन्हें अपने भाईयों सहित अपने राजभवन में ही ठहराने का प्रबंध किया। तब पांडव वही रहने लगे। उसके बाद महाराज द्रुपद ने अगले दिन अपने पुत्रों के साथ जाकर युधिष्ठर से कहा–

'कुरूकुल को आनंदित करने वाले ये महाबाहु अर्जुन आज के पुण्यमय दिवस में मेरी

पुत्री का विधि पूर्वक पानी ग्रहण करें तथा अपने कुलोचित मंगलाचार का पालन करना आरम्भ कर दें।

तब धर्मात्मा राजा युधिष्ठर ने उनसे कहा–'राजन ! जयेष्ठ पुत्र होने के नाते द्रौपदी के साथ विवाह मेरा होना चाहिए।

द्रुपद बोले––'हे वीर! तब आप ही विधि पूर्वक मेरी पुत्री का पाणिग्रहण करें। अथवा आप अपने भाईयों में से जिसके साथ चाहें उसी के साथ मेरी पुत्री का विवाह करने की आज्ञा दें।

युधिष्ठिर व कृष्णा विवाह संपन्नः– द्रुपद के ऐसा कहने पर पुरोहित धौम्य ने वेदी पर प्रज्वलित अग्नि की स्थापना करके उसमें मंत्रों की आहुति दी और युधिष्ठिर व कृष्णा (द्रौपदी) का विवाह संस्कार सम्पन्न कराया इस मांगलिक कार्यक्रम के सम्पन्न होने पर द्रौपदी ने सर्वप्रथम अपनी सास कुंती से आशीर्वाद लिया, तब माता कुंती ने कहा, " पुत्री! जैसे इंद्राणी इंद्र में, स्वाहा अग्नि में, भक्ति भाव एवं प्रेम रखती थीं उसी प्रकार तुम भी अपने पति में अनुरक्त रहो.''इससे सिद्ध है कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन से नहीं बल्कि युधिष्ठिर से हुआ. इस सारी घटना का उल्लेख आदि पर्व में दिया गया है। उस साक्षी पर विश्वास करते हुए हमें इस दुष्प्रचार से बचना चाहिए कि द्रौपदी के पाँच पति थे।

माता कुंती ने क्या कहा ये भी समझ ले

पाण्डु पुत्र भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने प्रतिदिन की भाँति अपनी भिक्षा को लाकर उस सायँकाल में भी अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठर को निवेदन की। तब उदार हृदया कुंती माता द्रोपदी से कहा–'भद्रे! तुम भोजन का प्रथम भाग लेकर उससे बलिवैश्वदेवयज्ञ करो तथा ब्राहमणों को भिक्षा दो। अपने आसपास जो दूसरे मनुष्य आश्रित भाव से रहते हैं उन्हें भी अन्न परोसो। फिर जो शेष बचे उसका आधा हिस्सा भीमसेन के लिए रखो। पुनः शेष के छह भाग करके चार भाईयों के लिए चार भाग पृथक–पृथक रख दो, तत्पश्चात मेरे और अपने लिए भी एक–एक भाग अलग–अलग परोस दो। उनकी माता कहती हैं कि कल्याणि! ये जो गजराज के समान शरीर वाले, हष्ट–पुष्ट गोरे युवक बैठे हैं इनका नाम भीम है, इन्हें अन्न का आधा भाग दे दो क्योंकि यह वीर सदा से ही बहुत खाने वाले हैं।

माता कुंती आगे कहती हैं कि भद्रे! तुम अनंत सौख्य से सम्पन्न होकर दीर्घजीवी तथा वीरपुत्रों की जननी बनो। तुम सौभाग्यशालिनी, भोग्य सामग्री से सम्पन्न, पति के साथ यज्ञ में बैठने वाली तथा पतिव्रता हो।

माता कुंती यहाँ पर अपनी पुत्रवधू द्रोपदी को पतिव्रता होने का निर्देश भी कर रही हैं। यदि माता कुंती द्रोपदी को पाँच पतियों की नारी बनाना चाहतीं तो यहाँ पर उनका ऐसा उपदेश उसके लिए नही होता।

महाभारत की इस साक्षी से स्पष्ट है कि माता कुंती से पांण्डवों ने ऐसा नही कहा था कि आज हम तुम्हारे लिए बहुत अच्छी भिक्षा लाए हैं और न ही माता कुन्ती ने उस भिक्षा को (द्रौपदी को) अनजाने में ही बाँट कर खाने की बात कही थी। माता कुन्ती विदुषी महिला थीं, उन्हें द्रौपदी को अपनी पुत्रवधु के रूप में पाकर पहले ही प्रसन्नता हो चुकी थी।

इससे सिद्ध है कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन से नहीं बल्कि युधिष्ठर से हुआ इस सारी घटना का उल्लेख आदि पर्व में दिया गया है। उस साक्षी पर विश्वास करते हुए हमें इस दुष्प्रचार से बचना चाहिए कि द्रौपदी के पाँच पति थे। माता कुंती भी जब द्रौपदी को आशीर्वाद दे रही हैं तो उन्होंने भी कहा है कि तुम अपने पति में अनुरक्त रहो, माता कुंती ने पति शब्द का प्रयोग किया है न कि पतियों का। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि द्रौपदी पाँच पतियों की पत्नी नहीं थी।

द्रौपदी को पांचाली क्यों कहा जाता है ? पुराने समय मे और आज भी अक्सर लोग अपने नाम के साथ अपने क्षेत्र का नाम भी लिखते है, इस बहाने सुदूर रहकर भी अपने जन्म भूमि से जुड़े हुए रहते है जो कि उनके लिए अपनी आन बान शान सब होते है। उदाहरण के लिए अपने नाम के साथ खंडेलवाल लिखने वाले खंडेला शहर के निवासी है। इसी तरह कौरवों की माँ का नाम गांधारी था क्योंकि वो गंधार नरेश की पुत्री थी।द्रौपदी को 'द्रौपदी' इसलिए कहा जाता था कि वे राजा द्रुपद की पुत्री थीं। उन्हें 'पांचाली' इसलिए कहा जाता था कि राजा द्रुपद पांचाल देश के राजा थे। उनका असली नाम कृष्णा था।

एक अन्य विचार भी है कि पांचाली एक सम्मान सूचक उपाधि है। पांचाली उस महिला को कहते है जिसके पति में पाँच मुख्य गुण हो। क्योंकि द्रौपदी के पति युधिष्ठर में ये सभी गुण थे। ये है–१ वेद आदि धर्म ग्रंथो का ज्ञाता–इसीलिए युधिष्ठर को धर्मराज कहा जाता है, यक्ष के सभी प्रश्नो का उत्तर भी युधिष्ठर ने ही दिया था, २ कुशल राजनीतिज्ञ ––पांडवो में युधिष्ठर ही युद्ध के सभी निर्णय लेते थे, रण नीति बनाते थे। ३ कुशल योद्धा ४ सुंदर–स्वरूप भी हो। ५ मर्यादा पुरुष–युधिष्ठर ने पूरे महाभारत के समय कोई ऐसा निर्णय नहीं लिया जो मर्यादा विरुद्ध हो, चाहे भेष बदलकर भिक्षा ही क्यों ना लेनी पड़े।

अब ये पांच गुण हर किसी व्यक्ति में नहीं हो सकते, अगर देखा जाए तो ये पाँचों गुण युधिष्ठर मे थे।

विवाह का विवाद क्यों पैदा हुआ?

अर्जुन ने द्रौपदी को स्वयंवर में जीता था। यदि उससे विवाह हो जाता तो कोई परेशानी न होती। वह तो स्वयंवर की घोषणा के अनुरुप ही होता। परन्तु इस विवाह के

लिए कुन्ती कतई तैयार नहीं थी।अर्जुन ने भी इस विवाह से इन्कार कर दिया था। बड़े भाई से पहले छोटे का विवाह हो जाए यह तो पाप है,अधर्म है।

मा मा नरेन्द्र त्वमधर्मभाजंकृथा न धर्मोयमशिष्टः

(190–8) (भवान् निवेशय प्रथमं)

(1) कुन्ती माँ थी यदि अर्जुन का विवाह भी हो जाता भीम का तो पहले ही हिडम्बा से (हिडम्बा की ही चाहने के कारण) हो गया था तो सारे देश में यह बात स्वतः प्रसिद्ध हो जाती कि निश्चय ही युधिष्ठिर में ऐसा कोई दोष हैं जिसके कारण उसका विवाह नहीं हो सकता।

मा मा नरेन्द्र त्वमधर्म भाजंकृथा न धर्मोयमशिष्टः

(190–8) (भवान् निवेशय प्रथमं)

प्रमाणः– द्रौपदी ने अपने को केवल युधिष्ठिर की पत्नी बताया

उत्तरः– द्रौपदी को कीचक ने परेशान कर दिया तो दुःखी द्रौपदी भीम के पास आई तो उदास थी। भीम ने पूछा सब कुशल तो हैं। द्रौपदी बोली जिस स्त्री का पति राजा युधिष्ठिर हो वह बिना शोक के रहे यह कैसे सम्भव हैं?

आशोच्यत्वं कुतस्यस्य यस्य भर्ता युधिष्ठिरः ।
जानन् सर्वाणि दुःखानि कि मां त्वं परिपृच्छसि ॥

–(विराट 19/1)

द्रौपदी स्वयं को केवल युधिष्ठिर की पत्नी बता रही हैं।

(2) वह भीम से कहती हैं जिसके बहुत से भाई श्वसुर और पुत्र हों जो इन सबसे घिरी हो तथा सब प्रकार अभ्युदयशील हो ऐसी स्थिति में मेरे सिवा और दूसरी कौन सी स्त्री दुःख भोगने लिए विवश हुई होगी।

भ्रातृभिः श्वसुरैः पुत्रैर्बहुभिः परिवारिता ।
एवं सुमुदिता नारी का त्वन्या दुःखिता भवेत् ॥

(20–13)

द्रौपदी स्वयं कहती हैं कि उसके बहुत से भाई हैं, बहुत से श्वसुर हैं, बहुत से पुत्र भी, फिर भी वह दुःखी हैं। यदि बहुत से पति होते तो सबसे पहले यही कहती कि जिसके पाँच–पाँच पति हैं यदि मैं दुःखी हूँ, पर होते तब ना।

(3) और जब भीम ने द्रौपदी को कीचक के किये का फल देने की प्रतिज्ञा कर ली और कीचक को मार–मारकर माँस का लोथड़ा बना दिया तब अन्तिम श्वास लेते कीचक को उसने कहा था। जो सैरन्ध्री के लिए कण्टक था। जिसने मेरे भाई की पत्नी

का अपहरण करने की चेष्टा की थी। उस दुष्ट कीचक को मारकर आज मैं अनृण हो जाऊंगा और मुझे बड़ी शान्ति मिलेगी।

अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम् ।
शांति लब्धास्मि परमां हत्वा सैरन्ध्रीकण्टकम् ॥

—(विराट 22—79)

इस पर भी कोई भीम को द्रौपदी का पति कहता हो तो क्या करें। मारने वाले की लाठी तो पकड़ी जा सकती हैं बोलने वाले की जीभ को कोई कैसे पकड़ सकता है।

(4) द्रौपदी को दांव पर लगाकर हार जाने पर जब दुर्योधन ने उसे सभा में लाने को दूत भेजा तो द्रौपदी ने आने से इंकार कर दिया, उसने कहा जब राजा युधिष्ठिर पहले स्वयं अपने को दांव पर लगाकर हार चुका था तो वह हारा हुआ मुझे कैसे दांव पर लगा सकता, महात्मा विदुर ने भी यह सवाल भरी सभा में उठाया। द्रौपदी ने भी सभा में ललकार कर यही प्रश्न पूछा था। क्या राजा युधिष्ठिर पहले स्वयं को हारकर मुझे दांव पर लगा सकता था। सभा में सन्नाटा छा गया। किसी के पास कोई उत्तर नहीं था। तब केवल भीष्म ने उत्तर देने या लीपा—पोती करने का प्रयत्न किया था और कहा था। जो मालिक नहीं वह पराया धन दांव पर नहीं लगा सकता। परन्तु स्त्री को सदा अपने स्वामी के ही अधीन देखा जा सकता।

अस्वाभ्यशद्रः पणितुं परस्व । स्त्रियाश्च भर्तुरवशतां समीक्ष्य ।

—(207—43)

ठीक है युधिष्ठिर पहले हारा हैं पर है तो द्रौपदी का पति और पति सदा पति रहता हैं पत्नी का स्वामी रहता है

यानि द्रौपदी को युधिष्ठिर द्वारा हारे जाने का दबी जुबान में भीष्म समर्थन कर रहे हैं यदि द्रौपदी पाँच की पत्नी होती तो वह बजाय चुप हो जाने के पूछती जब मैं पाँच की पत्नी थी तो किसी एक को मुझे हारने का क्या अधिकार था? द्रौपदी न पूछती तो विदुर प्रश्न उठाते कि पाँच की पत्नी को एक पति दाँव पर कैसे लगा सकता हैं? यह न्यायविरुद्ध हैं,

स्पष्ट हैं, द्रौपदी ने या विदुर ने यह प्रश्न उठाया ही नहीं। यदि द्रौपदी पाँचों की पत्नी होती तो यह प्रश्न निश्चय ही उठाती।

इसीलिए भीष्म ने कहा कि द्रौपदी को युधिष्ठिर ने हारा हैं, युधिष्ठिर इसका पति हैं, चाहे पहले स्वयं अपने को ही हारा हो पर हैं तो इसका स्वामी ही। और नियम बता दिया जो जिसका स्वामी है वही उसे किसी को दे सकता है जिसका स्वामी नहीं उसे नहीं दे सकता।

(5) द्रौपदी कहती हैं कि मैं धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मपत्नी हूँ तथा उनके ही समान वर्ण वाली हूँ, आप बतावें मैं दासी हूँ या अदासी आप जैसा कहेंगे मैं वैसा करुँगी।

तमिमांधर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णनाम् ।
बरूत दासीमदासीम् वा तत् करिष्यामि कौरवैः ॥

—(69—11—907)

द्रौपदी अपने को युधिष्ठिर की पत्नी बता रही है।

(6) पाण्डव वनवास में थे। दुर्योधन की बहन का पति सिंधुराज जयद्रथ उस वन में आ गया। उसने द्रौपदी को देखकर पूछा—"तुम कुशल तो हो द्रौपदी बोली सकुशल हूँ। मेरे पति कुरु कुल—रत्न कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिर भी सकुशल है मैं और उनके चारों भाई तथा अन्य जिन लोगों के विषय में आप पूछना चाह रहे हैं वे सब भी कुशल से हैं राजकुमार यह पग धोने का जल हैं इसे ग्रहण करो, यह आसन है। यहाँ विराजिए।"

कौरव्यः कुशली राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः
अहं च भ्राताश्चास्य यांश्चा न्यान् परिपृच्छसि ।

—(12—267—1694)

द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, को अपना पति नहीं बताती उन्हें पति का भाई बताती है।

और आगे चलकर तो यह एकदम स्पष्ट ही कर देती हैं, जब युधिष्ठिर की तरफ इशारा करके वह जयद्रथ को बताती हैं।———

एतं कुरुश्रेष्ठतमम् वदन्ति युधिष्ठिरं धर्मसुतं पतिं मे ।

—(270—7—1701)

कुरू कुल के इन श्रेष्ठतम् पुरुष को ही धर्मनन्दन युधिष्ठिर कहते हैं। ये मेरे पति हैं।

क्या अब भी सन्देह की गुंजाइश हैं कि द्रौपदी का पति कौन था?

(7) कृष्ण संधि कराने गए थे दुर्योधन को धिक्कारते हुए कहने लगे। दुर्योधन तेरे सिवाय और ऐसा अधम कौन हैं? जो बड़े भाई की पत्नी को सभा में लाकर उसके साथ वैसा अनुचित बर्ताव करे जैसा तूने किया।

कश्चान्यो भ्रातृभार्यां वै विप्रकर्तुं तथार्हति ।
आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदीम् त्वया ॥

—(28—8—2382)

श्रीकृष्ण भी द्रौपदी को दुर्योधन के बड़े भाई की पत्नी मानते हैं।

आरोप 2-क्या द्रोपदी ने दुर्योधन से कहा था "अंधे का बेटा अंधा"?

महारानी द्रोपदी पर एक आरोप यह है कि उन्होंने महाराज युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर जब वह पाण्डवों के नवनिर्मित राजभवन में दिग्भ्रमित होकर सूखे स्थान को गीला और गीले स्थान को सूखा समझ कर चल रहा था और जब दुर्योधन मयदानव निर्मित माया भवन में गिरा तो द्रौपदी ने यह कहते हुए उसकी हँसी उड़ाई थी कि अंधस्य अंधो वै पुत्रः और इस कारण महाभारत युद्ध हुआ।

1. द्रौपदी ने कभी दुर्योधन की हँसी नही उड़ाई और न ही उसे अंधे का बेटा कहा सच तो ये हैं कि जब दुर्योधन मयसभा गया था तब उसे जहाँ धरती दिखी वहाँ पानी होने के कारण वो पानी में गिर गया। जहाँ उसे आने जाने का मार्ग दिखा वहाँ दीवार पर सर टकरा कर वो गिर गया, ये देखकर अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और सारे दास दासियाँ उस पर हँसने का उल्लेख हैं। उस समय युधिष्ठिर ने भीम और अर्जुन से दुर्योधन को खड़ा करने को कहा। इस कथा में कहीं भी द्रौपदी का नाम तक नहीं है।

2. जब दुर्योधन वापस हस्तिनापुर लौटता है तब वो अपने पिता को मयसभा के बारे में बताने का उल्लेख हैं। उसमें वो द्रौपदी का नाम लेता है लेकिन अन्य महिलाओं का भी लेता है और उसमें भी अन्धे का पुत्र अन्धा इस कथन का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। ये अपमान जनक बात तो उसे कम से कम धृतराष्ट्र को तो बतानी चाहिए थी। लेकिन उसने ऐसा कुछ भी नहीं बताया। क्योंकि ऐसा कुछ हुआ ही नहीं था।

3. मूल महाभारत एवं उस पर नील कंठी टीका में कहीं भी इस वाक्य प्रयोग ही नहीं दिखाई देता यही नहीं वरन् जहाँ दुर्योधन मायामहल में पानी में गिरता हैं वहाँ द्रौपदी जी उपस्थित ही नहीं थी।

4. इसी कड़ी में जब गीता प्रेस गोरखपुर के छह खण्डों वाले एक लाख 217 श्लोक के ग्रन्थ में जिसमे इस पूरे प्रसङ्ग का पहला उल्लेख महा काव्य के आदि पर्व के पहले अध्याय अनुक्रमणि का पर्व के 136वें श्लोक में है।

इस प्रथम प्रमाण में द्रौपदी का नाम ही नहीं हैं। जैसा कि 136वें श्लोक में महर्षि उग्रश्रवा ने कहा।

तत्रवहसितश्चासीत् प्रस्कन्दन्निव सम्भ्रामात् ।
प्रत्यक्षं वासुदेवस्य भीमसेनाभिजातवत्॥

अर्थात्:–युधिष्ठिर के उस सभा भवन में जल में स्थल और स्थल में जल का भ्रम होने के कारण दुर्योधन के पाँव फिसलने से लगे तब भगवान श्रीकृष्ण के सामने ही भीम ने उसे गंवार–सा सिद्ध करते हुए उसकी हँसी उड़ाई थी।

इसके बाद इसी अध्याय के श्लोक क्रमांक 146 व 147 में इस घटना का दूसरा उल्लेख धृतराष्ट्र व संजय के बीच संवाद के हवाले से मिलता हैं। यहाँ धृतराष्ट्र अपने सारथी संजय से कह रहा है कि राजसूय यज्ञ में महापराक्रमी पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर की सर्वोपरि समृद्धि–सम्पत्ति को देखकर तथा सभा भवन की सीढ़ियों को चढ़ते और उस भवन को देखते समय भीम सेन के ज्ञान उपहास पाकर दुर्योधन भारी अमर्ष में भर गया था। युद्ध में पाण्डवों को हराने की शक्ति तो उस में थी नहीं इसलिए उसने पाण्डवों की सम्पत्ति हथियाने के लिए गान्धार राज शकुनि को साथ लेकर कपट पूर्ण द्यूत खेलने का निश्चय किया।

5. महर्षि वेद व्यास लिखते हैं :–

जले निपतितं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः।
जहास जहसुश्चौव किंकराश्च सुयोधनम्॥

वासांसि च शुभान्यस्मै प्रददू राजशासनात्।
तथागतं तू तं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः॥

अर्जुनश्च यमौ चोभौ सर्वे ते प्राहसंस्तदा।
नामर्षयत् ततस्तेषामवहासममर्षणः॥

अर्थातः–उसे जल में गिरा देख महाबली भीम सेन हँसने लगे। उनके सेवकों ने भी दुर्योधन की हँसी उड़ाई तथा राजाज्ञा से दुर्योधन को सुन्दर वस्त्र दिए। दुर्योधन की यह दुरावस्था देख महाबली भीमसेन, अर्जुन और नकुल–सहदेव सभी जोर–जोर से हँसने लगे। दुर्योधन स्वभाव से ही अमर्ष शील था। अतः वह उनका उपहास न सह सका।

विश्वास कीजिए इस बहुचर्चित घटना के बारे में ये तीन श्लोक ही वास्तविक प्रत्यक्ष दर्शी प्रमाण है जो बताते हैं। कि जब दुर्योधन गिरा तब मूलतः भीम ही हँसा था उसके साथ अर्जुन व शेष दो भाई भी थे।

6. यह कथन भी कोई ज्यादा पुराना नहीं हैं। इस कथन का प्रयोग पहली बार 1953 में धर्मवीर भारती ने अपने नाटक अंधायुग में किया था। जो कि बहुत फेमस हुआ था। फिर 1983 में एक फिल्म आई थी जाने भी दो यारों इसके अंत में महाभारत का पार्ट दिखाया गया था जिसमें अंधे का पुत्र अंधा फिर से इस्तेमाल किया गया था। यह फिल्म भी बहुत फेमस हुई थी तथा यह कथन भी लोकप्रिय हो गया था फिर 1988 में बीआर चोपड़ा ने महाभारत बनाई उन्होंने वो सब कुछ लिया जो कि द्रौपदी के चरित्र को बिगाड़ कर दिखाता था तथा इस कथन को भी उन्होंने बड़ी शान से दिखाया था। आज भी जब भी उनकी महाभारत का विज्ञापन आता है तब इस कथन को उसमें जरूर दिखाया जाता है फिर रही सही कसर इन सबसे प्रभावित हुए कथा वाचकों ने पूरी कर दी और लोगों के मन में बैठ गया

कि द्रौपदी के बड़ बोलेपन के वजह से ही महाभारत का युद्ध हुआ था ! लेकिन महाभारत में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ महाभारत के अनुसार जो मूल प्रसंग हैं। वहाँ पर तो द्रौपदी का जिक्र भी नहीं हुआ है।

7. द्रौपदी धर्मराज युधिष्ठर की पत्नी थी। तत्समय की बात तो छोडो आज भी कोई प्रतिष्ठित महिला ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं कर सकती।

शब्दों की हेर–फेर से समाज बहुत भ्रमित हो जाता है ये वाक्य महाभारत में नहीं ठीक महाभारत होने से पहले कहा गया था। हम इसीलिए भ्रमित हो जाते हैं क्योंकि हम ज्यादातर सुनी सुनाई बातों में विश्वास कर बैठते हैं।

पूरे महाभारत के युद्ध मे कहीं भी किसी भी पक्ष ने असभ्य भाषा का प्रयोग नहीं किया हैं। महारानी द्रोपदी पर ये आरोप नारी सम्मान को आहत करने वाला हैं। इस निपट झूठी मान्यता के सत्य की पड़ताल महाभारत के अनेक अध्येताओं ने समय–समय पर की है।

द्रौपदी का चीर हरण

(साभार -आर्य मनतव्य वेबसाइट)

महाभारत में द्रौपदी के "चीर हरण'' जैसी कुत्सित और भ्रष्ट आचरण की कथाकार बहुत विस्तार से सुनाते है जैसे की सम्पूर्ण घटना उनके सामने हुई है। मेरे विचार से द्रौपदी का चीर हरण दुर्योधन ने नहीं किया बल्कि आजकल के कथाकारों और नकली लेखकों ने किया, और वो भी बराबर के दोषी है जो इस असत्य को सत्य मान रहे है। यदि किसी इज्जतदार व्यक्ति तो सभा में बैठने को ना कहे, उसको प्रणाम ना करे तो उसका तिरस्कार है, इसी को दूसरी भाषा में चीर हरण कहते है, यदि उक्ति द्रौपदी के लिए प्रयोग हुई है।

विस्तार से सत्य को समझने का प्रयास करें और दूसरो को भी बताये :–

1. दुर्योधन ने जब देखा की शकुनि ने युधिष्ठर से सब कुछ जीत लिया हैं तो दुर्योधन बोला विदुर जी यहाँ आओ और तुम जाकर पाण्डवो की प्यारी और मनोनुकूल द्रौपदी को यहाँ ले आओ। द्रौपदी शीघ्र यहाँ आये और मेरे महल में झाड़ू लगाये। उसे अब हमारी दासियों के साथ रहना होगा। द्रौपदी जो एक कुल की रानी थी उसको "दासी" और पाण्डव जो राजा थे उन्हें "दास" बना कर लज्जित ही करना मात्र दुर्योधन का मंतव्य था। द्यूत पर्व अध्याय 66 श्लोक 1 में जो लिखा है उससे स्पष्ट हैं की दुर्योधन ने पाँडवो और द्रौपदी को केवल लज्जित ही करना था।
2. परन्तु विदुर ने इसका विरोध ही नहीं किया अपितु कुछ नीती वचन भी कहे। जो अहंकार में चूर दुर्योधन को अच्छे नहीं लगे।

3 विदुर के विरोध और नीतिवचन सुनने के बाद दुर्योधन ने क्रोधित होकर "प्रतिकामिन" को आदेश दिया कि द्रौपदी को यहाँ ले आओ (दासीरूप में झाड़ू लगाने हेतु) द्यूतपर्व – अध्याय 67 श्लोक 2

4 प्रतिकामिन ने द्रौपदी से कहा द्रुपदकुमारी! धर्मराज युधिष्ठर जुए के मद से उन्मत्त हो गए थे। उन्होंने सर्वस्व हारकर आप को दांव पर लगा दिया। तब दुर्योधन ने आपको जीत लिया। याज्ञसेनी! अब आप धृतराष्ट्र के महल में पधारे। मैं आपको वहां दासी का काम करवाने के लिए ले चलता हूँ। यहाँ भी बिल्कुल स्पष्ट है कि द्रौपदी को केवल दासी के काम हेतु महल की सफाई आदि करवाने के उद्देश्य से दुर्योधन ने प्रतिकामिन को भेजा था ताकि द्रौपदी और पांडवों का मानमर्दन हो सके अन्य कोई मंतव्य दुर्योधन का नहीं था।

5 जब पांडव जुएँ में राज्य के साथ–साथ अपने–आपको और द्रोपदी को हार गए तब पाँडवों की स्थिति दासों की तरह और द्रौपदी की स्थिति दासी की तरह रह गयी थी। द्रौपदी ने कहा जब युधिष्ठर स्वयं अपने को हार गए तब किस प्रकार वे मुझे दांव पर लगाने का अधिकार रखते थे? द्रौपदी के प्रश्नों के उत्तर हेतु विदुर ने सभासदों से पूछा साथ में धृतराष्ट्र का एक पुत्र विकर्ण स्वयं द्रौपदी के समर्थन में उतर आया। उसने भी यही कहा जब युधिष्ठर स्वयं अपने को दांव पर लगा हार गए तब किस प्रकार द्रौपदी को दांव लगाने का अधिकार युधिष्ठर के पास रहा। तब कोई जवाब ना पाकर द्रौपदी हताश और निराश हो गयी।

6 जब युधिष्ठर स्वयं अपने को दाँव पर लगा हार गए तो उन्हें राजाओं अथवा राजकुमारों जैसे वस्त्र धारण करने का कोई अधिकार नहीं रह गया था। यही दशा द्रौपदी की भी थी पर जब द्रोपदी सभा में लाई गयी तब द्रौपदी ने केवल एक वस्त्र धारण किया हुआ था क्योंकि द्रौपदी उस समय रजस्वला थी। अतः उनसे उनके वस्त्र उतार के दासों और दासी के परिधान पहन लेने के लिए कहा गया। द्रौपदी ने विरोध किया क्योंकि वो अपने आपको हारी हुयी नहीं मानती थी।

वैशम्पायनजी कहते हैं कि जनमेजय कर्ण की बात सुन के समस्त पाँड्वों ने अपने–अपने राजकीय वस्त्र उतारकर, दासों के वस्त्र धारण किये। और सभा में बैठ गए (सभापर्व अध्याय 68 श्लोक 39)

परन्तु द्रौपदी अपने को हारी नहीं मानती थी। इसलिए दुःशासन को जबरदस्ती द्रौपदी के कपडे बदलवाने हेतु विवश किया गया था। जिसे धूर्तमंडली व्याख्याकारों ने चीरहरण का नाम दिया।

7 दुःशासन द्रौपदी को दासी कहकर सम्बोधित करने लगा इतने में कर्ण ने अपने अनुचित वचनो से द्रौपदी को अनेक बुरे वचन कह कर दुःशासन को द्रौपदी और

पांडवों के वस्त्र उतार लेने को कहा ––''दुःशासन यह विकर्ण अत्यंत मूढ़ हैं तथापि विद्वानों सी बातें बनाता है तुम पाण्डवो और द्रौपदी के भी वस्त्र उतार लो।''– द्यूतपर्व अध्याय 68 श्लोक 38

ध्यान देने की बात है कि कर्ण केवल द्रोपदी के ही वस्त्र उतरने के लिए नहीं कहता वरन पांडवों के भी वस्त्र उतारने के लिए कहता है।

8 वैशम्पायनजी कहते हैं– जनमेजय उस समय द्रौपदी के केश बिखर गए थे। दुःशासन के झकझोरने से उसका आधा वस्त्र भी खिसककर गिर गया था, वह लाज से गढ़ी जाती थी और भीतर ही भीतर दग्ध हो रही थी। उसी दशा में वह धीरे से इस प्रकार बोली द्रौपदी ने कहा ––अरे दुष्ट ये सभा में शास्त्रों के विद्वान कर्मठ और इंद्र के सामान तेजस्वी मेरे पिता के सामान सभी गुरुजन बैठे हुए हैं। मैं उनके सामने इस रूप में खड़ी होना नहीं चाहती। क्रूरकर्मा दुराचारी दुःशासन तू इस प्रकार मुझे ना खींच नाखींच, मुझे वस्त्र हीन मत कर। मेरे पति राजकुमार पांडव तेरे इस अत्याचार को सहन नहीं कर सकेंगे।

द्यूतपर्व अध्याय 67/35/37 यहाँ ही वह शब्द हैं जहाँ पर द्रौपदी को घसीटने के कारण द्रौपदी के रजस्वला अवस्था में पहने हुए एक वस्त्र के सरकने से द्रौपदी के चीरहरण की कथा गढ़ ली गयी जबकि ये चीरहरण नहीं था।

9 वैशम्पायनजी कहते हैं कि जब दुर्योधन ने द्रौपदी को सभा में बुलाना चाहा तो युधिष्ठर ने पूछा –जनमेजय! दुर्योधन क्या करना चाहता है ? युधिष्ठर ने द्रौपदी के पास एक ऐसा दूत भेजा जिसे वह पहचानती थी और उसी के द्वारा यह सन्देश कहलाया ––पांचाली राजकुमारी यद्यपि तुम रजस्वला और नीवी (नाभि) को नीचे रखकर एक ही वस्त्र धारण कर रही हो तो भी उसी दशा में रोती हुई सभा मे आकर अपने श्वसुर के सामने खड़ी हो जाओ।

तुम जैसी राजकुमारी को सभा में आई देख सभी सभासद मन ही मन इस दुर्योधन की निन्दा करेंगे।''

द्यूतपर्व –अध्याय 67 श्लोक 18–21

10 यदि दुर्योधन का मंतव्य केवल द्रौपदी का चीरहरण करना ही था तो युधिष्ठर द्रौपदी को सभा में आने के लिए क्यों कहते जबकि यह स्पष्ट है कि द्रौपदी को युधिष्ठर ने सभा में आने के लिए दूत से बुलावा भेज दिया और द्रौपदी भी सभा में आने को तैयार थी तब ये कहना कि दुःशासन जबरदस्ती द्रौपदी को पकड़कर सभा में ले आया संदेह प्रकट करता हैं। यदि ये मान भी ले कि दुःशासन ने द्रौपदी को बाल से घसीट कर सभा में ले आया तो उसका वृतांत महाभारत में देखिये दुःशासन के खींचने से द्रौपदी का शरीर झुक गया। उसने धीरे से कहा ओ मंद

बुद्धि दुष्टात्मा दुःशासन में रजस्वला हूँ तथा मेरे शरीर पर एक ही वस्त्र है इस दशा में मुझे सभा में ले जाना अनुचित है। दुःशासन बोला– द्रौपदी तू रजस्वला, एक वस्त्रा अथवा नंगी ही क्यों न हो हमने तुझे जुए में जीता हैं। अतः तू हमारी दासी हो चुकी हैं। इसलिए अब तुझे हमारी इच्छा के अनुसार दासियों में रहना पड़ेगा। ''द्यूतपर्व – अध्याय 67/32, अध्याय 67/34

यहाँ दुःशासन के बोले शब्द देखिये दुःशासन का उद्देश्य भी द्रौपदी का चीरहरण करना नहीं था। बल्कि यहाँ भी स्पष्ट है कि कौरवों, दुर्योधन आदि को केवल पांडवों और द्रौपदी को दास आदि बनाकर भरी सभा में अपमानित ही करना था। द्यूतपर्व– अध्याय 67 श्लोक 18–21

द्रौपदी के रजस्वला अवस्था में पहने हुए एक वस्त्र के सरकने से द्रौपदी के चीरहरण की कथा गढ़ ली गयी, इन्ही शब्दों को बिगाड़कर नयी कथा अतिश्योक्ति अलंकार की भाषा मे लिख दी गयी जबकि ये चीरहरण नहीं था, केवल द्रौपदी को दुःशासन द्वारा खींचा गया , घसीटा गया था जिसके परिणामस्वरूप द्रौपदी का एकमात्र पहना हुआ वस्त्र शरीर से थोड़ा सरक गया और जिसके आधार पर पूरी की पूरी मिथ्या कथा बना दी गयी कि द्रौपदी का चीरहरण हुआ।

श्रीकृष्ण के चमत्कार––इस प्रसंग में श्रीकृष्ण के चमत्कार को दर्शाने के लिए भी मनगढ़ंत बात गढ़ी हैं। यदि कृष्ण ने साडी देकर नग्न होने से बचाया इसका मतलब ये हुआ कि द्रौपदी अर्धनग्न हो चुकी थी? तभी क्यों नहीं बचा लिया? या फिर जब दुःशासन बाल पकड़कर जबरदस्ती द्रौपदी को खींच रहा था और द्रौपदी कृष्ण को आवाज लगा बुला रही थी, तब ही क्यों नहीं कृष्ण ने बचा लिया? क्या कृष्ण जी इस बात का इन्तजार कर रहे थे कि कब दुःशासन साडी खींचे और मैं चमत्कार दिखाऊ? क्या कृष्ण द्रौपदी की पहली आवाज सुनकर ही नहीं बचा सकते थे? यदि पहली आवाज पर ही बचा लिया होता तो इस घटना में जो मिलावट करने की कोशिश की, वो होती ही नहीं।

वनपर्व में जो उल्लेख मिलता है उसके अनुसार जब श्रीकृष्ण जंगल में पांडवो से मिलने गए थे। वहाँ द्युतसभा में जो कुछ भी हुआ श्रीकृष्ण को विस्तार से बताया गया और वे उससे अनभिज्ञ थे। उन्होने ये भी कहा की अगर वे वहाँ मौजुद होते तो युधिष्ठिर को ऐसा कभी नही करने देते। युधिष्ठिर ने पुछा की उस वक्त वे कहाँ थे तब श्रीकृष्ण ने बताया की उस वक्त शाल्व ने अपने प्रचंड 'सौभ' विमान से द्वारका पर उपर से बमबारी शुरु कर द्वारका जला रहा था, इसलिए श्रीकृष्ण उसे मारने के लिए गए थे, जब वो विमान का संहार करके वापस आए तब उन्हे सात्यकी से खबर मिली की द्युतसभा में युधिष्ठिर जुए में सारा राज्य हार गया और इसलिए वे दौडते पांडवो से मिलने जंगल में आए।

आगे किसी जगह दुःखी द्रौपदी भी युधिष्ठिर, अर्जुन और अपने भाई को कोसते हुए कहती है कि उनमें से कोई भी उसकी विडम्बना को रोकने नहीं आया इसलिए उनमें से कोई भी उसका अपना नहीं है। वो उधर खड़े श्रीकृष्ण को भी कहती है की तुम भी मेरी मदद के लिए नहीं आए इसलिए कृष्ण तुम भी मेरे नहीं। अगर कृष्ण ने सचमें वस्त्रावतार लिया था तब द्रौपदी क्या उन्हे ऐसे शब्द कहती?

ये सारी घटनाओं से ज्ञात होता है कि द्रौपदी का चीरहरण हुआ नहीं था। कुछ धूर्तो ने कृष्ण के चमत्कार को दर्शाने के लिए ये सब मनगढ़ंत बात गढ़ी है। इस अलोक में यदि देखा जाये तो सभा में द्रौपदी का चीर हरण नही हुआ था वास्तविक चीर हरण तो योगिराज श्री कृष्ण का हुआ है और ये करने वाले आज के दुशासन है, जिन्होंने श्री कृष्ण के पावन चरित्र के आप्त आवरण को नोच नोच कर फेंक दिया, धन्य है ऋषिवर देव दयानंद जिन्होंने दुशासन को ललकारा व श्री कृष्ण की धूमिल गरिमा को वापस लाने का महनीय कार्य किया ।

अध्याय- 3

अर्जुन



अर्जुन महाभारत के मुख्य पात्र हैं। इंद्रदेव एवं कुन्ती के पुत्र थे। पांडवों में चौथे स्थान पर थे। महाराज पांडु इनके आध्यात्मिक पिता थे। कृष्ण और बलराम की बहन सुभद्रा, नाग कन्या उलूपी, पांचाल नरेश द्रुपद की पुत्री द्रौपदी और मणिपुर नरेश की पुत्री चित्रांगदा इनकी पत्नियाँ थीं। इनके भाई क्रमशः कर्ण, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव।

अर्जुन सबसे अच्छे धनुर्धर और द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य थे। जीवन में अनेक अवसर पर उन्होंने अपने श्रेष्ठ धनुर्धारी होने का परिचय दिया। इन्होने द्रौपदी को स्वयंवर में जीता था। कुरूक्षेत्र युद्ध में ये भी एक प्रमुख योद्धा थे। अर्जुन ने ही कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण से अनेकों प्रश्न किये जो गीता में वर्णित हैं।

अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के प्रत्येक प्रमुख योद्धा भीष्म, द्रोण, कर्ण समेत सभी को पराजित किया था। अश्वात्थामा जो उन सभी योद्धाओं से अधिक उच्चतर था, अर्जुन ने उसको भी परास्त कर दिया था। यद्यपि अर्जुन कई बार परिभूत भी हुआ महायुद्ध में। अर्जुन ने अपने सम्पूर्ण जीवन में बहुत ही कम पराजय देखी। केवल शिव, द्रोणाचार्य और बभ्रुवाहन ही वो गिनती के कुछ पात्र थे जो अर्जुन को पराजित कर पाये। यद्यपि अर्जुन अपने पुत्र बभ्रुवाहन से स्वेच्छा पूर्वक पराजित हुआ और तब वह उलूपीकि माया के प्रभाव में भी था।

ये असत्य है कि हनुमान स्वयं अर्जुन के ध्वज पर नही विराजे थे। ये सम्भव है कि अर्जुन के रथ पर आकर कोई कपि कोलाहलपूर्ण गर्जना करता हो (क्योंकि युद्ध में आज भी कपि यानी बंदर का प्रयोग किया जाता हैं जिसको अक्सर वानर सेना भी कह देते हैं।) जिससे अर्जुन के प्रतिद्वंदी निरुत्साहित हो जाते थे और उनकी ऊर्जा कम हो जाती थी।

अध्याय- 4

महाभारत का कर्ण

पौराणिक कथायें



महाभारत के कर्ण को दानवीर कर्ण के नाम से विख्यात किया गया है। कर्ण (साहित्य–काल) महाभारत (महाकाव्य) के महानायक है। वेदव्यास द्व ारा रचित महाभारत कर्ण और पांडवों के जीवन पर केन्द्रित है कर्ण महाभारत के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारियों में से एक थे। कर्ण छः पांडवों में सबसे बड़े भाई थे।

जन्म कथा : – यदुवंशी राजा शूरसेन की एक कन्या थी। जिसका नाम पृथा था। इस कन्या को शूरसेन ने अपनी बुआ के संतानहीन पुत्र कुंतीभोज को दे दिया। इस प्रकार पृथा कुंती के नाम से प्रसिद्ध हुई। एक बार कुंती ने महर्षि दुर्वासा की बड़ी सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर दुर्वासा ने उसे एक मंत्र दिया और कहा कि इस मंत्र से तुम जिस देवता का आवाहन करोगी उसी की कृपा से तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। उसने एकांत में जाकर भगवान सूर्य का आवाहन किया। सूर्यदेव ने आकर तत्काल कुंती को गर्भस्थापन किया। जिससे तेजस्वी कवच व कुंडल पहने एक सर्वांग सुंदर बालक उत्पन्न हुआ। सूर्य द्वारा प्राप्त होने कारण कुंती के इस पुत्र को सूर्य पुत्र कहा जाता हैं।

कर्ण के विषय में कथाकारों की कुछ बातें :

1 कर्ण की वास्तविक माँ कुन्ती थीं और कर्ण सहित सभी पाण्डवों के धर्मपिता महाराज पांडु थे। कर्ण का जन्म पाण्डु और कुन्ती के विवाह के पहले हुआ था।

2 कर्ण के वास्तविक पिता भगवान सूर्य थे।

3 कर्ण महाभारत के युद्ध में अपने भाइयों के विरुद्ध लड़ा।

4 कर्ण को एक आदर्श दानवीर माना जाता है क्योंकि कर्ण ने कभी भी किसी माँगने वाले को दान में कुछ भी देने से कभी भी मना नहीं किया भले ही इसके परिणामस्वरूप उसके अपने ही प्राण संकट में क्यों न पड़ गए हों। इसी से जुड़ा एक वाक्या महाभारत में है जब अर्जुन के पिता भगवान इन्द्र ने कर्ण से उसके कुंडल और दिव्य कवच माँगे और कर्ण ने दे दिए।

5 ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते वास्तविक रूप से हस्तिनापुर के सिंहासन का वास्तविक अधिकारी कर्ण ही था क्योंकि वह कुरु राजपरिवार से ही था और युधिष्ठिर और दुर्योधन से ज्येष्ठ था, लेकिन उसकी वास्तविक पहचान उसकी मृत्यु तक अज्ञात ही रही।

6 कर्ण को उसके गुरु परशुराम से श्राप मिला था। इसके पीछे कहानी ये है –

एक दोपहर की बात है, गुरु परशुराम कर्ण की जंघा पर सिर रखकर विश्राम कर रहे थे। कुछ देर बाद कहीं से एक बिच्छू आया और उसकी दूसरी जंघा पर काट कर घाव बनाने लगा। गुरु का विश्राम भंग ना हो इसलिए कर्ण बिच्छू को दूर ना हटाकर उसके डंक को सहता रहा। कुछ देर में गुरुजी की निद्रा टूटी और उन्होनें देखा की कर्ण की जाँघ से बहुत रक्त बह रहा है। उन्होनें कहा कि केवल किसी क्षत्रिय में ही इतनी सहनशीलता हो सकती है कि वह बिच्छु डंक को सह ले, ना कि किसी ब्राह्मण में और परशुरामजी ने उसे मिथ्या भाषण के कारण श्राप दिया कि जब भी कर्ण को उनकी दी हुई शिक्षा की सर्वाधिक आवश्यकता होगी, उस दिन वह उसके काम नहीं आएगी।

कुछ लोककथाओं में माना जाता है कि बिच्छू के रूप में स्वयं इन्द्र थे, जो उसकी वास्तविक क्षत्रिय पहचान को परसुराम के सामने उजागर करना चाहते थे।

7. एक बार शब्दभेदी बाण चला देने से गौ का बछड़ा मारा गया। तब उस गाय के स्वामी ब्राह्मण ने कर्ण को श्राप दिया कि जिस प्रकार उसने एक असहाय पशु को मारा है, वैसे ही एक दिन वह भी मारा जाएगा जब वह सबसे अधिक असहाय होगा।

इस प्रकार कर्ण के जीवन के साथ अनेकों शाप जुड़े हैं। और कर्ण को मिले विविध श्रापों का प्रभाव को लेकर भी अनेकों कथायें है।

विश्लेषण : आज के वैज्ञानिक युग में सबसे बड़ा झूठ है कि सूर्य से किसी महिला को संतान के लिए गर्भादान हो सकता है। समय बर्बाद ना करते हुए आप समझने का प्रयास करें कि सूर्य क्या है, उसका आकार, तापमान, पृथ्वी से दूरी आदि कितनी है तो सब गप्प समझ आ जाएगा।

वास्तविकता की परख -- कुछ प्रश्न --

- क्या कुंती के कान से पैदा होने के कारण उसके पुत्र को कर्ण कहा गया?
- क्या कर्ण सारथी पुत्र था?
- क्या कर्ण किसी ऋषि की संतान था। यदि हाँ तो कौन से ऋषि का?
- क्या विधाता की सृष्टि के नियम के विरुद्ध किसी का जन्म हो सकता हैं?
- क्या कर्ण सूर्यपुत्र था। अथवा सूर्य के आशीर्वाद से उत्पन्न हुआ था?

इस विषय में काफी अध्ययन किया लेकिन कोई प्रामाणिक साहित्य वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। इसके कई कारण है कि मुगलों, अंग्रेजों, वाममार्गियों आदि ने अधिकांश वैदिक साहित्य को नष्ट कर दिया। विश्व की सबसे बड़ी लाइब्रेरी तक्षशिला को नष्ट करके साहित्यक रूप से हिन्दू समाज को अंधविस्वास में धकेल दिया और आज ये काम धूर्त कथावाचक कर रहे है।

इस विषय में ब्रह्मचारी ब्रह्मदत्त के द्वारा सुनाई गयी एक कथा जो कि श्रृंग ऋषि ने महानंद मुनि शिष्य को व अन्य मुनियों को क्या व्याख्यान के विषय में है, इस पर ध्यान देते है -- कथा इस प्रकार प्रकार है–

राजा कुंतेश्वर के केवल एक कन्या थी जिसका नाम कुंती था। उनकी वह कन्या महान सुशील थी तो उनकी इच्छा हुई कि इसको इस प्रकार की विद्या और शिक्षा दी जाए जिससे यह ज्ञानवान और सुयोग्य हो। तब राजा ने खोज की और भृगु ऋषि के पास पहुंचे और पूछा कि वृद्ध महान महात्माओं से वह कोई शिक्षा पा सकते हैं। उस समय राष्ट्र में महान वन था और उस भयंकर वन में करूड़ नाम के ब्रह्मचारी रहा करते थे, ऐसा सुना जाता है परंतु इतनी अवस्था होने से प्रजन्य नाम के ब्रह्मचारी आदित्य नाम से कहे जाते थे। वृद्ध राजा ने सोचा मेरी कन्या यहां हर प्रकार से शिक्षा पा सकती है उस समय उनकी आयु 284 वर्ष की थी। ऋषि से निवेदन किया और अपनी इच्छा को बताया कि मैं अपनी कन्या को आपके आश्रम में नियुक्त करना चाहता हूँ। ऋषि ने आज्ञा दी हमें स्वीकार है और वह कन्या आश्रम में रहने लगी।

ऋषि ने बाल्यावस्था से व्याकरण का पूर्ण ज्ञान दिया और बाद में सब विद्याओं का बोध कराया। कुछ ही काल में वह कन्या सब विद्याओं से सम्पन्न हो गई और फिर यौवन को प्राप्त हुई और बहुत तेजस्वी ब्रह्मचारिणी सब विद्या में पारंगत हो गई।

उस समय कुछ ऐसा कारण हुआ कि वहां श्वेतमुनि आ पहुँचे। श्वेत नाम के ब्रह्मचारी ने सोचा वह उस समय युवा थे महान तेजस्वी थे। परंतु यह माया मानव को दुर्भाग्य से कहां की कहां पहुंचा देती हैं और कहां तक इंसान को तुच्छ बना देती हैं। उस महान ब्रह्मचारी ने उस ऋषि के आश्रम में जब उस युवा सुशील कन्या को देखा तो उनके

मन में तीव्र गति पैदा हुई और उनके मन की जो आकृति थी। उस अवस्था में जब उस कन्या ने उस तेजस्वी ब्रह्मचारी बालक को देखा तो उस काल में ऋतुमती थी। उन दोनों ने एक–दूसरे को देखा और दोनों का परस्पर मिलन हुआ और पुनः जब कुछ काल पश्चात ब्रह्मचारी ने कन्या को देखा तो अनुभव हुआ कि उनसे ऋषि भूमि में कितना बड़ा मानसिक पाप हुआ है उस पाप की उन्होंने जो अंतः करण द्वारा हो गया है उसकी क्षमा मांग ली और पर्वतों आदि का भ्रमण उपवास रखकर आरम्भ कर दिया।

अब उस ब्रह्मचारिणी को ज्ञात हुआ कि तुमने महान पाप किया है तो सोचने लगी क्या करना चाहिए और अज्ञान के कारण पाप हो गया था। तो अपने गुरु से सब बताया और उनसे पूछा कि अब मैं क्या करूं? तो गुरु ने कहा कि मैं क्या कर सकता हूँ। अब ऐसा करो कि जब बालक उत्पन्न हो तो उसको ऐसी शिक्षा दो कि वह योग्य बने। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि यह बालक महान बलवान योग्य विद्वान हो। तो उस कन्या के हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि जैसे सूर्य तीनों लोकों में अपने ताप और प्रकाश से उज्जवल हैं वैसे यह बालक हो।

उस कन्या के कुछ समय पश्चात बालक उत्पन्न हुआ और गुरु जी को बताया कि अब जब पिता के गृह में जाऊंगी तो बड़ा पाप होगा। अब मुझे क्या करना चाहिए गुरुजी ने कहा तो अच्छा पुत्री तुम कुशा का आसन बनाओ उस पर पुत्र को प्रविष्ट करके गंगा में तिलांजलि दे दो। देवी कुंती ने गंगा नदी के प्रवाह के मार्ग द्वारा बालक को उसके जैविक पिता श्वेत मुनि के आश्रम के पास छोड़ दिया। मुनि के शिष्य उस बालक को अपने गुरु के पास ले गए और इसको गुरु ने अपने पास रख लिया। शिष्यों के द्वारा इस बच्चे के माता पिता के विषय में जानने की इच्छा होने से पूर्व ही गुरु ने इसको सूत पुत्र बता दिया। ये बालक सभी की मदद करने वाला, यौद्धा और तीव्र मदद करने वाला और कुशाग्र बुद्धिमान था जिसको विषय सुनकर ही याद हो जाता था। इस कारण इसका नाम गुरु ने कर्ण रख दिया।

श्राप और वरदान नाम का कभी कुछ नहीं होता, कथाकार अपनी गप्प कथा को आगे बढ़ाने और रोचक बनाने के लिए श्राप और वरदान जोड़ते है, इस विषय में पहले लिखा जा चुका है। इसलिए दुबारा चर्चा करना उचित नहीं।

भ्रांति निवारणः

1 कर्ण कुंती के कान से पैदा नहीं हुआ था ये पूरी तरह गप्प अप्राकृतिक और विज्ञान विरुद्ध हैं। कान और गर्भ में अंतर हैं गर्भकाल 9 माह का होता हैं और विज्ञान गर्भ में शिशु के उत्पन्न होने की पूरी प्रक्रिया को बता चुका है।

2 कर्ण सूत पुत्र नहीं था। बल्कि श्वेत मुनि से उत्पन्न कुंती का पुत्र था। कुंती

द्वारा गंगा नदी में अपने गुरु करुड़ ऋषि के आदेश के अनुसार बहाए जाने के पश्चात श्वेत मुनि के शिष्यों द्वारा गंगा नदी में नहाते समय बहते हुए आता देखकर पकड़ने पर श्वेत मुनि के आश्रम में शिक्षा दीक्षा हुई थी। अर्थात जिस के ब्रह्मचर्य से पैदा हुआ संयोगवश उसी पिता द्वारा लालन पालन शिक्षा दीक्षा कर्ण की हुई थी। इसलिए श्वेत पुत्र कहा जाता था। इसका ही अपभ्रंश करके सूत पुत्र कहा जाने लगा।

3 विधाता की सृष्टि के नियम के विपरीत किसी का जन्म नहीं होता चाहे वह मत्स्योदरी हो या कर्ण हो।

4 कर्ण सूर्यपुत्र नहीं था न हीं सूर्य की उपासना के कारण उसके आशीर्वाद के द्वारा पैदा हुआ था। कर्ण सूर्य के सामान तेजस्वी, यशश्वी, पराक्रमी और दानवीर था। इसलिए कर्ण को सूर्य पुत्र कहने का एक ये भी कारण हो सकता हैं। जैसे तेजी से उछलने और भागने वाले हनुमान को पवन पुत्र की संज्ञा दी गयी हैं। यहाँ पर भी अतिश्योक्ति अलंकार की भाषा का प्रयोग हुआ हैं।

5 सूर्य क्या हैं? ये समझ ले तो सूर्य से पैदा पुत्र कहने में आपको स्वयं पर हंसी आएगी सूर्य अथवा सूरज सौरमंडल के केन्द्र में स्थित एक तारा जिसके चारों तरफ पृथ्वी और सौरमंडल के अन्य अवयव घूमते हैं। सूर्य हमारे सौर मंडल का सबसे बड़ा पिंड हैं। और उसका व्यास लगभग 13 लाख 90 हजार किलोमीटर है जो पृथ्वी से लगभग 109 गुना अधिक है। ऊर्जा का यह शक्तिशाली भंडार मुख्य रूप से हाइड्रोजन और हीलियम गैसों का एक विशाल गोला है परमाणु विलय की प्रक्रिया द्वारा सूर्य अपने केंद्र में ऊर्जा पैदा करता हैं। इसकी मजबूत गुरुत्वाकर्षण शक्ति विभिन्न कक्षाओं में घूमते हुए पृथ्वी और अन्य ग्रहों को इसकी तरफ खींच कर रखती है।

सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी लगभग 14,96,00,000 किलोमीटर या 9,29,60,000 मील है तथा सूर्य से पृथ्वी पर प्रकाश को आने में 8.3 मिनट का समय लगता है इसी प्रकाशीय ऊर्जा से प्रकाश–संश्लेषण नामक एक महत्वपूर्ण जैव–रासायनिक अभिक्रिया होती है, जो पृथ्वी पर जीवन का आधार है।

वेदो मे सूर्य ईश्वर को कहा गया है–

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी, चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते–फिरते हैं, 'तस्थुषः' अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथ्वी आदि हैं, उन सब के आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सब के प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य' है।

7 माता कुंती करूड़ ऋषि के आश्रम में विद्या अध्ययन करने के पश्चात विदुषी नारी थी, जबकि श्वेत मुनि भी अपने समय के एक महान ऋषि हुए हैं। जिन दोनों के संयोग से कर्ण पैदा हुआ था। पश्चात श्वेत मुनि के आश्रम में ही उसकी शिक्षा–दीक्षा भी हुई थी। इसलिए कर्ण महान, योद्धा, निडर, निर्भीक, दानवीर, महा तेजस्वी विद्वान बना।

8. कर्ण को पांडवों ने अपना सहोदर स्वीकार क्यों नहीं किया?

इसके कई कारण थे, एक तो कर्ण अपनी माता कुंती के प्रति क्रोधित था क्योंकि कुंती ने उसे त्याग दिया था और वह जीवन भर बिना माँ के और स्वयं को सूत पुत्र कहलाता रहा। दूसरे दुर्योधन से उसकी घनी मित्रता थी, इसलिए अति महत्वाकांक्षा, अहंकार आदि के स्वभाव के कारण उसने युद्ध मार्ग को चुना। उसने कभी ये प्रयास नहीं किया कि युद्ध ना हो बल्कि आग में घी डालने का काम किया। 8 महाभारत में कर्ण को विद्या न सिखाने का स्पष्टीकरण––

9 प्रश्न हैं कि महाभारत में कर्ण को सूतपुत्र मानकर द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या नहीं सिखाई। टी.वी. सीरियल की महाभारत तक में यह स्पष्ट दिखाया गया है, कि द्रोण ाचार्य ने कर्ण को सूतपुत्र मानकर केवल ब्रह्मास्त्र विद्या नहीं सिखाई थी। बाकी साधारण धनुर्विद्या का ज्ञान द्रोणाचार्य ने कर्ण को बराबर (यथायोग्य) दिया था। हाँ, ये बात अलग है की टीवी धारावाहिको में अलग–अलग तरीके से प्रस्तुत किया है जिसमे विरोधाभास है।

10 **परसुराम का श्राप** : कथाकार कहते हैं कि भगवान् परशुराम से ब्रह्मास्त्रविद्या यह कहकर प्राप्त की, कि वह एक 'ब्राह्मण' है। बाद में एक कीड़े द्वारा रक्त निकलने और कर्ण के भेद खुलने व बाद में 'जब सबसे अधिक विद्या की आवश्यकता होगी, तब तुम अपनी विद्या भूल जाओगे।' इत्यादि बातें महाभारत व उसके ऊपर बने टी.वी. कार्यक्रमों में हम देखते हैं। ये शाप–वरदान आदि की कथायें कितनी सत्य है, इस पर विचार करना जरुरी है।

कर्ण ने भी गुरु द्रोणाचार्य के आश्रम में कर्ण ने भी विद्याभ्यास किया था।

यहाँ पर महाभारत से कुछ ऐसे प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, जिससे यह प्रमाणित होगा कि कर्ण जैसे तथाकथित सूतपुत्र तक महाभारत काल में वेदादिशास्त्रों को पढ़ते थे।

(1)– कर्ण का वेदमंत्रों का पाठ करना– हम गीताप्रेस से छपी 'संक्षिप्त महाभारत' भाग–1 से उद्धृत करते हैं–

'ऐसा सोचकर कुंती गंगातट पर कर्ण के पास गयी। वहाँ पहुँचकर कुंती ने अपने सत्यनिष्ठ पुत्र के वेदपाठकी ध्वनि सुनी।वह पूर्वाभिमुख होकर भुजाएँ ऊपर उठाये मंत्र

पाठ कर रहा था। तपस्विनी कुंती जप समाप्त होने की प्रतीक्षा में उसके पीछे खड़ी रही।'

(संक्षिप्त महाभारत, उद्योगपर्व,पृष्ठ 653, अनुच्छेद 2, – गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित भाग–1)

यहाँ पर स्पष्ट है कि कर्ण उस समय वेदमंत्रों का पाठ कर रहा था।अब पाठकों! जरा सोचिये, यह कार्य कर्ण रोज ही करता होगा या नहीं? क्या ये वेदविद्या वो गर्भ से लेकर पैदा हुआ था? कदापि नहीं।यह विद्या उसने गुरुकुल में प्राप्त की थी। और प्रमाणों का अवलोकन करें–

(2)– कर्णका सनातनशास्त्रों का ज्ञान होना–

राज्य का प्रलोभन देते समय योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा था–

(क)– 'कर्ण! तुमने वेदवेत्ता ब्राह्मणों की बड़ी सेवा की है और उनसे परमार्थतत्त्व संबंधी प्रश्न किये हैं।'(संक्षिप्त महाभारत, उद्योगपर्व पृष्ठ 650व 651)

साथ ही, (ख)–

'त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान् सनातनान्।

त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः।।' (महाभारत उद्योगपर्व 138 श्लोक 7)

'हे कर्ण!तुम सनातन वैदिक मन्तव्यों से परिचित हो और सूक्ष्म धर्मशास्त्रों में तुम्हारी पैठ है।'

(ग)– कर्ण की अपने मुख से साक्षी–

धर्माविद्धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः।।(महाभारत उद्योगपर्व 139 श्लोक 7)

'हे कृष्ण! मेरे जैसा व्यक्ति जो सदा धर्मशास्त्रों का अध्ययन करता है और धर्म जानता है...।'

('श्रुति–सौरभ', पं.शिवकुमार शास्त्री, पृष्ठ 28 व 30 से उद्धृत)

वक्तव्य– यहाँ इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि अंगराज कर्ण ने अपने समय में वेदज्ञ ब्राह्मणों की सेवा भी की, उनसे प्रश्नोत्तर भी किये। साथ ही, उसके पास वैदिक शास्त्रों का ज्ञान भी था। कर्ण ने अपने मुख तक से कहा कि वो धर्मशास्त्रों का स्वाध्याय व पालन भी करता है। ऊपर हम कर्ण के वेदमंत्रों के पाठ का प्रमाण तो देख ही आये हैं।

कर्ण की छवि आज भी भारतीय जनमानस में एक ऐसे महायोद्धा की है जो जीवनभर प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ते रहे।

अध्याय- 5

भीष्म पितामह



भीष्म अथवा भीष्म पितामह महाभारत के सबसे महत्वपूर्ण पात्रों में से एक थे। भीष्म महाराजा शान्तनु के पुत्र थे, उनका मूल नाम देवव्रत था। इन्हें अपनी उस भीष्म प्रतिज्ञा के लिये भी सर्वाधिक जाना जाता है जिसके कारण इन्होंने राजा बन सकने के बावजूद आजीवन हस्तिनापुर के सिंहासन के संरक्षक की भूमिका निभाई। इन्होंने आजीवन विवाह नहीं किया व ब्रह्मचारी रहे। इसी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए महाभारत में उन्होने कौरवों की तरफ से युद्ध में भाग लिया था। यह कौरवों के पहले प्रधान सेनापति थे। जो सर्वाधिक दस दिनो तक कौरवों के प्रधान सेनापति रहे थे।

बड़ा दिन यानी भीष्म पितामह का निर्वाण पर्व

महाभारत का युद्ध संसार का प्राचीन काल का विश्व युद्ध था। इस युद्ध को कुछ लोगों ने भारतीय इतिहास को अंधकारमयी सिद्ध करने के लिए काल्पनिक करार दिया। लेकिन वैज्ञानिक शोधों से अब प्रमाणित हो चुका है कि महाभारत का युद्ध हुआ था।

अब प्रश्न ये आता है कि यह युद्ध हुआ कब? सचमुच जानने योग्य एक तथ्य और समझने योग्य एक सत्य। महाभारत का युद्ध 18 दिन चला था और 18 अक्षौहिणी ही सेना इसमें काम आयी थी। एक अक्षौहिणी सेना में एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास सैनिक 65610 घुड़सवार 21870 रथ और 11870 हाथी होते थे। इस प्रकार 47,23,920 पैदल सैनिकों को इस युद्ध में अपना प्राणोत्सर्ग करना पड़ा था। इतने विनाशकारी युद्ध की आधारशिला राजधर्म से विमुख हुई राजनीति के छल प्रपंचों और छद्म नीतियों के हाथों रखी गयी थी, उस पर प्रकाश डालना यहाँ उचित नहीं है।

श्रीकृष्ण जी महाराज ने इस विनाशकारी युद्ध को टालने के लिए विराट नगरी से पाण्डवों के दूत के रूप में चलकर हस्तिनापुर की सभा में आकर पांडवों के लिए दुर्योधन से पांच गांव मांगे थे। जिनमें इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) वृकप्रस्थ (बागपत) जयंत (जानसठ) वारणाव्रत (बरनावा) और पांचवां गांव दुर्योधन की इच्छा से माँगा गया था। लेकिन जब दुर्योधन ने कह दिया कि बिना युद्ध के तो सुई की नोंक के बराबर भी भूमि नही दी जाएगी तो केशव युद्ध को अवश्यंभावी मानकर वापिस चल दिये थे।

उस समय हस्तिनापुर से बाहर बहुत दूर तक छोडने के लिए कर्ण कृष्ण जी के साथ आया था। उस एकांत में कृष्ण ने कर्ण को बता दिया था कि वह कुंती का ज्येष्ठ पुत्र है, इसलिए उसे पाण्डवों का साथ युद्ध में देना चाहिए। लेकिन नीतिमर्मज्ञ कर्ण ने तब नीतिकार कृष्ण को जो कुछ कहा था, वह बड़ा ही मार्मिक है और उस दानवीर के प्रति श्रद्धा भाव पैदा करने वाला है। उसने कहा था–मधुसूदन मेरे और आपके बीच में जो ये गुप्त मंत्रणा हुई है, इसे आप मेरे और अपने बीच तक ही रखें क्योंकि–

यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं स राज्यं ग्रहीष्यति॥

(उद्योगपर्व 24)

जितेन्द्रिय धर्मात्मा राजा युधिष्ठर यदि यह जान लेंगे कि मैं कुंती का बड़ा पुत्र हूं तो वे राज्य ग्रहण नही करेंगे। कर्ण ने आगे कहा था कि उस अवस्था में मैं उस समृद्धिशाली विशाल राज्य को पाकर भी दुर्योधन को ही सौंप दूंगा। मेरी भी यही कामना है कि इस भूमंडल के शासक युधिष्ठर ही बनें।

तब युद्ध के प्रारंभ के लिए श्रीकृष्ण जी ने यहीं पर घोषणा कर दी–

कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शांतनवं कृपम।
बरूया सौम्योअयं वर्त्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः॥

(उद्योग पर्व 31)

अच्छा कर्ण! तुम यहाँ से जाकर आचार्य द्रोण, शांतनुनंदन भीष्म तथा कृपाचार्य से कहना कि यह सौम्य (मार्गशीर्ष=अगहन) मास चल रहा है। इसमें पशुओं के लिए घास तथा जलाने के लिए लकड़ी आदि सुगमता से मिल सकती है।

इस श्लोक से आगे तीसरे श्लोक में कृष्ण जी ने कहा था कि आज से सातवें दिन के पश्चात अमावस्या होगी। उसके देवता इंद्र कहे गये हैं। उसी में युद्ध आरंभ किया जाये। आज के अंग्रेजी मासों के दृष्टिकोण से समझने के लिए 12 अक्टूबर को कृष्ण जी ने युद्ध की यह तिथि घोषित की थी। आगे हम इसे स्पष्ट करेंगे। अब जब युद्ध आरंभ हुआ तो यह सर्वमान्य सत्य है कि भीष्म पितामह युद्घ के सेनापति दस दिन रहे थे। युद्ध 19 अक्टूबर से आरंभ हुआ और 28 अक्टूबर को भीष्म पितामह मृत्यु शैय्या पर चले

गये। जब युद्ध समाप्त हुआ तो पाँचों पांडवों और कृष्णजी ने भीष्म पितामह से उनकी मृत्यु शैय्या के पास जाकर उपदेश प्राप्त किया। युद्ध 19 अक्टूबर से आरंभ होकर 5 नवंबर तक (18 दिन) चला।

पाँच नवंबर को ही भीष्म पितामह ने युधिष्ठर को आज्ञा दी थी कि अब तुम राजभवनों में जाकर अपना राजकाज सम्भालो और पचास दिन बाद जब सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण होने लगे तब मेरे पास आना। मैं उसी काल में प्राणांत करूंगा। 5 नवंबर से पचास दिन 25 दिसंबर को होते हैं। अब थोड़ा और महाभारत को पलटें। अनुशासन पर्व के 32वें अध्याय के पाँचवें श्लोक को देखें:–

उषित्वा शर्वरी श्रीमान पंचाशन्न गरोत्त में।
समयं कौरवा ग्रयस्य संस्कार पुरूषर्षभ:॥

अर्थात पचास रात्रि बीतने तक उस उत्तम नगर में निवास करके श्रीमान पुरूष श्रेष्ठ कुरूकुल शिरोमणि युधिष्ठर को भीष्म के बताये समय का ध्यान हो आया। यह घटना 25 दिसंबर प्रातः की है। क्योंकि 23 दिसंबर को दिन सबसे छोटा और रात सबसे बड़ी होती है। 24 दिसंबर को दिन बढ़ता है तो परंतु ज्ञात नही होता है। सूर्य उत्तरायण में विधिवत 25 दिसंबर को ही प्रवेश करता है। उत्तरायण और दक्षिणायन की सूर्य की ये दोनों गतियाँ भारतीय ज्योषि शास्त्र की अदभुत खोज हैं।

युधिष्ठर को अपने बंधु बान्धवों सहित सही समय पर अपनी मृत्यु शैय्या के निकट पाकर भीष्म पितामह को बड़ी प्रसन्नता हुई। तब जो उन्होंने कहा वह भी ध्यान देने योग्य है–

अष्ट पंचाशतं राज्य: शयानस्याद्य मे गता:।
शरेषु निशिताग्रेषु यथावर्षशतं तथा॥

(अनु 32/24)

अर्थात इन तीखे अग्रभागवाले बाणों की शैय्या पर शयन करते हुए आज मुझे 58 दिन हो गये हैं, परंतु ये दिन मेरे लिए सौ वर्षों के समान बीते हैं।

उन्होंने आगे कहा

माघोअयं समनुप्राप्तो मास: सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागेशेषं पक्षोअयं शुक्लो भवितुर्महति॥

अर्थात हे युधिष्ठिर! इस समय चंद्रमास के अनुसार माघ का महीना प्राप्त हुआ है। इसका यह शुक्ल पक्ष है। जिसका एक भाग बीत चुका है और तीन भाग शेष हैं। इसका अभिप्राय है कि उस दिन शुक्ल पक्ष की चतुर्थी थी। इन साक्ष्यों से स्पष्ट हो जाता है कि भीष्म पितामह का स्वर्गारोहण 25 दिसंबर को सूर्य के उत्तरायण में प्रवेश करने पर

हुआ। 25 दिसंबर को भीष्म यदि ये कह रहे थे कि आज मुझे इस मृत्यु शैय्या पर पड़े 58 दिन हो गये हैं तो इसका अभिप्राय है कि 28 अक्टूबर को वह मृत्यु शैय्या पर आये थे। और युद्ध 19 अक्टूबर से प्रारंभ हो गया था। अक्टूबर–नवंबर के महीने में ही अक्सर मार्गशीर्ष माह का संयोग बनता है और इस माह में ही वैसी हल्की ठंड और गरमी का मौसम होता है जैसा श्रीकृष्ण जी ने कर्ण को युद्ध की तिथि बताते समय कहा था–

सर्वाधिवनस्फीतः फलवा माक्षिकः।
निष्यं को रसवत्तोयो नात्युष्ण शिविरः सुखः॥

सब प्रकार की औषधियों तथा फल फूलों से वन की समृद्धि बढ़ी हुई है, धान के खेतों में खूब फल लगे हुए हैं मक्खियाँ बहुत कम हो गयीं हैं। धरती पर कीचड़ का नाम भी नही है। जल स्वच्छ तथा सस्वाद है। इस सुखद मास में (यदि युद्ध होता है तो) न तो बहुत गरमी है और न अत्यधिक सर्दी ही है। अतः इसी महीने में युद्ध होना उचित रहेगा। हमारे पास मार्गशीर्ष की अमावस्या सहित 17 दिन, पौष माह के 30 दिन, माघ के कृष्ण पक्ष के 10 दिन 4 दिन शुक्ल पक्ष कुल 68 दिन बनते हैं। 58 दिन भीष्म मृत्यु शैय्या पर रहे और दस दिन वे युद्ध के सेनापति रहे इस प्रकार युद्ध से 68 वें दिन वे स्वर्गारोहण कर रहे थे। इस सबका संयोग 19 अक्टूबर से 25 दिसंबर तक ही पूर्ण होता है।

कुछ लोगों की मान्यता है कि उन्होंने अपना शरीरांत मकर संक्रांति पर किया था। लेकिन मकर संक्रांति पर यह संयोग बनता नही। जब महाभारत एक एक तिथि की घोषणा कर करके आगे बढ़ रही हो तो भीष्म जैसा विद्वान व्यक्ति अपने शरीरांत की घोषणा सूर्य के उत्तरायण में प्रवेश करने को कहकर नही करता, अपितु वह सूर्य के मकर राशि में प्रवेश की बात कहता और भी कुछ नही तो जिस दिन उनका शरीरांत हो रहा था, उस दिन तो वह अवश्य ही कहते कि आज मकर संक्रांति है और इस दिन संसार से मेरा जाना उचित है। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नही कहा।

भीष्म पितामह अपने काल के बड़े आदमी यानि सर्वप्रमुख महापुरूष थे। उन जैसा योद्धा उस समय नही था। कृष्ण भी उनका सम्मान करते थे। वह दोनों पक्षों के सम्माननीय थे। इसलिए उन जैसे महायोद्धा के जाने के पश्चात उन्हें विशेष सम्मान दिया जाना अपेक्षित था। महाराज युधिष्ठर भीष्म से असीम अनुराग रखते थे। उनकी मृत्यु पर उन्हें असीम वेदना हुई थी और वह राजपाठ तक को छोडने को उद्यत हो गये थे। अतः उनसे यह अपेक्षा नही की जा सकती कि उन्होंने भीष्म को मरणोपरांत कोई विशेष सम्मान न दिया हो, उन्होंने भीष्म को आज के गांधीजी की तरह राष्ट्रपिता जैसा सम्मान दिया। सारे राष्ट्र ने उन्हें बड़ा माना और इसी रूप में पूजा। इसीलिए कालांतर में धीरे धीरे 25 दिसंबर का दिन भी बड़ा दिन कहा जाने लगा। यह घटना (विद्वानों की मान्यतानुसार) अब से 5118 वर्ष पुरानी है। हमारा मानना है कि सत्यमत के प्रतिपादन

एवं अनुसंधान के लिए शोधार्थी आगे आयें। हमारा लक्ष्य भारत के किसी भी व्यक्ति की भावनाओं को चोट पहुँचाना नही है, बल्कि सत्यमत के अनुसंधान के लिए प्रयास करना है।

भीष्म पितामह की माता -गंगा नदी?

प्रचलित कथाः– प्रचलित कथाः भीष्म पितामह के पिता का नाम राजा शांतनु था। एक बार शांतनु गंगा तट पर भ्रमण करते समय एक स्त्री के प्रति मोहित होकर उनसे विवाह करने का प्रस्ताव रखते हैं परन्तु वह देवी यह शर्त रखती है कि "मै जो कुछ भी करूंगी आप कभी रोकेंगे नहीं और जिस क्षण आपने रोका मै आपको छोड़ कर चली जाउंगी''। शांतनु मान जाते हैं । समय के उपरांत उनके सात संतान होती है ओर सातो को वो स्त्री गंगा में प्रवाहित कर देती है पर जब आठवीं संतान को प्रवाहित करने की बारी आती है तो उसे प्रवाहित होता देख व्याकुल मन से शांतनु पूछ उठते हैं ओर फिर वह स्त्री बताती है कि वह स्वयं देवनदी गंगा हैं ओर जिन सात संतानों को गंगा में प्रवाहित किया वो कोई ओर नहीं अपितु वे सभी वसु थे जिन्हें वशिष्ठ ऋषि ने श्राप दिया था। उन्हें मुक्त करने लिए ही मैंने उन्हें नदी में प्रवाहित किया। आपने शर्त न मानते हुए मुझे रोका। इसलिए मैं अब जा रही हूं। ऐसा कहकर गंगा शांतनु के आठवें पुत्र को लेकर अपने साथ चली गई।जिसका नाम देवव्रत रखा। देवव्रत ने बड़े होकर अखण्ड ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली। देवव्रत की इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण ही उनका नाम भीष्म पड़ा।

विश्लेषणः– इसका संक्षिप्त में उत्तर यह है कि मानव का एक सिद्धांत होना चाहिए कि सत्य को सत्य मानने में या उसके उच्चारण करने में उसको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

समाज में बहुत सारी भ्रांतियां फैली हुई हैं। हम इन भ्रांतियों को निवारण करते करते अपना जीवन समाप्त कर लेंगे परंतु भ्रांतियां समाप्त नहीं होंगी। ऐसी भ्रांतियां समाज में बहुत गहरी जड़ जमा चुकी हैं ।हमारे द्वारा जो लिखा जा रहा है, कितने लोग इसको पढ़ते होंगे, और फिर कितने लोग उस पर अमल करते होंगे ?

आज की भ्रांति है कि भीष्म पितामह की माता गंगा नदी थी क्या ? गंगा नदी ने देवकन्या का स्वरूप धारण करके शांतनु के साथ शादी की थी ?

गंगा क्या है ?

गंगा भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण नदी है। भारत के उत्तराखंड राज्य की पर्वत माला से बहते हुए सैकड़ो झरने धीरे –धीरे छोटी नदी का रूप धारण करते है जो आगे चलकर एक विशाल नदी का रूप ले लेते है ,जिसका नाम गंगा नदी रखा गया है। गंगा नदी का उद्गम भागीरथी व अलकनंदा नदी मिलकर करती है। यह भारत और बांग्लादेश में

कुल मिलाकर 2525 किलोमीटर (कि०मी०) की दूरी तय करती हुई उत्तराखंड में हिमालय के गंगोत्री हिमनद के गोमुख स्थान से लेकर बंगाल की खाड़ी के सुन्दरवन तक भारत की मुख्य नदी के रूप में विशाल भू–भाग को सींचती है।

गंगा नदी में जल की मात्रा मौसम के अनुसार कम या ज्यादा होता रहता है, कभी–कभी तो इतना की इसमें उफान भी आ जाता है। आजकल गंगा नदी पर बाँध बनाकर बिजली का उत्पादन भी होता है इसके अलावा अनेको जलचर जैसे मछली, कछुवा, सीप, मगरमच्छ आदि यहाँ जल में पैदा होते है। गंगा जल का अन्य उपयोग पीने के लिए।

ये स्पष्ट है की गंगा नदी प्रकृति का अनुपम उपहार है जैसे समुन्द्र और अन्य नदिया है। ये प्रकृति है जो जड़ है ,ये कहना की उसमें मानव की भांति प्रजनन शक्ति अन्य एंड्रिया जैसे आँख ,नाक कान , मन ,बुद्धि आदि बताना अवैज्ञानिक है और मूर्खता पूर्ण है। ये एक पारी कथा जैसी है जो त्याज्य है।

भीष्म ज्येष्ठ कुरु नहीं थे

ज्येष्ठ कुरु भीष्म के पिता शांतनु के अग्रज बाह्लीक थे। अर्थात् भीष्म के तात और पाण्डवों एवं धृर्तराष्ट्रों के पर–पितामह शांतनु के पिता प्रतिप के 3 पुत्र थे। उन्होने अपने ज्येष्ठ पुत्र देवापी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर और अपने द्वितीय पुत्र बाह्लीक एक नवविजित भूमि उपहार स्वरूप प्रदान कर उसे वहाँ का राजा बना दिया था, जिसके फलस्वरूप उस राज्य का नाम बाह्लिक पड़ गया। परंतु देवापी संन्यास ग्रहण कर वन में तपस्या करने चला गया। तत्पश्चात् प्रतिप का सबसे छोटा बेटा शांतनु युवराज बना और उनके मरणोपरांत हस्तिनापुर नरेश। बाह्लीक रंगभूमि में उपस्थित थे जब कुरु राजकुमार द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से सीखा हुआ अपना कौशल प्रदर्शन कर रहे थे वे युधिष्ठिर युवराज नियुक्ति समारोह में भी उपस्थित थे एवं वे राजसूय यज्ञ समारोह और युधिष्ठिर के राज्याभिषेक समारोह में भी उपस्थित थे। जिसमें उन्होने युधिष्ठिर को बहुमूल्य उपहार भी दिये। बाह्लीक अपने सहपरिवार युधिष्ठिर और दुर्योधन के द्यूत क्रीड़ा भवन में भी उपस्थित थे, वे अपने पुत्र और अपने पौत्रों समेत दुर्योधन के पक्ष से महायुद्ध में लड़े, वे अभिमन्यु वध के समय भी वहाँ पर उपस्थित थे। उनके पुत्र सोमदत्त और उनके पौत्र भूरिश्रवस का सात्य की द्वारा 14वें दिन में वध हो गया था। भूरिश्रवस के पुत्रों प्रतिप और प्रजन्य का भी सात्य की द्वारा 13वें दिन में वध हो गया था। भीम ने बाह्लीक का 14वें दिन में वध कर दिया था।

इस कथा में बिल्कुल भी सत्य नहीं हैं, ये किसने कब जोड़ दी ये कहना मुश्किल है। इसका उत्तर ये है कि मनुष्य कितना भी विद्वान क्यों न हो वह त्रिकालदर्शी नहीं हो सकता। केवल ईश्वर ही त्रिकालदर्शी हैं और यहाँ भी ईश्वर की कुछ सीमाएँ हैं। क्योंकि

मनुष्य कर्म करने में स्वंतत्र है लेकिन परिणाम भोगने में परतंत्र है। हम भविष्य में क्या करने वाले हैं? ये ईश्वर नहीं जनता लेकिन किस कर्म का क्या परिणाम होगा ये ईश्वर जानता है और मृत्यु के बाद कौन सी योनि में जन्म होगा ये भी ईश्वर निर्धारित करता है। महापुरुष भीष्म और कृष्ण के इस संवाद का कोई आधार नहीं है ये एक कल्पना हो सकती है कि कोई कष्ट में है तो उसने कोई गलत कार्य किया होगा।

भीष्म पितामह का मृत्यु शैय्या से युधिष्ठिर जी को उपदेश

युधिष्ठिर के प्रश्न पूछने पर भीष्म जी उसे सन्तान के माता–पिता व गुरूजनों के प्रति कर्तव्यों का महत्व बताते हैं। युधिष्ठिर जी ने भीष्म जी से पूछा कि हे भारत धर्म का मार्ग बहुत बड़ा है और इसकी शाखाएँ भी बहुत हैं। इन धर्मों (कर्तव्यों) में से किसको आप विशेष रूप से आचरण में लाने योग्य समझते हैं? सब धर्मों में कौन सा आपको श्रेष्ठ जान पड़ता हैं, जिसका अनुष्ठान करके मैं इहलोक और परलोक में भी परम धर्म का फल प्राप्त कर सकूं?

युधिष्ठिर जी के इन प्रश्नों का भीष्मजी ने महाभारत में जो उत्तर दिया वह निम्न हैः–

भीष्म जी बोले राजन् मुझे तो माता–पिता और गुरुजनों का सम्मान ही अधिक महत्वपूर्ण धर्म जान पड़ता है। संसार में इस पुण्य कार्य में संलग्न होकर मनुष्य महान यश और श्रेष्ठलोक (योनि) को पाता है। ये माता–पिता और गुरुजन ही तीनों लोक हैं। ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नियां हैं। पितागार्हपत्य अग्नि हैं, माता दक्षिणाग्नि मानी गई हैं और गुरु आह्वनीय अग्नि का रूप हैं। लौकिक अग्नियों से माता–पिता आदि अग्नियों का गौरव कहीं अधिक हैं। यदि तुम इन तीनों की सेवा में कोई भूल नहीं करोगे तो तीनों लोकों को जीत लोगे। पिता की सेवा से इस लोक को माता की सेवा से परलोक को और नियम पूर्वक गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक मोक्ष को प्राप्त कर लोगे।

इन तीनों माता–पिता–गुरुजनों की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करें इनको भोजन कराने के पूर्व स्वयं भोजन न करें इन पर कोई दोषारोपण न करें तथा सदा इनकी सेवा में संलग्न रहें यही सर्वोत्तम पुण्य कर्म हैं। हे राजेन्द्र! इनकी सेवा से तुम कीर्ति, पवित्र, यश और उत्तम लोक सब कुछ प्राप्त कर लोगे। जिसने इन तीनों का आदर–सत्कार कर लिया उसके द्वारा सम्पूर्ण लोकों का आदर हो गया और जिसने इनका अपमान किया उसके सम्पूर्ण शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं। उपाध्याय विद्या गुरु दस आचार्यों से अधिक महत्व रखता है। पिता दस उपाध्यायों से बढ़कर है और माता का महत्व दस पिताओं से भी अधिक है। माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। भीष्मजी कहते है कि मेरा विश्वास है कि गुरु का पद माता और पिता से भी बढ़कर है क्योंकि माता–पिता

तो केवल इस शरीर को जन्म देने के ही उपयोग में आते हैं। परन्तु आचार्य का उपदेश प्राप्त करके जो दूसरा जन्म प्राप्त होता है, वह दिव्य है अजर–अमर है।

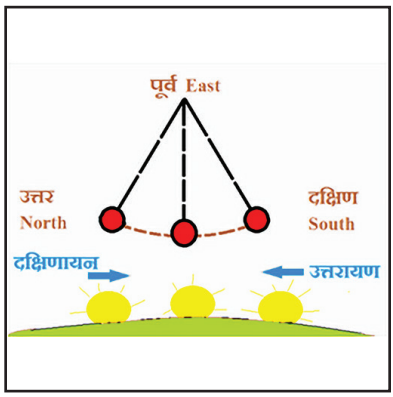
भीष्मजी के अनुसार जो लोग विद्या पढ़कर गुरु का आदर नहीं करते निकट रहकर मन, वचन और कर्म से गुरु की सेवा नहीं करते उन्हें भ्रूण (गर्भ के बालक) की हत्या से भी बढ़कर पाप लगता है। संसार में उनसे बड़ा पापी दूसरा कोई नहीं है। अतः जो पुरातन (वैदिक) धर्म का फल पाना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे

अन्त में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर जी के प्रश्नों का उत्तर यह वचन बोलकर समाप्त किया मित्रद्रोही कृतघ्न स्त्री घाती और गुरु हत्यारा इन चारों के पाप का प्रायश्चित हमारे सुनने में नहीं आया हैं।

देह त्याग के समय भीष्म पितामह के पास क्या अकेले पांडव ही थे?

टी0वी0 चैनल पर महाभारत धारावाहिक में दिखाया गया है कि अंतिम समय में भीष्म पितामह के पास पाँचों पांडव और श्रीकृष्ण जी गए थे। उनके अतिरिक्त वहाँ पर अन्य कोई व्यक्ति उपस्थित नहीं था। यहाँ पर प्रश्न यह खड़ा होता है कि भीष्म पितामह जैसे महामानव का जिस दिन अंतिम संस्कार हो तो क्या उस दिन केवल पाँचों पांडव और श्रीकृष्ण जी ही उनके पास जाएंगे या उनकी इच्छा के अनुसार सम्राट पद पर सुशोभित हुआ युधिष्ठिर अपने भाइयों मंत्रियों व अन्य प्रमुख लोगों के साथ वहाँ पहुँचा था।

उत्तरायण–दक्षिणायण



जिस भाँति चन्द्रमा के दो पक्ष होते हैं। एक कृष्ण पक्ष और दूसरा शुक्ल पक्ष मास का प्रथम पक्ष कृष्ण पक्ष कहलाता है। इसमें चन्द्रमा की कान्ति धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है और जब अमावस का दिवस आता है तो चन्द्रमा की बिल्कुल भी कान्ति नहीं रहती और लुप्त हो जाती है। परन्तु शुक्ल पक्ष में धीरे–धीरे वह कांति से युक्त होता चला जाता है और पूर्णमासी के दिवस चन्द्रमा अपनी षोड़श कलाओं से युक्त होता है। इसी प्रकार मानव के जीवन में भी दो पक्ष माने है, एक प्रकाश का जिसको शुक्ल पक्ष कहते है एवं दूसरा अन्धकार का जिसको कृष्ण पक्ष के नाम से पुकारते हैं।

इस बारे में महारानी ने भीष्म पितामाह से प्रश्न किया था कि उनका कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष से क्या अभिप्राय है? उस समय भीष्म पितामाह ने उत्तर दिया कि देवी नव जीवन के दो पक्ष होते हैं। एक ज्ञान का पक्ष और दूसरा अज्ञान का पक्ष। अज्ञान नाम

कृष्ण पक्ष अन्धकार हैं और ज्ञान नाम शुक्ल पक्ष अथवा प्रकाश हैं। अतः पुत्री जिस समय संग्राम हुआ व मैं इन वाणों की शैय्या पर विराजमान हुआ तो वह मेरा अन्धकार का पक्ष था और मैं अज्ञान में था। जब मेरे हृदय में ज्ञान का उदय हो जायेगा तो शुक्ल पक्ष माना जायेगा।

इस प्रकार भीष्म पितामह शर शैय्या पर एक वर्ष और चार दिवस एक पड़े रहे और इस काल में लगातार द्रोपदी महारानी उनके आहार के लिये नित्यप्रति भोजन दुग्ध आदि पदार्थ लातीं तथा पान करातीं। वे युधिष्ठिर आदि पांड़वों को अपने उपदेशामृत से तृप्त करते रहे और उनका यही आदेश था कि राजा को आत्मज्ञान वाला ब्रह्मवादी होना चाहिये क्योंकि ब्रह्मज्ञान से ही समाज और राष्ट्र ऊँचे बनते हैं।

उन्होंने अंतिम क्षणो में यही कहा था कि अब मैं उत्तरायण में पहुँच गया हूँ, मेरा हृदय पवित्र बन गया है। मेरी अर्न्तात्मा प्रकाश में चली गयी है और सूर्य भी दक्षिणायण से उत्तरायण की ओर आ गया है। अतः ब्राह्म जगत, आन्तरिक जगत दोनों श्रेष्ठ बन गये हैं। इसलिये अब मैं मोक्ष के निकट जाऊगाँ।

तब कुंती नंदन युधिष्ठिर ने भीष्मजी का दाह संस्कार करने के लिए पहले ही माल्य, गंध और रेशमी वस्त्र आदि वहाँ पर भेज दिए थे। कुरुकुल नंदन बुद्धिमान युधिष्ठिर, राजा धृतराष्ट्र यशस्विनी गांधारी माता कुंती तथा पुरुष श्रेष्ठ भाइयों को आगे करके और जनार्दन श्रीकृष्ण बुद्धिमान विदुर तथा युयुत्सु को पीछे रख कर वह उस स्थान की ओर चले जहाँ भीष्म पितामह मृत्यु शैय्या पर लेटे थे।

अनुशासन पर्व के इस प्रमाण से पता चलता है कि युधिष्ठिर और उनके भाइयों के साथ अंतिम समय में भीष्म पितामह के पास धृतराष्ट्र और गांधारी व कुंती सहित युयुत्सु भी उपस्थित था। साथ ही हस्तिनापुर के प्रधानमंत्री के पद पर सुशोभित हुए विदुर भी जयद्रथ वहाँ उपस्थित थे। टी0वी0 धारावाहिक ने यह भ्रांति भी फैलाई है कि धृतराष्ट्र के सौ के सौ पुत्र समाप्त हो गए थे। जबकि इस प्रमाण से स्पष्ट होता है कि उसका पुत्र युयुत्सु उस समय भी जीवित था जिस समय भीष्म पितामह ने अपना प्राणान्त किया था।

कुछ लोगों ने ऐसा कह कर भी मूर्खतापूर्ण बातें की है कि भीष्म पितामह ने जिस समय अपना अंतिम प्रवचन और उपदेश पांडवों को दिया था, उस समय बीच में ही द्रौपदी ने उन्हें यह कह कर टोक दिया था कि जैसी ज्ञान, ध्यान की बातें आप आज कर रहे हैं वैसी पितामह आपने उस समय क्यों नहीं की थीं जिस समय मेरा चीरहरण हो रहा था? इस पर बताया जाता है कि भीष्म पितामह ने कह दिया था कि उस समय मैंने दुर्योधन का अन्न खा रखा था। इसलिए मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। दुर्योधन के उस अन्न से बना हुआ रक्त अब मेरे शरीर से इन बाणों के माध्यम से बाहर निकल गया हैं। इसलिए अब मेरी बुद्धि पवित्र हो गई हैं।

जबकि महाभारत के अनुशासन पर्व से यह भी स्पष्ट होता है कि द्रौपदी भीष्म पितामह के अंतिम क्षणों में उनके पास उपस्थित ही नहीं थी और उन्होंने जो भी उपदेश उस समय दिया था, उसे किसी भी व्यक्ति या महिला ने उनकी बात को काटा नहीं था। अतः यह भ्रांति भी दूर कर लेनी चाहिए कि द्रौपदी ने भीष्म पितामह से अंतिम क्षणों में कुछ अनुचित बोला था। अनुशासन पर्व की साक्षी से ही हमें यह भी पता चलता हैं कि धर्मराज महाराज युधिष्ठिर दूर से ही शरशैय्या पर लेटे हुए भीष्म जी को देखकर भाइयों सहित रथ से उतर पड़े, तब भारत भूषण गंगापुत्र भीष्मजी से भाइयों सहित बोले कि गंगानंदन नरेश्वर महाबाहो मैं युधिष्ठिर आपकी सेवा में उपस्थित हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ। राजन प्रभो आपकी अग्नियों और आचार्य ब्राह्मण और ऋत्विजों को साथ लेकर मैं अपने भाइयों सहित ठीक समय पर आ गया हूँ।

इसके अतिरिक्त भीष्म से युधिष्ठिर यह भी कहते हैं कि आपके पुत्र महातेजस्वी राजा धृतराष्ट्र भी अपने (पूर्व) मंत्रियों सहित उपस्थित हैं। और महाबली श्रीकृष्ण भी यहाँ पधारे हैं। इसके अतिरिक्त पुरुष सिंह युद्ध में मरने से बचे हुए सभी राजा और कुरु जांगल देश की प्रजा भी यहाँ उपस्थित हैं। आप आंखे खोलिए और उन सबको देखिए।

भीष्म जैसे महामानव के अंतिम संस्कार के समय इतने ही लोगों का उपस्थित होना उनके लिए सम्मान जनक था। युधिष्ठिर का सारा मंत्रिमंडल और धृतराष्ट्र के मंत्री मंडल के जीवित बचे सभी सदस्य गांधारी कुंती और युद्ध में जीवित बचे अनेकों राजाओं के साथ–साथ जनता जनार्दन के अनेकों लोग वहां पर उपस्थित थे। इस प्रकार हजारों लोगों की उपस्थिति में भीष्म पितामह ने अपना प्राण त्याग किया था। इस प्रकार टी0वी0 चैनल के धारावाहिक में कृष्णजी के द्वारा यह कहलवाना कि हम 6 लोग ही भीष्म के प्राण त्याग के साक्षी बन रहे हैं, जो हमारे लिए गौरव पूर्ण हैं एक दम भ्रामक है।

जब युधिष्ठिर ने भीष्मजी से कहा कि वह आँखे खोलें और हम सबको एक बार अपना आशीर्वाद प्रदान करें तब गंगानंदन भीष्म ने आँखें खोलकर अपने को सब ओर से घेरकर खड़े हुए संपूर्ण भरत वंशियों को देखा। तत्पश्चात् प्रवचन कुशल बलवान भीष्म जी ने युधिष्ठिर की विशाल भुजा हाथ में लेकर मेघ के समान गंभीर वाणी में उन्हें समयोचित प्रवचन किया। उन्होंने कहा कि कुंती कुमार युधिष्ठिर सौभाग्य की बात है कि तुम मंत्रियों सहित यहाँ पधारे हो। सहस्रों रश्मियों से सुशोभित सूर्य अब दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर लौट चुका है, इसके पश्चात भीष्म ने सबसे पहला उपदेश धृतराष्ट्र को दिया और उनसे कहा कि तुम्हें कहीं वन आदि में जाने की आवश्यकता नहीं हैं। तुम वेद, शास्त्रों को पूर्ण रूप से जानते और समझते हो। तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए, जो कुछ हुआ हैं वह अवश्यं भावी था। यह पांडव जैसे राजा पांडु के पुत्र हैं, वैसे ही धर्म की दृष्टि

से तुम्हारे भी पुत्र हैं। यह सदा गुरुजनों की सेवा में संलग्न रहते हैं, तुम धर्म में स्थित रहकर अपने पुत्रों के समान ही इनका पालन करना। धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय अति शुद्ध है। यह सदा तुम्हारी आज्ञा के अधीन रहेंगे। मैं जानता हूँ कि इनका स्वभाव अत्यंत कोमल हैं और यह गुरुजनों के प्रति बड़ी भक्ति रखते हैं। तुम्हारे पुत्र बड़े दुरात्मा, क्रोधी, लोभी ईर्ष्या के वशीभूत और दुराचारी थे। अतः उनके लिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।

टीवी धारावाहिक में हमें बताया गया कि बाण शैय्या पर पड़े भीष्मजी से श्रीकृष्ण जी ने राजनीति का उपदेश देकर युधिष्ठर का मार्ग दर्शन करने के लिए निवेदन किया। परंतु अनुशासन पर्व में ऐसा भी कोई उल्लेख नहीं हैं। भीष्म पितामह ने अंतिम समय में धृतराष्ट्र से तो अवश्य कुछ कहा है पर उसके पश्चात कोई विशेष बात उन्होंने यहाँ पर उपदेशात्मक शैली में युधिष्ठर के लिए नहीं कही है। उन्होंने अपना जीवन समेटने से पहले के अंतिम क्षणों में युधिष्ठिर को गले लगाकर केवल इतना कहा – युधिष्ठिर तुम्हें सामान्यतः सभी ब्राह्मणों का विशेषत विद्वानों, आचार्यों और ऋत्विजों का सदा ही आदर सत्कार करना चाहिए।

अध्याय- 6

अन्य पात्र

एकलव्य

एकलव्य द्वारा द्रोणाचार्य को अंगूठा देने की कथा



प्रचलित कथाः– एकलव्य को कुछ लोग शिकारी का पुत्र कहते हैं और कुछ लोग लंका पुत्र तथा कुछ लोग यह कहकर प्रचारित करते हैं कि शूद्र होने के कारण एकलव्य को गुरु द्रोणाचार्य ने शिक्षा नहीं दी थी। वहीं कुछ लोग कहते हैं। कि एकलव्य श्रीकृष्ण के पितृव्य (चाचा) के पुत्र थे।

महाभारत में वर्णित कथा के अनुसार एकलव्य धनुर्विद्या सीखने के उद्देश्य से द्रोणाचार्य के आश्रम में आया लेकिन द्रोण ाचार्य ने उसे अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया, तो वह सेवकों की भाँति उनके साथ रहने लगा। द्रोणाचार्य ने एकलव्य को रहने के लिए एक झोपड़ी दिलवा दी। एकलव्य का काम बस इतना होता था कि जब सभी राजकुमार बाण विद्या का अभ्यास कर चले जाएं तब वह सभी बाणों को उठाकर वापस तरकश में डाल कर रख दें।

जब द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को अस्त्र चलाना सिखाते थे तब एकलव्य भी वहीं छिपकर द्रोण की हर बात, हर सीख को सुनता था। जो एक अपने राजकुमार होने के बावजूद द्रोण के पास एक सेवक बनकर रह रहा था। एकलव्य अपने खाली समय में द्रोण की सीख के अनुसार अरण्य में रहते हुए ही एकांत में तीर चलाना सीखता था।

जब द्रोणाचार्य को पता चला

एक दिन अभ्यास जल्दी समाप्त हो जाने के कारण कौरववंशी सभी राजकुमार समय से पहले ही लौट गए। ऐसे में एकलव्य को धनुष चलाने का एक और मौका मिल गया। लेकिन अफसोस उसके अचूक निशाने को दुर्योधन ने देख लिया और द्रोणाचार्य को इस बात की जानकारी दे दी।

द्रोणाचार्य ने एकलव्य को वहाँ से चले जाने को कहा। इसलिए बीच में ही एक आदिवासी बस्ती में ठहर गया। एकलव्य ने आदिवासियों के बीच रहकर वहाँ गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाई और मूर्ति की ओर एक टक देखकर ध्यान करके उसी से प्रेरणा लेकर वह धनुर्विद्या सीखने लगा और वह धनुर्विद्या में बहुत आगे बढ़ गया। आदिवासियों या भीलों के बीच रहने के कारण एकलव्य को शिकारी या भील जाति का मान लिया गया।

राजकुमारों का कुत्ता

जिस वन में एकलव्य अभ्यास करता था उसी वन में एक दिन पांडव और कौरव राजकुमार गुरु द्रोण के साथ शिकार के लिए पहुंचे। राजकुमारों का कुत्ता एकलव्य के आश्रम में जा पहुंचा और भौंकने लगा। कुत्ते के भौंकने से एकलव्य के अभ्यास में बाधा पड़ रही थी इस कारण उसने अपने बाणों से कुत्ते का मुँह बंद कर दिया। एकलव्य ने इतनी कुशलता से इस प्रकार बाण चलाए थे कि कुत्ता भौंक नही पाया पर साथ ही साथ उसको किसी प्रकार की चोट भी नहीं लगी। जब यह कुत्ता पुनः गुरुद्रोण के पास पहुंचा तो धनुर्विद्या का यह कौशल देखकर सब दंग रह गए। तब बाण चलाने वाले की खोज करते हुए वे एकलव्य के पास पहुँच गए। जब गुरु द्रोण को यह आभास हुआ कि एकलव्य उनके प्रिय शिष्य अर्जुन से श्रेष्ठ बन सकता हैं, तो उन्होंने गुरु दक्षिणा में उसका अँगूठा माँग लिया और एकलव्य ने अपना अँगूठा गुरु को दे दिया।

पड़तालः—ये एकलव्य की प्रचलित कहानी संक्षेप में बताई है। अब इसके कुछ मुख्य पहलुओं पर विचार करते हैं।

प्रश्नः क्या एकलव्य शूद्र थे?

उत्तरः— नहीं! क्योंकि महाभारत काल में कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था थी, जो 4 वर्गों में विभाजित थी और ये व्यवस्था जन्म के आधार पर नहीं कर्म पर आधारित थी।

इसलिए ये कथा पूरी तरह से नकारने योग्य है कि द्रोणाचार्य ने उसको निम्न जाति का होने के कारण शिक्षा नहीं दी।

द्रोणाचार्य के मना करने का ये कारण हो सकता है कि द्रोणाचार्य राज गुरु थे और एक विशेष परिवार को धनुष विद्या सिखा रहे थे इसलिए मना कर दिया हो।

एकलव्य को क्यों कहा जाता हैं एकलव्य?

एकलव्य के पिता श्रृंगवेर राज्य के राजा थे, उनकी मृत्यु के बाद एकलव्य इस राज्य का राजा बना। प्रारम्भ में एकलव्य का नाम अभिद्युम्न रखा गया था। प्रायः लोग उसे अभय नाम से ही बुलाते थे। पाँच वर्ष की आयु में एकलव्य की शिक्षा की व्यवस्था कुलीय गुरुकुल में की गई।

एकलव्य का जिस तरह चित्रण किया जाता है वह उस तरह के नहीं थे। वे एक राज पुत्र थे और उनके पिता की कौरवों के राज्य में प्रतिष्ठा थी। बालपन से ही अस्त्र–शस्त्र विद्या में बालक की लय, लगन और एक निष्ठता को देखते हुए गुरु ने बालक का नाम 'एकलव्य' रख दिया था। एकलव्य के युवा होने पर उसका विवाह हिरण्यधनु ने अपने एक निषाद मित्र की कन्या सुणीता से करा दिया। एकलव्य ने निषाद भीलों की एक सशक्त सेना बनाई और अपने राज्य का विस्तार किया।

क्या वास्तव में एकलव्य ने अपना अँगूठा काटकर द्रोणाचार्य को गुरु दक्षिणा में दे दिया था?

इस विषय को जरा गौर से समझने की जरुरत है इस कथा के प्रारम्भ में एक बात आती है कि एकलव्य ने द्रोणाचार्य के यहाँ सेवक बनकर कार्य किया और बहुत ध्यान से धनुष विद्या कला को सीखा और जल्दी ही इस कला में निपुण हो गया। इससे मालूम होता है कि वह एक होनहार युवक था। जिसने बाद में भील समुदाय के बीच रहकर अपनी इस कुशलता को और निखारा। अपने परिश्रम के द्वारा उसने प्रसिद्धि हासिल की। जिसमें आगे द्रोणाचार्य का कोई विशेष योगदान नहीं रहा।

अब रही बात द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाने की तो इस सम्भावना को नहीं नाकारा जा सकता क्योंकि प्राचीन काल से ही हमारे देश में शिल्पकार, चित्रकार, मूर्तिकार रहे हैं। एकलव्य ने उनकी मूर्ति श्रद्धावश बनायी होगी।

मुख्य विषय हैं कि क्या द्रोणाचार्य ने उसको कहा कि दक्षिणा के रूप में अपने हाथ का अंगूठा काट कर दे दो? ये पूरी तरह असत्य प्रतीत होता है क्योंकि द्रोणाचार्य एक राज गुरु थे आजकल की तरह लम्पट ट्यूशन वाले और नंबर आगे पीछे करने वाले गुरु नही। इसलिए उनके नाम के साथ आज भी श्रद्धा से गुरु शब्द का प्रयोग होता है। यदि ऐसा होता तो इतिहास उनको क्षमा नहीं करता। द्रोणाचार्य वेदों के ज्ञाता, विद्वान गुरु थे जिनमें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के गुण थे। उनके द्वारा ऐसी असभ्य और अनैतिक कार्य की कल्पना कभी नहीं की जा सकती। दूसरी बात उनके शिष्य थे धर्मराज जैसे लोग जो इस कृत्य पर कभी शांत नहीं रहते एवं कृष्ण भी द्रोणाचार्य को अवश्य दंड देते। इस कथा के द्वारा महा–धनुर्धारी अर्जुन के चरित्र पर अंगुली उठा दी है, जो किसी

लेखक का स्वार्थ हो सकता है क्योंकि हमारे इतिहास में महापुरुषों के प्रति कोई न कोई मिलावट की गयी है जिसको हमने दूर करने का ये प्रयास किया है।

सच क्या हो सकता है? तर्क शास्त्री कहते हैं कि जहाँ आग लगी हो धुँआ वही से उठता हैं तो इसके उत्तर में ये कह सकते हैं कि अंगूठा काटने जैसी कोई घटना नहीं हुई होगी बात का बतंगड़ बना दिया और भविष्य में बात बढ़ते–बढ़ते अतिश्योक्ति अलंकार के रूप में फैल गयी और कथावाचक भी रोचक कथा के चक्कर में झूठ में शामिल हो गए। एकलव्य से अति प्रभावित होकर द्रोणाचार्य ने कहा–बिना अँगूठा के तीर चलाकर दिखाओ तो एकलव्य ने और अच्छा तीर चालने का प्रदर्शन किया तो द्रोणाचार्य ने कहा ऐसा ही करते रहो जिससे और अपार सफलता मिलेगी।

एकलव्य ने इसके बाद बिना अँगूठे की सहायता के तीर चलाने का और अभ्यास किया अंग्रेजी में एक कहावत है "Practice Makes A Man Perfect" । परिणाम स्वरूप एकलव्य धनुष कला में और ज्यादा निपुण हो गया तो इस दौरान एक कहावत चल पड़ी कि एकलव्य ने अपना अँगूठा द्रोणाचार्य को दे दिया जिसको कालांतर में हिंदी कवियों द्वारा दूसरा रूप दे दिया गया, ये बात तर्क सम्मत और विश्वसनीय है।

गांधारी

गांधारी महाभारत की एक प्रमुख पात्र है, गांधारी गांधार राज्य के राजा सुबल की पुत्री और शकुनि की छोटी बहन थी। आज अफगानिस्तान का जो कंधार है, वही पुराने समय मे गांधार प्रदेश कहलाता था। गांधारी अद्वीतिय सुंदरी थी इसी कारण भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिए सुबल से गांधारी का हाथ मांग लिया।

प्रचलित कथा – गांधारी दुर्योधन की मां और राजा धृतराष्ट्र की पत्नी है। जब गांधारी को ये पता चला कि धृतराष्ट्र नेत्रहीन हैं तो उसने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली और आजीवन नेत्रहीन की भांति ही रही। उसके अंधे होने की बात जानते हुए भी गांधार नरेश इस शादी के लिए राजी हो गये इसका कारण हस्तिनापुर की अजेय सैन्य शक्ति रही हो, महाबली भीष्म का भय रहा हो या फिर इतने बड़े राजपरिवार में बेटी के विवाह पर गौरव और सुख–सुविधाएँ मिलने का लोभ जो भी हो महाभारत गांधार की सुंदर किशोर राजकुमारी गांधारी का विवाह अधेड़ उम्र के अंधे राजा के साथ हो गया।

शकुनि अपनी बहन से बहुत प्रेम करता था और उसने अपनी बहन की इस हालत के लिए भीष्म और कुरुवंश को ही उत्तरदायी माना और कुरुवंश के नाश की प्रतिज्ञा ले ली।

गांधारी का अपनी आँखों पर पट्टी बांधने का फैसला

महाभारत महाकाव्य में अनेक ऐसी विचित्रताओं से भरे प्रसंग हैं, जिन पर किसी

भी विचारशील व्यक्ति को बहुत अचरज होता है हालांकि यह एक काव्य–कथा है और इसमें अतिरंजनाओं का आना स्वाभाविक गुण है, क्योंकि अतिश्योक्ति के बिना कविता की कल्पना भी नहीं होती अनेक तरह के रूपक, बिम्ब, प्रतीक, अभिव्यंजनाएँ, अलंकार, रस, भाव, शब्द–शिल्प, व्याकरण आदि काव्य के मुख्य अंग हैं इनके बिना कोई कविता नहीं हो सकती मेरे मन में अक्सर यह प्रश्न गूंजता रहता है कि आखिर गांधारी ने अपनी आँखों पर पट्टी क्यों बाँधी? उसका पति नेत्रहीन था वह बहुत बलवान, बुद्धिमान और ज्ञानवान होने के बाबजूद देख नहीं सकता था नेत्रहीन होने के कारण बड़ा भाई होने के बाबजूद वह राजा नहीं बन पाया घटनाक्रम में आये नाटकीय मोड़ की वजह से छोटे भाई पांडू की मौत हो गयी और धृतराष्ट्र को ही मजबूरी में राजा बनना पड़ा कुछ लोगों का मानना है कि यही महाभारत का एक बड़ा कारण रहा नेत्रहीन से बहन की शादी होने पर भाई शकुनी ने शपथ ली थी कि वह कुरुवंश को तबाह कर देगा और ऐसा उसने किया भी इस बात में जो भी सच्चाई हो।

उन दिनों इस स्पष्ट रूप से बेमेल विवाह पर किसी ने आपत्ति नहीं जताई उसने अपने पिता के वचन का सम्मान करने का बीड़ा उठाया और कुरू वंश के शक्तिशाली राजा धृतराष्ट्र से शादी करने पर वह खुश थी।

इस कथानक में नाटकीय मोड़ तब आता है, जब इतिहासकारो के अनुसार गांधारी घोषणा करती है कि चूँकि उसके पति नेत्रहीन हैं, इसलिए वह भी आजीवन अपनी आँखों पर पट्टी बाँध कर रहेगी और उसने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली और एक अंधे की भांति जीवन यापन करने का संकल्प लिया। आस–पास के और स्वर्ग के लोगों ने उसके इस भव्य काम के लिए शायद उस पर आर्शीवाद भी बरसाए होंगे। वह कितनी वफादार हैं, उन्होंने सोचा होगा।

ऐसा ही टीवी धारावाहिक में दिखाया जाता है और हमको बताया जाता रहा है ।

लेकिन सच क्या है ? कभी हमने जानने की और समझने की कोशिश नहीं की मेरा एक प्रश्न है कि यदि धृतराष्ट्र एक पैर वाला होता तो क्या वह भी अपना एक पैर तोड़ लेती ? यदि धृतराष्ट्र एक किडनी वाला होता तो वह ऐसा ही अपने को बना लेती ? क्या तत्समय विवाह के यही पवित्र बंधन थे ?

गांधारी के इस निर्णय पर इतिहासकारो ने प्रश्न चिन्ह लगाया है–

1 क्या अपने साथी को सहारा देने के लिए खुद को अक्षम करना सही है?

2 क्या हो अगर हर अंधे पुरूष की पत्नी देखने से इनकार कर दें। हर बहरे पुरूष की पत्नी सुनने से इनकार कर दें। या हर अपंग की पत्नी चलने से इनकार कर दे? दुनियाँ अभिशप्त हो जाएगी।

3 उनका अंधापन किस तरह एक वास्तविक बाधा बन गई?

4 क्या गांधारी एक बुद्धिमान पत्नी थी ?

5 क्या वह एक सदाचारी वफादार पत्नी की खुद की छवि में फँस गई थी। अगर उसने खुद की आँखों पर पट्टी नहीं बाँधी होती तो क्या वह खुद को बेवफा मानती और इस प्रकार खुद के ही अनुमान में गलत साबित होती? क्या स्वयं से उसकी अवास्तविक अपेक्षा पूरे परिवार को नष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी?

6 क्या ऐसे निर्णय को पूर्ण सामाजिक स्वीकृति और अनुमोदन प्राप्त था ? क्योंकि ऐसे निर्णय भविष्य को और जटिल बनाने के साथ–साथ विकलांग बना देते हैं और इससे उन्हें पहचानने व संभालने में और भी मुश्किल होती है।

गांधारी द्वारा अपनी आँखों पर पट्टी बाँधने का विश्लेषण

इस कथानक में मुहावरे की भाषा, उपमा अलंकार का प्रयोग है। आँखों पर पट्टी बांध लेना एक लोकोक्ति यानी मुहावरा है। जिसमें कहा जाता है कि "भाई, उसने तो अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली है" इतिहासकार ने गांधारी के लिए इस मुहावरे का जो प्रयोग किया है, इसके पीछे कुछ कारण है, परंतु ये मुहावरा गांधारी के साथ जुड़ गया।

इसके पीछे कुछ तर्क भी है, जिन पर विचार करना चाहिए। जैसे कि :

1 जब गांधारी का विवाह होने से पूर्व ही उसको ध्रतराष्ट्र के नेत्रहीन होने का मालूम था, और नेत्रहीनता उसको पसंद नहीं थी तो वह विवाह करने से मना कर सकती थीं। उस समय भी कन्या को पसंद का वर चुनने की आजादी थी। ऐसे अनेकों उदाहरण मिलेंगे जैसे द्रौपदी का विवाह, सीता का विवाह के लिए उपयुक्त वर की तलाश की गई।

2 पूरे महाभारत के युद्ध में गांधारी की कोई ऐसी प्रतिक्रिया नहीं मिली जिसमे उसने युद्ध रोकने के प्रयास किए हो।

3 गांधारी ने शुरू से ही आँखों पर पट्टी बाँध ली थी कि वह पति के हर अच्छे–बुरे काम को आँख बंदकर समर्थन देने या उस पर मौन रहेगी। इसी कारण इतिहास में लिखा गया कि उसने आँखों पर पट्टी बाँध ली थी।

एक और बात है कि वह धृतराष्ट्र के 3. अपने दुष्ट बेटे दुर्योधन के प्रति, धृतराष्ट्र के अंधे मोह से क्या वह अपरिचित थी? वह सब जानते हुए, देखते हुए, अनजान बनी रही जैसे कि आंखों पर पट्टी बाँध रखी हो।

4. द्यूत क्रीड़ा द्रौपदी के चीरहरण के प्रयास के समय धृतराष्ट्र राजा होने के कारण इसे रोक सकता था इतना बड़ा घटनाक्रम राज्यसभा में हो रहा था, तो क्या गांधारी

को इसकी खबर नहीं थी? यदि नहीं थी तो यह बड़ी अजीब बात है कि इतने सारे व्यक्तिगत सेवकों के होते हुए उसे इस घटनाक्रम की जानकारी नहीं थी? उसने घिनौने घटनाक्रम को रोकने का प्रयास नहीं किया और अंधी बनी रही।

सारा घटनाक्रम हो चुकने के बाद जब द्रोपदी कौरवों को श्राप देने वाली थी, तो गांधारी बहुत नाटकीय रूप से प्रकट हो गयी और उसने युक्ति के साथ द्रोपदी को ऐसा करने से रोक लिया इससे यह तो साबित होता ही है कि अपने पुत्रों की नीच कारगुजारियों के बाद भी वह उनके लिए सजा नहीं चाहती थी और पूरे घटनाक्रम में उसने आँखों पर पट्टी बंधे रही।

क्योंकि यदि उसके मन में दुर्योधन के सारे दुष्ट कर्मों के प्रति कोई सहमति नहीं होती, तो वह तटस्थ भी रह सकती थी कि जो जीतेगा सो जीतेगा, लेकिन उसने दुर्योधन की जीत का पूरा प्रबंध कर दिया वो तो महान कूटनीतिक श्रीकृष्ण की चतुराई थी कि भीमसेन दुर्योधन को पराजित कर सके, वरना इसकी कोई सम्भावना ही नहीं थी।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट हैं कि गांधारी वह भी मोह में अंधी होकर उसका समर्थन कर रही थी और अनजान यानि की अन्धी बनी रही। यदि वह आंखों पर पट्टी नहीं बांधती तो युद्ध की दशा और दिशा कुछ और होती।

गांधारी द्वारा दुर्योधन को नग्न अवस्था में बुलाना

प्रचलित कथा– गांधारी को शिव से यह वरदान प्राप्त था कि वह जब कभी भी किसी को भी अपनी आँखों की पट्टी उतारकर देख लेंगी उसका पूरा बदन लोहे का हो जायेगा और इसी वरदान के चलते गांधारी ने पुत्र मोह में आकर अपने अधर्मी पुत्र दुर्योधन की रक्षा करने के लिए महाभारत युद्ध के दौरान उसके पूरे बदन को नंगा देखने के लिए प्रथम बार अपनी पट्टी उतारी थी लेकिन भगवान श्रीकृष्ण की चाल की वजह से अपनी कमर पर शर्म की वजह से दुर्योधन ने कमर के नीचे केले का पत्ता लपेट लिया था।

विवेचनाः– ये कथा तुकबाजी से ज्यादा और कुछ नहीं है। शिव भक्त होने का मतलब होता है जो ईश्वर में अपार श्रद्धा रखता हो और दैनिक यज्ञ, सन्ध्या आदि द्वारा अपने नित्य कर्म का पालन करता हो। शिव ईश्वर का दूसरा नाम हैं यानि कल्याणकारी ईश्वर। शाप और वरदान नाम की कोई चीज नहीं है। महाभारत काल में मूर्तिपूजा भी नहीं थी। ईश्वर किसी को गलत कार्य के लिए आशीर्वाद या प्रेरणा नहीं देता और बुरे कार्य के लिए शाप नही देता बल्कि अच्छे बुरे कर्म का परिणाम अपने नियमों के अनुसार समय समय पर देता है। जब कोई गलत कार्य करते है तो ईश्वर के दिए ज्ञान के माध्यम से मनुष्य की अंतरात्मा की आवाज गलत कार्यों से रोकने का प्रयास करती है। इसलिए शिव के वरदान की कहानी गले नहीं उतरती।

गांधारी द्वारा दुर्योधन को नग्न अवस्था बुलाना भी एक अलंकार की भाषा है। जब किसी दुष्ट प्रवृति के व्यक्ति का विश्लेषण होता है तो इतिहासकार, कवि और लेखक ऐसी ही शब्दावली का प्रयोग करते देखे गए है। जैसे रावण के लिए किया जाता है, और उसकी सेना का नाम तू राक्षस सेना ही रख दिया। पूरे महाभारत के चलते अपने स्वार्थ, अहंकार और दुष्ट कर्मों के कारण दुर्योधन नंगा हो चुका था और उसके पास अपनी मां को सफाई देने का कोई रास्ता नही था। हो सकता है कि गंधारी ने शर्त भी लगाई हो को असत्य नही बोलेगा और वास्तु स्थिति से अवगत कराए, जिसको ये उपमा दी गई है की गंधारी ने दुर्योधन को नग्न अवस्था (क्लीन स्टेट), यानि बिना किसी लाग लपेट के आनें को कहा।

इसको ही गांधारी द्वारा तत्समय अपनी आँखों से पट्टी हटाने की उपमा दी गयी है। गांधारी ने दुर्योधन को अपनी दृष्टि से कोई शक्ति नही प्रदान की। अलंकारिक भाषा में गांधारी ने दुर्योधन को उस समय जो उसको उपदेश दिया उससे दुर्योधन को अहंकार छोड़ स्वयं को धर्म के मार्ग पर मजबूती लाना रहा होगा। उसको गांधारी द्वारा दुर्योधन को शक्तिशाली बनाये जाने की संज्ञा दी गई है।

एक अन्य विचार भी इस सन्दर्भ में सुनने को मिलता है की गांधारी में दुर्योधन को युद्ध कला सिखाने के लिए बुलाया होगा और इसको ही गांधारी द्वारा तत्समय आंखो से पट्टी खोलने की उपमा दी गयी है। गांधारी ने दुर्योधन को अपनी दृष्टि से कोई शक्ति नही प्रदान की। हो सकता है युद्ध कला का ज्ञान दिया हो।

इसी दौरान दुर्योधन के शरीर को किसी प्रकार कृष्ण ने भांपकर ये अंदाजा लगाया कि इसके शरीर का निचला भाग ऊपरी हिस्से की तुलना में काफी कमजोर है और उस अंग पर हमला करके दुर्योधन को हराया जा सकता है। यही गलती दुर्योधन की मृत्यु का कारण बनी। दुर्योधन बलराम के पश्चात सर्वश्रेष्ठ गदाधारी था तो भीम को निस्संदेह उसे नियम विरुद्ध जाकर उसे मारना पड़ा होगा।

लेकिन समय–समय पर लेखक, कवि अपनी–अपनी तरह से इस कथा को बदलकर रोचक बनाते रहे हैं।

गांधारी के 100 बच्चों का सच

प्रचलित कथा – महाभारत की गांधारी से 100 पुत्र हुए, इसलिए कौरव 100 भाई और एक बहन थे। ऐसा कैसे हो सकता है, इसमें पौराणिक विद्वानों की दो भिन्न–भिन्न राय है और दोनों ही अपनी राय को सत्य बताते हैं।

1 **पहली राय**– गांधारी कुँवारेपन से ही भगवान शिव की भक्त थीं, उसकी शिव भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने उसे 100 पुत्रों की विवाहित होने उपरांत माता

होने का आशीर्वाद एवं वरदान दिया था। इसलिए गांधारी को १०० पुत्र और एक पुत्री हुई।

2 **दूसरी राय**– कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर के जन्म होने पर धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी के हृदय में भी पुत्रवती होने की लालसा जागी तथा गान्धारी ने वेद व्यास जी से पुत्रवती होने का वरदान प्राप्त कर लिया।

गर्भ धारण के पश्चात् दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी जब संतान का जन्म नहीं हुआ तो क्षोभवश गान्धारी ने अपने पेट में मुक्का मार कर अपना गर्भ गिरा दिया। जब इस गिरे हुए गर्भ को वह फेंकने जा रही थी तो योगबल से वेद व्यास ने इस घटना को तत्काल जान लिया। वे गान्धारी के पास आकर बोले, ''गान्धारी तूने बहुत गलत किया। मेरा दिया हुआ वर कभी मिथ्या नहीं जाता अब तुम शीघ्र सौ कुण्ड तैयार करके उनमें घृत भरवा दो।'' गान्धारी ने उनकी आज्ञानुसार सौ कुण्ड बनवा दिये। वेदव्यास ने गान्धारी के गर्भ से निकले मांसपिण्ड पर अभिमन्त्रित जल छिड़का जिससे उस पिण्ड के सौ टुकड़े हो गये। वेदव्यास ने उन टुकड़ों को गान्धारी के बनवाये सौ कुण्डों में रखवा दिया और उन कुण्डों को दो वर्ष पश्चात् खोलने का आदेश दे अपने आश्रम चले गये। दो वर्ष बाद फिर उन कुण्डों से धृतराष्ट्र के शेष 99 पुत्र एवं दुश्शला नामक एक कन्या का जन्म हुआ।

एक अन्य राय जो आजकल ही शुरू हुई है,उनका कहना है कि उस समय विज्ञानं तरक्की पर था और १०० पुत्रो के लिए गर्भाधान के लिए गांधारी ने टेस्ट ट्यूब तकनीक की भाँति किसी वैज्ञानिक तकनीक का प्रयोग किया।

सच क्या है? ईश्वरीय नियम क्या है? विज्ञान क्या कहता है? और हमारा भी चिंतन क्या उपरोक्त कथानक को स्वीकार करता है?

विश्लेषण – शायद क्रोधवश इतिहासकारों ने दुर्योधन की माँ होने के नाते गांधारी का कई तरह से चरित्र हनन किया है । जब गांधारी को अंधी (आँखों पर हमेशा पट्टी बाँधकर रखने के कारण) कहा गया है तो फिर गांधारी से 100 पुत्रो के पैदा होने और उनको पालने की बात पूरी तरह से गप्प सिद्ध होती है।

वैसे जब मैने ये सुना कि दुर्योधन और उसके 99 भाई मटके से पैदा हुये थे, तब से मेरा भरोसा ऐसे ग्रंथों से बिल्कुल ही समाप्त हो गया और पहले सोचा इस विषय पर विश्लेषण करने में अपना समय क्यों बर्बाद करूँ लेकिन विचार के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ऐसी गप्प कथाओं के विरुद्ध जाग्रति लानी चाहिए। झूठे साहित्य और झूठ भरे प्रवचनों से दूर रहे तो अच्छा है।

वास्तविकता पर विचार– उपरोक्त मान्यताऐं अवैज्ञानिक, ईश्वरीय नियमों के विपरीत है और प्रामाणिक भी नहीं है।

1 ईश्वर के नियम अटल हैं उनमें कभी कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। गर्भ धारण, गर्भ का समय और गर्भ में बच्चे का विकास आदि के लिए ईश्वरीय नियमों की निश्चित प्रक्रिया है, इसीलिए ईश्वर को महाकाल भी कहा गया है। इसमें तुकबाजी की कहानी नहीं चल सकती।

प्राणी	औसत जीवन	अवधि	गर्भकाल
1.	हाथी	47 वर्ष	624 दिन
2.	ऊँट	20 वर्ष	400 दिन
3.	गधा	16 वर्ष	365 दिन
4.	घोड़ा	27 वर्ष	330 दिन
5.	भैंस	20 वर्ष	300 दिन
6.	गाय	18 वर्ष	284 दिन
7.	बाघ	19 वर्ष	155 दिन
8.	बकरी	17 वर्ष	151 दिन
9.	सुअर	14 वर्ष	114 दिन
10.	कुत्ता	16 वर्ष	63 दिन

2 अगर गांधारी ने प्रत्येक बच्चा 12 महीने के अन्तराल में पैदा किया तो सौ पुत्र पैदा करने मे 100 साल लगेंगे। एक महिला कम से कम 12 वर्ष की उम्र के बाद ही माँ बनने की क्षमता रखती है तो क्या गांधारी 112 वर्ष की उम्र तक बच्चे पैदा कर रही थी? गांधारी भी एक महिला ही थी, कोई मशीन नही, जिसने अपने जीवन मे 101 बच्चों (एक पुत्री दुश्शाला) को जन्म दिया, जिसे मानना मुश्किल ही है।

3 विज्ञान मानता है कि महिला को कम से कम 10 वर्ष की उम्र में माहवारी शुरू होती है और 50 वर्ष की आयु तक समाप्त हो जाती है, जब महिला 18 से 35 वर्ष के मध्य होती है तो उसे 5 से 7 दिनों ऋतुकाल रहता है, पर 35 की उम्र पार होते ही 2 से 3 दिन ही रह जाता है। मतलब साफ है कि 40 की उम्र तक ही महिला के गर्भाशय मे अण्डे तैयार होते है, और इसी उम्र तक पैदा हुये बच्चे स्वस्थ और निरोग होते है और 50 वर्ष की उम्र के बाद हार्मोंस क्षीण हो जाते हैं अतः महिला बच्चों को स्तनपान कराने में भी सक्षम नही रहती।

4 ये कहना कि शिव के आशीर्वाद से 100 पुत्रो का जन्म हुआ, यह बात तार्किक और वैज्ञानिक तौर पर मानने योग्य नहीं है। गर्भ धारण पति और पत्नी के संयोग के बिना नहीं हो सकता। और विज्ञानं भी ये तथ्य स्वीकार करता है।

5 **वैज्ञानिक तथ्य** – डॉक्टरों ने इसका कारण लिथोपेडियन (Lithopedion) बताया कि जब प्रेग्नेंसी (Pregnancy) गर्भाश्य के बदले पेट में बनती है। आमतौर पर जब प्रेग्नेंसी में खून की आपूर्ति नहीं होती है तो भ्रूण विकसित नहीं हो पाता, जिसके कारण शरीर के पास भ्रूण को बाहर निकालने का कोई तरीका नहीं होता है, जिसके बाद शरीर उसी प्रतिरक्षा प्रक्रिया (Immune process) का उपयोग करके भ्रूण को धीरे–धीरे पत्थर यानी स्टोन में बदल देता है, इसीलिए महिला के पेट में मिले भ्रूण ठीक से नहीं बढ़ता और इसको 'स्टोन बेबी' कहते हैं।

6 व्यास जी का आशीर्वाद-एक और असत्य कथा

1. व्यास ने गांधारी को सौ पुत्रों का आशीर्वाद दिया थाः प्रश्न उठता है कि ऐसा आशीर्वाद क्यों दिया? क्या गांधारी कोई मशीन थी? क्या इतिहास में ऐसा कोई अन्य उदाहरण मिलता है? क्या विद्वान व्यास जी विज्ञानं से और प्रकृति से बिल्कुल नाता नहीं रखते थे।
2. दो वर्ष गर्भ रहने के बाद गांधारी ने एक लोहे के पिण्ड को जन्म दिया– ईश्वरीय नियम के अनुसार किसी भी महिला का गर्भ काल 9 माह का है। वैसे बच्चा 7 से 10 माह तक भी जन्म ले सकता है जो अप्राकृतिक होगा। उस समय जब व्यास जी जैसे विद्वान थे तो 2 वर्ष का समय क्यों लगा? ये बिल्कुल असम्भव है और जब विज्ञान भी चरम सीमा पर बताया जाता है तो चिकित्सा सेवा क्यों नहीं ली? इसका मतलब एक कहानी बनायी गयीं है।
3. गांधारी घबराकर पिण्ड को फैंकने जा रही थी तभी व्यास जी ने आकर उसे रोका और उस पिण्ड के सौ टुकड़े करवा कर सौ मटको मे रखवा दिया– क्या व्यास जी गांधारी के महल के सामने रहते थे जो तुरंत पहुँच गए और गांधारी खेतों तक फेंकने नहीं जा पायी। क्या महारानी अकेली रहती थीं कि कोई इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी नहीं है। ऐसा कोई योग नहीं सुना कभी किसी भी शास्त्र में की गांधारी का आभास हो जाये और तुरंत कई किलोमीटर की यात्रा करके खाली बैठे व्यास जी वह पहुँच जाय।

यदि व्यास जी इतने महान संत थे तो गांधारी के भ्रूण से ही सन्तान को जन्म क्यों नहीं कराया? गर्भ गिराने की नौबत नहीं आती।

4. दो वर्ष बाद उन्ही मटको मे से गांधारी के सौ पुत्र पैदा हुऐ– माना पहले भी विज्ञानं था और पूर्वज विद्वान थे लेकिन आज भी विज्ञानं ने मानव रचना का सार ढूँढ लिया है। भ्रूण गर्भ में ही पनप सकता है और उसके बाहर तो समाप्त हो जाता है, सड़ जाता है। यहाँ महागप का प्रयोग हुआ है कि उन्ही मटकों मे से गांधारी के सौ पुत्र पैदा हुऐ।

5. एक और प्रश्न 100 बच्चों को माँ का दूध कैसे मिला होगा, माँ का दूध बच्चे के लिए अमृत और जीवन है और माँ ने कैसे लालन पालन किया होगा?

इस तथ्यों पर काल्पनिक कथा लिखने वाले ने ध्यान नहीं दिया यहाँ झूठ पकडा गया कि इस बात पर तो कोई भी विश्वास नही करेगा, स्पष्ट है कि गांधारी के सौ पुत्रो वाली कहानी सिर्फ गढ़ी गयी है। वैसे भी द्वैपायन व्यास ने पूर्वकाल में महाभारत में 8 हजार श्लोक ही लिखे थे, जो आज बढ़कर लाखों हो गये हैं, तो सम्भव है कि ये बात भी झूठी ही हो।

वास्तविकता क्या ही सकती है?

कहते है कि कुछ तो बात रही होगी जो ये कथानक सामने आया है। हाँ बिल्कुल! गांधारी के 100 बच्चे थे। महाभारत की गांधारी के लिए उपमा दी जाती है की गांधारी महाभारत के युद्ध में आँखों पर पट्टी बाँधे रही और अंधे की भांति मूकदर्शक बनी रही। इस अलंकारिक भाषा का भावार्थ ये निकला कि उसने इस युद्ध में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया और फिर ये भी कहा गया की उसके 100 बच्चे हुए यानि कि उसके चारो तरह बच्चो की भारी फौज रहती थी। जिनके लिए वह माँ तुल्य थी। इस आधार पर कहा जाता है की गांधारी के 100 बच्चे थे।

हमारे समाज में, परिवारों में मॉसी, ताई, मामी, चाची यहाँ तक की भाभी को भी माँ के समान माना गया है। संयुक्त परिवारों में आज भी गर्व से कहा जाता है की हम 23 भाई और 12 बहिने है। इस कथानक में उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है। इस युद्ध में तो सैकड़ो बच्चे अनाथ हुए होंगे और गांधारी की युद्ध में कोई रूचि नहीं थी। पुरुष सभी युद्ध क्षेत्र में रहते थे। और गांधारी के बच्चो से विशेष प्रेम देखते हुए इतिहासकारो ने गांधारी को 100 बच्चो की माँ की उपमा दे दी। यहां 100 बच्चो का वास्तविक मलतब अनगिनत बच्चो से है यानि कि असंख्य बच्चे। इसी तर्ज पर गांधारी कहा गया की गांधारी के 100 पुत्र थे।

ये तर्क विश्वास करने योग्य है।

शकुनि

गांधारी के भाई और दुर्योधन के मामा शकुनि को कौन नहीं जानता? महाभारत में शकुनि का किरदार अहम रहा है। कहते हैं कि बुद्धिबल, शस्त्रबल से भी ज्यादा खतरनाक होता है। महाभारत में कृष्ण, शकुनि, भीष्म, विदुर, द्रोण आदि ऐसे लोग थे जिन्होंने अपने बुद्धिबल का प्रयोग किया।

महाभारत की गाथा में शकुनि अपनी कुटिल बुद्धि के लिए विख्यात माना जाता है। कौरवों के मामाश्री शकुनि मामा को कौरवों का शुभचिंतक माना जाता है। शकुनि मामा



दुर्योधन का कदम–कदम पर मार्गदर्शन करते रहते थे। दुर्योधन भी मामा शकुनि की इच्छा के बगैर एक कदम भी नहीं उठाते थे। यह बात गांधारी को खटकती थी, वहीं धृतराष्ट्र को भी। हम आपको अगले पन्नों पर बताएंगे कि क्यों शकुनि दुर्योधन सहित अन्य कौरवों का दुश्मन था और किस तरह शकुनि का अंत हुआ।

शकुनि गांधार नरेश राजा सुबाल के पुत्र थे। शकुनि का जन्म गांधार के राजा सुबाल के राजप्रासाद में हुआ था। वह माता गांधारी का छोटा भाई था। वह जन्म से ही विलक्षण बुद्धि का स्वामी था अतः राजा सुबाल को अत्यंत प्रिय था।

कई छोटे–छोटे राज्य मिलकर आर्याना क्षेत्र बना था। इसी क्षेत्र में था गांधार राज्य। आज के उत्तर अफगानिस्तान को उस काल में गांधार कहा जाता था, जो कि कम्बोज के पास था।गांधार राज्य में ही हिन्दूकुश पर्वतमाला थी। कंदहार या कंधार गांधार का ही अपभ्रंश है।

कौरवों को छल व कपट की राह सिखाने वाले शकुनि उन्हें पांडवों का विनाश करने में पग–पग पर मदद करते थे,लेकिन उनके मन में कौरवों के लिए केवल बदले की भावना थी।

उस समय गांधार राजकुमारी के रूप–लावण्य की चर्चा पूरे आर्यावर्त में थी। ऐसे में पितामह भीष्म ने धृतराष्ट्र का विवाह गांधार की राजकुमारी से करने की सोची। पहले उन्होंने सोचा कि गांधारी का अपहरण कर के लाया जाए, लेकिन अम्बा और अम्बालिका ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया था अतः पितामह भीष्म गांधार की राजसभा में धृतराष्ट्र का रिश्ता लेकर गए, लेकिन उन्हें मालूम था कि उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया जाएगा।

तब पितामह भीष्म ने क्रोधपूर्ण लहजे में कहा कि मैं तुम्हारे इस छोटे से साम्राज्य पर चढ़ाई करूगाँ और इसे समाप्त कर दूँगा। अंततः राजा सुबाल को भीष्म के आगे झुकना पड़ा और अत्यंत क्षोभ के साथ उनको अपनी सुन्दर पुत्री का विवाह अंधे राजकुमार धृतराष्ट्र के साथ करना पड़ा।

गांधारी ने भी दुखपूर्वक आजीवन आंखों पर पट्टी बांधे रखने की प्रतिज्ञा की। गांधारी से महाराज धृतराष्ट्र को 100 पुत्रों की प्राप्ति हुई थी, जो आगे चलकर कौरवों के नाम से प्रसिद्ध हुए। हालांकि वे कौरव नहीं थे।

माना जाता है कि गांधारी का विवाह महाराज धृतराष्ट्र से करने से पहले ज्योतिषियों ने सलाह दी कि गांधारी के पहले विवाह पर संकट है अतः इसका पहला विवाह किसी ओर से कर दीजिए, फिर धृतराष्ट्र से करें। इसके लिए ज्योतिषियों के कहने पर गांधारी का विवाह एक बकरे से करवाया गया था। बाद में उस बकरे की बलि दे दी गई।

कहा जाता है कि गांधारी को किसी प्रकार के प्रकोप से मुक्त करवाने के लिए ही ज्योतिषियों ने यह सुझाव दिया था। इस कारणवश गांधारी प्रतीक रूप में विधवा मान ली गईं और बाद में उनका विवाह धृतराष्ट्र से कर दिया गया। ऐसा क्यों किया इसके पीछे और भी कारण थे।

गांधारी एक विधवा थीं, यह सच्चाई बहुत समय तक कौरव पक्ष को पता नहीं चली। यह बात जब महाराज धृतराष्ट्र को पता चली तो वे बहुत क्रोधित हो उठे। उन्होंने समझा कि गांधारी का पहले किसी से विवाह हुआ था और वह न मालूम किस कारण मारा गया।

धृतराष्ट्र के मन में इसको लेकर दुख उत्पन्न हुआ और उन्होंने इसका दोषी गांधारी के पिता राजा सुबाल को माना। धृतराष्ट्र ने गांधारी के पिता राजा सुबाल को पूरे परिवार सहित कारागार में डाल दिया।

कारागार में उन्हें खाने के लिए केवल एक व्यक्ति का भोजन दिया जाता था। केवल एक व्यक्ति के भोजन से भला सभी का पेट कैसे भरता? यह पूरे परिवार को भूखे मार देने की साजिश थी। राजा सुबाल ने यह निर्णय लिया कि वह यह भोजन केवल उनके सबसे छोटे पुत्र को ही दिया जाए ताकि उनके परिवार में से कोई तो जीवित बच सके।

एक–एक करके सुबाल के सभी पुत्र मरने लगे। सब लोग अपने हिस्से का चावल शकुनि को देते थे ताकि वह जीवित रहकर कौरवों का नाश कर सके। सुबाल ने अपने सबसे छोटे बेटे शकुनि को प्रतिशोध के लिए तैयार किया। मृत्यु से पहले सुबाल ने धृतराष्ट्र से शकुनि को छोड़ने की विनती की, जो धृतराष्ट्र ने मान ली थी।

राजा सुबाल के सबसे छोटे पुत्र कोई और नहीं, बल्कि शकुनि ही थे। शकुनि ने अपनी आँखों के सामने अपने परिवार का अंत होते हुए देखा और अंत में शकुनि जिंदा बच गए।

जब कौरवों में वरिष्ठ युवराज दुर्योधन ने यह देखा कि केवल शकुनि ही जीवित बचे हैं तो उन्होंने पिता की आज्ञा से उसे क्षमा करते हुए अपने देश वापस लौट जाने या फिर हस्तिनापुर में ही रहकर अपना राज देखने को कहा। शकुनि ने हस्तिनापुर में रुकने का निर्णय लिया।

शकुनि ने हस्तिनापुर मैं सबका विश्वास जीत लिया और 100 कौरवों का अभिवावक बन बैठा। अपने विश्वासपूर्ण कार्यों के चलते दुर्योधन ने शकुनि को अपना मंत्री नियुक्त कर लिया।

सर्वप्रथम उसने गांधारी व धृतराष्ट्र को अपने वश में करके धृतराष्ट्र के भाई पांडु के विरुद्ध षड्यंत्र रचने और राजसिंहासन पर धृतराष्ट्र का आधिपत्य जमाने को कहा।

फिर धीरे–धीरे शकुनि ने दुर्योधन को अपनी बुद्धि के मोहपाश में बाँध लिया। शकुनि ने न केवल दुर्योधन को युधिष्ठिर के खिलाफ भड़काया बल्कि महाभारत के युद्ध की नींव भी रखी।

यह बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि शकुनि के पास जुआ खेलने के लिए जो पासे होते थे वह उसके मृत पिता के रीढ़ की हड्डी के थे। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात शकुनि ने उनकी कुछ हड्डियाँ अपने पास रख ली थीं। शकुनि जुआ खेलने में पारंगत था और उसने कौरवों में भी जुए के प्रति मोह जगा दिया था।

शकुनि की इस चाल के पीछे सिर्फ पांडवों का ही नहीं बल्कि कौरवों का भी भयंकर विनाश छिपा था, क्योंकि शकुनि ने कौरव कुल के नाश की सौगंध खाई थी और उसके लिए उसने दुर्योधन को अपना मोहरा बना लिया था। शकुनि हर समय बस मौकों की तलाश में रहता था जिसके चलते कौरव और पांडवों में भयंकर युद्ध छिड़ें और कौरव मारे जाएँ।

जब युधिष्ठिर हस्तिनापुर का युवराज घोषित हुआ, तब शकुनि ने ही लाक्षागृह का षड्यंत्र रचा और सभी पांडवों को वारणाव्रत में जिंदा जलाकर मार डालने का प्रयत्न किया। शकुनि किसी भी तरह दुर्योधन को हस्तिनापुर का राजा बनते देखना चाहता था ताकि उसका दुर्योधन पर मानसिक आधिपत्य रहे और वह इस मूर्ख दुर्योधन की सहायता से भीष्म और कुरुकुल का विनाश कर सके अतः उसने ही पांडवो के प्रति दुर्योधन के मन में वैरभाव जगाया और उसे सत्ता का लोलुप बना दिया।

शकुनि के कारण ही महाराज धृतराष्ट्र की ओर से पांडवों व कौरवों में होने वाले विभाजन के बाद पांडवों को एक बंजर पड़ा क्षेत्र सौंपा गया था, लेकिन पांडवों ने अपनी मेहनत से उसे इंद्रप्रस्थ में बदल दिया। युधिष्ठिर द्वारा किए गए राजसूय यज्ञ के दौरान दुर्योधन को यह नगरी देखने का मौका मिला।

महल में प्रवेश करने के बाद एक विशाल कक्ष में पानी की उस भूमि को दुर्योधन ने गलती से असल भूमि समझकर उस पर पैर रख दिया और वह उस पानी में गिर गया। यह देख पांडवों की पत्नी द्रौपदी उन पर हंस पड़ीं और कहा कि 'एक अंधे का पुत्र अंधा ही होता है'। यह सुन दुर्योधन बेहद क्रोधित हो उठा।

दुर्योधन के मन में चल रही बदले की इस भावना को शकुनि ने हवा दी और इसी का फायदा उठाते हुए उसने पासों का खेल खेलने की योजना बनाई। उसने अपनी योजना दुर्योधन को बताई और कहा कि तुम इस खेल में हराकर बदला ले सकते हो। खेल के जरिए पांडवों को मात देने के लिए शकुनि ने बड़े प्रेम भाव से सभी पांडु पुत्रों

को खेलने के लिए आमंत्रित किया और फिर शुरू हुआ दुर्योधन व युधिष्ठिर के बीच पासा फेंकने का खेल।

शकुनि पैर से लंगड़ा तो था, पर चौसर अथवा द्यूतक्रीड़ा में अत्यंत प्रवीण था। उसकी चौसर की महारथ अथवा उसका पासों पर स्वामित्व ऐसा था कि वह जो चाहता वे अंक पासों पर आते थे। एक तरह से उसने पासों को सिद्ध कर लिया था कि उसकी अंगुलियों के घुमाव पर ही पासों के अंक पूर्वनिर्धारित थे।

खेल की शुरुआत में पांडवों का उत्साह बढ़ाने के लिए शकुनि ने दुर्योधन को आरंभ में कुछ पारियों की जीत युधिष्ठिर के पक्ष में चले जाने को कहा जिससे कि पांडवों में खेल के प्रति उत्साह उत्पन्न हो सके। धीरे–धीरे खेल के उत्साह में युधिष्ठिर अपनी सारी दौलत व साम्राज्य जुए में हार गए।

अंत में शकुनि ने युधिष्ठिर को सब कुछ एक शर्त पर वापस लौटा देने का वादा किया कि यदि वे अपने बाकी पांडव भाइयों व अपनी पत्नी द्रौपदी को दाँव पर लगाएँ। मजबूर होकर युधिष्ठिर ने शकुनि की बात मान ली और अंत में वे यह पारी भी हार गए। इस खेल में पांडवों व द्रौपदी का अपमान ही कुरुक्षेत्र के युद्ध का सबसे बड़ा कारण साबित हुआ।

कैसे अंत हुआ शकुनि का?

कुरुक्षेत्र के युद्ध में शकुनि ने दुर्योधन का साथ दिया था। शकुनि जितनी नफरत कौरवों से करता था उतनी ही पांडवों से, क्योंकि उसे दोनों की ओर से दुख मिला था। पांडवों को शकुनि ने अनेक कष्ट दिए। भीम ने इसे अनेक अवसरों पर परेशान किया। महाभारत युद्ध में सहदेव ने शकुनि का इसके पुत्र सहित वध कर दिया।

धृतराष्ट्र



महाभारत में धृतराष्ट्र हस्तिनापुर के महाराज विचित्रवीर्य की पहली पत्नी अम्बिका के पुत्र थे। दुर्योधन जैसे महाप्रतापी बेटे के पिता और कौरव नरेश थे धृतराष्ट्र । धृतराष्ट्र भले अंध थे लेकिन उनके हाथों में अद्‌भुत ताकत थी वो किसी को भी अपने हाथो से कुचल सकते थे । उनके शक्ति का बहुधा तब पता चलता है जब वे भीम के लौह प्रतिमा को गले से लगाकर चकना चूर कर देते हैं । यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि भीम जैसे महाशक्तिशाली को चकनाचूर करने का ख्याल कोई मामूली तो नहीं

कर सकता? वो बात अलग है कि वह लौह प्रतिमा थी, फिर भी इस बात का अंदाजा लगाना मुस्किल न होगा कि उनके भीतर कितनी शक्ति समाहित थी ।

धृतराष्ट्र नहीं चाहते थे कि उनके बाद युधिष्ठिर राजा बने, बल्कि वे चाहते थे कि उनका पुत्र दुर्योधन राजा बने। इसी कारण वे लगातार पाण्डव पुत्रों की उपेक्षा करते रहे। महाभारत का युद्ध कौरवों और पांडवों के बीच नहीं था। यह धृतराष्ट्र और पाण्डवों के बीच था। युद्ध के पहले भी धृतराष्ट्र ही हस्तिनापुर के राजा थे और युद्ध में अगर कौरवों की जीत हो जाती, तो वे ही राजा बने रहते। वनवास से लौटने के बाद इन्द्रप्रस्थ का राज्य युधिष्ठिर को वापस देने का वचन उन्होंने ही दिया था और उनके ही वचन–भंग का परिणाम महाभारत था। महाभारत के पूर्व भी उन्होंने कई कुटिल योजनायें बनाईं।

पाण्डवों को लाक्षागृह में भेजकर जीवित जला देने की योजना उनके ही अनुमोदन के बाद बनी। भरी सभा में द्रौपदी का चीरहरण उनके ही सामने हुआ। वे आंखों से अंधे थे लेकिन अंधा होने का अर्थ यह कदापि नहीं था कि उनकी इच्छायें भी समाप्त हो गई थीं। वे दुर्योधन के माध्यम से सबकुछ देखना चाहते थे और अपनी सारी दबी हुई इच्छाओं की पूर्ति करना चाहते थे। वे इतने स्वार्थी थे कि अपने पुत्र को भी नहीं बक्शा। बड़ी चालाकी और सफाई से उन्होंने अपने दुष्कृत्यों के लिये दुर्योधन को जिम्मेदार ठहराया। श्रीमद्भागवद्गीता के अन्त में संजय ने युद्ध के परिणाम की भविष्यवाणी करते हुए यह स्पष्ट कर दिया था कि जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन हैं, विजय वही होगी। अन्धे धृतराष्ट्र की आंखें फिर भी नहीं खुलीं। वे मृगतृष्णा के पीछे भागते रहे और युद्ध कराकर ही दम लिया। युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर सम्राट बने और वृद्ध धृतराष्ट्र को आजीवन जंगल में निवास करना पड़ा।

उद्योग पर्व के यानि–संधि (उप) पर्व में धृतराष्ट्र दुर्योधन को समझाते हुये बोलते हैं कि पाण्डवों से संधि कर ले और युद्ध का विचार त्याग दे। वे कहते हैं कि न ही कोई बड़ा न ही राज्यसभा में बैठा कोई योद्धा और विद्वान कोई भी युद्ध नही चाहता हैं, वे आगे दुर्योधन से कहते हैं कि– मैं जानता हूँ तुम भी अपनी इच्छा से युद्ध नही कर रहे हो। अपितु पापात्मा दुःशासन, कर्ण तथा सुबल पुत्र शकुनि ही तुमसे यह कार्य करा रहे हैं।

इससे स्पष्ट है, कि धृतराष्ट्र कभी युद्ध नहीं चाहते थे। उनके ऊपर पुत्र मोह का आरोप गलत है।

धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म

प्रचलित कथा

प्राचीन समय में भारतवर्ष में एक बहुत ही शक्तिशाली राज्य हुआ करता था

हस्तिनापुर और इसके पालक महाराज शान्तनु थे। यह कुरु कुल के राजा थे, महाराज शान्तनु की पत्नी का नाम था सत्यवती और इनका पुत्र था विचित्रवीर्य। महाराज शान्तनु के बाद महाराज विचित्रवीर्य ने हस्तिनापुर का राज्य संभाला। महाराज विचित्रवीर्य का विवाह काशी नरेश की दो कन्याओं से हुआ था, जिनका नाम था राजकुमारी अंबिका और राजकुमारी अंबालिका।

अभी महाराज विचित्रवीर्य का विवाह हुए, कुछ ही समय हुआ था कि उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। राज्य को अपने उत्तराधिकारी की चिंता सताने लगी क्योंकि राजकुमार भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था। तब राजमाता सत्यवती व्यास को अपने ज्ञान और तप से अम्बिका और अम्बालिका को गर्भवती करने को बोलती है। व्यास अपनी माँ की बात को मना नहीं कर पाते और अम्बिका और अम्बालिका को एक एक कर अकेले अपने पास बुलाते हैं, पहले अम्बिका महर्षि व्यास के पास जाती है, इसके बाद अगले दिन राजकुमारी अम्बालिका महर्षि वेद व्यास के पास जाती हैं। इस दौरान राजकुमारी अंबालिका ने आँखें तो बंद नहीं की, इन प्रक्रियाओं के बाद राजमाता सत्यवती ने महर्षि वेदव्यास से इसके परिणामों के बारे में पूछा, तब महर्षि वेदव्यास ने बताया कि राजकुमारी अंबिका ने अपनी आँखें बंद कर ली थी, इस कारण उनका पुत्र अंधा होगा, परन्तु बहुत बलशाली होगा।

सत्यता की परख

इस कहानी का मुख्य भाग ध्यान देने योग्य है– व्यास अपनी माँ की बात को मना नहीं कर पाते और अम्बिका और अम्बालिका को एक–एक कर अकेले अपने पास बुलाते है। पहले अम्बिका महर्षि व्यास के पास जाती है, इसके बाद अगले दिन राजकुमारी अम्बालिका महर्षि वेद व्यास के पास जाती है।''

विद्वान मानते है कि धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर का जन्म नियोग विधि से हुआ।

हमारी मौजूदा साइंस को आज बेहद उन्नत माना जा रहा है। परंतु यदि सही अर्थों में कहा जाए तो हमारी प्राचीन सभ्यता में साइंस अधिक उन्नत कही जा सकती है। 21वीं सदी में प्रवेश करने के बाद आज हम टेस्ट टयूब बेबी से बच्चे को जन्म दे रहे हैं। पंरतु प्राचीन समय में कई पात्र ऐसे भी हैं, जिनके जन्म के बारे आज भी साइंस कोई जवाब नहीं दे सकती है। हमारे हिंदू धर्म ग्रंथों बाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि में कई ऐसे पात्रों का उल्लेख है, जिनका जन्म माता और पिता के मिलन से नहीं हुआ। बल्कि यह पात्र देवी देवताओं या फिर साधु, महात्माओं के आशीर्वाद के इस धरती पर आए। क्या आप जानते हैं कि महाभारत में धृतराष्ट्र, पाण्डु, महात्मा विदुर का जन्म भी अनोखे ढंग से हुआ। इस अनोखे ढंग से होने वाले बच्चे के जन्म को नियोग विधि कहा जाता है। इन तीन प्रमुख पात्रों– धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर का जन्म भी नियोग विधि से हुआ था।

बाकि इस कथा में रोचक बनाने के लिए और महापुरुषों को बदनाम करने के लिए मिलावट की गयी है। पाठकों के लिए नियोग विधि के नियम भी यहाँ लिख देते हैं–

नियोग, मनुस्मृति में पति द्वारा संतान उत्पन्न न होने पर या पति की अकाल मृत्यु की अवस्था में ऐसा उपाय है जिसके अनुसार स्त्री अपने देवर अथवा सम्गोत्री से गर्भाधान करा सकती है। यदि पति जीवित है तो वह व्यक्ति स्त्री के पति की इच्छा से केवल एक ही और विशेष परिस्थिति में दो संतान उत्पन्न कर सकता है। इसके विपरीत आचरण प्रायश्चित् के भागी होते हैं। हिन्दू प्रथा के अनुसार नियुक्त पुरुष सम्मानित व्यक्ति होना चाहिए। इसी विधि द्वारा महाभारत में वेद व्यास के नियोग से अम्बिका तथा अम्बालिका को क्रमशः धृतराष्ट्र तथा पाण्डु उत्पन्न हुये थे।

नियोग प्रथा के नियम हैं

1. कोई भी महिला इस प्रथा का पालन केवल संतान प्राप्ति के लिए करेगी न कि आनंद के लिए।
2. नियुक्त पुरुष केवल धर्म के पालन के लिए इस प्रथा को निभाएगा, उसका धर्म यही होगा कि वह उस औरत को संतान प्राप्ति करने में मदद कर रहा है।
3. इस प्रथा से जन्मा बच्चा वैध होगा और विधिक रूप से बच्चा पति–पत्नी का होगा, नियुक्त व्यक्ति का नहीं।
4. नियुक्त पुरुष उस बच्चे के पिता होने का अधिकार नहीं माँगेगा और भविष्य में बच्चे से कोई रिश्ता नहीं रखेगा।
5. इस प्रथा का दुरूपयोग न हो, इसलिए पुरुष अपने जीवन काल में केवल तीन बार नियोग का पालन कर सकता है।
6. इस कर्म को धर्म का पालन समझा जायेगा और इस कर्म को करते समय नियुक्त पुरुष और पत्नी के मन में केवल धर्म ही होना चाहिएँ, वासना और भोग–विलास नहीं। नियुक्त पुरुष धर्म और भगवान के नाम पर यह कर्म करेगा और पत्नी इसका पालन केवल अपने और अपने पति के लिए संतान पाने के लिए करेगी।
7. नियोग में शरीर पर घी का लेप लगा देते हैं ताकि पत्नी और नियुक्त पुरुष के मन में वासना जागृत न हो।

भीम

महाकाव्य महाभारत के अनुसार भीम पाण्डवों में तीसरे स्थान पर थे। सभी पाण्डवों में वे सर्वाधिक बलशाली और श्रेष्ठ कद–काठी के थे एवं युधिष्ठिर के सबसे प्रिय सहोदर



थे। भीमसेन पौराणिक बल का गुणगान पूरे काव्य में किया गया है। जैसेः– ''सभी गदाधारियों में भीम के समान कोई नहीं है और ऐसा भी कोई जो गज की सवारी करने में इतना योग्य हो और बल में तो वे दस हजार हाथियों के समान है। युद्ध कला में पारंगत और सक्रिय, जिन्हें यदि क्रोध दिलाया जाए जो कई धृतराष्ट्रों को वे समाप्त कर सकते हैं। वनवास काल में इन्होने अनेक राक्षसों का वध किया जिसमें बकासुर एवं हिडिंब आदि प्रमुख हैं एवं अज्ञातवास में विराट नरेश के साले कीचक का वध करके द्रौपदी की रक्षा की। यह गदा युद्ध में बहुत ही प्रवीण थे एवं द्रोणाचार्य और बलराम के शिष्य थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में राजाओं की कमी होने पर उन्होने मगध के शासक जरासंध को परास्त करके राजाओं को मुक्त कराया। इन्ही के द्वारा दुर्योधन के वध के साथ ही महाभारत के युद्ध का अंत हो गया।

भीम ने खड्ग का उपयोग कर दुःशासन की छाती फाड़ी थी, उसने अपने हाथों से यह कार्य नही किया। वह कभी द्रौपदी के पास दुःशासन का रक्त लेकर नही गया, उसके केशों में लगाने के लिए और न ही कभी द्रौपदी उस उद्देश्य से युद्ध भूमि पर आई। द्रौपदी अन्य स्त्रियों के साथ कुरुक्षेत्र से दूर मत्स्य जनपद में स्थित उपप्लव्य नगर में थी।

भीम और कर्ण के मध्य प्रतिद्वंद्विता अर्जुन और कर्ण की शत्रुता से भी अधिक थी। भीम ने कर्ण को 14 वें दिन में कई बार पराजित किया उसने कर्ण को 17वें दिन भी परास्त किया जब कर्ण अपना विजय धनुष से युद्ध कर रहा था। भीम ने कर्ण का उसके अंग के राजा बनते समय अपमान किया था और कर्ण ने भीम का 14वें दिन में अपमान किया था। यहाँ कहा जा सकता है कि पाण्डवों में कर्ण भीम से ही सर्वाधिक घृणा करता था और जिसको कर्ण ने प्रारम्भिक रूप से धनुर्विद्या में कम भी आँका था। भीम को बाहुबल के संदर्भ में कुरुओं में सर्वाधिक शक्तिशाली कहा जा सकता है।

संजय

संजय के पास कोई दिव्य दृष्टि नहीं थी – वर्तमान पत्रकारों की भांति संजय संदेशवाहक था

महाभारत के बारे में जिस प्रकार अनेकों भ्रान्तियों को समाज में फैलाया गया है, उनमें से एक यह भी है कि संजय को वेदव्यासजी के द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई थी। जिसके माध्यम से वह महाभारत के युद्ध का आँखों देखा हाल हस्तिनापुर के राजभवन में बैठा हुआ, धृतराष्ट्र को सुनाया करता था।



इस विषय में महाभारत की अंतःसाक्षी में ऐसा प्रसंग कहीं पर भी नहीं है कि वेदव्यास जी युद्ध आरम्भ होने से पहले राजभवन में आए हों और उन्होंने वहाँ पर अपनी ओर से धृतराष्ट्र के सामने यह प्रस्ताव रखा हो कि यदि वह चाहे तो मैं उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान कर सकता हूँ। जिससे वह यहीं पर बैठे हुए महाभारत के युद्ध को देख सकते हैं। ऐसा सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा कि वह अपने बेटों के गिरते हुए शवों को देखना नहीं चाहते। अतः यदि आप ऐसी कृपा करना ही चाहते हैं तो यह दिव्य दृष्टि मेरे सारथी संजय को प्रदान कीजिए। मैं उसी से यह सब बातें सुन लिया करूँगा। तब वेदव्यासजी ने संजय को दिव्यदृष्टि प्रदान की और हस्तिनापुर के राज दरबार से प्रस्थान कर गए।

वास्तव में संजय एक योद्धा था। जिसने महाभारत के युद्ध में भी भाग लिया था। वह युद्ध भूमि में स्वयं जाता था और सूर्य अस्त होने के पश्चात राजभवन में पहुँचकर धृतराष्ट्र को वहाँ के समाचार सुनाता था।यह कार्य नित्यप्रति होता था।

भीष्म पर्व के दूसरे अध्याय का पहला श्लोक हमें विशेष सूचना देता है। वैशंपायन जी कहते हैं कृजन्मेजय! एक दिन विद्वान संजय ने युद्ध भूमि से लौटकर चिंतामग्न धृतराष्ट्र के पास जा उन्हें पितामह भीष्म के युद्ध भूमि में मारे जाने का समाचार सुनाया। संजय बोले दृ महाराज! भारत श्रेष्ठ, नमस्ते। मैं संजय आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। भारतवासियों के पितामह महाराज शांतनु के पुत्र भीष्म जी आज युद्ध में मारे गए। जो समस्त योद्धाओं के ध्वजस्वरूप तथा संपूर्ण धनुर्धरों के आश्रय थे, वही कुरुकुल पितामह भीष्म आज बाणशय्या पर सो रहे हैं।

जब वह शाम को युद्धभूमि से धृतराष्ट्र के पास पहुँचा तो उसने 'नमस्ते' करने के पश्चात उसे बताया कि –मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ अर्थात मैं युद्ध भूमि से लौट आया हूँ । यदि संजय राजभवन में ही कहीं होता तो आकर 'नमस्ते' करके यह नहीं कहता कि मैं आपकी सेवा में उपस्थित हो गया हूँ।

इसी प्रकार महाभारत के 'शल्य पर्व' के नौवें अध्याय में संजय कहता है कि : हे भरतश्रेष्ठ! किरीटधारी अर्जुन की मार खाकर एक वह बची हुई सेना आपके पुत्र के देखते–देखते युद्धभूमि से भाग चली। महाराज! अपनी सेना का पराक्रम नष्ट हुआ देख आपका महाबली पुत्र दुर्योधन वहीं चला गया, जहाँ सुबल पुत्र शकुनि खड़ा था। उधर शत्रुदमन दुर्योधन को रथ सेना में न देखकर अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा ने समस्त

क्षत्रियों से पूछा :– "राजा दुर्योधन कहां चले गए?– कुछ लोगों ने कहा सारथी के मारे जाने पर राजा दुर्योधन वहीं गए हैं, जहाँ शकुनि है। दूसरे अत्यंत घायल हुए क्षत्रिय वहाँ इस प्रकार कहने लगे अरे दुर्योधन से यहां क्या काम है? यदि वह जीवित होंगे तो तुम सब लोग उन्हें देख ही लोगे।

उधर जब आपका पुत्र दुर्योधन कहीं दिखाई नहीं दिया, तब मरने से बचे आपके सभी पुत्र एक साथ इकट्ठे होकर भीमसेन पर टूट पड़े। महाराज! तब भीमसेन अपने रथ पर आरूढ़ हो आपके पुत्रों के मर्म स्थान में तीखे बाणों का प्रहार करने लगा। बाणों द्वारा मारे गए वे महारथी वसंत ऋतु में कटे हुए पुष्प युक्त पलाश के वृक्षों की भांति रथों से पृथ्वी पर गिर पड़े।

इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए स्वामी जगदीश्वरानंद सरस्वती जी कहते हैं कि– "महाभारत काल में ज्ञान–विज्ञान पराकाष्ठा की चोटी पर पहुंचा हुआ था, इसमें संदेह नहीं है। परन्तु महाभारत काल में दूरदर्शन नहीं था। साथ ही संजय को दिव्यदृष्टी प्रदान करने की बात भी गप्प है।

वास्तविक बात यह है कि वर्तमान पत्रकारों की भाँति संजय संदेशवाहक था। वह युद्ध भूमि में जाकर वहाँ के समाचार संग्रह करता था और हस्तिनापुर लौट कर धृतराष्ट्र को सुना देता था।

इस स्थल से यह स्पष्ट है कि संजय रणक्षेत्र में जाता था, इतना ही नहीं यहाँ तो उसके युद्ध करने का और युद्ध में मूर्छित होने पर उसे बंदी बनाने का भी स्पष्ट उल्लेख है । यदि संजय युद्ध के समाचार दिव्य दृष्टि के द्वारा बताता था तो क्या वह समाचार सुनाते–सुनाते युद्ध भी करने लगा और बंदी बना लिया गया।" सोचने वाली बात है।

'शल्य पर्व' के अंदर ही इस विषय का भी स्पष्ट वर्णन किया गया है। जिससे पता चलता है कि उस समय संजय दुर्योधन के पास था। वहाँ पर जो वर्णन किया गया है उससे पता चलता है कि दुर्योधन स्वयं संजय को संबोधित करते हुए कहता है– महाबाहु! संजय मैं एक दिन 11 अक्षौहिणी सेना का स्वामी था। परन्तु आज इस अवस्था में आ पड़ा हूँ। वस्तुतः काल को पाकर कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता।

मेरे पक्ष के वीरों में जो लोग इस युद्ध में जीवित बच गए हैं उन्हें यह बताना (अर्थात तुम संदेशवाहक हो, पत्रकार हो, इसलिए उन्हें जाकर मेरी ओर से यह सूचना देना) कि भीमसेन ने किस प्रकार गदा युद्ध के नियम का उल्लंघन करके मुझे मारा है ? आज जब मेरी जंघाएँ टूट गई थीं ऐसी अवस्था में कुपित हुए भीमसेन ने मेरे मस्तक को जो पैर से ठुकराया है, इससे बढ़कर दुख भरे आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है ?

संजय! मेरे माता–पिता युद्ध धर्म के ज्ञाता हैं। वे दोनों मेरी मृत्यु का समाचार सुनकर दुख से आतुर हो जाएंगे। तुम मेरे कहने से उन्हें यह संदेश (इस वक्त से फिर स्पष्ट

होता है कि संजय राजभवन में न होकर दुर्योधन के पास ही खड़ा है और एक प्रकार से वहां से महाराज धृतराष्ट्र के लिए संदेश या समाचार तैयार कर रहा है।) देना कि मैंने यज्ञ किए, जो भरण–पोषण करने योग्य थे, उनका पालन किया और समुद्र पर्यंत पृथ्वी का अच्छी प्रकार शासन किया। साथ ही सम्पूर्ण शत्रुओं को सदा ही क्लेश पहुँचाया। संसार में कौन ऐसा पुरूष है, जिसका अन्त मेरे समान सुंदर हुआ हो ?

मैंने सभी इष्ट मित्रों को सम्मान दिया। अपनी आज्ञा के अधीन रहने वाले लोगों का आदर सत्कार किया और धर्म, अर्थ तथा काम सब का सेवन किया। अतः मेरे समान सुंदर अन्त किसका हुआ होगा?

मैंने विधिवत वेदों का स्वाध्याय किया। अनेक प्रकार के दान दिए और रोगरहित आयु प्राप्त की, इस सबके अतिरिक्त मैंने पुण्य लोकों पर विजय पाई है। अतः मेरे समान उत्तम अन्त किसका होगा?

इसी अध्याय से हमें यह भी पता चलता है कि संजय उस समय भी युद्ध भूमि में ही उपस्थित था जिस समय दुर्योधन ने अश्वत्थामा को अपना अंतिम सेनापति नियुक्त कर उसका अभिषेक किया था ।

वॉर रिपोर्टर थे महाभारत के संजय !

आपको जानकर आश्चर्य होगा विश्व का प्रथम वॉर रिपोर्टर संजय था जिसने महाभारत जैसे भीषण संग्राम का सारा घटनाक्रम महाराज धृतराष्ट्र को सुनाया था कुछ भ्रांत धारणा है जिनको दूर हमें करना चाहिए जैसे कि कहा जाता है संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी इसी से उन्होंने युद्ध का वर्णन किया लेकिन ऐसा नहीं है महाभारत में इसका कहीं उल्लेख नहीं है अपितु महाभारत में ऐसा उल्लेख है संजय युद्ध शुरू होने से पहले युद्धभूमि पहुँच जाते थे युद्ध खत्म होने के पश्चात सारा वृत्तांत महाराज धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर पहुँचकर सुनाते थे।

महाभारत के शल्य पर्व के नवम अध्याय के आखिरी श्लोकों से यह बात स्पष्ट हो जाती है संजय रिपोर्टिंग के साथ–साथ कौरवों की ओर से युद्ध भी लड़ते थे युद्ध भूमि में बंदी भी बनाए गए और महर्षि व्यास की कृपा से मुक्त भी किए गए महाभारत शल्य पर्व के 9 से लेकर 12 अध्याय के दर्जनों से श्लोक यही सिद्ध कर रहे हैं।

नकुल

महान हिन्दू काव्य महाभारत में पाँच पांडवो में से एक थे । नकुल और सहदेव, दोनों माता माद्री के असमान जुड़वा पुत्र थे, नकुल नाम का अर्थ होता है जो प्रेम से परिपूर्ण हो और इस नाम की नौ पुरुष विशेषताएँ हैंः बुद्धिमत्ता, सकेन्द्रित, परिश्रमी, रूपवान, स्वास्थ्य, आकर्षकता, सफलता, आदर और शर्त रहित प्रेम होता है।



महाभारत में नकुल का चित्रण एक बहुत ही रूपवान, प्रेम युक्त और बहुत सुंदर व्यक्ति के रूप में की गई है। वह एक योग्य पशु शल्य चिकित्सक था, जिसे घुड़ चिकित्सा में महारथ प्राप्त था। अज्ञातवास के समय में नकुल भेष बदल कर और ग्रंथिक नाम के छद्मनाम से महाराज विराट की राजधानी उपपलव्य की घुड़शाला में शाही घोड़ों की देखभाल करने वाले सेवक के रूप में रहा था। वह अपनी तलवारबाजी और घुड़सवारी की कला के लिए भी विख्यात था। नकुल का विवाह जरासंध की पुत्री से हुआ था।

नकुल ने द्रोण के संरक्षण में अपने तीरंदाजी और तलवार चलाने के कौशल में बहुत सुधार किया। नकुल तलवार चलाने वाला निकला। अन्य पांडव भाइयों के साथ, नकुल को कुरु गुरु कृपाचार्य और द्रोणाचार्य द्वारा धर्म, विज्ञान, प्रशासन और सैन्य कला में प्रशिक्षित किया गया था। वह घुड़सवारी में विशेष रूप से कुशल था।

- आयुर्वेदः–चिकित्सकों, अश्विनी कुमारों के पुत्र होने के नाते, नकुल को आयुर्वेद का विशेषज्ञ भी माना जाता था।
- तलवार चलाने वालाः नकुल एक शानदार तलवारबाज था और उसने कुरुक्षेत्र युद्ध के 18 वें दिन कर्ण के पुत्रों को मारते हुए तलवार का अपना कौशल दिखाया था।

सहदेव



सहदेव महाभारत में छः पांडवों में से एक और सबसे छोटे थे। वह माता माद्री के असमान जुड़वा पुत्रों में से एक थे ।

सहदेव के विषय में प्रचलित कथानक

सहदेव के पिता पाण्डु बहुत ही ज्यादा ज्ञानी थे। उनकी अंतिम इच्छा थी कि उनके मृत शरीर का सेवन उनके पाँचों पुत्रों द्वारा किया जाए, जिससे जो कुछ भी उन्होंने अर्जित किया है वो उनके पुत्रों में भी

विसरित हो जाए। सहदेव कि एकमात्र पुत्र थे जिन्होंने बहुत ही हिम्मत कर अपने पिता की इस इच्छा का मान रखने हेतु अपने पिता के मष्तिस्क के 3 हिस्से खाये।

- पहला टुकड़ा खाते ही सहदेव को इतिहास का ज्ञान प्राप्त हुआ।
- दूसरे टुकड़े को खाने पर सहदेव को वर्तमान का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ।
- तीसरा टुकड़ा खाते ही सहदेव को भविष्य अपनी आँखों के सामने दिखने लगा था। कहा जाता है बाकी सभी पांडवों को श्री कृष्ण द्वारा रोक दिया गया था।

और इस प्रकार अपने पिता की इच्छा पूर्ण करने की वजह से सहदेव त्रिकालदर्शी हुए। बताते है की ये परशु अस्त्र के निपुण योद्धा थे। अज्ञातवास के समय इन्होंने तंतीपाल नाम धारण कर गायों की देखभाल करने का कार्य किया।

विश्लेषण

महाभारत के पात्र विद्वान थे जिनमे योगिराज कृष्ण और भीष्म पितामह, धर्मराज युधिष्ठिर प्रमुख है। उस समय विज्ञान भी अपनी चरम सीमा पर था। इसलिए ये कहना की अधिक बुद्धि के लिए इन्होने पिता के सिर का माँस खाया। ये बिल्कुल बेहूदा दुष्प्रचार है जिस पर कोई भी साधारण, विद्वान, वैज्ञानिक विश्वास नहीं कर सकता है।

ये भी असत्य है कि सहदेव त्रिकालदर्शी था। क्योकि ईश्वर भी पूर्ण रूप से त्रिकाल दर्शी नहीं है क्योकि ईश्वर ने मनुष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता दी है और उसका भविष्य उसके कर्मो पर निर्भर करता है। हम अल्पज्ञ जीवात्मा हैं इस कारण हमारा ज्ञान अल्प होता है। ईश्वर जिसने इस सृष्टि को बनाया व इसका संचालन कर रहा है, वह हमारी तरह अल्पज्ञ नहीं अपितु सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ का अर्थ होता है कि जिसे सब प्रकार का पूर्ण ज्ञान हो। जो अतीत के बारे में भी जानता हो, वर्तमान के बारे में भी और जीवों के कर्मों की अपेक्षा से भविष्य के विषय में भी ज्ञान रखता हो।

अब ईश्वर के त्रिकालदर्शी होने पर विचार करते हैं। त्रिकाल भूत, वर्तमान तथा भविष्य काल को कहते हैं। भूत जो बीत गया है तथा वर्तमान जो अब, इस समय का काल है। इनका पूरा–पूरा ज्ञान ईश्वर को होता है। इसका अर्थ है कि सृष्टि विषय व जीवों के अतीत व वर्तमान के सभी कर्मो का पूरा–पूरा ज्ञान ईश्वर को सदा सर्वदा रहता है। अब तीसरा भविष्य काल है। इसके भी दो भाग किये जा सकते हैं। एक तो जीवात्माओं के भविष्य में किये जाने वाले कर्म हैं। दूसरा इससे भिन्न सृष्टि के निर्माण व संचालन आदि ईश्वरीय कार्य हैं, इनका पूरा–पूरा ज्ञान ईश्वर को रहता है कि उसे कब क्या करना है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और उनका फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र हैं। अतः परमात्मा जीवों के भविष्य के कर्मों को पूर्व ही नहीं जानता, कर्म करने पर साथ–साथ जानता है। शनैः शनैः वर्तमान भूतकाल में बदलता रहता है

और भविष्य वर्तमान बनता जाता है। भविष्य के वर्तमान होने के साथ ईश्वर को जीवों के कर्मों का साथ–साथ ज्ञान होता जाता है। इसी को जीवों के कर्मों की अपेक्षा से ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहा जाता है। इसका अर्थ है कि भविष्य में जीवों के द्वारा कर्म किये जाने पर ईश्वर उनको जानता है। कर्म करने से पूर्व ईश्वर को उनके होने न होने का ज्ञान नहीं होता।

त्रिकाल दर्शी पिता का सहदेव के पास कोई भविष्य जानने की कोई पूर्व दृष्टि नहीं थी और न ही सहदेव ने अपने पिता पाण्डु का माँस भक्षण किया था। सहदेव ने दिग्विजय यात्रा में युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ के लिए सम्पूर्ण दक्षिण भारत (लंका समेत) पर विजय प्राप्त कर ली थी।

महापुरुष परशुराम



महापुरुष परशुराम के विषय में तरह–तरह की कथांऐ सुनने को मिलती है, यहाँ तक कि कुछ लोग उनको ईश्वर का अवतार मानते हैं, मंदिर में पूजते हैं और इसके विपरीत कुछ उनके ऊपर क्षत्रिय विरोधी होने का आक्षेप लगाते है। परशुराम पर कोई भी महाकाव्य रामायण, महाभारत की भाँति उपलब्ध नहीं है। आइए इस पर निष्पक्ष विचार करते हैं।

जीवन परिचयः– महर्षि परशुराम का जन्म भृगुवंशी महर्षि जमदग्नि और रेणुका के गर्भ से वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को हुआ था।

उपलब्ध जानकारी के अनुसार इनका वास्तविक नाम राम था, लेकिन परसुराम नाम बाद में पड़ा क्योकि ये वीर बालक अपने हाथ में परसु यानि फरसा रखता था।

योग्यता

1 परशुराम शस्त्र विद्या के महान गुरु थे, उन्होंने भीष्म, द्रोण व कर्ण को शस्त्र विद्या प्रदान की थी

2 परशुराम अन्याय, अत्याचार और अधर्म के विरूद्ध राजा कार्तवीर्य अर्जुन सहस्त्रार्जुन के दुष्कर्मों से आतंकित धर्मशील प्रजा का उद्धार करने के लिए ही युद्ध करते रहे।

3 परशुराम भार्गव गोत्र की सबसे आज्ञाकारी सन्तानों में से एक थे, जो सदैव अपने गुरुजनों और माता पिता की आज्ञा का पालन करते थे, वे सदा बड़ों का सम्मान करते थे और कभी भी उनकी अवहेलना नहीं करते थे।

4 उनका भाव इस जीव सृष्टि को इसके प्राकृतिक सौंदर्य सहित जीवन्त बनाये रखना था, वे चाहते थे कि यह सारी सृष्टि, पशु, पक्षियों, वृक्षों, फल फूल और समूची प्रकृति के लिए जीवन्त रहे या उनका कहना था कि राजा का धर्म वैदिक जीवन का प्रसार करना है न कि अपनी प्रजा से आज्ञा पालन करवाना।

5 वे एक ब्राह्मण वर्ण के परिवार में जन्में अवश्य थे लेकिन कर्म से एक क्षत्रिय थे।

6 यह भी ज्ञात है कि परशुराम ने अधिकांश विद्याएँ अपनी बाल्यावस्था में ही अपनी माता की शिक्षाओं से सीख ली थीं (वह शिक्षा जो ८ वर्ष से कम आयु वाले बालको को दी जाती है)। वे पशु–पक्षियों तक की भाषा समझते थे और उनसे बात कर सकते थे। यहाँ तक कि कई खूँखार वनैले पशु भी उनके स्पर्श मात्र से ही उनके मित्र बन जाते थे।

7 परशुराम धरती पर वैदिक संस्कृति का प्रचार–प्रसार करना चाहते थे। कहा जाता है कि भारत के अधिकांश ग्राम उन्हीं के द्वारा बसाये गये, जिसमें कोंकण, गोवा एवं केरल का समावेश है।

परशुराम का विरोघ परशुराम से जुड़े कुछ आक्षेप जिनका उल्लेख यहाँ कर रहे हैं, जिनके कारण परशुराम का विरोध किया जाता हैः

1 परशुराम को क्षत्रियों का घोर विरोधी के रूप में चित्रित किया गया है कि वे अहंकारी और दुष्ट हैं, क्षत्रियों का पृथ्वी से २१ बार संहार करने के लिए प्रसिद्ध हैं।

2 उन्होंने सैन्यशिक्षा केवल ब्राह्मणों को ही दी लेकिन इसके कुछ अपवाद भी हैं जैसे भीष्म और कर्ण।

3 एक कथा के अनुसार कर्ण को यह ज्ञात नहीं था कि वह जन्म से क्षत्रिय है। वह सदैव ही स्वयं को शूद्र समझता रहा लेकिन उसका सामर्थ्य छुपा न रह सका। उसने परशुराम को यह बात नहीं बताई कि वह शूद्र वर्ण के हैं और भगवान परशुराम से शिक्षा प्राप्त कर ली। किन्तु जब परशुराम को इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने कर्ण को यह श्राप दिया कि उनका सिखाया हुआ सारा ज्ञान उस समय उसके किसी काम नहीं आएगा, जब उसे उसकी सर्वाधिक आवश्यकता होगी। इसलिए जब कुरुक्षेत्र के युद्ध में कर्ण और अर्जुन आमने–सामने होते है तब वह अर्जुन द्वारा मार दिया जाता है, क्योंकि उस समय कर्ण को ब्रह्मास्त्र चलाने का ज्ञान ध्यान में ही नहीं रहा।

4 पिता की आज्ञा पर माँ रेणुका का सिर धड़ से अलग करने की घटना को भी एक आज्ञाकारी पुत्र के रुप में एक प्रेरक आख्यान बनाकर सुनाया जाता है जो कि परशुराम के चरित्र पर सीधा लांछन है।

विश्लेषणः—अब हम परशुराम के गुणों का ध्यान करते हुए उनके ऊपर लगे आक्षेप का विश्लेषण करते हैंः—

पाश्चात्य इतिहासकारों और विद्वानों ने भारतीय इतिहास पुराण के साथ कुछ ऐसे मिथक, ऐसी अवधारणाएँ, ऐसे असत्य स्थापित कर गए हैं, जो अतार्किक, असंगत हैं। इनका निराकरण न करके हम इन विसंगतियों को न केवल ढोते जा रहे हैं बल्कि इन्हें कभी—कभी अपनी सांस्कृतिक चेतना के साथ भी जोड़ने का उपक्रम करने लगते हैं।

इन्ही में से एक कथा है कि परशुराम द्वारा पृथ्वी निःक्षत्रिकरण, वह भी इक्कीस बार की प्राचीन कथा। यह न केवल अतिशयोक्ति है, वरन् अतार्किक और असंगत भी है।

1 हमारे धर्म ग्रंथ और कथावाचक ब्राह्मण भारत के प्राचीन पराक्रमी नायकों की संहार से परिपूर्ण हिंसक घटनाओं के व्याख्यान तो खूब सुनाते हैं, लेकिन उनके समाज सुधार से जुड़े जो क्रांतिकारी सरोकार थे, उन्हें लगभग नजर—अंदाज कर जाते हैं। महापुरुष भगवान परशुराम के साथ भी यही हुआ। उनके आक्रोश और पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय विहीन करने की घटना को खूब प्रचारित करके वैमनस्यता फैलाने का उपक्रम किया जाता है। पिता की आज्ञा पर माँ रेणुका का सिर धड़ से अलग करने की घटना को भी एक आज्ञाकारी पुत्र के रुप में एक प्रेरक आख्यान बनाकर सुनाया जाता है। किंतु यहाँ यह सवाल खड़ा होता है कि क्या एक प्रकांड विद्वान वेदों का ज्ञाता व्यक्ति केवल चरम हिंसा के बूते जन—नायक के रुप में स्थापित होकर लोकप्रिय हो सकता हैं? इस कथा पर विश्वास करना असम्भव है।

2 क्या अर्जुन के वंश का समूल नाश करने के बावजूद पृथ्वी क्षत्रियों से विहीन हो पाई? रामायण और महाभारत काल में सम्पूर्ण पृथ्वी पर क्षत्रिय राजाओं के राज्य हैं, वे ही उनके अधिपति हैं। इक्ष्वाकु वंश के मर्यादा पुरुषोत्तम राम को आशीर्वाद देने वाले, कौरव नरेश धृतराष्ट को पाण्डवों से संधि करने की सलाह देने वाले और सूत—पुत्र कर्ण को ब्रह्मशास्त्र की दीक्षा देने वाले परशुराम ही थे जबकि ये सब क्षत्रिय थे। अर्थात् परशुराम क्षत्रियों के शत्रु नहीं बल्कि शुभचिंतक थे।

3 परशुराम बाल्यकाल से ही केवल आततताई क्षत्रियों के प्रबल विरोधी थे। समाज सुधार और जनता को रोजगार से जोड़ने में भी परशुराम की अहम् भूमिका अतंनिर्हित है। केरल, कच्छ और कोंकण क्षेत्रों में जहाँ परशुराम ने समुद्र में डूबी खेती योग्य भूमि निकालने की तकनीक विकसित की, वहीं पशु का उपयोग जंगलों का सफाया कर भूमि को कृषि योग्य बनाने के काम में भी किया।

4 यहीं नही परशुराम ने शूद्र माने जाने वाले दरिद्र नारायणों को शिक्षित व दीक्षित कर उन्हें ब्राहम्ण बनाया, यज्ञोपवीत संस्कार से जोड़ा और उस समय जो दुराचारी व आचरणहीन ब्राह्मण थे, उन्हें शूद्र घोषित कर उनका सामाजिक बहिष्कार किया।

परशुराम के अंत्योदय के प्रकल्प अनूठे व अनुकरणीय हैं, जिन्हें रेखांकित किए जाने की जरूरत है।

5 परशुराम के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश को एक नया जीवन, संस्कृति और नयी एकता प्रदान की।

6. परशुराम महान विद्वान ब्राह्मण होने के साथ शास्त्र और शस्त्र विद्या मे पारंगत थे जिनके शिष्य कर्ण, द्रोणाचार्य जैसे महापुरुष हुए. इसलिए कल्पना के तौर पर इनके साथ फरसा दिखाया गया है।

7. महर्षि थे तथा उच्च संस्कृति के प्रतिनिधि भी और भयंकर योद्धा, दुर्जेय, प्रतापी और दृढ विजेता थे।

8. परशुराम पर क्रोध में श्राप देने और अहंकार का एक अन्य आरोप लगता है। यदि परशुराम के गुणों को देखें तो इस बात पर विश्वास नहीं होता, फिर भी एक अति विद्वान में जो शिक्षा और युद्ध कला सिखाता हो उसमे अध्यापक की भांति शिष्य पर क्रोध आना स्वाभाविक है लेकिन इस बात को भी अतिश्योक्ति से लिखा गया है।

9. वामपंथी इतिहासकारों ने परशुराम का गलत चित्रण करके चरित्र हनन किया है।

10. परशुराम महाभारत काल में थे, वाल्मीकि रामायण में परशुराम कोई उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी ऐसा मान लिया जाए तो रामायण और महाभारत काल के समय में बहुत अन्तर है और तब तक जीवित रहना सम्भव नहीं है जो ये बात कहते है कि सीता स्वयंवर में धनुष तोड़ने के समय परशुराम का उल्लेख आया है तो फिर बाद में कहीं और कभी क्यों नहीं आया?

पुराणों में कहीं भी उनकी मृत्यु के बारे में कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं है और परशुराम पर कोई विशेष प्रामाणिक साहित्य भी नहीं है। संसार में जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु अवश्य है। मृत्यु शरीर की होती है जीवात्मा की नहीं वह अपने कर्म के अनुसार पुनर्जन्म या मोक्ष को प्राप्त होती है। कहते है कि अपने लक्ष्य को पूरा करने के बाद उन्होंने खुद से ही दुनियाँ छोड़ दी, उनके अनुयायी उनको अजर–अमर मानते हैं। इसका कारण योगी परशुराम की विद्वता है, अतः ऐसा माना भी जाना चाहिए।

क्या परशुराम ईश्वर का अवतार थे? नहीं, ये एक महामानव, महापुरुष थे, आजकल एक विशेष वर्ग में परशुराम की तस्वीर की पूजा करने, उनको ईश्वर के तुल्य मानने, परशुराम मंदिर में उनकी पत्थर की मूर्ति को भोग लगाने, आरती उतरने आदि का प्रचलन चल पड़ा है जो कि महान संत, योगी परशुराम का अपमान है। ईश्वर न तो जन्म लेता है और न ही उसकी मृत्यु होती है। पूर्णतया वेदों के ज्ञाता और दैनिक ५ यज्ञ करने वाले विद्वान को उसके गुणों के कारण भगवान कहा गया है, जिसका अर्थ ईश्वर शब्द

से बिल्कुल अलग है। ईश्वर इस समस्त चराचर जगत व ब्रह्माण्ड में सर्वान्तर्यामी स्वरूप से व्यापक है। ईश्वर का एक गुण सर्वज्ञ होना भी है। जिस ईश्वर ने ये समस्त ब्रह्माण्ड बनाया है उसी ने ऋषि परशुराम को पैदा किया। ''ईश्वर का मुख्य नाम ओ३म् है।

हम सब महर्षि परशुराम के आदर्शों पर चलकर उनके अनुयायी बने, यज्ञ करें और वेद आदि के अनुसार अपना जीवन यापन करें। उनकी मूर्ति बना लेना पूजा करना सच्ची श्रद्धा नहीं है जब तक हमारे आचरण में परशुराम न आ जाऐ।

अश्मा भव ––पत्थर के समान शरीर सुदृढ़ हो

परशुर्भव भव ––बुद्धि परशु के समान तीव्र हो

हिरण्यमस्तृतम् भव ––रूप स्वर्ण के समान चमकीला हो

अभिमन्यु (अर्जुनपुत्र)



भारतवर्ष के प्राचीन काल की ऐतिहासिक कथा महाभारत के एक महत्त्वपूर्ण पात्र अभिमन्यु पूरु कुल के राजा व पांडवों में से अर्जुन के पुत्र थे। कथा में उनका छल द्वारा कारुणिक अंत बताया गया है। अभिमन्यु अर्जुन का पुत्र थे। 15 वर्ष की आयु में उनका विवाह उत्तरा से हुआ था । 16 वर्ष की आयु में आषाढ़ मास में जिस दिन ये महाभारत के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए थे उससे एक दिन पूर्व हीं अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा ने गर्भधारण किया था ।

अभिमन्यु एक असाधारण योद्धा थे। उन्होंने कौरव पक्ष की व्यूह रचना, जिसे चक्रव्यूह कहा जाता था, के सात में से छह द्वार भेद दिए थे। अभिमन्यु की मृत्यु का कारण जयद्रथ था जिसने अन्य पांडवों को व्यूह में प्रवेश करने से रोक दिया था। संभवतः इसी का लाभ उठा कर व्यूह के अंतिम चरण में कौरव पक्ष के सभी महारथी युद्ध के मानदंडों को भुलाकर उस बालक पर टूट पड़े, जिस कारण उसने वीरगति प्राप्त की। अभिमन्यु की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये अर्जुन ने जयद्रथ के वध की शपथ ली थी।

अभिमन्यु द्वारा माँ के पेट में ही चक्रव्यूह के अंदर जाना सीख लेने की कथा

अभिमन्यु ने व्यूहों का ज्ञान अपनी माता के गर्भ से नही सीखा था। उसने सत्य की प्रद्युम्न और अन्यों के साथ अर्जुन से प्रत्यक्ष रूप से व्यूहों की शिक्षा ग्रहण की थी। किसी कारणवश या परिस्थितियों के कारण समय न मिलने के कारण वह चक्रव्यूह का सम्पूर्ण

ज्ञान नहीं ले पाया, उसका वध दुशासन के पुत्र ने गदा युद्ध में किया था तब तक वह द्रोण, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कर्ण, वृषसेन, शकुनि एवं दुर्योधन इत्यादि के साथ एक ही समय पर युद्ध करके कई बार पीछे से वार लेने के पश्चात भी उन सभी को परास्त कर चुका था। जिसके कारण वह बहुत क्षीण हो गया था। पद्मव्यूह और चक्रव्यूह एक ही हैं, शास्त्रों मे 11 विभिन्न व्यूहों का वर्णन मिलता हैं। जिनका उपयोग कुरुक्षेत्र के रण में भी विभिन्न दिनों में हुआ था।

माता के गर्भ में बच्चा (मूढ़) अवस्था में रहता है और जिसके शरीर का निर्माण ईश्वर करता है। जिसके लिए आवश्यक सामग्री स्वतः ईश्वर के विधान से माँ के द्वारा मिलती रहती है। ऐसा विज्ञान कहता है कि सातवें महीने से बच्चे का मष्तिष्क विकसित होना शुरू होता है और उसको कुछ अनुभूति होने लगती है।

गर्भ में बच्चे की विकास की प्रक्रिया

इस प्रश्न का सही उत्तर समझने के लिए हम विज्ञान का भी सहारा ले सकते है। विज्ञान के अनुसार गर्भ में मानव के बच्चे के विकास की प्रक्रिया इस तरह से बताई गयी है –जब शुक्राणु और अंडाणु मादा शरीर में मिलते हैं तो निषेचन की प्रक्रिया आरम्भ होती है फिर ये भ्रूर्ण में विकसित हो जाता है। लगभग 5 से 6 दिनों के बाद ये भ्रूण गर्भाशय की दीवार पर चिपक जाता है।

- पहले मास में शिशु का चेहरा आँख नाक मुँह बनना शुरू हो जाता है और रक्त कोशिकाएँ भी बननी शुरू हो जाती है।
- दूसरे मास में शिशु का हाथ पैर और हड्डियों का विकास शुरू हो जाता है और इस माँस के मध्य से हम शिशु की धड़कन को सुन सकते हैं।
- तीसरे मास के अंत तक शिशु के हृदय, धमनियाँ, लीवर और यूरिनरी सिस्टम बन कर काम करना शुरू कर देती है।
- चौथे मास तक शिशु सिर घुमाना, अंगूठा चूसना शुरू कर देता है। इस समय शिशु के जननांग बन जाते है।
- पाँचवे मास में शिशु की मांसपेशियाँ बन जाती है इसलिए माँ बच्चे की हरकत को महसूस कर पाती है।
- छटवे मास में शिशु के महसूस करने की क्षमता बढ़ जाती है और वह म्यूजिक की आवाज पर प्रतिक्रिया देना शुरू कर देता है।
- सातवे मास में शिशु अपना स्थान जल्दी–जल्दी बदलता है और वो इतना विकसित हो जाता है कि वो जन्म लेने के बाद बाहर जीवित रह सके।

- आठवे मास में शिशु के फेफड़े और पूरे शरीर का विकास हो जाता है।
- नवे मास में शिशु की पलके झपकाना, आँखे बंद करना, सिर घुमाना और पकड़ने की क्षमता भी विकसित हो जाती है और वह माँ के शरीर से बाहर निकलने के लिए तैयार रहता है।

महाभारत का अभिमन्यु एक महान धनुर्धर है। जो बच्चे कुशाग्र बुद्धि के होते है उनके विषय में अतिश्योक्ति अलंकार की भाषा में अक्सर कहा जाता है कि इसने माँ के पेट से ही सब कुछ सीख लिया।

गर्भ में रहते हुए कोई बच्चा धनुर्विद्या जैसी कोई विद्या नहीं सीख सकता है ये अतिशयोक्ति या लोकोक्ति हो सकती है। विज्ञान ये मानता है कि माता के गर्भ में रहते हुए उसके कुछ–न–कुछ संस्कार गर्भ में पल रहे शिशु पर जरूर पड़ते हैं।

हमारे शास्त्रों में यह भी कहा है कि विद्यार्थी जब गुरुजी के पास जाता है तो वो भी गुरुजी के गर्भ में रहता है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में ऐसी चर्चा आती है। गुरुजी के गर्भ में रहने का मतलब है कि गुरुजी की सुरक्षा में रहता है, उनके अनुशासन में चलता है। वे जैसा सिखाते हैं वैसा सीखता है। अभिमन्यु को छोटी उम्र में माता–पिता ने जो बातें सिखाई उससे उसने चक्रव्यूह में घुसना सीख लिया। कुछ गर्भावस्था में और कुछ जन्म लेने के बाद में। इस तरह से उसने छोटी उम्र में सीखा। यही है इस वाक्य का अभिप्राय।

अभिमन्यु के लिए भी इसी प्रकार की लोकोक्ति प्रयोग हुई है।

महाभारत मे बर्बरीक

महाभारत मे बर्बरीक नामक कोई पात्र नहीं है। बर्बरीक की कथा स्कन्द–पुराण से आती हैं और यदि बर्बरीक से सम्बन्धित कथाओं को देखा जाए तो महाभारत के संदर्भ में तार्किक नही बैठती। पाण्डव भाइयों का युद्ध में योगदान पर श्रेय मिलने को लेकर विवाद किसी भी प्रकार से महाभारत के अनुकूल नही बैठता।

बी0आर0 चोपड़ा के धारावाहिक जो कि अश्वमेध से संबन्धित था, उसमें अधिकांश घटनाएँ व्यास महाभारत से हैं ही नही। कर्ण का कोई भी पुत्र कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात जीवित नही बच पाया था। वृष केतु नामक कोई पात्र व्यास महाभारत मे हैं ही नहीं अपितु जैमिनी–भारत से हैं। महाभारत मे दुर्योधन और कर्ण कि पत्नियों का नाम नही हैं तो ये जितने भी नाम हैं वृषाली, उरुवि, भानुमति, सुप्रिया इत्यादि सभी पौराणिक काल्पनिक उपन्यासों की देन हैं।

सुभद्रा-हरण की कथा

वह अर्जुन था जो सुभद्रा को देखकर उसके प्रति आकर्षित हो गया था न कि सुभद्रा। अर्जुन ने ही सुभद्रा से रीति पूर्वक विवाह किया न कि बल पूर्वक अपहरण के द्वारा और इस विवाह में सुभद्रा या उसके परिवार की ओर से भी किसी विशेष कष्ट या अप्रसन्नता होने का भी कोई विशेष विवरण नही मिलता है। कृष्ण और युधिष्ठर को धर्मराज कहा गया है। उनके चरित्र पर सुभद्रा के अपहरण में शामिल होने का आक्षेप सत्य प्रतीत नहीं होता।

केवल अर्जुन ही नही अन्य सभी पाण्डव भाइयों ने भी विवाह किए लेकिन उनके कई विवाह होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इनके जो भी विवाह हुए ये विवाह उन राज्यों के साथ वैवाहिक गठबंधन के रूप में परिणित हुए। जिसके फलस्वरूप उनको कुरुक्षेत्र के युद्ध में सैन्य बल के रूप में सहायता मिली।

जयद्रथ वध

प्रचलित कथा :–जयद्रथ वध के सम्बंध में हमारे समाज में कई प्रकार की कथाएं प्रचलित है। इस संबंध में अज्ञानतावश लोगों का मानना है कि श्री कृष्ण ने दिन में ही अपनी माया से सूर्य को अस्त कर दिया था। जब अर्जुन जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सका तब अर्जुन के आत्मदाह के लिए चिता बनाई गई। अर्जुन उस चिता में आत्मदाह के लिए स्वेच्छा से बैठ गया। तब पांडवों ने उसका धनुष और बाण भी चिता पर ही रख दिया। उनका कहना था कि यदि यह रहेंगे तो हमें इन्हें देख–देखकर अपने भाई की याद आएगी।

जब अर्जुन चिता पर बैठने लगा तो कौरव पक्ष में खुशी की लहर दौड़ गई। इस तमाशे को देखने के लिए अब उन सब में होड़ मच गई और वे सब अर्जुन की तथाकथित चिता की ओर तेज कदमों से बढ़ने लगे। वे सब एक साथ इकट्ठे होकर अर्जुन की चिता के पास आकर खड़े हो गए और अर्जुन पर भाँति–भाँति के कटाक्ष करने लगे। जो जयद्रथ अपनी प्राण रक्षा के लिए आज सारे दिन भयभीत रहा था, वह भी अर्जुन के लिए बन रही चिता को देखने के लिए निकट ही आकर खड़ा हो गया। अब वह पूर्णतया निडर हो गया था।

लेकिन अचानक देखते ही देखते सूर्य बादलों की ओट से बाहर आ गया। सबकी निगाहें आसमान में चमकते हुए सूर्य की तरफ गयीं। सूर्य अभी भी चमक रहा था।यह देख दुर्योधन और जयद्रथ के पैरों तले जमीं खिसक गयी।जब श्री कृष्ण जी ने देखा कि जयद्रथ अर्जुन के इतने निकट खड़ा है कि यदि अर्जुन अब उसे मारना चाहे तो वह बड़े आराम से मारा जा सकता है तो उन्होंने अर्जुन को आदेश दिया "पार्थ ! तुम्हारा

शत्रु तुम्हारे बहुत निकट आकर खड़ा हो गया है, इसलिए तीर चलाओ और उसके जीवन का अंत कर डालो"। इसके साथ – साथ ही श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को सूर्य की ओर संकेत करते हुए यह भी स्पष्ट कर दिया कि ''देखो ! अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है, इसलिए तुम आत्मदाह के लिए बनी अपनी चिता से उठो और अपने शत्रु का यथाशीघ्र वध कर डालो। ''

तब अर्जुन ने धनुष बाण उठाया और ऐसा बाण छोड़ा कि जयद्रथ का सिर कटकर दूर जंगल में जा गिरा। ऐसा कहा जाता है कि ये सब तो श्री कृष्ण की माया थी कि कृष्ण ने कुछ समय के लिए सूर्य अस्त कर दिया और कुछ समय बाद सूर्य चमकने लगा।

वास्तविक कथा सत्य क्या है?

इस कथानक में अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ लगता है। वास्तविक सत्य तो कोई प्रत्यक्षःदर्शी ही बता सकता है।

यह सारा वर्णन महाभारत की वास्तविक घटना के सर्वथा विपरीत है। महाभारत के द्रोण पर्व के 21वें अध्याय को यदि पढ़ा जाए तो वहां पर हमको वास्तविकता का पता चलता है कि अर्जुन ने द्वंद युद्ध में जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की थी। अर्जुन की यह प्रतिज्ञा पूर्ण ना होने पाये हो इसके लिए कौरव दल ने भी अपनी पूरी रणनीति बना ली थी। कौरव पक्ष के छः महारथी उस दिन जयद्रथ की प्राण रक्षा के लिए नियुक्त कर दिए गए थे।

लेकिन कृष्ण रणनीतिकार के सामने उनकी योजना धरी रह गयी। उस समय अचानक जब बादलों ने सूर्य को ढक लिया और अँधेरा लगने लगा तो कृष्ण ने अर्जुन को विश्वास दिलाया कि सूर्यास्त हो गया है और उसको अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए।कृष्ण कि बातों पर विश्वास करके अर्जुन ने अपने लिए चिंता तैयार करवाई और आत्मदाह का नाटक करवाया और जब कौरवों ने देखा की अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने जा रहा है तो तब वह या तो लड़े ही नहीं अथवा वे मन से लड़े। वह अकेला पड़ गया परन्तु उसने पूर्ण उत्साह से युद्ध किया और इस प्रकार जयद्रथ लड़ते हुए मारा गया। बिना युद्ध करते हुए धोखे से नहीं मारा गया।

सामान्यतया जब किसी कथावाचक या विद्वान को किसी घटना या वस्तु की वास्तविकता का बोध नहीं होता है तो वह उसको चमत्कारों से जोड़ देता है और किसी व्यक्तित्व के साथ उसे इस प्रकार दिखाने का प्रयास करता है कि इसे केवल वही कर सकते थे। हमें ध्यान रखना चाहिए कि शत्रु को उत्तेजित करने और उसे परेशानी में डालने के उद्देश्य से द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी ने भी ऐसे प्रयोग कई बार किए थे।

महाभारत में अर्जुन ने युद्ध जारी रखते हुए ही जयद्रथ का वध किया था। यह भी असत्य और अलंकार की भाषा है कि जयद्रथ का सिर उसके पिता की गोद में जाकर ही गिरे – ऐसा कोई संकेत श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को दिया था। यहाँ पर केवल इतना संकेत है कि गांडीव धनुष से छूटा हुआ वह शीघ्रग्रामी बाण सिंधुराज का सिर काटकर बाज पक्षी के समान उसे आकाश में ले उड़ा। यहाँ पर उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है। निश्चित रूप से बाण की शक्ति के समाप्त होने पर यह सिर दूर जाकर धरती पर गिर गया होगा ।

उपमा अलंकार में वर्णित इस घटना को मूर्खों ने कुछ दूसरे तरीके से हमारे समक्ष प्रस्तुत कर दिया जो कि बहुत ही गलत है। हमें लोक प्रचलित कथाओं की मूर्खतापूर्ण बातों में भटकना नहीं चाहिए बल्कि मूल विषय से जुड़कर अध्ययन के द्वारा सत्यार्थ को निकालने का प्रयास करना चाहिए। दरअसल महाभारत को बहुत से विद्वानों ने काव्य में भी प्रस्तुत किया है, उस समय कवि ने नहीं सोचा होगा कि भविष्य में इसी को आधार और प्रमाण मानकर महाभारत पर चर्चा शुरु हो जाएगी।



भाग – 3

वेद और मनुस्मृति आदि के प्रति दुष्प्रचार



धर्मग्रन्थ वेद को लेकर दुष्प्रचार



ये हमारे देश का दुर्भाग्य है कि पहले यहाँ मुगलो ने शासन किया, फिर अंग्रेज़ आये और उनके गुलाम रहे। इन्होंने अपने धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए सभी हथकंडे अपनाये और भारतीय संस्कृति को अपना निशाना बनाया। संस्कृत भाषा को अंग्रेजी और दूसरी स्थानीय भाषाओं से समाप्त करने का कार्य किया फिर पैसा, नौकरी आदि के लालच से धर्म परिवर्तन कराया और हमारे धर्म, संस्कृति का मखौल उड़ाया और वेद उपनिषद, मनुस्मृति आदि प्रमुख धर्मग्रंथो का ग़लत भाष्य जनता के सामने रखा और असली साहित्य नष्ट कर दिए।

इसके अतिरिक्त, आजादी के बाद देश में अम्बेडकरवाद की शुरुआत हुई और अपनी राजनीति की जड़े मज़बूत करने के लिए इन्होंने वाममार्गियों, मुस्लिम और ईसाई समुदाय की मदद ली और गरीब, अनपढ़ लोगो में जातिवाद और नास्तिकता को बढ़ावा दिया। वेद, उपनिषद मनुस्मृति आदि के गलत अर्थ का प्रचार किया जैसे कि वेदो में पशु बलि, मांसाहार, गौ वध बताया और मनुस्मृति को जातिवाद और स्त्री विरोधी बताने में कोई कसर नहीं छोड़ी। परिणाम स्वरूप सत्य सनातन धर्म के प्रति इनमे गहरी नफरत पैदा कर दी, पाखंड दिन दोगुना, रात चौगुना बढ़ता गया। सत्य क्या है किसी ने जानने समझने का प्रयास नहीं किया। कुछ वाममार्गियों तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग ने इसमें आगे आकर और बिगाड़ने का कार्य बढ़ चढ़कर किया जिनमें सारण, महीधर, मैक्समूलर, राल्फ टी एच ग्रिफ्थ आदि प्रमुख है।

दरअसल, पश्चिमी जगत ने मैक्समूलर द्वारा की गई वेदों की व्याख्या के आधार पर ही भारत के प्रति गलत धारणाएं बना ली थीं। मगर जब स्वामी दयानंद का कालखंड (1824–1883) आया, तब उन्होंने सायण, महीधर, मैक्समूलर द्वारा वेदों की ग़लत व्याख्या करने की बात कहकर उनका ज़ोरदार खंडन किया।

स्वामी दयानंद के तर्क और तथ्य इतने प्रबल थे कि अन्य विद्वानों के तर्क उनके आगे टिक न सके। स्वामी दयानंद द्वारा मैक्समूलर की व्याख्या बच्चे के समान कहे जाने के बाद दुनियाभर के विद्वानों में बहस छिड़ गई थी, क्योंकि इस एक कथन ने पूरे पश्चिमी जगत के दृष्टिकोण पर प्रश्न खड़ा कर दिया था बाद में अन्य विद्वानों ने वेदों का सही अध्ययन किया।

क्या गायत्री मंत्र सांप्रदायिक है?

इस मंत्र को लेकर अनेको भ्रांतियाँ फैलाई गयीं है जैसे कि गायत्री मंत्र का जप केवल ब्राह्मण वर्ग के लोग ही कर सकते हैं, इस मंत्र का जाप महिलाओं के लिए वर्जित है ,पुरूषों को बिना यगोपवीत धारण किए गायत्री मंत्र का जाप नहीं करना चाहिए। इस मंत्र जाप के अच्छे परिणाम के साथ–साथ दुष्परिणाम भी हो सकते हैं आदि।

इस मंत्र का उल्लेख ऋग्वेद (3.62.10) यजुर्वेद (3.35,22.9,30.2,36.3) सामवेद (1462) मे है। गायत्री मन्त्र इस प्रकार हैः–

ऊँ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।

(ऋग्वेद 3–६२–१०)

भावार्थ– उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तःकरण में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

शब्दार्थ

ओ३म्––सर्वरक्षक परमात्मा, भूः–प्राणों के प्राण, भुवः–दुःख–त्राता, स्वः–सुखों के दाता ,तत्–वह (परमात्मा),सवितु –प्रेरक परमात्मा,वरेण्यम्–वरण करने योग्य, भर्गः–भरण–पोषण करने वाला, देवस्य–देव का, धीमहि–हृदय में धारण करें, धियः–बुद्धियों को, यः–जो, नः–हमारे, प्रचोदयात–प्रेरित करें।

मद्रास हाई कोर्ट ने 29 अगस्त 1992 को दिए गए अपने निर्णय में कहा हैः–

''यह मन्त्र ऋग्वेद से लिया गया है, जो वैदिक ज्ञान की कुंजी है। समस्त वेद सदा से ही मानवता के प्रतीक रहे हैं, जिनका सम्बन्ध किसी भी धर्म विशेष, जाति या सम्प्रदाय से नहीं है। न्यायाधीश ने दावेदार के इस दावे को मानने से इन्कार कर दिया कि गायत्री मन्त्र केवल ब्राह्मणों के लिए है। उन्होंने कहा कि इस प्रकार का तर्क भ्रामक एवं मिथ्या है ये किसी भी स्थान पर ऐसा नहीं लिखा है कि यह मन्त्र केवल ब्राह्मणों की बपौती है या किसी धर्म, जाति या सम्प्रदाय विशेष से उसका सम्बन्ध है।''

मद्रास हाई कोर्ट ने अपने निर्णय में उसका 'शब्द ब्रह्म' रूप में वर्णन करते हुए घोषणा की कि ''गायत्री मंत्र द्वारा शुभ कामना व्यक्त करना भारतीय संविधान की किसी धारा के विरुद्ध नहीं है।'' ('टाईम्स ऑफ इण्डिया', बम्बई, 31 अगस्त 1992)।

वेदों में मांसाहार -पशुबलि

कारण :–बिना वेद पढ़े केवल किसी से सुनकर ऐसी भ्रांति बना ली जो घातक है।

वेद मूलतः संस्कृत में लिखे गए हैं। जिसको ठीक से पढ़ने के लिए संस्कृत और व्याकरण के अच्छा ज्ञान होना आवश्यक हैं। लेकिन ऐसा हुआ की मुगल काल में और इसके बाद वाममार्गी लोगो ने जिनमे सारण महीधर मैक्समुलर ग्रिफ्फिथ झा ईसाइयों मुसलमानों आदि द्वारा सनातन धर्म में मिलावट के उद्देश्य से तथा संस्कृत और व्याकरण के ज्ञान के अभाव में वेद के उलटे सीधे अर्थ करने शुरू कर दिए। जिसके कारण जनता में वेद के प्रति भ्रांतिया शुरू हुई और सनातन धर्म को भारी नुकसान हुआ और ईसाई मुस्लिम बौद्ध धर्म का विस्तार होता चला गया।

क्या वेदों में मांस भक्षण का विधान हैं ?

वेदों में माँस भक्षण का स्पष्ट निषेध किया गया है। अनेक वेद मंत्रों में स्पष्ट रूप से किसी भी प्राणी को मारकर खाने का स्पष्ट निषेध किया गया हैं। जैसे–

प्रमाणः–1 व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्। एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ।।–अथर्ववेद 6।140।2

भावार्थः–हे दांतों तुम चावल खाओ, जौं खाओ, उड़द खाओ और तिल खाओ। तुम्हारे लिए यही रमणीय भोज्य पदार्थों का भाग है। तुम किसी भी नर और मादा की कभी हिंसा मत करो।

प्रमाण :–2 य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।गर्भान्खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि।। –अथर्ववेद 8।6।23

भावार्थः–वह लोग जो नर और मादा भ्रूण और अंडों के नाश से उपलब्ध हुए माँस को कच्चा या पका कर खाते हैं। हमें उनका विरोध करना चाहिए।

प्रमाणः–3 अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः। यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव।। –अथर्ववेद 10।1।29

भावार्थः–निर्दोषों को मारना निश्चित ही महापाप हैं। हमारे गाय, घोड़े और पुरुषों को मत मार।

इन मंत्रों में स्पष्ट रूप से यह संदेश दिया गया हैं कि वेदों के अनुसार माँस भक्षण निषेध है।

पशु बलि व कुर्बानी का वास्तविक अर्थ

कुर्बानी का वास्तविक अर्थ हैं अपने अन्दर पशु–पक्षियों की वृत्तियों की बलि देना कुर्बानी देना व उन्हें दूर करना। वेद में परमात्मा ने मनुष्यों को छः प्रकार की पशु वृत्तियों को कठोरता से मसल देने का यही उपदेश किया हैं।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।। –(अथर्ववेद 8/4/22)

भावार्थ :– हे (इन्द्र) प्रतापी राजन् (उलूकयातुम) उल्लू के समान झपटने वाले, (शुशुलूकयातुम) बड़े अचेत के समान दुःखदायी, (श्वयातुम) कुत्ते समान पीड़ा देनेवाले (उत्) और (कोकयातुम) भेड़िया समान हिंसा करनेवाले, (सुपर्णयातुम) श्येन पक्षी समान शीघ्र चलनेवाले (उत) और (गृध्रयातुम) गिद्ध समान दूर पहुँचने वाले उपद्रवी, को (जहि) मार और (दृषदा इव) जैसे शिला से (रक्षः) राक्षस को (प्र मृण) नाश कर दे ।।22।। काम क्रोध लोभ मोह अहंकार द्वेष आदि विकार जो पशु पक्षियों में होते हैं। वे मनुष्यों में भी पाए जाते हैं।

1. उलूक अर्थात उल्लू अंधकार रुपी मोह से प्रसन्न रहता है। यह मोह मानव का एक बहुत बड़ा अवगुण है।
2. शुशुलूक अर्थात भेड़िया क्रूरता और द्वेष का पर्याय है। क्रोध मानव का भी एक बड़ा अवगुण है।
3. श्वान अर्थात कुत्ता चाटु कारिता और अपनी जाति के प्रति द्रोह के लिए जाना जाता है। द्रोह का अवगुण द्वेष व मत्सर का सूचक है। चाटुकारिता का कारण लोभ वृत्ति है। मत्सर युक्त लोभ वृत्ति मानव का भी बड़ा अवगुण है।
4. कोक शब्द चिड़ाव हंस दोनों पक्षियों के लिए प्रयोग होता है। यह दोनों ही पक्षी कामुक होते हैं। काम वासना मानव का भी अवगुण है।
5. सुपर्ण अर्थात् सुंदर परों वाला गरुड़ जिसको अपने सौन्दर्य का बहुत अभिमान अर्थात् अहंकार होता हैं। अहंकार व मद मानव का भी मुख्य अवगुण है।
6. गृध्र अर्थात गिद्ध बहुत लोभी होता है। लोभ अवगुण मानव में भी है काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, मद और मत्सर यह छः रक्ष या राक्षस शत्रु वेद ने गिनाए हैं। जिनसे मनुष्य को परिश्रम पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए।

वेदों में गोघन अर्थात गायों के वध करने का आदेश है?

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः॥
प्र नु लोचन चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वशिष्ट॥

ऋ०8.101.15

हे मनुष्य! तू गौ को कभी मत मार। इस निरपराध बेचारी गौ को कभी मत मार। तू चेताने वाला है, तुझे परमात्मा ने कुछ समझ, अक्ल, बुद्धि दी है। इसलिए तुझे कहता हूँ––तू गौ– घात कभी मत करना!

तू जरा–सा अपनी समझ का उपयोग करेगा तो तुझे पता लग जाएगा कि यह गौ बड़ी भोली, बेचारी, बिल्कुल निर्दोष है, इसलिए इसे कोई भी कभी मार सकता है, मारने से यह मर जाएगी, कोई प्रतिरोध न करेगी, पर साथ ही यह इतनी महत्व शालिनी है, सब देवों की सम्बांधिनी और अमरपन का एक केंद्र है की इसका मारना अपना नाश करना है, इसका घात करना आत्मघात है।

क्या वेदों में बैल को मारकर खाने का आदेश है?

यह भी एक भ्रांति हैं कि वेदों में बैल को खाने का आदेश हैं। वेदों में जैसे गौ के लिए अघन्या अर्थात् न मारने योग्य शब्द का प्रयोग है। उसी प्रकार से बैल के लिए अघ्न्य शब्द का प्रयोग है।

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य ज्योतिरापाम॥ यजुर्वेद 12/73 में अघन्या शब्द का प्रयोग बैल के लिए हुआ है। इसकी पुष्टि सायणाचार्य ने काण्वसंहिता में भी की है। इसी प्रकार से अथर्ववेद 9/4/17 में लिखा है कि बैल सींगों से अपनी रक्षा स्वयं करता है। परंतु मानव समाज को भी उसकी रक्षा में भाग लेना चाहिए।

अथर्ववेद 9/4/19 मंत्र में बैल के लिए अघन्य और गौ के लिए अघन्या शब्दों का वर्णन मिलता हैं। यहाँ पर लिखा हैं कि ब्राह्मणों को ऋषभ (बैल) का दान करके यह दाता अपने को स्वार्थ त्याग द्वारा श्रेष्ठ बनाता हैं। वह अपनी गौशाला में बैलों और गौओं की पुष्टि देखता है।

अथर्ववेद 9/4/20 मंत्र में जो सत्पात्र में वृषभ (बैल) का दान करता हैं। उसकी गौएँ संतान आदि उत्तम रहती हैं। इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि गौ के साथ–साथ बैल की रक्षा का वेद संदेश देते हैं।

क्या वेदादि धर्मग्रंथों में माष शब्द का उल्लेख हैं जिसका अर्थ मांस खाना है?

माष शब्द का प्रयोग माषौदनम् के रूप में हुआ हैं। इसे बदलकर किसी मांसभक्षी ने मांसौदनम् अर्थ कर दिया हैं। यहाँ पर माष एक दाल के समान वर्णित हैं। इसलिए यहाँ माँस का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

आयुर्वेद (सुश्रुत संहिता शरीर अध्याय 2) गर्भवती स्त्रियों के लिए मांसाहार को सख्त मना करता हैं और उत्तम संतान पाने के लिए माष (दाल) सेवन को हितकारी कहता हैं। इससे क्या स्पष्ट होता हैं। यही कि माष शब्द का अर्थ माँसाहार नहीं अपितु दाल आदि को खाने का आदेश हैं। फिर भी अगर कोई माष को मांस ही कहना चाहे तब भी मांस को निरुक्त 4/1/3 के अनुसार मनन साधक बुद्धिवर्धक और मन को अच्छी लगने वाली वास्तु जैसे फलका गूदा, खीर आदि कहा गया है। प्राचीन ग्रंथों में मांस अर्थात गूदा खाने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। जैसे चरक संहिता देखे में आम्रमांसं (आम का गूदा), खजूरमांसं (खजूर का गूदा) तैत्तरीय संहिता 2–32–8 (दही शहद और धान) को मांस कहा गया है।

इससे यही सिद्ध होता हैकि वेदादि शास्त्रों में जहाँ पर माष शब्द आता है अथवा मांस के रूप में भी जिसका प्रयोग हुआ है। उसका अर्थ दाल अथवा फलों का मध्य भाग अर्थात गूदा है।

क्या वेदों के अनुसार इंद्र देवता बैल खाता है ?

इंद्र द्वारा बैल खाने के समर्थन में ऋग्वेद 10/28/3 और 10/86/14 मंत्र का उदाहरण दिया जाता है। यहाँ पर वृषभ और उक्षन् शब्दों के अर्थ से अनभिज्ञ लोग उनका अर्थ बैल कर देते हैं। ऋग्वेद में लगभग 20 स्थलों पर अग्नि को 65 स्थलों पर इंद्र को 11 स्थलों पर सोम को 3 स्थलों पर पर्जन्य को 5 स्थलों पर बृहस्पति को 5 स्थलों पर रुद्र को वृषभ कहा गया हैं। व्याख्याकारों के अनुसार वृषभ का अर्थ यज्ञ हैं।

उक्षन् शब्द का अर्थ ऋग्वेद में अग्नि सोम आदित्य मरुत आदि के लिए प्रयोग हुआ हैं। जब वृषभ और उक्षन् शब्दों के इतने सारे अर्थ वेदों में दिए गए है तब उनका व्यर्थ ही बैल अर्थ कर उसे इंद्र को खिलाना युक्ति संगत एवं तर्कपूर्ण नहीं हैं। इसी संदर्भ में ऋग्वेद में इंद्र के भोज्य पदार्थ, निरामिष रूपी धान करम्भ पुरोडाश तथा पेय सोमरस है न कि बैल को बताया गया है।

वेदों में गौ का क्या स्थान हैं ?

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते दिते सरस्वति महि विश्रुति । **एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतम्ब्रूतात्**।। यजुर्वेद 8/43

भावार्थ :–जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो, वह अपने–अपने पति और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म सिखलावें, जिससे किसी तरह वे अधर्म की ओर न डिगें। वे दोनों स्त्री–पुरुष की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं की शिक्षा किया करें।

गाय का नाम इडा, रंता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योति, अदिति, सरस्वती, महि, विश्रुति और अघन्या कहा गया है। स्तुति की पात्र होने से, इडा रमयित्री होने से, रंता इसके दूध की यज्ञ में आहुति दी जाने से, हव्या चाहने योग्य होने से, काम्या हृदय को प्रसन्न करने से, चन्द्रा अखण्डनीय होने से, अदिति दुग्धवती होने से, सरस्वती महिमशालिनी होने से, महि विविध रूप में श्रुत होने से, विश्रुति तथा न मारी जाने योग्य होने से, अघन्या कहलाती हैं।

अघन्या शब्द में गाय का वध न करने का संदेश इतना स्पष्ट है। कि विदेशी लेखक भी उसे भली प्रकार से स्वीकार करते हैं।

हे गौओं तुम पूज्य हो तुम्हारी पूज्यता मैं भी प्राप्त करूं।–यजुर्वेद 3/20

मैं समझदार मनुष्य को कहे देता हूँ कि तू बेचारी बेकसूर गाय की हत्या मत कर वह अदिति हैं। काटने–चीरने योग्य नहीं हैं।–ऋग्वेद 8/101/15

उस देवी गौ को मनुष्य अल्प बुद्धि होकर मारे–काटे नहीं।–ऋग्वेद 8/101/16

निरपराध की हत्या बड़ी भयंकर होती हैं।अतः तू हमारे गाय, घोड़े और पुरुष को मत मार। –अथर्ववेद 10/1/29

गौएँ वधशाला में न जाएँ।–ऋग्वेद 6/28/4

गाय का वध मत कर। –यजुर्वेद 13/43

क्या वेदों में अश्लीलता है ?

पश्चिमी विद्वान ग्रिफ्फिथ महोदय और कुछ वाममार्गियों द्वारा जिनको संस्कृत , व्याकरण भाषा का कोई ज्ञान नहीं रहा है और अल्प ज्ञान को लेकर ही वेद भाष्य करने चल दिए उन्होंने बिना सोचे समझे सनातन धर्म को बदनाम करने की ये घटिया हरकत की है। वेदों के विषय में इनके कारण कुछ लोगों को यह भ्रान्ति है कि वेदों में धार्मिक ग्रन्थ होते हुए भी अश्लीलता का वर्णन है। इस विषय को समझने की पर्याप्त आवश्यकता है क्योंकि इस भ्रान्ति के कारण वेदों के प्रति साधारण जनमानस में आस्था एवं विश्वास प्रभावित होते है।

पश्चिमी विद्वान ग्रिफ्फिथ महोदय ने इस विषय में ऋग्वेद 1/126 सूक्त के सात में पाँच मन्त्रों का भाष्य करने के पश्चात अंतिम दो मन्त्रों का भाष्य नहीं किया हैं एवं

परिशिष्ठ में इनका लेटिन भाषा में अनुवाद देकर इस विषय में टिप्पणी लिखी हैं इसके बाद ग्रिफ्फिथ महोदय अपने यजुर्वेद के भाष्य में भी 23 वें अध्याय के 19 वें मंत्र के पश्चात सीधे 32 वें मंत्र के भाष्य पर आ जाते हैं।

विदेशी विद्वान वेद के जिन मन्त्रों में अश्लीलता का वर्णन करते हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

ऋग्वेद 1/126/6–7,ऋग्वेद 1/164/33 और ऋग्वेद 3/31/1,यजुर्वेद 23–22,23, अथर्ववेद 1/11/3–6, अथर्ववेद 4/4/3–8,अथर्ववेद 6/72/1–3, अथर्ववेद 6/101/1–3, अथर्ववेद 6/138/4–5

अथर्ववेद 7/35/2–3, अथर्ववेद 7/90/3,अथर्ववेद 20/126/16–17, अथर्ववेद कांड 20 सूक्त 136 मंत्र 1–16

वेदों में अश्लील शब्दावली का प्रयोग बार-बार हुआ है ?

उत्तर – यह प्रश्न ही भ्रामक है क्योंकि वेदों में किसी भी प्रकार की अश्लीलता नहीं है। संस्कृत भाषा में यौगिक, रूढ़ि एवं योगरूढ़ तीन प्रकार के शब्द होते हैं। वैदिक काल में अनेक ऐसे शब्द प्रचलित थे जिन्हे सर्वदा श्लील (शालीन) माना जाता था और उनका संपर्क कुत्सित भावों से करने की प्रवृत्ति न थी। ये शब्द है लिंग, शिश्न, योनि, गर्भ, रेत, मिथुन आदि। आजकल भी इन शब्दों को हम सामान्य भाव से ग्रहण करते हैं जैसे लिंग का प्रयोग पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग में किया जाता हैं। योनि का प्रयोग मनुष्य योनि एवं पशु योनि में भेद करने के लिए प्रयुक्त होता हैं, गर्भ शब्द का प्रयोग पृथ्वी के गर्भ एवं हिरण्यगर्भ के लिए प्रयुक्त होता हैं। इस प्रकार से अनेक शब्दों के उदाहरण लौकिक और वैदिक साहित्य से दिए जा सकते है जिनमें सभ्य व्यक्ति अश्लीलता नहीं देखते। श्लीलता एवं अश्लीलता में केवल मनोवृत्ति का अंतर हैं। ऊपर में जिस प्रकार शब्दों के रूढ़ि अर्थों का ग्रहण किया गया है उसी प्रकार से कुछ स्थानों पर शब्दों के यौगिक अर्थों का भी ग्रहण होता हैं।

जैसे 'माता की रज को सिर में धारण करो' का तात्पर्य पग धूलि हैं न की माता के 'रजस्वला' भाव से प्रार्थना की गई हैं। इस प्रकार से शब्दों के अर्थों के अनुकूल एवं उचित प्रयोग करने से ही तथ्य का सही भाव ज्ञात होता हैं अन्यथा यह केवल अश्लीलता रूपी भ्रान्ति को बढ़ावा देने के समान है। इस भ्रान्ति का एक कारण कुछ मन्त्रों में अर्थों का अस्वाभाविक एवं पक्षपातपूर्ण प्रयोग करके उनमें व्यभिचार अथवा अश्लीलता को दर्शाना है। एक कारण तथ्य को गलत परिपेक्ष में समझना है। एक उदहारण लीजिये कि जिस प्रकार से चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकों में मानव गुप्तेन्द्रियों के चित्र को देखकर कोई यह नहीं कहता कि यह अश्लीलता है क्योंकि उनका प्रयोजन शिक्षा है उसी प्रकार से वेद ईश्वरीय प्रदत्त ज्ञान पुस्तक है इसलिए उसमें जो–जो बातें हैं वे शिक्षा देने के लिए लिखी गई हैं। इसलिए उनमें अश्लीलता को मानना भ्रान्ति है।

अगर वेदों में अश्लीलता नहीं है तो फिर अनेक मन्त्रों में क्यों प्रतीत होता हैं?

उत्तर – वेदों में अश्लीलता प्रतीत होने का प्रमुख कारण कुछ अल्प बुद्धि वाले तथाकथित विद्वान है जिनमें सायण, महीधर आदि प्रमुख हैं इनको हिंदी व्याकरण और अलंकार की भाषा का ज्ञान तो था ही नहीं दूसरे इनका एक मात्र उद्देश्य गलत भाष्य द्वारा वेदों के प्रति भ्रम फैलाना था। ऐसे मुर्ख भाष्यकारों और उनका अनुसरण करने वाले पश्चिमी और कुछ भारतीय लेखक हैं।

वास्तविकता क्या है? कुछ प्रमाण देखिये :

गलत भाष्य : प्रमाण 1 –ऋग्वेद 1/126 के छठे और सातवें मंत्र का सायणाचार्य, स्कंदस्वामी आदि ने राजा भावयव्य और उनकी पत्नी रोमशा के मध्य संभोग की इच्छा को लेकर अत्यंत अश्लील संवाद का वर्णन मिलता है। पाठक सम्बंधित भाष्यकारों के भाष्य में देख सकते है।

सही भावार्थ : इसी मंत्र का भावार्थ स्वामी दयानंद सुन्दर एवं शिक्षाप्रद रूप से इस प्रकार से करते हैं। इस मंत्र में राजा (जो उत्तम गुण सिखा सके और सब लोग जिसे ग्रहण करके उस पर सुगमता से चल सके) के प्रजा के प्रति कर्तव्य का वर्णन करते हुए व्यवहारशील एवं प्रयत्नशील प्रजा को सैकड़ों प्रकार के भोज्य पदार्थ दे सकने वाली राजनीति करने की सलाह देते है। इससे अगले मंत्र में राजा कि भाँति उसकी पत्नी विदुषी और राजनीति में निपुण होने तथा प्रजा विशेष रूप से स्त्रियों का न्याय करने में राजा का सहयोगी बनने के सन्देश है।

गलत भाष्य प्रमाण २ –निज दुहिता से सम्भोग की कथा : ऋग्वेद 1/164/33 और ऋग्वेद 3/3/11 में प्रजापति का अपनी दुहिता (पुत्री) उषा और प्रकाश से सम्भोग की इच्छा करना बताया गया हैं जिसे रूद्र ने विफल कर दिया जिससे की प्रजापति का वीर्य धरती पर गिर कर नाश हो गया ऐसे अश्लील अर्थो को दिखाकर विधर्मी लोग वेदों में पिता–पुत्री के अनैतिक सम्बंधो पर आक्षेप करते हैं।

सही भावार्थ : सही अर्थ ये है कि प्रजापति कहते हैं सूर्य को और उसकी दो पुत्री उषा (प्रातः काल में दिखने वाली लालिमा) और प्रकाश है। सभी लोकों को सुख देने के कारण सूर्य पिता के समान है और मान्य का हेतु होने से पृथ्वी माता के समान है। जिस प्रकार दो सेना आमने सामने होती हैं उसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी आमने सामने हैं और प्रजापति पिता सूर्य मेघ रूपी वीर्य से पृथ्वी माता पर गर्भ स्थापना करता है जिससे अनेक औषधियाँ आदि उत्पन्न होते हैं जिससे जगत का पालन होता है। यहाँ रूपक अलंकार है जिसके वास्तविक अर्थ को न समझ कर प्रजापति की अपनी पुत्रियों से अनैतिक सम्बन्ध की कहानी बना दी गई।

झूठा भावार्थ प्रमाण –3: यजुर्वेद के 23/19–31 मन्त्रों में अश्वमेध यज्ञ परक अर्थों में महीधर के अश्लील अर्थ को देखकर अत्यंत अप्रीति होती है। इन मन्त्रों में यजमान राजा कि पत्नी द्वारा अश्व का लिंग पकड़ कर उसे योनि में डालने, पुरोहित द्वारा राजा की पत्नियों के संग अश्लील उपहास करने का अश्लील वर्णन हैं।

वास्तविक भावार्थ : राजा प्रजा हम दोनों मिल के धर्म, अर्थ। काम और मोक्ष की सिद्धि के प्रचार करने में सदा प्रवृत्त रहें। किस प्रयोजन के लिए? कि दोनों की अत्यंत सुखस्वरूप स्वर्गलोक में प्रिया आनंद की स्थिति के लिए, जिससे हम दोनों परस्पर तथा सब प्राणियों को सुख से परिपूर्ण कर देवें। जिस राज्य में मनुष्य लोग अच्छी प्रकार ईश्वर को जानते हैं, वही देश सुखयुक्त होता है। इससे राजा और प्रजा परस्पर सुख के लिए सद्गुणों के उपदेशक पुरुष की सदा सेवा करें और तथा बल को सदा बढ़ावें। कहाँ स्वामी दयानंद का उत्कृष्ट अर्थ और कहाँ महीधर का निकृष्ट और महाभ्रष्ट अर्थ!

भावार्थ प्रमाण–4: ऋग्वेद 7/33/11 के आधार पर एक कथा प्रचलित कर दी गयी कि मित्र–वरुण का उर्वशी अप्सरा को देख कर वीर्य स्खलित हो गया। वह घड़े में जा गिरा जिससे वशिष्ठ ऋषि पैदा हुए। ऐसी अश्लील कथा से पढ़ने वाले की बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है।

वास्तविक भावार्थ : अथर्ववेद 5/19/15 के आधार पर मित्र और वरुण वर्षा के अधिपति यानि वायु माने गए है, ऋग्वेद 5/41/18 के अनुसार उर्वशी बिजली हैं और वशिष्ठ वर्षा का जल है। यानि जब आकाश में ठंडी–गर्म हवाओं (मित्र–वरुण) का मेल होता हैं तो आकाश में बिजली (उर्वशी) चमकती हैं और वर्षा (वशिष्ठ) की उत्पत्ति होती है। इस मंत्र का सत्य अर्थ पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है।

इस प्रकार से वेदों में जिन जिन मन्त्रों पर अश्लीलता का आक्षेप लगता है उसका कारण मन्त्रों का गलत अर्थ करना हैं।

वेदों में यम यमी जो कि भाई बहन हैं उनके मध्य अश्लील संवाद होने से आप क्या समझते हैं ?

उत्तर– पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने के कारण वेदों के विषय में अपने विचार प्रकट करते समय पाश्चात्य एवं अनेक भारतीय विद्वानों ने वेदों के सत्य ज्ञान को प्रचारित करने के स्थान पर अनेक भ्रामक तथ्यों को प्रचारित करने में अपना सारा श्रम व्यर्थ कर दिया । यम यमी सूक्त के विषय में इन्ही तथाकथित विद्वानों की मान्यतायें इसी भ्रामक प्रचार का नतीजा हैं। विकासवाद की विचारधारा को सिद्ध करने के प्रयासों ने इन लेखकों को यह कहने पर मजबूर किया कि आदि काल में मानव अत्यन्य अशिक्षित एवं जंगली था। विवाह सम्बन्ध, परिवार, रिश्ते नाते आदि का प्रचलन बाद के काल में हुआ। अच्छा होता कि ये संस्कृत भाषा में उपयोग होने वाले अलंकार की भाषा का पहले ज्ञान प्राप्त कर लेते।

गलत और शर्मनाक भावार्थ : विदेशी विद्वान श्रीपाद अमृत डांगे में लिखते हैं –"इस प्रकार के गुणों में परस्पर भिन्न नातों तथा स्त्री पुरुष सम्बन्धों की जानकारी न होना स्वाभाविक ही था। परन्तु इस प्रकार का अनियंत्रित सम्बन्ध संतति विकसन के लिए हानिकारक होने के कारण सर्व्रथम माता–पिता एवं उनके बाल बच्चों का बीच सम्भोग पर नियंत्रण उपस्थित किया गया और इस प्रकार कुटुंब व्यवस्था की नींव रखी गई। अर्थात् समस्त दादा–दादी परस्पर एक दुसरे के पति–पत्नी हो सकते थे। उसी प्रकार उनके लड़के–लड़कियाँ अर्थात समस्त माता पिता एक दूसरे के पति पत्नी हो सकते थे। सगे व चचेरे भाई–बहन सब सुविधानुसार एक दूसरे के पति–पत्नी हो सकते थे। आगे चलकर भाई और बहन के बीच निषेध उत्पन्न किया गया। परन्तु उस नवीन सम्बन्ध का विकास बहुत ही मंदगति से हुआ और उसमें अड़चन भी बहुत हुई, क्योंकि समान वय के स्त्री पुरुषों के बीच यह एक अपरिचित सम्बन्ध था। एक ही माँ के पेट से उत्पन्न हुई सगी बहन से प्रारम्भ कर इस सम्बन्ध का धीरे–धीरे विकास किया गया। परन्तु इसमें कितनी कठिनाई हुई होगी, इसकी कल्पना ऋग्वेद के यम–यमी सूक्त से स्पष्ट हो जाती है। यम की बहन यमी अपने भाई से प्रेम एवं संतति की याचना करती हैं। परन्तु यम यह कहते हुए उसके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देता हैं कि देवताओं के श्रेष्ठ पहरेदार वरुण देख लेंगे एवं क्रुद्ध हो जायेंगे। इसके विपरीत यमी कहती हैं कि वे इसके लिए अपना आशीर्वाद देंगे।

वास्तविक भावार्थ क्या है : उपरोक्त संवाद का अंत कैसे हुआ, यह प्रसंग तो ऋग्वेद में नहीं हैं, परन्तु यदि यह मान लिया जाये कि अंत में यम ने यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया तो भी यह स्पष्ट है कि प्राचीन परिपाटी को तोड़ने में कितनी कठिनाई का अनुभव हुआ होगा ?

वास्तविकता ये है कि यम यमी सूक्त ऋग्वेद और अथर्ववेद में आता है। यम यमी सूक्त का मूल भाव भाई–बहन के संवाद के माध्यम से शिक्षा देना हैं। यम और यमी दिन और रात हैं, दोनों जड़ है। इन्ही दोनों जड़ों को भाई बहन मानकर वेद ने एक धर्म विशेष का उपदेश किया हैं। अलंकार के रूपक से दोनों में बातचीत हैं। यमी यम से कहती हैं कि आप मेरे साथ विवाह कीजिये पर यम कहता हैं कि–

बहन के साथ कुत्सित व्यवहार करने से पाप होता है। पुराकाल में कभी भाई बहन का विवाह नहीं हुआ, इसलिए तू दूसरे पुरुष को पति बना। परमात्मा ने जड़ प्रकृति का उदाहरण देकर लोगों को यह सूचित करा दिया है कि एक जड़ स्त्री के कहने पर भी पाप के डर से परम्परा की शिक्षा से प्रेरित होकर एक जड़ पुरुष जब इस प्रकार के पाप कर्म को करने से इंकार करता हैं,तब चेतन ज्ञानवान मनुष्य को भी चाहिए कि वह भी इस प्रकार का कर्म कभी न करे।

वेदों में बहन भाई के व्यभिचार का कितना कठोर दंड का प्रावधान : श्रीपाद डांगे का यह कथन कि यम यमी सूक्त में बहन भाई के व्यभिचार का वर्णन हैं अज्ञानता मात्र हैं। प्रमाण के लिए वेदों को ही पढ़े – ऋग्वेद और अथर्ववेद में आता हैं जो तेरा भाई तेरा पति होकर जार कर्म करता हैं और तेरी संतान को मारता हैं, उसका हम नाश करते हैं। अथर्ववेद(अ), में आता हैं यदि तुझे सोते समय (स्वपन में) तेरा भाई अथवा तेरा पिता भूलकर भी प्राप्त हो तो वे दोनों गुप्त पापी औषधि प्रयोग से नपुंसक करके मार डाले जायेंगे।

ऋग्वेद के विवाह सूक्त(vi), अथर्ववेद(vii) में पाणिग्रहण अर्थात विवाह विधि, वैवाहिक प्रतिज्ञाएँ, पति पत्नी सम्बन्ध, योग्य संतान का निर्माण, दाम्पत्य जीवन, गृह प्रबंध एवं गृहस्थ धर्म का स्वरुप देखने को मिलता हैं, जो विश्व की किसी अन्य सभ्यता में अन्यत्र ही मिले।

वैदिक काल के आर्यों के गृहस्थ विज्ञान की विशेषता को जानकार श्रीमति एनी बेसंत ने लिखा हैं– भूमंडल के किसी भी देश में, संसार की किसी भी जाति में, किसी भी धर्म में विवाह का महत्व ऐसा गम्भीर एवं ऐसा पवित्र नहीं हैं, जैसे प्राचीन आर्य ग्रंथों में पाया जाता हैं। यम यमी सूक्त एक आदर्श को स्थापित करने का सन्देश हैं ना कि भाई–बहन के मध्य अनैतिक सम्बन्ध का विवरण हैं।

वेदों में मूर्ति पूजा

क्या वेदो में मूर्ति पूजा है?

इस विषय पर तो स्वामी दयानन्द और समस्त काशी के पण्डितों के बीच अनेक बार शास्त्रार्थ हुए लेकिन काशी का एक भी पण्डित वेदों में मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं कर पाया था। हम और आप तो कैसे सिद्ध करेंगे ?

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का आठवाँ मंत्र देखिए जिसमें ईश्वर का निराकार होना सिद्ध है –स पर्यगात् शुक्रं अकायं अव्रणं अस्नाविरं शुद्धं अपापविद्धम् कविर्मनीषि परिभू स्वयंभू र्याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाप्तः। अर्थात् जो परमेश्वर सर्व व्यापक आदि विशेषण युक्त है सो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है उसकी व्याप्ति से एक परमाण ु भी रहित नहीं है । इस मंत्र में उसे (अकायं) स्थूल सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों से रहित, (अव्रणं) छिद्र रहित, (अस्नाविरं) नव नाड़ियों के बन्धन से अलग आदि विशेषणों वाला बताया है । इससे सिद्ध है कि ईश्वर कभी शरीर धारण नहीं करता है। जब शरीर धारण ही नहीं सकता तो उसकी मूर्ति या तस्वीर बन नहीं सकती और मूर्ति या तस्वीर ही नहीं तो पूजा कैसे सम्भव होगी। वेद में और भी बिल्कुल स्पष्ट लिखा है कि –

''न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः'' अर्थात् उस महान यश वाले ईश्वर की कोई प्रतिमा (मूर्ति) नहीं होती है।

इसी प्रकार के अनेक प्रमाण यही सिद्ध करते हैं कि वेदों में मूर्ति पूजा का विधान बिल्कुल भी नहीं है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।। (यजु० ४०/८)

भावार्थः– वह सर्वशक्तिमान शरीर–रहित, छिद्र–रहित, नस–नाड़ी के बन्धन से रहित, पवित्र, पुण्य–युक्त, अन्तर्यामी, दुष्टों का तिरस्कार करने वाला, स्वतः सिद्ध और सर्वव्यापक है। वही परमेश्वर ठीक–ठीक रीति से जीवों को कर्मफल प्रदान करता है।

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमिरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी।। (अथर्व० 20/81/1)

भावार्थः–सैंकड़ों आकाश ईश्वर की अनन्तता को नहीं माप सकते। सैकड़ों भूमियाँ उसकी तुलना नहीं कर सकतीं। सहस्रों सूर्य, पृथ्वी और आकाश भी उसकी तुलना नहीं कर सकते। एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। (श्वेता० 6/12)

भावार्थः–एक परमात्मा ही सब पदार्थों में छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापक है और सब प्राणियों का अन्तरात्मा है। वही कर्मफल प्रदाता है। सब पदार्थों का आश्रय है। वही सम्पूर्ण संसार का साक्षी है, वह ज्ञानस्वरुप, अकेला और निर्गुण–सत्व,रज और तमोगुण से रहित है।

मूर्ति पूजा सम्बन्धी वेदमंत्रो की गलत और आधी अधूरी व्याख्या के कारण है।

प्रश्नः-अर्थववेद 2/13/4 में आया है - हहे ईश्वर! आओ इस पत्थर में ठहरो यह पत्थर तुम्हारा शरीर है''

समीक्षा– आपने आधा मंत्र ही बोला है, पूरा मंत्र जानिए– ''कुण्वन्तु विश्वे देवाः आयुष्ते शरदः शतम ''अर्थात सब देवता तुम्हारी आयु १०० वर्ष करे। आपने अर्थ का अनर्थ तो किया ही लेकिन परमेश्वर को देवता से आशीर्वाद दिलवा कर तुच्छ बना दिया यह मन्त्र ईश्वर के लिए नही बल्कि ब्रह्मचारी बालक के लिए है अर्थातः– हे ब्रह्मचारी। तुम यहाँ आओ और अपना दाहिना पैर इस पत्थर पर रखो और इसकी तरह दृढ़ हो, तुम्हारा शरीर, निरोगी हो ओर देव तुम्हारी आयु सौ वर्ष करे।

प्रश्नः- अथर्ववेद 3/10/3 में उल्लेख है- "संवत्सरस्य प्रतिमा याँ त्वा रात्र्युपास्महे। सा न आयुश्मतीं प्रजाँ रायस्पोशेण सं सृज॥"

अर्थात् :–"हे रात्रे! संवत्सर की प्रतिमा! हम तुम्हारी उपासना करते हैं। तुम हमारे पुत्र–पौत्रादि को चिर आयुष्य बनाओ और पशुओं से हमको सम्पन्न करो।"

समीक्षाः– इसमें यहाँ रात्रि को ईश्वर की प्रतिमा अर्थात प्रतिरूप की उपमा दी गई है क्योंकि रात्रि में मनुष्य सोकर आनन्द भोगते हैं और अपनी थकान दूर कर नया जोश भर कर अपनी धन–धान में उन्नति करते हैं। इसी मन्त्र का विनियोग पारस्कर ग्र्ह्सुत्र 3/2/1 में है– जिसमें ऋषि –प्रजापति और देवता रात्रि है।

हे रात्रि! तू प्रजापति का प्रतिरूप है, हमारे आरोग्य धन–धान को बढाने वाली तुझे हम जानते हैं। प्रतिमा का अर्थ प्रतिरूप इस प्रकार होगा– प्रतिमाम आतश्चोपसर्ग (पा. 6/3/106) प्रतिरूपम.. सम्वत्सर के निम्न अर्थ हैं समीप आने वाला– समीपम आगच्छत सम्वत्सर (अ. 3/5/8) परमेश्वर–(पा. 4/1/32) अब आप समझ गये होंगे यहाँ रात्रि को उपाधि दी है न कि ईश्वर की मूर्ति बनाना है।

प्रश्नः-मा असि प्रमा असि प्रतिमा असि तैत्तीरिय प्रपा. अनु 05, अर्थात हे महावीर तुम ईश्वर की प्रतिमा हो।

समीक्षाः– आपने यहाँ पर एक महावीर शब्द लिखा जिसे आप हनुमान जी की मूर्ति समझ रहे हो। लेकिन शतपथ ब्राह्मण में महावीर कोई मूर्ति नहीं बल्कि एक प्रकार का यज्ञ पात्र है– ''कुशान्त्स स्तीर्य द्वंद पात्रा....भवति'' (शत.14/1/3/1) कुशाय बिछा कर दो पात्र रखो। उपयमनी, महावीर, परीशा, पिन्वन, रोहिंकपाल, और भी दूसरे पात्र। यहाँ महावीर पात्र का नाम है।

शतपथ 14/1/2/17 में महावीर बनाने की विधि लिखी है– मिट्टी लेकर एक बालिश्त ऊँचा, गढनेवाला, मध्य में खाली, मेखला युक्त महावीर बनायें। यहां भी स्पष्ट है कि यह महावीर पात्र ही है, न ही कोई प्रतिमा। इसी में महावीर को घोड़े की लीद (पखाने) में पकाने का उल्लेख हैं– देखे– शतपथ. १४/१/२/२० महावीर को पहले घोड़े के लीद में पकाओ फिर तीन मन्त्र पढ़ कर महवीर को घोड़े की लीद की धुप दो, इन ग्र्ह्सुत्रो, ब्राह्मणों में यह महावीर कोई मूर्ति नही बल्कि यज्ञ पात्र ही है।

प्रश्नः-सहस्त्रस्य प्रतिमा असि?

यजुर्वेद 15.65, हे परमेश्वर, आप सहस्त्रो की प्रतिमा मूर्ति हैं।

समीक्षाः– इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ में 8/7/4/10–11 में दी हुई है एक बार देख लेते तो यह भ्रम ही न होता। शतपथ में भी यह ईश्वर को नही विद्वान को दी हुई उपमा है क्योंकि विद्वान को ज्ञान होने से उसे यह उपमा दी है।

प्रश्नः-अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत (अथर्ववेद-20.92.5) हे बुद्धिमान मनुष्यों उस प्रतिमा का पूजन करो, भली भांति पूजन करो।

समीक्षाः– मन्त्र में दो शब्द हैं– एक पुरम जिसका अर्थ दुर्ग होता है। दूसरा धुरम जिसका अर्थ होता है शत्रुओ का धर्षण करने वाले इस मन्त्र में ईश्वर को दुर्ग के समान बताया है। जैसे दुर्ग शत्रुओ के हमलों से बचाता है, उसी तरह ईश्वर भी रक्षा करता है इसलिए दुर्ग विशेषण प्रयुक्त हुआ है। इस मन्त्र का अर्थ होगा–

हे : प्रियमेधो! उस ईश्वर का भली भांति अच्छे तरह पूजन करो जो निर्भय दुर्ग की तरह रक्षा करने वाला ओर शत्रुओं का धर्षण करने वाला है। अब बताइए कहाँ से मूर्ति ले आये?

प्रश्नः-ऋषि नाम प्रस्त्रेअसि नमो अस्तु देव्याय प्रस्तराय। अथर्ववेद 16.2.6, अर्थात :-हे प्रतिमा, तू ऋषियों का पाषण है तुझ दिव्य पाषाण के लिए नमस्कार है।

समीक्षाः–मन्त्र में ऋषीणाम शब्द का निरुक्त में इन्द्रिय अर्थ किया है। देखे–''सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षडइन्द्रियानि विसप्तति (निरुक्त 12/37) इन्द्रियणाम और दूसरा प्रस्तरा जिसका व्याकरण से अर्थ फैलाने वाला होता है देखे–प्रसारकः प्रश्वर असि) तो मन्त्र का अर्थ होगा– हे परमेश्वर! इन्द्रियों को फैलाने वाले, देवो का विस्तार करने वाले तुम्हे नमन हो। यदि इस मन्त्र में ऋषीणा का अर्थ ऋषि ने तब भी आपके मन्तव्य की पुष्टि नही होती है देखे– इस में देवता– वाक् है जिसका अर्थ है वाणी.. अब भौतिक परख व्याख्या इस तरह से होगी– हे वाणी। तू ऋषियों द्वारा विस्तार होने वाली है, तुझ देव स्वरूप सर्वत्र विस्तारित को नमन हो। यहाँ मन्त्र द्रष्टा विद्वानों द्वारा वेद वाणी को संसार में प्रचारित करने का भी उपदेश है यहाँ भी मूर्ति आदि सिद्ध नहीं होते है।

प्रश्नः–प्रतिमा में शक्ति का अधिष्ठान किया जाता है, प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। सामवेद के 36 वें ब्राह्मण में उल्लेख है–"देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति। रुदान्त नृत्यान्त ''स्फुटान्त स्विन्त्युन्मालान्त निमीलन्ति।।'' अर्थात्ः–देवस्थान काँपते हैं, देवमूर्ति हँसती, रोती और नृत्य करती हैं, किसी अंग में स्फुटित हो जाती है, वह पसीजती है, अपनी आँखों को खोलती और बन्द भी करती है।

समीक्षाः– हमने या आपने शायद ही ऐसी मूर्ति देखी हो जो नाचती, गाती, खेलती, कूदती, खाती हो, ये तो सारी चेतन क्रियाएँ हैं तो जब आपकी मूर्तियाँ यह सब क्रियाएँ नहीं करती।

एक विचार करने के लिए विषय : पत्थर की जिस मूर्ति से भगवान को बनाया गया है उसी पहाड़ के पत्थर से भवन, शौचालय, और अन्य भगवानों की मूर्ति बनी हुई है, इसका मतलब पत्थर में भगवान नहीं है, पंडित कहते हैं कि इसमें प्राण प्रतिष्ठा की जाती है और इसके बाद ये मूर्ति खाना खाने, नहाने और कपड़े पहनने लगी।

वैसे तो मंत्रो द्वारा पत्थर की मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा का कोई वैज्ञानिक और साहित्यिक प्रमाण नहीं है लेकिन एक प्रश्न है कि एक ही प्रकार के मंत्र के द्वारा उसी पत्थर में राम, उसी में कृष्ण या उसी में साईं बाबा मे प्राण आ जाएंगे और एक ही प्रकार के मंत्र किसी भी पत्थर में, किसी भी नाम वाले के प्राण डाल देंगे, यदि पंडित इन पत्थर में प्राण दाल देता है तो यह इनको पैदा करने वाला पिता हुआ यानि इन भगवानों को बनाने वाला पंडित इन भगवानों का पिता हुआ, तो पूजा पंडित की करो जिसने पत्थर मे प्राण डाल दिए।

दुष्प्रचार: आर्य समाजी स्वामी दयानन्द की मूर्ति की पूजा करते हैं ?

क्या महर्षि का स्टैच्यू भेंट में लेना, देना आर्य समाज के सिद्धान्त के अनुरूप है? महर्षि ने अपनी प्रतिमा बनाने की सख़्त मनाही की थी।

समाधान:—महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में कभी सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया। वे वेद की मान्यतानुसार अपने जीवन को चला रहे थे और सम्पूर्ण विश्व को भी वेद की मान्यता के प्रति लाना चाहते थे। वेद ईश्वर का ज्ञान होने से वह सदा निर्भ्रान्त ज्ञान रहता है, उसमें किसी भी प्रकार के पाखण्ड अन्धविश्वास का लेश भी नहीं है। वेद में परमेश्वर को सर्वव्यापक व निराकार कहा है। प्रतिमा पूजन का वेद में किसी भी प्रकार का संकेत नहीं है। महर्षि दयानन्द ने वेद को सर्वोपरि रखा है। महर्षि दयानन्द समाज की अवनति का एक बड़ा कारण निराकार ईश्वर की उपासना की स्थापना पर प्रतिमा पूजन को मानते हैं। (सत्यार्थप्रकाश 11वाँ समुल्लास मूर्तिपूजा से 15 हानियाँ)

महर्षि दयानन्द ने जो अपना चित्र न लगाने की बात कही है, वह इसी अनर्थ को देखते हुए कही है। महर्षि विचारते थे कि इन प्रतिमा पूजकों से प्रभावित हो मेरे चित्र की भी पूजा आरम्भ न कर दें। इसी आशंका के कारण महर्षि ने अपने चित्र लगाने का निषेध किया था। यदि आर्य महर्षि के सिद्धान्तों के अनुसार चल रहे हैं, प्रतिमा पूजन आदि नहीं कर रहे हैं तो महर्षि के चित्र आदि लगाए जा सकते हैं रखे जा सकते हैं। चित्र व मूर्ति रखना अपने आप में कोई दोष नहीं है।

महर्षि के जीवन से ऐसा कहीं भी प्रकट नहीं होता कि कहीं महर्षि दयानन्द ने मूर्तियों को तुड़वाया हो। अपितु यह अवश्य वर्णन मिलता है कि जिस समय महर्षि फर्रुखाबाद में थे, उस समय फर्रुखाबाद बाजार की नाप हो रही थी। सडक के बीच में एक छोटा—सा मन्दिर था, जिसमें लोग धूप दीप जलाया करते थे। बाबू मदनमोहन लाल वकील ने स्वामी जी से कहा कि मैजिस्ट्रेट आपके भक्त हैं, उनसे कहकर इस मठिया को सडक पर से हटवा दीजिये। स्वामी जी बोले ''मेरा काम लोगों के मनों से मूर्तिपूजा को निकालना है, ईंट पत्थर के मन्दिरों को तोडना—तुड़वाना मेरा लक्ष्य नहीं है।'' यहाँ महर्षि का स्पष्ट मत है कि वह मूर्ति पूजा के विरोधी थे, न कि मूर्ति के।

आर्य समाज का सिद्धान्त चित्र की नहीं चरित्र की पूजा अर्थात् महापुरुषों के आदर्शों को देखना अपनाना है।

वेदों में वर्णित सोमरस के रूप में शराब अथवा अन्य मादक पदार्थ को ग्रहण करने का वर्णन हैं ?

समाधान–पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों में सोम रस की तुलना एक जड़ी बूटी से की हैं जिसको ग्रहण करने से नशा हो जाता हैं और वैदिक ऋषि सोम रस को ग्रहण कर नशे में झूम जाते थे। कुछ पश्चिमी लेखकों का मत हैं कि सोम सम्भवत फफूंदी भी हो सकता हैं। मादक पदार्थों का प्रयोग करने वाले लोग सोमरस के नाम का सहारा लेकर नशा करना सही ठहराते हैं। इस भ्रान्ति का मूल कारण सोम शब्द के उचित अर्थ को न समझ पाना हैं।

1.स्वामी दयानंद के अनुसार सोम का क्या अर्थ हैं?

ऋषि दयानंद ने अपने वेद भाष्य में सोम शब्द का अर्थ प्रसंग अनुसार ईश्वर, राजा, सेनापति, सभापति, प्राण, अध्यापक, उपदेशक इत्यादि किया हैं। कुछ स्थलों में वे सोम का अर्थ औषधि, औषधि रस और सोमलता नामक औषधि विशेष भी करते हैं, परन्तु सोम को सूरा या मादक वस्तु के रूप में कहीं ग्रहण नहीं किया हैं।

स्वामी दयानंद लिखते हैं कि सोम का पान करने वाले कि अंतरात्मा में प्रकाश होता है अर्थात् जो मनुष्य दिन और रात पुरुषार्थ करते हैं वे नित्य सुखी होते हैं।

2. योगी अरविन्द का सोम विषय को लेकर क्या मत है ?

वेद के अध्यात्म व्याख्याकारों श्री अरविन्द के अनुसार सोम आनंद के रस का और अमृत के रस का अधिपति हैं। ऋग्वेद 9/83 सूक्त की व्याख्या करते हुए उन्होंने इस सूक्त के सोम वर्णन को अलंकारिक बताया हैं। इस वर्णन में सोमरस को छानकर शुद्ध करने तथा इसे कलश में भरने के भौतिक कार्यों के साथ पूरा–पूरा रूपक बाँधा गया हैं।

वैदिक मन्त्रों में सोम शब्द का प्रयोग किन अर्थों में हुआ हैं ?

वैदिक मन्त्रों में सोम शब्द के भिन्न–भिन्न मन्त्रों में भिन्न भिन्न अर्थ निकलते हैं। जैसे सोम को समस्त गुणयुक्त आरोग्यपन एवं बल देने वाला ईश्वर कहा गया हैं।– ऋग्वेद 1/91/22

सोम को लताओं का पति कहाँ हैं। – ऋग्वेद 9/114/2

सोम के लिए सुपर्ण विशेषण प्रयुक्त हैं। – ऋग्वेद 9/97/33

सोम की स्थिति धुलोक में बताई हैं, यह भी कहा गया है कि वह 15 दिन तक बढता रहता है और 15 दिन तक घटता रहता हैं। – ऋग्वेद 10/85/1

ऋग्वेद 10/85/2 और ऋग्वेद 10/85/4 में भी सोम की तुलना चंद्रमा से की गयी हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार चंद्रमा को सोम का पर्याय बताया गया हैं।

तैतरीय उपनिषद् के अनुसार वास्तविक सोमपान तो प्रभु भक्ति हैं जिसके रस को पीकर प्रभुभक्त आनंदमय हो जाता हैं।

ऋग्वेद 6/47/1 और अथर्ववेद 18/1/48 में कहा गया हैं परब्रह्मा की भक्ति, रूप, रस, सोम अत्यंत स्वादिष्ट हैं, तीव्र और आनंद से युक्त हैं, इस ब्रह्मा सोम का जिसने ग्रहण कर लिया है, उसे कोई पराजित नहीं कर सकता।

ऋग्वेद 8/92/6– इस परमात्मा से सम्बन्ध सोमरस का पान करके साधक की आत्मा अद्भुत ओज, पराक्रम आदि से युक्त हो जाती है, वह सांसारिक द्वंदों से ऊपर उठ जाता है।

ऋग्वेद 10/5/6–वेद में मनुष्य को सात मर्यादाओं का पालन करने का निर्देश दिया गया हैं। इन सात मर्यादाओं में से कोई एक का भी सेवन नहीं करता हैं तो वह पापी हो जाता हैं।

ऋग्वेद 8/2/12–शराबी लोग मस्त होकर आपस में नग्न होकर झगड़ा करते और अण्ड बण्ड बकते हैं। – ऋग्वेद 8/2/12

सुरा और जुए से व्यक्ति अधर्म में प्रवृत्त होता हैं– ऋग्वेद 7/86/6

जब वेदों कि स्वयं के साक्षी शराब को ग्रहण करने की निंदा कर रही हैं तब कैसे वेद सोम रस के माध्यम से शराब पीने का सन्देश दे सकते हैं?

इस प्रकार वेदों के ही प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि सोम रस शराब आदि मादक पदार्थ नहीं हैं।

वेदों में जादू-टोना पर मंत्र हैं ?

दूसरों का अशुभ चाहने वाले ऐसे मन्त्र चारों वेदों में ही नहीं हैं। जादू टोना करने वालों ने यह भ्रम फैला रखा हैं कि वेदों में ऐसे मन्त्र हैं। दिखाने के लिए हवन करते समय वेदों के 2–3 शब्दो का उच्चारण भी कर देते हैं। बाद में अपने बनाये मन्त्रों का उच्चारण कर देते हैं।

वेद ईश्वर द्वारा निर्मित हैं। ईश्वर ऐसे मन्त्रों की रचना कर ही नहीं सकता। ईश्वर

के सैकड़ों गुण हैं। जिनमें से एक उसे कल्याणकारी होना हैं। यदि वह ऐसे मन्त्रों की रचना करता तो उस कल्याणकारी होने के गुण पर धब्बा लगता।

मनुष्यों को शुभ–अशुभ फल देने के लिए ईश्वर ने पहले से ही कर्मफल का सिद्धांत बना रखा हैं। जहाँ किसी प्रकार की सिफ़ारिश नहीं चलती।

अथर्ववेद में तो दूसरों का अशुभ करने वालों को निम्न प्रकार चेताया गया हैं।

1. दूसरों के विनाश के लिए यत्न शील पुरुष

   प्रभु की व्यवस्था से स्वयं ही नष्ट हो जाता हैं। (7–70–5)

2 जो दूसरों के लिए अशुभ की कामना करे उसकी दुर्गति सन्तान हीनता निर्धनता वनिर्जिविका के रुप में (अथर्ववेद 9–2–3)

3. दूसरों का उपक्षय करने वाले लोगों की जाठराग्नि का विकृत होना (अथर्ववेद 7–108–2)

4. दूसरों का उपक्षय करने वालों का निचली योनियों में जन्म व कन्जूसों के धनों का अपहरण (अथर्ववेद 20–34–4)

इतना ही नहीं ईश्वर ने दूसरों का अशुभ करने के यत्नशील लोगों के यत्नों को असफल करने से सम्बन्धित मन्त्रो की रचना की ताकि ये धूर्त लोग अपने यत्न में सफल न हो सके। ऐसे मन्त्रो को मुठ आदि की काट के रूप में लिया जा सकता हैं।

ये मन्त्र हैं। अथर्ववेद 10–1–7,8,18

इन मन्त्रो में प्रभु से प्रार्थना की गयी है कि हमको जो लोग नुकसान पहुँचाने में लगे हुए हैं। वह नुकसान वापस होकर उन्हें ही लग जाये।

वेदों में स्त्रियों का अधिकार

सत्य सनातन वैदिक धर्म के शास्त्रों में महिलाओं के वेदाध्ययन करने के असंख्यों प्रमाण हैं। इन असंख्यों प्रमाणों को अन देखा करते हुये कुछ अज्ञानी जन गिने चुने कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों के आधार पर स्त्रियों को अनाधिकारिणी सिद्ध करने का मूर्खता पूर्ण प्रयास करते रहते हैं।

वेदों में नारी की महिमा

कुरान में औरतो की आधी अक्ल वाला , ये हमारे लिए खेती है , इनको सम्पत्ति में भी पूरा अधिकार नहीं है ,और पुरुष को जन्नत में 72 महिलाये मिलेंगी जिनका काम सिर्फ पुरुष के साथ सम्भोग होगा ,यदि कोई महिला नमाज करते मुस्लिम के आगे से निकल जाये तो उसकी पूजा बेकार जाती है। इस प्रकार की बेहूदी बाते अन्य धर्म में

मिलेंगी लेकिन वैदिक धर्म में महिला को पढ़ने और पढ़ाने का ,यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है। किसी भी धर्म पुस्तक में नारी की महिमा का इतना सुंदर गुण गान नहीं मिलता, जितना वेदों में मिलता हैं। कुछ उदाहरण देकर हम अपने कथन को सिद्ध करेंगे।

1. उषा के समान प्रकाशवती– ऋग्वेद 4/14/3

हे राष्ट्र की पूजा योग्य नारी! तुम परिवार और राष्ट्र में सत्यम, शिवम, सुंदरम की अरुण कान्तियों को छिटकती हुई आओ, अपने विस्मयकारी सद्गुणगणों के द्वारा अविद्या ग्रस्त जनों को प्रबोध प्रदान करो। जन–जन को सुख देने के लिए अपने जगमग करते हुए रथ पर बैठ कर आओ।

2. वीरांगना– यजुर्वेद 5/10

हे नारी! तू स्वयं को पहचान, तू शेरनी हैं, तू शत्रु रूप मृगों का मर्दन करनेवाली हैं, देवजनों के हितार्थ अपने अन्दर सामर्थ्य उत्पन्न कर। हे नारी! तू अविद्या आदि दोषों पर शेरनी की तरह टूटने वाली हैं, तू दिव्य गुणों के प्रचारार्थ स्वयं को शुद्ध कर! हे नारी! तू दुष्कर्म एवं दुर्व्यसनों को शेरनी के समान विश्वंस्त करनेवाली हैं, धार्मिक जनों के हितार्थ स्वयं को दिव्य गुणों से अलंकृत कर।

3. वीर प्रसवाढ़ककर –ऋग्वेद 10/47/3

राष्ट्र को नारी कैसी संतान दे –हमारे राष्ट्र को ऐसी अद्भुत एवं वर्षक संतान प्राप्त हो, जो उत्कृष्ट कोटि के हथियारों को चलाने में कुशल हो, उत्तम प्रकार से अपनी तथा दूसरों की रक्षा करने में प्रवीण हो, सम्यक नेतृत्व करने वाली हो, धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष रूप चार पुरुषार्थ– समुद्रों का अवगाहन करनेवाली हो, विविध सम्पदाओं की धारक हो, अतिशय क्रियाशील हो, प्रशंशनीय हो, बहुतों से वरणीय हो, आपदाओं की निवारक हो।

4. विद्या अलंकृता– यजुर्वेद 20/84

विदुषी नारी अपने विद्या–बलों से हमारे जीवनों को पवित्र करती रहे. वह कर्मनिष्ठ बनकर अपने कर्मों से हमारे व्यवहारों को पवित्र करती रहे। अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्मों के द्वारा संतानों एवं शिष्यों में सद्गुणों और सत्कर्मों को बसाने वाली वह देवी गृह आश्रम –यज्ञ एवं ज्ञान– यज्ञ को सुचारू रूप से संचालित करती रहे।

5. स्नेहमयी माँ –अथर्वेद 7/68/2

हे प्रेमरसमयी माँ! तुम हमारे लिए मंगल कारिणी बनो, तुम हमारे लिए शांति बरसाने वाली बनो, तुम हमारे लिए उत्कृष्ट सुख देने वाली बनो। हम तुम्हारी कृपा– दृष्टि से कभी वंचित न हो।

6 अन्नपूर्ण –अथर्ववेद 3/28/4

इस गृह आश्रम में पुष्टि प्राप्त हो, इस गृह आश्रम में रस प्राप्त हो। इस गिरः आश्रम में हे देवी! तू दूध–घी आदि सहस्त्रों पोषक पदार्थों का दान कर. हे यम– नियमों का पालन करने वाली गृहणी! जिन गाय आदि पशु से पोषक पदार्थ प्राप्त होते हैं उनका तू पोषण कर।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः
यैत्रतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः

जिस कुल में नारियो कि पूजा, अर्थात् सत्कार होता हैं, उस कुल में दिव्यगुण, दिव्य भोग और उत्तम संतान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों कि पूजा नहीं होती, वहाँ जानो उनकी सब क्रिया निष्फल हैं।

गायत्री जप का स्त्रियों का अधिकार!

गायत्री मन्त्र के जप तथा साधन के अधिकारी मनुष्यमात्र हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो प्राणिमात्र के लिए है।

गायत्री मंत्र वेद मंत्र है

वेदोद्धारक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद के २६वें अध्याय के दूसरे मन्त्र का प्रमाण देकर कहा –

"यथेमां वाचं कल्याणीमवदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रायचार्याय च स्वाय चारणाय॥"

अर्थात् –परमेश्वर उपदेश करते हैं कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिये इस कल्याणी वेदवाणी का उपदेश करता हूँ वैसे सब मनुष्य किया करें। इसमें प्रजनेभ्यः शब्द तो है ही वैश्य, शूद्र और अति शूद्र आदि की गणना भी आ गई है। यह बड़ा सुस्पष्ट प्रमाण है।

स्त्रियों को वेद मन्त्रों का अधिकार

1. स्त्रियों को वेद मन्त्रों का अधिकार नहीं तो प्राचीन काल में स्त्रियाँ वेदों की मन्त्र ट्रष्टी ऋषिकाएँ क्यों हुईं यदि स्त्रियाँ अनाधिकारिणी थीं तो अनसूर्या, अहल्या, अरुन्धती, मदालसा आदि अगणित स्त्रियाँ वेद शास्त्रों में पारंगत कैसे थीं।
2. यदि वेद की वे अधिकारिणी नहीं तो यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों तथा षोडश संस्कारों में उन्हें सम्मिलित क्यों किया जाता हैं। विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियों के मुख से वेद मन्त्रों का उच्चारण क्यों कराया जाता हैं। बिना वेद मन्त्रों के नित्य सन्ध्या और हवन स्त्रियाँ कैसे कर सकती हैं।

3. ज्ञान धर्म और उपासना के स्वाभाविक अधिकारों से नागरिकों को वंचित करना क्या अन्याय एवं पक्षपात नहीं हैं। जब स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी हैं तो आधा अंग अधिकारी और आधा अनाधिकारी किस प्रकार रहा।

4. वेद पढ़ना मनुष्य मात्र का अधिकार हैं। उसमें महिलाएँ भी सम्मिलित हैं जैसे परमात्मा का दिया प्रकाश, जलवायु, पृथ्वी यह सबके लिए हैं। इसी प्रकार वेद भी परमात्मा प्रदत हैं।

5. सीता की सन्ध्या लंका में हनुमान सीता को खोजते हुए अशोक वाटिका में गये किन्तु उन्हें सीता न मिली। हनुमान ने वहाँ एक पवित्र जल वाली नदी को देखा। हनुमान को निश्चय था कि यदि सीता यहाँ होगी तो सन्ध्या का समय आ गया हैं और सीता यहाँ सन्ध्या करने के लिये अवश्य आयेंगी।

सुन्दरकाण्ड अ०14, श्लोक49 में लिखा हैं।

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदींचेमांशुभजला सध्यार्थ वरवर्णिनी॥

अर्थात् :–वर वर्णिनी सीता इस शुभ जल वाली नदी पर सन्ध्या करने के निमित्ति अवश्य आयेंगी।

महर्षि मनु संसार के वह महापुरुष हैं जिन्होंने नारी के विषय में सर्वप्रथम ऐसा सर्वोच्च आदर्श उद्घोष किया है जो नारी की गरिमा महिमा और सम्मान को असाधारण ऊँचाई प्रदान करता हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यैत्रतास्तु तु न पूज्यन्ते सर्वाः तत्रफलाः क्रियाः॥

मनुस्मृति– (३/५६)

इसका सही अर्थ हैं जिस परिवार में नारियों का आदर–सम्मान होता हैं। वहाँ देवता दिव्य, गुण, कर्म, स्वभाव दिव्य लाभ आदि प्राप्त होते हैं और जहाँ इनका आदर–सम्मान नहीं होता वहाँ उनकी सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। स्त्रियों को वेद मंत्रो के उच्चारण का अध्ययन का यज्ञादि करने का आचार्या बनने का अधिकार था व हैं।

स्त्री को व्यासपीठ पर बैठकर कथा कहने का अधिकार?

शतपथ ब्राह्मण का उदहारण :–विश्व का प्रथम ज्ञान वेदों का हैं जो कि मानव मात्र के लिये हैं, वो चाहे स्त्री हो या पुरुष। इस पर समस्त भारतीय उच्चस्तरीय विद्वान् एक मत हैं। परन्तु कुछ मुर्ख लोग नारियों को सभा में प्रवचन करने व धार्मिक कर्म के न करने देने की वकालत करते हुए कहते हैं कि नारियों के धार्मिक प्रवचन सुनने से पाप लगता हैं। इसमें शतपथ ब्राह्मण के नाम से अन्य किसी के द्वारा रचित यह झूठा वाक्य देते हैं।

स्त्री मुखात् धर्म मीमांसा यः श्रृणोति दुरात्मना।
किं तेन कृतं वै पापं ब्रह्महा गुरु तल्पगः॥

विश्लेषणः–निश्चित रुप से यह किसी व्याख्याता ने टिप्पणी में स्वरचित रचना लिख दी हैं। इसकी भाषा शैली शतपथ ब्राह्मण से पूर्ण रूप से भिन्न हैं। अतः शतपथ ब्राह्मण का वचन न होने से यह प्रमाण अमान्य हैं। शतपथ ब्राह्मण के नाम पर जन सामान्य को भ्रमित करने का यह प्रयास निन्दनीय भी हैं।

प्रमाण के लिए उपनिषद् के याज्ञवल्क्य और गार्गी के संवाद को पढना चाहिए और जानना चाहिये कि भरी सभा में गार्गी ने ब्रहोपदेश किया है। यहाँ वेद के ही कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं।

सहोत्रस्मपुरानारी समनंवावगच्छति

(अथर्ववेद 20/126/10)

समन का अर्थ हैं। सभा। पुरुष के समान नारी भी सभा में जाती हैं।

अहं केतु अहं मूर्धा अहं उग्राविवाचिनी

(ऋग्वेद 10/59/2)

मैं अग्रगम्य हूं। प्रखर वक्ता हूं।

देवेभ्यो मा सुकृतम्ब्रूतात्।

(यजुर्वेद 8/43)

इस मन्त्र में नारी से प्रार्थना की गई है कि तू हमें देव बना हमें उत्तम कर्म का उपदेश कर।

स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ

–ऋग्वेद 8/33/19

स्त्री ब्रह्म अर्थात् चारों वेदों का ज्ञान रखने वाली यज्ञ की नेतृत्व करने वाली हो।

आज आर्य समाज द्वारा चल रहे सैंकड़ों कन्या गुरुकुलों में हजारों छात्रायें वेद पढ़ रही हैं और सैकड़ों वेद विद्या की गम्भीर विदुषियाँ, आचार्यायें वेद पढ़ा रही हैं। इतना ही नहीं सैकड़ों विदुषी स्त्रियाँ यज्ञ हवन और संस्कार आदि कर्म कांड के लिए पुरोहिताई की भूमिका निभा रही हैं।

इतिहास में गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायनी आदि विदुषियों के नाम प्रसिद्ध हैं जो बड़े–बड़े ऋषियों एवं मुनियों की शंकाओं का समाधान करती थीं। इतने से ही सिद्ध है कि गायत्री साधना का पूरा अधिकार स्त्रियों को भी है। और वेद ने तो पति–पत्नी दोनों को यज्ञ करने का आदेश दिया है। अतएव जो शङ्का स्त्रियों के सम्बन्ध में की जाती

है, वह सर्वथा निर्मूल है। अतः स्त्रियों को बिना किसी संकोच या शंका के पूरी भक्ति के साथ गायत्री की साधना करनी चाहिए।

सती प्रथा वैदिक काल से है ?

वैदिक काल के इतिहास में कहीं भी सती होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। महाभारत में माद्री के पाण्डु के मृतशरीर के साथ आत्मदाह का उल्लेख हैं। जिसका सती प्रथा से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। मध्यकाल में जब अवनति का दौर चला तब नारी जाति की दुर्गति आरम्भ हुई। सती प्रथा उसी काल की देन हैं।

जहाँ तक वेदों का प्रश्न हैं। सायण ने अथर्ववेद 18/3/1 में सती प्रथा दर्शाने का प्रयास किया हैं। सायण के अनुसार यहाँ पर वेद नारी को आदेश दे रहे हैं। कि यह नारी अनादी शिष्टाचार सिद्ध स्मृति पुराण आदि में प्रसिद्ध सहमरणरूप धर्म का परी पालन करती हुई पति लोक को अर्थात जिस लोक में पति गया हैं। उस स्वर्ग लोक को वरण करना चाहती हुई तुझ मृत के पास सहमरण के लिए पहुँच रही हैं। अगले जन्म में तू इसे पुत्र– पौत्रादि प्रजा और धन प्रदान करना। अगले मंत्र में सायण कहते हैं। अगले जन्म में भी उसे वही पति मिलेगा। इसलिए ऐसा कहा गया हैं।

हमारे कथन की पुष्टि अथर्ववेद 18/3/2 मंत्र में स्वयं सायण करते हुए कहते हैं। हे! मृत पति की धर्मपत्नी तू मृत के पास से उठकर जीव लोक में आ तू इस निष्प्राण पति के पास क्यों पड़ी हुई हैं। पाणिग्रहणकर्ता पति से तू संतान पा चुकी हैं। उसका पालन पोषण कर सायण के इस अर्थ से हमें कोई शंका नहीं हैं। दोनों मन्त्रों में विरोधाभास होना हमारे पक्ष को भी सिद्ध करता हैं। मध्यकाल में बंगाल के कुछ पंडितो ने ऋग्वेद 10/18/7 में अग्रे के स्थान पर अग्ने पढकर सती प्रथा को वैदिक सिद्ध करना चाहा था। परन्तु यह केवल असत्य कथन हैं।

इस मंत्र में वधु को अग्नि नहीं अपितु अग्रे अर्थात गृह में प्रवेश के समय आगे चलने को कहा गया हैं। स्वर वेद पाठ और सती प्रथा का अन्त पूरे देश में सामान्यतः परन्तु बंगाल में विशेषतः सती दाह प्रथा का ताण्डव भयंकर रूप में छाया हुआ था। यह 19वीं सदी की घटना हैं। राजा राममोहन राय ने तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक के समय में कोलकाता उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की। इसका पौराणिक पण्डितों ने तीव्र विरोध किया व सती दाह प्रथा को वेदानुकूल घोषित करते हुए यह वेद मन्त्र प्रस्तुत किया

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशंतु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥

ऋग्वेद 10/18/7

अर्थात् :–ये पति से युक्त स्त्रियाँ गृहकार्य में प्रवीण होकर घृतादि पोषक भोज्य पदार्थ से शोभित हो स्वगृह में निवास करें। वे अश्रुरहित, रोग रहित, सुन्दर रत्न युक्त एवं रम्य गुणों वाली बनाकर उत्तम सन्तानों को जन्म देने वाली स्त्रियाँ आदर सहित पहले गृह में प्रवेश करें (घर में आएँ)।

बंगाल के दुष्ट व अन्धविश्वासी पण्डितों ने इस मन्त्र को थोड़ा बदलकर न्यायालय में रखा। मन्त्र के नारीर विधवाः शब्द का संधि विच्छेद बनता हैं। नारीः अविधवाः इसे बदल कर नारी विधवा कर दिया।

पदच्छेद के समय र का अ बना परन्तु उन्होंने र को हटा ही दिया।

राजा राममोहन राय स्वयं तो वेदों के विद्वान थे। अतः उन्होंने इधर–उधर सम्पर्क किया तो पता चला कि दक्षिण भारत में कुछ पण्डित हैं। जो जटापाठ विधि से बोलकर इस मन्त्र का शुद्ध रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। उन्हें बुलाया गया व उन्होंने इस मन्त्र को प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा नारीर विधवाः का पदच्छेद नारीः अविधवाः ही बनेगा एवं योनिमग्रे ही मन्त्र में हैं। योनिमग्ने नहीं है। इस आधार पर याचिका स्वीकार की गई तथा सती दाह कर्म पर प्रतिबन्ध लगाया गया। मिलावट पर विजय पाने की यह प्रेरक घटना है।

गरुड़पुराण में जिस तरह सती प्रथा का समर्थन छुआ छूत जाति प्रथा महिला विरोधी भाषा हैं। इसके लिए गरुड़पुराण का पथ करने से पहले पंडित से पूछा जाये कि क्या वह इनका समर्थन करता हैं। यदि नहीं तो गरुड़पुराण का पथ बंद करे यदि हां तो पंडित ये बताये की उसके परिवार की कितनी महिलायें अभी तक सती हुई हैं और उसके परिवार की महिलाये वेद मंत्र जैसे कि गायत्री मंत्रो का उच्चारण करती हैं या नहीं इस तरह के साहित्य हिन्दू समाज पर कलंक हैं।

तलाक, बहुपत्नी की प्रथा वैदिक काल से है ?

वैदिक धर्म में तलाक की भी जगह नहीं हैं

वैदिक धर्म में तलाक की भी जगह नहीं हैं। वर–वधू को विवाह से पूर्व भली–भाँति देख–भाल और पड़ताल करके अपना साथी चुनने का आदेश दिया गया है – खूब अच्छी तरह परख कर अपना साथी चुनो। पर जब एक बार विवाह हो गया तो फिर विवाह टूट नहीं सकता – तलाक नहीं हो सकता। फिर तो एक दूसरे की कमी और दोषों को दूर करते हुए प्रेम और सहिष्णुता से गृहस्थ में रहो। एक पुरुष की एक ही पत्नी और एक स्त्री का एक ही पति होना चाहिये तथा विवाहित पति–पत्नी में कभी तलाक नहीं होना चाहिये इस विषय पर प्रकाश डालने वाले वेद के कुछ स्थल पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं –

√ अथर्ववेद (7.37.1) में पति से पत्नी कहती है – ''हे पति तुम मेरे ही रहो, अन्य नारियों का कभी चिन्तन भी मत करो।''

√ अथर्ववेद (2.30.2) में पति पत्नी से कहता है – ''हे पत्नी ! तू मुझे ही चाहने वाली हो, तू मुझ से कभी अलग न हो ।''

√ अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड और ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 85 वें सूक्त में विवाह के समय नव वर–वधू को उपदेश दिया है कि – ''तुम दोनों पति–पत्नी सारी आयु भर इस विवाहित जीवन के बन्धन में स्थिर रहो, तुम कभी एक दूसरे को मत छोड़ो।''

√ अथर्ववेद में वहीं चौदहवें काण्ड में (14.2.64) कहा है – ''ये नव विवाहित पति–पत्नी सारी आयु भर एक दूसरे के साथ इस प्रकार इकट्ठे रहें जिस प्रकार चकवा और चकवी सदा इकट्ठे रहते हैं।"

√ ऋग्वेद (10.85.47) में विवाह के समय वर–वधू अपने आप को पूर्ण रूप से एक–दूसरे में मिला देने का संकल्प करते हुए कहते हैं – ''सब देवों ने हम दोनों के हृदयों को मिला कर इस प्रकार एक कर दिया है जिस प्रकार दो पात्रों के जल परस्पर मिला दिये जाने पर एक हो जाते हैं।

√ अथर्ववेद (14.1.50) में वर अपनी वधू को सम्बोधन कर के कहता है – ''हे पत्नी ! तू मुझ पति के साथ बुढ़ापे तक चलने वाली हो।'' ''हे पत्नी ! तू मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक जीवित रह।'' (अथर्ववेद 14.1.52)

वेद के इन और ऐसे ही अन्य स्थलों में स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है कि आदर्श स्थिति यह है कि एक स्त्री का एक पति और एक पुरुष की एक ही पत्नी रहनी चाहिये तथा उनमें कभी तलाक नहीं होना चाहिये।

विवाह वास्तव में वह दिव्य सम्बन्ध है जिस में दो व्यक्ति अपना हृदय एक–दूसरे को प्रदान कर देते हैं। हृदय एक ही बार और एक ही व्यक्ति को दिया जा सकता है। एक बार दिया हुआ हृदय फिर वापिस नहीं लिया जा सकता। इसीलिये वेद एक–पति और एक–पत्नी के व्रत का विधान करते हैं तथा तलाक का निषेध करते हैं। वेद की सम्मति में एक बार पति–पत्नी रूप में जिसका हाथ पकड़ लिया, जीवन भर उसी का हो कर रहना चाहिये। यदि एक–दूसरे में कोई दोष और त्रुटियाँ दिखने लगें तो उनसे खिन्न हो कर एक–दूसरे को छोड़ नहीं देना चाहिये। प्रत्युत स्नेह और सहानुभूति के साथ सहनशीलता की वृत्ति का परिचय देते हुए परस्पर के दोषों को सुधारने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

इसी अभिप्राय से वैदिक विवाह संस्कार में वर–वधू मिल कर मन्त्र–ब्राह्मण के वाक्यों से कुछ आहुतियाँ देते हैं जिन का भावार्थ इस प्रकार हैं–''तुम्हारी मांग में, तुम्हारी पलकों में, तुम्हारे रोमा आवर्तों में, तुम्हारे केशों में, देखने में, रोने में, तुम्हारे शील–स्वभाव में,

बोलने में, हंसने में, रूप–काँति में, दाँतों में, हाथों और पैरों में, तुम्हारी जंघाओं में, पिंडलियों में, जोड़ों में, तुम्हारे सभी अङ्गों में कहीं भी जो कोई दोष, त्रुटि या बुराई है, मैं इस पूर्णाहुति के साथ उन सब तुम्हारी त्रुटियों और दोषों को शान्त करता हूँ।''

विवाह संस्कार की समाप्ति पर ये वाक्य पढ़ कर आहुति दी जाती हैं। इन आहुतियों द्वारा वर–वधू यह संकल्प करते हैं कि हमने एक–दूसरे को उसके सारे गुण–दोषों के साथ ग्रहण किया है। हम एक–दूसरे के दोषों से खिन्न हो कर परस्पर झगड़ेंगे नहीं, और न ही कभी एक–दूसरे का परित्याग करने की सोचेंगे। अब विवाह के पश्चात् हमारी मनोवृत्ति यह हो गई है कि क्योंकि मेरी पत्नी मेरी है और मेरा पति मेरा है, इसलिये मेरे लिये मेरी पत्नी सब से अधिक गुणवती है और मेरा पति मेरे लिये सब से अधिक गुणवान् है। अब हमारे हृदय मिल कर एक हो गये हैं। अब हमें एक–दूसरे के गुण ही दिखते हैं, अवगुण दिखते ही नहीं। और यदि कभी किसी को किसी में कोई दोष दिख भी जाता है तो उसे स्नेह और सहानुभूति से सह लिया जाता है तथा सुधारने का यत्न किया जाता है। विवाह की इन पूर्णाहुतियों में हमने ऐसा संकल्प दृढ़ कर लिया है और अपनी मनोवृत्ति ऐसी बना ली है। जब हमारे दिल और आत्मा एक हो गये हैं तो हमारा ध्यान आपस की ऊपरी शारीरिक त्रुटियों की ओर जा ही कैसे सकता है ?

इस प्रकार वैदिक धर्म में न तो अनेक–पत्नी प्रथा (Polygamy) का स्थान है और न ही अनेक–पति प्रथा (Poliandry) का। इसके साथ वैदिक धर्म में तलाक का भी विधान नहीं है। यह ऊपर दिये गये वेद के प्रमाणों से अत्यंत स्पष्ट है।

अमैथुनी सृष्टि को लेकर दुष्प्रचार

अमैथुनी सृष्टि के मनुष्य कैसे और किस अवस्था में उत्पन्न हुए होंगे विषय बहुत ही गूढ़ हैं। फिर भी हम कोशिश करेंगे इस विषय पर ध्यान रखकर वेदों के विज्ञान को समझने की वेदों के अनुसार आदि सृष्टि अमैथुनी होती हैं।

अमैथुनी सृष्टि क्या है?

अमैथुनी सृष्टि से अभिप्राय उस सृष्टि से हैं जिसमें जीवों के शरीर बिना मैथुन (सेक्स) द्वारा उत्पन्न होते हैं। ऐसे शरीर उत्पन्न होने के बाद ही मैथुनी सृष्टि अभी जो आप देख रहे इस प्रकार संतति उत्पन्न करने वाली होती हैं।

पहले हम जाँच करते हैं कि अमैथुनी सृष्टि किस प्रकार होती हैः–

यथा र्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयं एव र्तुपर्यये ।
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः॥

अर्थात्ः–जैसे वसंत आदि ऋतुएँ अपने–अपने समय में निज–निज ऋतु चिन्हो को

प्राप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार मनुष्यादि भी अपने–अपने कर्मो को पूर्व कल्प के बचे कर्मानुसार प्राप्त हो जाते हैं। (मनुस्मृति अध्याय 1 श्लोक 29–30)

जिस प्रकार प्रलय काल में सभी जीव सुषुप्ति की अवस्था में गहन निद्रा में होते हैं। जैसे ही सृष्टि का समय आता हैं। ईश्वर जीव के पूर्व कल्प के कर्मो अनुसार उचित फल देकर आदि सृष्टि में उत्पन्न उचित देह द्वारा फल भोग करवाते हैं।

अब सवाल उठेगा ये देह कैसे बनेगी ?

महर्षि मनु ने जो ऋतुओं की उपमा देकर आदि अमैथुनी सृष्टि का वर्णन किया हैं। यह बहुत ही सारगर्भित (महत्वपूर्ण) हैं। महर्षि का आशय कुछ इस प्रकार हैं। जैसे ऋतुओं के चिन्ह बिना श्रम विशेष स्वाभाविक ही प्रकट होने लगते हैं। वसंत ऋतु में वृक्षों में वह खमीर गर्मी सर्दी के नियत प्रभाव से उत्पन्न होने लगता हैं। और सर्वत्र बाग खिले फूलों से भर जाता हैं। भूमि की गर्मी सर्दी के प्रभाव से ऐसी दशा स्वयं ही हो जाती हैं। स्वयं ही शंखपुष्पी आदि अनेक फूलवाली औषधीय निकल आती हैं।

ठीक ऐसे ही वसंत ऋतु में भूमि को यदि गर्भाशय मान ले तो कोई संशय नहीं होगा क्योंकि ऋतुओं के परिवर्तन का कारण जल गर्मी की कम ज्यादा इसी प्रकार आदि सृष्टि के समय पर पृथ्वी अत्यंत गर्म होती हैं। ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थ भी कहते हैं और हाल के वैज्ञानिक भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं।

जब पृथ्वी सूर्य से अलग हुई तब बहुत गर्म थी इस हेतु उसमें मनुष्यादि प्रजा का उत्पन्न होना विज्ञान समस्त नहीं होता इसलिए पृथ्वी का उचित तापमान बनाने हेतु वर्षा की गयी और उचित समय पर पृथ्वी और जल के सम्पर्क से मनुष्य आदि की उत्पत्ति से तीन चतुर्युगी पूर्व वृक्ष औषधियाँ आदि उत्पन्न हुई।

या औषिधी पूर्वा जाता देमयस्त्रियुग पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह शत धामानि सप्तच॥

ऋग्वेद 10.97.1)

औषधियां मनुष्य से तीन चतुर्युगी पूर्व उत्पन्न होती हैं।

ये सिद्धांतभूत नियम हैं। जो वेदों में इस विज्ञान के सम्बन्ध में पाये जाते हैं। सिद्ध ांतो को लेकर ब्राह्मण आदि ग्रंथो में विस्तार और क्रम आदि दिखलाया गया हैं।

तस्मादात्मन आकाश सम्भूत आकाशाद्वायु वायोरग्नि अग्नेराप अदभ्य पृथ्वी पृथिव्या औषधय औश्विम्यान्नम अन्नात्पुरुष। तै० उ० 2.1

अर्थात् :–परमात्मा की निमित्तता से प्रकृति से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु। वायु से अग्नि और अग्नि से जल। जल से पृथ्वी और पृथ्वी से औषधि। इनसे अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ।

यह एक वैज्ञानिक क्रम हैं। जो उपनिषद में वर्णित हैं। तो पृथ्वी में आदि सृष्टि के मनुष्य आदि प्रजा उत्पन्न करने के लिए वसंत आदि ऋतु में गर्भ आदि का उचित तापमान जब आया तब ईश्वर ने वीर्य को गर्भ (पृथ्वी) में धारण करवाया।

यहाँ वीर्य उस सामग्री का नाम हैं। जो गर्भ में भरूण बनाने में उपयोगी पदार्थ हैं। जैसे वीर्य में अनेक गुण (प्रॉपर्टीज) होते हैं। वैसे ही रज में होते हैं। और गर्भ में उचित तापमान होता हैं। जिससे गर्भ में भरूण बनता हैं।

यदि हमें 4 लोगों का भोजन बनाना हो तो नमक, हल्दी, मिर्च आदि मसाला सामान्य ही उपयोग होगा परन्तु यदि ज्यादा लोगो का खाना बनाना हो तो अवश्य ही ज्यादा हल्दी, मिर्च आदि मसाला प्रयुक्त होगा ठीक इसी प्रकार जब आदि सृष्टि के मनुष्य युवा अवस्था में उत्पन्न होते हैं। तब उत्तम और उचित वीर्य से उस अवस्था के मनुष्य उत्पन्न होते हैं। यदि विज्ञान रज–वीर्य आदि के गुण (प्रॉपर्टीज) ठीक प्रकार जांच लेवे तो वैज्ञानिक स्वयं स्वतंत्र रूप से वीर्य का निर्माण कर सकते हैं। मगर ऐसा होना अभी हाल के अनुसन्धानियों द्वारा संभव नहीं मगर विज्ञान ने इतनी तरक्की तो कर ही ली हैं कि कृत्रिम गर्भ को बना सके। आने वाले कुछ वर्षो में शायद ये तकनीक ठीक काम करने लगे ठीक इसी प्रकार यदि रज और वीर्य आदि के गुण धर्म (प्रॉपर्टीज) भी ज्ञात कर लेवे तो स्वतंत्र वीर्य वैज्ञानिक स्वयं निर्माण कर सकते हैं। और उचित समय पर जब गर्भ (पृथ्वी) में मनुष्यादि देह में जीव का संयोग ईश्वर को करना होता हैं। तब अग्नि आदि से जीव का शरीर से संयोग होता हैं और जगत में मनुष्य आदि प्रकट होते हैं।

अब कुछ लोग सोचेंगे ये युवा अवस्था में ही क्यों आदि सृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं। तो मित्रो इसका बहुत ही सुन्दर और सरल जवाब ऋषि ने सत्यार्थ में दिया हैं।

आदि सृष्टि में मनुष्य युवावस्था में उत्पन्न होता हैं क्योंकि जो बालक उत्पन्न होता तो उसके पालन के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में उत्पन्न करता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिए युवावस्था में ही आदि सृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

प्रकृति के परमाणुओं को इकट्ठा कर जो आकाश में कोहरे की भाँति बिखरे हुए थे। सबसे पहले परमपिता परमात्मा ने सूर्य, चांद, तारे, पृथ्वी आदि ग्रह उपग्रह बनाए फिर वनस्पति। अमीबा कोशिकीय जीव मेंढक मछली अन्य पशु–पक्षी को ईश्वर ने पैदा किया। जब सारी सृष्टि सज चुकी तो तिब्बत में मानुषी सृष्टि परमपिता परमात्मा द्वारा की गई। इसे अमैथुनी सृष्टि कहते हैं।

गर्भाशय से तात्पर्य एक ऐसे स्थान से हैं। जहाँ भ्रूण बन सके ऐसे स्थान पर उचित तापमान रहने से भ्रूण बनता हैं जिसका विकास उसी गर्भ में होता रहता हैं। वीर्य अर्थ हैं एक ऐसे मिश्रण का जिसके द्वारा गर्भाशय में स्थापना होने पर भ्रूण बन सके।

अभी वैज्ञानिकों ने कृत्रिम गर्भ तो बना लिया हैं। जो कुछ समय उपरांत शायद काम

भी करना शुरू कर देगा वीर्य बनाने के लिए उन प्रॉपर्टीज की आवश्यकता हैं। जिनसे भ्रूण बनता हैं। वैज्ञानी वीर्य की प्रॉपर्टीज को जांच परख कर रहे हैं। ये सभी कार्य वैज्ञानिक रीति से हैं। आजकल इस कार्य को क्लोनिंग कहते हैं। लेकिन अभी तक जो वैज्ञानी क्लोनिंग कर रहे हैं वो सम्बंधित जीव के ही शरीर का कुछ हिस्सा होता हैं। उससे क्लोनिंग होती हैं। मगर ईश्वर जो पूर्ण वैज्ञानिक हैं। वो धरती को गर्भ के रूप में प्रयोग करकर वीर्य (भ्रूण उत्पन्न मिश्रण) द्वारा आदि सृष्टि के जीवों का शरीर निर्माण करके बिजली अथवा अग्नि माध्यम से उस शरीर में जीव (आत्मा) का संयोग करता हैं।

वेद ईश्वर कृत हैं ?

ईश्वरीय ग्रंथ में गुण व लक्षण

हर मत पन्थ सम्प्रदाय के पास अपने ग्रन्थ हैं। जिन्हें वे ईश्वरीय ग्रंथ होने का दावा करते हैं। सनातन वैदिक धर्म के समान विश्व के सभी आस्तिक मत जैसे इस्लाम, ईसाई आदि ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता को मानते हैं। और साथ–साथ सभी अपने–अपने धर्म ग्रन्थों के ईश्वरीय ग्रन्थ होने का दावा भी करते हैं। परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में इन पुस्तकों को तर्क और प्रमाण की कसौटी पर परखा जाना चाहिये जिससे सच्चाई का पता लग सके।

ईश्वर कृत हैं का प्रमाण क्या हैं ?

प्रमाण : छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत (ऋ०10/90/9)

अर्थात् :– उस विराट् पुरुष (परमेश्वर) से अथर्ववेद और यजुर्वेद उत्पन्न हुए।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे (ऋ०10/90/9)

अर्थात् :– उस सर्वज्ञ ब्रह्म से ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए।

ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः (अथर्व०12/5/4)

अर्थात् :– ब्रह्म प्राप्तियोग्य ज्ञान और ब्रह्म परमेश्वर अधिपति हैं।

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्महीा। एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं रूहि कतमः स्विदेव सः ।। (अथर्व०10/7/74)

भावार्थ :–परमेश्वर की सत्ता से सृष्टि के आदि में उत्पन्न वेदार्थ द्रष्टा ऋषि और समस्त वेद– और समदर्शी स्वभाव स्थित हैं। सृष्टि के आदि में जिनका प्रकाश हुआ था। वे चार ऋषि इस प्रकार हैं। जिनसे क्रमशः चार वेद प्रकाशित हुए।

अग्नि–ऋग्वेद (स्तुति) आदित्य–सामवेद् (मोक्ष) वायु यजु और अंगीरा–म। (पूजनीय वाणी अर्थात् ब्रह्म वि अर्थात् अथर्ववेद)। ईश्वर से ही वेदोत्पत्ति होती है (यजु0 31/7)

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न वश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी॥

(ऋ01 / 105 / 16)

भावार्थ :–वेद ईश्वर कृत हैं। अतः देव मार्ग ही सत्य मार्ग है। मनुष्य सभी ग्रंथों में नश्वर व्यक्तियों अतीत के पराक्रमों सामायिक तथ्यों ऐतिहासिक पात्रों उनकी उपलब्धियों तथा जय पराजयों का वर्णन होता है। वेदों में किसी विशेष राष्ट्र या संस्कृति सभ्यता का उल्लेख नहीं है। परमेश्वर की वाणी अखिल ब्रह्मांड के लिए वेद हैं। ज्ञान का भंडार। वेद कहते हैं। कर्मशील बन। मत सम्प्रदायो के ग्रंथ पर निंदा पर आधारित है। वेद कहते हैं ईर्ष्या द्वेष निंदा हिंसा और कुटिल आचरण को त्यागो। मनुष्य बनो श्रेष्ठ बनो। वेद अमृत बाँटते हैं। और मेल जोल भाई चारे साथ–साथ खाने, साथ–साथ चलने और मिल बाँटकर जीने का संदेश देते हैं। ऐसी वाणी ईश्वरीय की ही हो सकती हैं।

धर्मग्रन्थः

हिंदू धर्म के पवित्र ग्रन्थों को दो भागों में बाँटा गया है– श्रुति और स्मृति। श्रुति हिन्दू धर्म वत Hindu Religion के सर्वोच्च ग्रन्थ हैं, जो पूर्णतः अपरिवर्तनीय हैं, अर्थात् किसी भी युग में इनमे कोई बदलाव नही किया जा सकता। स्मृति ग्रन्थों मे देश–कालानुसार बदलाव हो सकता है। श्रुति के अन्तर्गत वेद : ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद ब्रह्म सूत्र व उपनिषद् आते हैं। वेद श्रुति इसलिये कहे जाते हैं क्योंकि हिन्दुओं का मानना है कि इन वेदों को परमात्मा ने ऋषियों को सुनाया था, जब वे गहरे ध्यान में थे। वेदों को श्रवण परम्परा के अनुसार गुरू द्वारा शिष्यों को दिया जाता था। हर वेद में चार भाग हैं– संहिता कृ मन्त्र भाग, ब्राह्मण–ग्रन्थ कृ ग। भाग, जिसमें कर्मकाण्ड समझाये गये हैं, आरण्यक – इनमें अन्य गूढ़ बातें समझायी गयी हैं, उपनिषद् कृ इनमें ब्रह्म, आत्मा और इनके सम्बन्ध के बारे में विवेचना की गयी है।

अगर श्रुति और स्मृति में कोई विवाद होता है तो श्रुति ही मान्य होगी। श्रुति को छोड़कर अन्य सभी हिन्दू धर्मग्रन्थ स्मृति कहे जाते हैं, क्योंकि इनमें वो कहानियाँ हैं जिनको लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी याद किया और बाद में लिखा। सभी स्मृति ग्रन्थ वेदों की प्रशंसा करते हैं। इनको वेदों से निचला स्तर प्राप्त है, पर ये ज्यादा आसान हैं और अधिकांश हिन्दुओं द्वारा पढ़े जाते हैं (बहुत ही कम हिन्दू वेद पढ़े होते हैं)। प्रमुख स्मृतिग्रन्थ हैंः– इतिहास रामायण और महाभारत, भगवद गीता, पुराण, मनुस्मृति, धर्मशास्त्र और धर्मसूत्र, आगम शास्त्र। भारतीय दर्शन के 6 प्रमुख अंग हैं– साँख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त।

ईश्वरीय ग्रंथ की कसौटी

यदि निष्पक्ष दृष्टि से विचार करें तो किसी भी ईश्वरीय ग्रंथ में निम्न गुण व लक्षण होने चाहिये –

1. ग्रंथ का आविर्भाव मानव सृष्टि के आरम्भ में होना चाहिये।
2. ऐसी पुस्तक में मानवीय इतिहास नहीं होना चाहिये।
3. उसका ज्ञान सृष्टि विज्ञान के सत्य सनातन नियमों के अनुकूल व प्रकृति के गुणों तथा रहस्यों को खोलने वाला होना चाहिये।
4. उसका ज्ञान तर्क संगत विवेक पूर्ण वैज्ञानिक एवं विरोधाभास से मुक्त हो।
5. उसका ज्ञान आस्तिकों की दृष्टि से ईश्वर–जीव– प्रकृति के मूल गुणों एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या करने वाला हो।
6. वह पुस्तक समस्त भौतिक व मानवीय ज्ञान विज्ञान की आदि स्रोत हो।
7. उसका ज्ञान सार्वदैशिक सार्वभौमिक सर्वकालीन निष्पक्ष एवं प्राणी मात्र के लिये समान हितकारी हो।
8. वह विश्वभर के मानवों के लिये समान हो। उसमें जाति, नस्ल, रंग, देश, भाषा और लिंग के आधार पर भेद न हो।
9. वह पूर्व–पश्चिम, उत्तर–दक्षिण, गरीब–अमीर, गोरा–काला सभी प्रकार के भेद–भावों से मुक्त हो।
10. उसमें वर्ग द्वेष जाति द्वेष संकीर्णता एवं पाखण्ड नहीं होना चाहिये।

अतः स्पष्ट है कि वेद भगवान का निःश्वास हैं। यह मनुष्य द्वारा रचित नहीं हैं। इसलिए अपौरुषेय (immortal) कहलाते हैं। वेद ईश्वरीय कृत हैं। इसलिए किसी भी काल में उनका नाश (destruction) नहीं होता। प्रलय (Dissolution of world) के समय इनका तिरोहित (छिपा हुआ) होना ही माना जाता हैं। समाप्त होना नहीं। सर्ग के आरम्भ में प्रलय में तिरोधान (अंतर्धान) हुए वेदों को भगवान महाविष्णु प्रकट करते हैं। सर्वप्रथम ब्रह्माजी को और ब्रह्माजी के द्वारा ऋषियो को पुनः प्राप्त होते हैं। –ऋग्वेद–10/71/3

ये श्रुति कहलाते हैं। गहन ध्यान की अवस्था में व समाधि अवस्था में ही ये ऋषियों को प्राप्त होते हैं। ये मंत्र–दृष्टा ऋषि कहलाते हैं।

क्योंकि वेद गुरुद्वारा शिष्य को शिष्य द्वारा फिर अपने शिष्य को पाठ करके सुनाया जाता था। इसलिए यह ज्ञान गुरु–शिष्य परम्परा से हमारे पास तक पहुँचा। पूर्व में इन्हें लिपिबद्ध नहीं किया जाता था। अपितु बोलकर सुनकर ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलते थे।

वेद को ही प्रमाण क्यों मानें?

वेद को ही प्रमाण मानना चाहिए क्योंकि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान का कोष हैं। अतः ईश्वरीय वाणी होने से वेद ही सब सत्य का पुस्तक हैं। जो सत्य हैं वही प्रमाण होना चाहिए। मनुष्य गलतियाँ कर सकता हैं। क्योंकि वह अल्पज्ञ हैं अज्ञानी हैं उसका ज्ञान सीमित हैं। क्षमता सीमित हैं। और एक देशी अणु होने के कारण उसमें पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। ईश्वर सर्वज्ञ हैं। ईश्वर का ज्ञान पूर्ण हैं। सत्य हैं नित्य हैं अतः उसी के कहे को प्रमाण मानना ही ठीक हैं। इसलिए जो कुछ भी वेद में लिखा हैं। वह सब सत्य हैं। स्वतः प्रमाण हैं।

क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है?

पहले कुछ ही शब्दों में वेद का उद्देश्य समझना जरुरी है –वेद का उद्देश्य है – सृष्टि और मनुष्य तथा प्राणी जगत की रक्षा

वेद प्राचीन भारत के पवितत्रतम् साहित्य हैं जो हिन्दुओं के प्राचीनतम और आधारभूत धर्मग्रन्थ भी हैं। भारतीय संस्कृति में वेद सनातन वर्णाश्रमधर्म के मूल और सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं जिन्हें ईश्वर की वाणी समझा जाता है। ये विश्व के उन प्राचीनतम धार्मिक ग्रंथों में हैं जिनके पवित्र मन्त्र आज भी बड़ी आस्था और श्रद्धा से पढ़े–सुने जाते हैं।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में मानवमात्र के कल्याण के लिए दिया गया था। वेद वैदिक–संस्कृति के मूलाधार हैं। वे शिक्षाओं के आगार और ज्ञान के भण्डार हैं। वेद संसाररूपी सागर से पार उतरने के लिए नौकारूप हैं। वेद में मनुष्य जीवन की सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान है। वेद धर्म की मूल पुस्तक है। वेद वैदिक विज्ञान, राष्ट्रधर्म, समाज–व्यवस्था, पारिवारिक–जीवन, वर्णाश्रम–धर्म, सत्य, प्रेम, अहिंसा, त्याग आदि को दर्पण की भाँति दिखाता है।

वेद ईश्वर द्वारा ऋषियों को सुनाए गए ज्ञान पर आधारित है इसीलिए इसे श्रुति कहा गया है। सामान्य भाषा में वेद का अर्थ होता है ज्ञान। वेद पुरातन ज्ञान विज्ञान का अथाह भंडार है। वेदों में ब्रह्म (ईश्वर), देवता, ब्रह्मांड, ज्योतिष, गणित, रसायन, औषधि, प्रकृति, खगोल, भूगोल, धार्मिक नियम, इतिहास, रीति–रिवाज आदि लगभग सभी विषयों से सम्बंधित ज्ञान भरा पड़ा है।

वेद उस एक परमेश्वर का वाक्य है जिसे ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म ने ऋषियों को वेद का ज्ञान सुनाया था इसलिए वेदों को श्रुति भी कहा गया है। ऋषियों ने जब इस ज्ञान को सुनकर दूसरे ऋषियों और राजाओं को सुनाया और उन ऋषियों एवं राजाओं ने अपनी–अपनी समझ के अनुसार उसे लिपिबद्ध किया या लोगों को समझाया तो वह स्मृति ज्ञान हो गया। वेदों को छोड़कर सभी ज्ञान स्मृति के अंतर्गत आते हैं। वेद में किसी भी

प्रकार की काट–छाँट या जोड़–घटाव नहीं किया गया और हो भी नहीं सकता, क्योंकि वेद कुछ विशेष छंदों बद्ध है जिसमें हेरफेर करना असम्भव है।

2. ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक में किसी देश का भूगोल और इतिहास नहीं होना चाहिए।

ईश्वरीय ज्ञान की धर्म पुस्तक सम्पूर्ण मानव जाति के लिए होनी चाहिए ना कि किसी एक विशेष देश के भूगोल या इतिहास से सम्बंधित होनी चाहिए। अगर कुरान का अवलोकन करे तो हम पाते हैं की विशेष रूप से अरब देश के भूगोल और मुहम्मद साहिब के जीवन चरित्र पर केन्द्रित हैं, जबकि अगर हम बाइबल का अवलोकन करे तो विशेष रूप से फिलिस्तीन (च्संमेजपदम) देश के भूगोल और यहुदिओं (श्रमू) के जीवन पर केन्द्रित हैं, जिससे यह निष्कर्ष निकलता हैं की ईश्वर ने कुरान की रचना अरब देश के लिए और बाइबल की रचना फिलिस्तीन देश के लिए की हैं। वेद में किसी भी देश विशेष या जाति विशेष के अथवा व्यक्ति विशेष के लाभ के लिए नहीं लिखा गया हैं अपितु उनका प्रकाश तो सकल मानव जाति के लिए हुआ हैं। अतः केवल वेद को ही ईश्वरीय ज्ञान माना जा सकता हैं।

3. ईश्वरीय ज्ञान किसी देश विशेष की भाषा में नहीं आना चाहिए।

ईश्वरीय ज्ञान मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए दिया गया हैं, अतः उसका प्रकाश किसी देश विशेष की भाषा में नहीं होना चाहिए। किसी देश विशेष की भाषा में होने से केवल वे ही देश उसका लाभ उठा सकेगे, अन्य को उसका लाभ नहीं मिलेगा। कुरान अरबी में हैं और बाइबल इब्रानी (भ्मइतमू) में हैं जबकि वेदों की भाषा वैदिक संस्कृत हैं जो की सृष्टी की प्रथम भाषा हैं और सृष्टी की उत्पत्ति के समय किसी भी भाषा का अस्तित्व नहीं था तब वेदों का उद्भव वैदिक भाषा में हुआ जो की पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों की सांझी भाषा थी। कालांतर में संसार की सभी भाषाएँ संस्कृत भाषा से ही अपभ्रंश होकर निकली हैं। स्वामी दयानंद सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में इसी विचार को इस प्रकार प्रकट करते हैं "जो किसी देशभाषा में करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता उसको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने–पढ़ाने की होती। इसलिए संस्कृत में ही प्रकाश किया जो की किसी देश की भाषा नहीं थी। उसी में वेदों का प्रकाश किया। जैसे ईश्वर की पृथ्वी आदि सृष्टी सब देश और देशवालों के लिए एक सी हैं वैसे ही परमेश्वर की भाषा भी एक सी होनी चाहिए जिससे सब देश वालों को पढने पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती सिद्ध नहीं होते और सब का कारण भी हैं "इसलिए संसार की वैदिक भाषा संस्कृत में प्रकाशित होने के कारण भी वेद ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक हैं।

4. ईश्वरीय ज्ञान को बार बार बदलने की आवश्यकता या परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

ईश्वर पूर्ण और सर्वज्ञ हैं। उनके किसी भी काम में त्रुटी अथवा कमी नहीं हो सकती। वे अपनी सृष्टी में जो भी रचना करते हैं उसे भली भाँति विचार कर करते हैं और फिर उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस प्रकार ईश्वर नें सृष्टी के आरम्भ में प्राणीमात्र के कल्याण के लिए सूर्य और चंद्रमा आदि की रचना करी जिनमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं हैं उसी प्रकार परमात्मा का ज्ञान भी पूर्ण हैं उसमे भी किसी भी प्रकार के परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं हैं। धर्म ग्रंथों में बाइबल में कई स्थानों पर ऐसा वर्णन आता हैं की परमेश्वर ने अपनी भूल के लिए पश्चाताप किया।

बाइबल में भिन्न–भिन्न पर ऐसा वर्णन आता हैं की परमेश्वर ने अपनी भूल के लिए पश्चाताप किया। बाइबल के विषय में यह भी आता हैं की बाइबल के भिन्न–भिन्न भाग भिन्न–भिन्न समयों पर आसमान से उतरे। इसी प्रकार मुसलमान अभी तक ये मानते हैं की ईश्वर ने पहले जबूर, तौरेत, इंजील के ज्ञान प्रकाशित करे फिर इनको निरस्त कर दिया और अंत में ईश्वर का सच्चा और अंतिम पैगाम कुरान का प्रकाश हुआ। एक और शंका हमारे मन में आती हैं इस्लाम को मानने वाले कुरान को ईश्वर की अंतिम वाणी मानते हैं और यह कहते हैं की इस अंतिम सन्देश के बाद ईश्वर की ओर से और कोई सन्देश नहीं आयेगा। हमारा उनसे एक छोटा सा प्रश्न हैं की किस आधार पर वे कुरान को अंतिम उपदेश कह रहे हैं। जिस आधार पर वे ईश्वरीय ज्ञान को बार–बार तरोताजा करने की बात कर रहे हैं ऐसा क्या कारण हैं की कुरान के नाजिल होने के बाद उस ज्ञान को तरोताजा करने की आवश्यकता नहीं रहती।

5. ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि कर्म के विरूद्ध नहीं होना चाहिए।

ईश्वर सृष्टि के कर्ता हैं और उनके द्वारा रची गयी सृष्टि में एक निश्चित क्रम पाया जाता हैं, सर्वत्र एक व्यवस्था और नियम कार्य करता हुआ दिखाई देता हैं। जैसे सूर्य का पूर्व से निकलना, पश्चिम में अस्त होना, मनुष्य का जन्म लेना और फिर मृत्यु को प्राप्त होना आदि। इतनी विशाल सृष्टि व्यवस्था को चलाने के लिए एक नियम से क्रमबंद्ध किया गया हैं जिससे सृष्टि सुचारू रूप से चल सके। अतः ईश्वर द्वारा दिया गया ज्ञान उन नियमों के विपरीत नहीं हो सकता, जो नियम परमात्मा की सृष्टि में चल रहे हैं। जो पुस्तक अपने को ईश्वरीय ज्ञान कहती हैं उसमे भी सृष्टिक्रम के विपरीत, सृष्टि में चल रहे नियमों के विपरीत कोई बात नहीं पानी चाहिए। ईश्वरीय ज्ञान कहलाने वाले बाइबल और कुरान दोनों में ईश्वर के सृष्टिक्रम के विरुद्ध बातें पाई गयी हैं।

जैसे बाइबल के अनुसार ईसा मसीह मरियम के पेट से बिना किसी पुरुष के संयोग से ही उत्पन्न हो गए थे। ईसा मसीह ने मुर्दों को जीवित कर दिया था, अंधे को आँखे दे दी और बिना किसी औषधि के बीमारों को दुरुस्त कर दिया था आदि।

ऐसे ही कुरान के अनुसार मूसा ने एक पत्थर पर डंडा मारा और उससे पानी के चश्मे बह निकले, मुहम्मद साहिब द्वारा चाँद के दो टुकड़े करना, मुहम्मद साहिब द्वारा एक मुर्दा लड़की को जिन्दा करना आदि। इस प्रकार की ऐसी कोई भी पुस्तक अगर सृष्टि क्रम के विरुद्ध किसी भी चमत्कार को ईश्वर के कार्य अथवा महिमा के रूप में चित्रित करती हैं तो उसे ईश्वरीय ज्ञान नहीं कहना चाहिए।

ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए।

ईश्वरीय ज्ञान की एक कसौटी हैं कि उसमें ईश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव के विपरीत कोई भी बात नहीं पायी जानी चाहिए। ईश्वर सत्यस्वरूप, न्यायकारी, दयालु, पवित्र, शुद्ध–बुद्ध मुक्त स्वभाव, नियंता, सर्वज्ञ आदि गुणों वाला हैं। ईश्वरीय ज्ञान में ईश्वर के इन गुणों के विपरीत बातें नहीं लिखी होनी चाहिए. बाइबल, कुरान आदि धर्म ग्रंथों में कई ऐसी बातें हैं जो कि ईश्वर के गुणों के विपरीत हैं। जैसे बाइबल में एक स्थान पर आता हैं कि बाइबल के ईश्वर ने भाषाओ की गड़बड़ इसलिए कर दी ताकि लोग आपस में लड़ते रहें। क्या ईश्वर का कार्य लड़वाना हैं?

बिना मुख ईश्वर ने वेद ज्ञान कैसे दिया?

ऋषियों, महर्षियों व पौराणिकों की इस बात पर सहमति है कि वेद सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने चार ऋषियों को दिए। वेद अपौरुषेय हैं। ईश्वर ने वेद, अग्नि, वायु, आदित्य व अंगीरा – इन चार ऋषियों के लिए नीचे गिराए, फिर प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि ईश्वर जब निराकार है तो बिना मुख व वाणी वाले ईश्वर ने ज्ञान कैसे दिया?

इस प्रश्न पर हम विस्तार से चर्चा करते हैं।

आप जानते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक है, शरीर रहित है–

सः पर्यगाच्छुक्रमकायम।

–यजुर्वेद 40/8

अर्थात् वह ईश्वर सर्वत्र गया हुआ,व्यापक है, शक्तिशाली है, शीघ्रकारी है, काया रहित है, सर्वान्तर्यामी है। इन गुणों के कारण ही ईश्वर ने चार ऋषियों के मन में वेद ज्ञान स्थापित कर दिया था। वह सर्वशक्तिमान् भी है, जिसका अर्थ यही है कि वह अपने करणीय कार्य बिना किसी अन्य की सहायता स्वयं ही करता है। बिना हाथ–पैर के ईश्वर अति विस्तृत संसार, गहरे समुद्र, ऊँचे–ऊँचे पर्वत, रंग–बिरंगे पुष्प, गैसों के

भण्डार, सहस्रों सूर्य व शीतल चन्द्रमा बना सकता है तो सब पदार्थों व सब आत्माओं में उपस्थित अन्तर्यामी ईश्वर बिना मुख वेद ज्ञान क्यों नहीं दे सकता?

गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है–

बिनु पग चले सुने बिनु काना।
कर बिनु कर्म करे विधि नाना।।

"हमारे मन में मुखादि अवयव नहीं है, तथापि उसके भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण मानस व्यापार में होता है, वैसे ही परमेश्वर में भी जानना चाहिए।'' जैसे मनुष्य शरीर से श्वांस बाहर निकालता तथा पुनः श्वांस भीतर ले लेता है, इसी प्रकार ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में वेदों को प्रकाशित करता है। प्रलयावस्था में वेद नहीं रहते, परन्तु ईश्वर के ज्ञान में वेद सदैव बने रहते हैं। वह ईश्वर कि है। वह सर्वशक्तिमान् व अन्तर्यामी है, मुख और प्राणादि बिना भी ईश्वर में मुख व प्राणादि के करने योग्य कार्य करने का सामर्थ्य है।

जब भी हम कोई कार्य करने लगते हैं, तब मन के भीतर से आवाज–सी उठती है। वह कहती है–यह पाप कर्म है अथवा पुण्य कर्म है। यह आवाज बिना कान हम सुनते हैं, क्योंकि यह आवाज बाहर से नहीं आती। यह आवाज विचार के रूप में आती है। यह कार्य शरीरधारी व्यक्ति नहीं करता, न ही कर सकता है। यदि कोई शरीरधारी यह कार्य करेगा तो कर नहीं सकेगा, क्योंकि उसे मुख की आवश्यकता रहेगी।

महर्षि दयानन्द जी ''अथ वेदोत्पत्ति विषय'' अध्याय में यह भी लिख गए हैं–'किसी देहधारी ने वेदों को बनाने वाले को साक्षात् कभी नहीं देखा, इससे जाना गया कि वेद निराकार ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं।

अग्नि, वायु, आदित्य और अंगीरा– इन चारों मनुष्यों को जैसे वादित्र (बाजा) को कोई बजावे, काठ की पुतली को चेष्टा करावे, इसी प्रकार ईश्वर ने उनको निर्मित मात्र किया था।

इस विषय में एक अन्य उदाहरण है– जैसे कि आप कहीं नमक भरा एक ट्रक खड़ा कर दीजिए, परन्तु एक भी चींटी उसके पास नहीं आएगी। इसके विपरीत यदि एक चम्मच खाण्ड या मधु रखेंगे तो दो–चार मिनटों में ही कई चींटियाँ वहाँ आ जाएगी। मनुष्य तो चखकर ही जान पाता है कि नमक यह है तथा खाण्ड वह है, परन्तु चींटियों को यह ज्ञान बिना चखे होता है। ईश्वर बिना मुख उन्हें यह ज्ञान देता है। आपने चींटियों को पंक्तिबद्ध एक ओर से दूसरी ओर जाते देखा होगा। चलते–चलते वे वहाँ रुक जाती हैं, जहाँ आगे पानी पड़ा होता है अथवा बह रहा होता है। क्यों? पानी में बह जाने का, मर जाने का उन्हें भय होता है। प्राण बचाने हेतु पानी में न जाने का ज्ञान उन्हें निराकार ईश्वर ही देता है। मुख से बोलकर ज्ञान देने का प्रश्न वहाँ भी लागू नहीं

होता, क्योंकि ईश्वर काया रहित है तो मुख से बोलेगा कैसे ? वह तो चींटियों के मनों में वांछनीय ज्ञान डालता है।

ईश्वर सबमें है तथा सबमें ईश्वर है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा सर्वान्तर्यामी है। उसके साथ बात करने के लिए मनुष्य को मुख की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा न ही ईश्वर को हमसे बात करने के लिए मुख की अपेक्षा है। वेद का ज्ञान ईश्वर ने 4 ऋषियों को उनके मनों में बिना मुख दिया था।''

क्या वेदों में इतिहास हैं?

उत्तर : वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ है। वेद अपौरुषेय है। कारण?

- वेदों में नदियों, पहाड़ों, राजाओं के नाम नहीं है।
- वेदों में राजाओं का कोई इतिहास नहीं है।
- वेदों में किसी भी राजा की वंशावली नहीं है।
- पुराण वेदों की अपेक्षा अर्वाचीन हैं।
- पुराणकार ऋषि नहीं थे। पुराणों में कुछ ऐतिहासिक तथ्य अवश्य है परंतु पूर्णतः सत्य नहीं है।

विद्वानों का यह अटूट विश्वास है कि आदि सृष्टि के समय मनुष्य को परमात्मा की ओर से ज्ञान की प्रेरणा हुई। वही ज्ञान वेद है, परंतु वेदों की इतनी लम्बी प्राचीनता पर, उनकी आदिकालीनता पर तथा अपौरुषेयता पर अनेक विद्वानों को विश्वास नहीं है। वे कहते हैं कि वेदों में जिन ऐतिहासिक नामों का उल्लेख पाया जाता है और ज्योतिष सम्बन्धी जिन घटनाओं के संकेत पाए जाते हैं उनसे वेदों का समय प्राचीनतम पुस्तक के सम्बन्ध में सिद्ध नहीं होता। परंतु इस आरोप में कोई बल नहीं है क्योंकि वेदों में ऐतिहासिक अथवा ज्योतिष संबंधी किसी भी घटना का उल्लेख नहीं है। जिससे वेदों की आदिकालीनता पर यह आक्षेप किया जा सके। क्योंकि आर्यों की लिखित सभ्यता बहुत अधिक प्राचीन प्रमाणित है। जो यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने सम्राट चंद्रगुप्त के समय में स्वयं अपनी पुस्तकों में उल्लेख किया है।

भ्रान्ति का मुख्य कारण है वेदों की अलंकारिक भाषा का अनुचित अध्ययन, अनुशीलन, परिशीलन एवं विश्लेषण। राजाओं और नदियों आदि के वर्णन जो वेद में आए हैं वह सभी अलंकारिक हैं।

क्या वेदों में इतिहास हैं?

इस विषय में वैदिक विद्वान विश्वप्रिय जी का विचार इस प्रकार है – वेद में इतिहास

है और वेद में इतिहास नहीं है। विचारणीय है की एक ही प्रश्न के दो उत्तर क्यों है तो इसको समझना जरुरी हो जाता है कि वेद में कौन सा इतिहास कौन सा है और कौन सा इतिहास नहीं है।

इतिहास दो प्रकार के होते हैं। (1) नित्य इतिहास (2) अनित्य इतिहास

(1) नित्य–इतिहास का अर्थ होता है सृष्टि उत्पत्ति का इतिहास या पदार्थ का इतिहास। सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई, सृष्टि उत्पत्ति का क्रम क्या था? आदि का वर्णन नित्य इतिहास में आता है और वह वेद में दिया हुआ है इसलिए यह कहना सही है कि वेद में इतिहास है। ओषजन (प्राणवायु=वलहमद) और हाइड्रोजन के दो तत्त्व मिलने पर पानी बनता है और यह सूत्र फार्मूला नित्य इतिहास है। वर्तमान सृष्टि में और अगली या पिछली सृष्टि में यह सामान्य रहेगी। आग जलाने पर गर्मी लगती है यह नित्य इतिहास है।

(2) अनित्य–इतिहास :– इसमें राजाओं, स्थान–विशेष, घटना–विशेष का इतिहास आता है जो कि अनित्य है। इस सृष्टि में घटी घटना अगली सृष्टि में नहीं होगी या उसका स्वरुप अलग ही होगा। इस अनित्य इतिहास का वर्णन वेद में नहीं है।

नित्य–अनित्य इतिहास के अन्तर को समझने के बाद भी यदि कोई व्यक्ति "अनित्य–इतिहास" को वेद में मानता ही हो तो उसे सामने से प्रश्न करना चाहिए कि आप वेद में कब तक का, किस काल–खण्ड तक का इतिहास मानते हैं ? इस प्रश्न के सामने या तो व्यक्ति निरुत्तर हो जाता है अथवा किसी काल–खण्ड विशेष की बात कर देगा और बतायेगा कि कुछ हजार वर्ष पूर्व ही वेद की रचना की गयी, सिन्धु नदी के तट पर विविध ऋषियों के काव्यों का संग्रह है आदि–आदि।

यदि हम इसका आधार पूछेंगे तो वह बतायेगा कि देखो वेद में मनुस्मृति के प्रवचनकार मनु का उल्लेख है, या वेद में ऋषभ–देव जी का नाम आया है जो कि प्रथम जैन–तीर्थंकर थे, या दूसरा व्यक्ति कहेगा कि देखो श्री–कृष्ण या राम आदि का नाम वेद में आता है, कुछ व्यक्ति कह सकते हैं ईसा–मसीह का नाम यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय (40वें) के प्रथम मन्त्र में दिखा देते हैं, कोई व्यक्ति यजुर्वेद 40/8 में कबीर को बतला देता है । कुछ लोग वेद में मदीना और कलमा भी दिखा देते हैं।

ऐसी दुविधापूर्ण स्थिति में सामान्य व्यक्ति के लिए निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है लेकिन विवेकशील व्यक्ति जानता है कि वेद में नित्य–इतिहास ही है, अनित्य इतिहास का वर्णन नहीं अतः उपर्युक्त पुरुषों के नाम वेद में होते हुए भी ये सब ध्वनि–साम्य होने से महत्त्व के नहीं हैं, ऐतिहासिक नहीं हैं ।

मनुस्मृति में कहा है

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।

(मनु स्मृति)

मनुस्मृति के श्लोक (1/21) के अनुसार "संसार की सारी वस्तुओं के नाम, कर्मों के नाम का मूल–आदि–स्रोत वेद है"

अतः अपनी जिद्द या अज्ञानता, कुतर्क को त्याग कर सत्य को स्वीकार करना ही उचित है और कहना चाहिए की वेद में नित्य इतिहास ही है, अनित्य इतिहास नहीं है।

यह सत्य है कि वेदों में ऐतिहासिक राजाओं का वर्णन नहीं है और न वेदों में किसी ज्योतिष की घटना का उल्लेख है। वेदों से इस प्रकार का समय निश्चित करने का अवसर पुराण वालों ने ही दिया है क्योंकि पुराणों ने राजाओं की नामावलियों को वंशावली बनाकर और वैदिक अलंकारों को राजाओं के इतिहास के साथ जोड़कर ऐसा झंझट पैदा कर दिया है कि क्या वेदों में किसी इतिहास या ज्योतिष घटना का उल्लेख है।

प्रश्न 1- वेदों में इतिहास मानने में क्या कठिनाई है?

समाधान– वेद शाश्वत हैं। वेदों में सृष्टि रचना, वेद रचना आदि नित्य इतिहास हो सकता है, किन्तु किसी व्यक्ति विशेष का इतिहास नहीं हो सकता । इस सृष्टि के आदि में चारों वेद ऋषियों के हृदय में प्रकाशित हुए। वेद ज्ञान का भी दूसरा नाम है। वेदों के माध्यम से ईश्वर द्वारा समस्त मानव जाति को ज्ञान प्रदान किया गया जिससे वह अपनी उत्पत्ति के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। यह ज्ञान ईश्वर द्वारा जिस प्रकार से वर्तमान सृष्टि में प्रदान किया गया उसी प्रकार से पूर्व की सृष्टियों में भी दिया जाता रहा और आगे आने वाली सृष्टियों में भी दिया जायेगा। जिस ज्ञान का उपदेश परमात्मा द्व ारा सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को दिया गया उसमें किसी भी प्रकार का इतिहास नहीं हो सकता। क्योंकि इतिहास किसी रचना में उससे पूर्वकाल में उत्पन्न मनुष्यों का हुआ करता है। सृष्टि के आरम्भ में जब कोई मनुष्य ही नहीं था फिर उनका किसी भी प्रकार का इतिहास वेदों में पहले से ही वर्णित होना सम्भव ही नहीं है। मनुष्य का ऐतिहासिक क्रम वेदों की उत्पत्ति के पश्चात ही आरम्भ होता है।

जो लोग वेदों में श्री राम, कृष्ण आदि का इतिहास मानते है। क्या वे यह भी मानेगे की हर सृष्टि में श्री राम को वनवास का कष्ट भोगना पड़ा? क्या हर सृष्टि में सीता हरण हुआ? क्या हर सृष्टि में कृष्ण को कारागार में जन्म लेना पड़ा? क्या हर सृष्टि में यादवकुल का नाश हुआ? नहीं ऐसा कदापि सम्भव नहीं हैं। ईश्वर द्वारा सभी सांसारिक वस्तुओं के नाम वेद से लेकर रखे गए हैं, न कि इन नाम वाले व्यक्तियों या वस्तुओं

के बाद वेदों की रचना हुई है। जैसे किसी पुस्तक में यदि इन पंक्तियों के लेखक का नाम आता है तो वह इस लेखक के बाद की पुस्तक होगी। इस विषय में मनुस्मृति की साक्षी भी है।

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

मनुस्मृति

अर्थात ब्रह्मा ने सब शरीरधारी जीवों के नाम तथा अन्य पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव नामों सहित वेद के अनुसार ही सृष्टि के प्रारम्भ में रखे और प्रसिद्ध किये और उनके निवासार्थ पृथक्–पृथक् अधिष्ठान भी निर्मित किये।

प्रश्न 2- वेदों में इतिहास होना कैसे प्रचलित हुआ?

समाधान– वेदों की सर्वानुक्रमणियों तथा बृहमदेवता आदि ग्रंथों में वेदमंत्रों और सूक्तों के छन्दों, ऋषियों और देवताओं आदि का परिगमन किया गया है। इन ग्रंथों में अनेक वेदमंत्रों और सूक्तों के साथ अनेक कथा और कहानियों का भी सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। सायणचार्य आदि भाष्यकारों ने अपने भाष्यों में उन्हीं कहानियों को आधार बनाकर वेदों में इतिहास प्रचलित कर दिया। जहाँ भी उन वेदमंत्रों में भारत के इतिहास में वर्णित किसी प्राचीन ऋषियों और राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता, भाष्यकर्ता उन्हीं नामों को आधार बनाकर कहानियों की रचना कर देते थे। जैसे वेदमंत्र उनके जीवनवृतान्त का वर्णन कर रहे हो। इन कहानियों को पढ़कर न केवल अनेक भ्रांतियां उत्पन्न होती हैं। अपितु उससे वेद के प्रति अनादर एवं अश्रद्धा की भावना उपजती हैं। विदेशी विद्व ानों जैसे मैक्समूलर, ग्रिफ्फिथ आदि की वेदों के प्रति तुच्छता और सारहीनता की भावना भी इन्हीं मनगढ़त एवं हास्यपद कहानियों के कारण हुई। वर्तमान के भारतीय लेखक भी उन्हीं का अनुसरण करते हुए वेदों के प्रति अनास्था का प्रदर्शन करने में पीछे नहीं रहते। यह वेदों का दोष नहीं हैं अपितु उन भारतीय वेदभाष्यकारों और सर्वानुक्रमणियों के लेखकों का दोष हैं। जिनके अज्ञान से वेदों में इतिहास होना प्रचलित हुआ।

प्रश्न 3- स्वामी दयानंद की वेदों में इतिहास के सम्बन्ध में क्या मान्यता है?

समाधान– आधुनिक भारत में स्वामी दयानंद प्रथम चिंतक है जो वेदों में इतिहास को नहीं मानते। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी लिखते है– ''इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्में पश्चात होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं। किन्तु जिस जिस शब्द से का बोध होवे, उस उस शब्द का प्रयोग किया हैं। किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा या विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं है। ''

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में भी स्वामी जी लिखते है– इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदों में सत्य अर्थों के वाचक शब्दों से सत्य का प्रकाश किया है, लौकिक इतिहास का नहीं। इससे जो सायणाचार्य आदि लोगों ने अपनी–अपनी बनायीं टीकाओं में वेदों में जहाँ–तहाँ इतिहास वर्णन किये हैं, वे सब मिथ्या हैं।

यजुर्वेद का उदहारण देकर स्वामी जी सिद्ध करते हैं कि वेदों की संज्ञाएँ यौगिक हैं, रूढ़ नहीं हैं। इस मंत्र में जमदग्नि, कश्यप मुनियों और इन्द्रादि देवों का उल्लेख मिलता है। दूसरे भाष्यकर्ता इस मंत्र में इतिहास की खोज करते हैं। जबकि स्वामी दयानंद जमदग्नि से चक्षु, कश्यप से प्राण एवं देव से विद्वान मनुष्यों का आशय प्रस्तुत करते हैं। स्वामी जी अर्थ करते हैं की हमारे चक्षु और प्राण तिगुनी आयु वाले हो और देव विद्व ान लोग जैसे ब्रह्मचर्य आदि द्वारा दीर्घ आयु को प्राप्त करते है। वह हमें भी प्राप्त हो। इसी क्रम से स्वामी दयानंद ने सभी वेद मन्त्रों का भाष्य किया है, जिसमें इतिहास का कोई वर्णन नहीं मिलता है। स्वामी दयानंद ने पुरातन ऋषि–महर्षियों को अपनाया तथा व्याकरण, निरुक्त एवं ब्राह्मण ग्रन्थादि के आधार पर यौगिक प्रक्रिया को अपनाकर अपने वेदभाष्य में यह स्पष्ट कर दिया कि वेदों में व्यक्तिवाचक लगने वाले शब्द वस्तुतः विशेषण ावाची हैं तथा किन्हीं गुण–विशेषों का बोध कराते हैं।

वेदों में नदियों के अस्तित्व है

वेदों में पुरुरवा, आयु, नहुष, ययाति, वशिष्ठ, जमदग्नि, गंगा ,जमुना, अयोध अयोध्या, ब्रज और अरव आदि नाम है । वेदों में नदियों के अस्तित्व को मानने में क्या कठिनाई हैं।

समाधान– वेद में सरस्वती, गंगा, यमुना, कृष्ण आदि ऐतिहासिक शब्द आते हैं। पर ये ऐतिहासिक वस्तुओं या व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। वेद में इनके अर्थ कुछ और हैं। वेद के अर्थ समझने के लिए हमारे पास प्राचीन ऋषियों के प्रमाण हैं। निघण्टु में वाणी के 57 नाम हैं, उनमें से एक सरस्वती भी है। अर्थात् सरस्वती का अर्थ वेदवाणी है। ब्राह्मण ग्रंथ वेद व्याख्या के प्राचीनतम ग्रंथ है। वहाँ सरस्वती के अनेक अर्थ बताए गए हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

1. वाक् सरस्वती।। वाणी सरस्वती है ।
2. वाग् वै सरस्वती पावीरवी।। पावीरवी वाग् सरस्वती है ।
3. जिह्वा सरस्वती।। जिह्वा को सरस्वती कहते हैं।
4. सरस्वती हि गौः।। वृषा पूषा। गौ सरस्वती है अर्थात् वाणी, रश्मि, पृथ्वी, इन्द्रिय आदि। अमावस्या सरस्वती है। स्त्री, आदित्य आदि का नाम सरस्वती है।
5. अथ यत् अक्ष्योः कृष्णं तत् सारस्वतम्।। आँखों का काला अंश सरस्वती का रूप है।

6. अथ यत् स्फूर्जयन् वाचमिव वदन् दहति। अग्नि जब जलता हुआ आवाज करता है, वह अग्नि का सारस्वत रूप है ।
7. सरस्वती पुष्टिः, पुष्टिपत्नी। सरस्वती पुष्टि है और पुष्टि को बढ़ाने वाली है।
8. एषां वै अपां पृष्ठं यत् सरस्वती। जल का पृष्ठ सरस्वती है।
9. ऋक्सामे वै सारस्वतौ उत्सौ। ऋक् और साम सरस्वती के स्रोत हैं।
10. सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्ररूपम्। सरस्वती वज्र का दूसरा रूप है।

ऋग्वेद के 6/61 सूक्त का देवता सरस्वती है। स्वामी दयानन्द ने यहाँ सरस्वती के अर्थ विदुषी, वेगवती नदी, वियुक्त स्त्री, विज्ञानयुक्त वाणी, विज्ञानयुक्ता भार्या आदि किये हैं।

सरस्वती शब्द को एक विशेष नदी मानकर भाष्यकार किस प्रकार भ्रम में पड़े हैं, जैसे एक झूठ को सिद्ध करने के लिए हजार झूठ बोले जा रहे हों, इसका एक उदाहरण ऋग्वेद के इस मंत्र से समझा जा सकता है–

एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्यः आ समुद्रात।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषायख।

सायणाचार्य ने यहाँ सरस्वती को एक विशेष नदी माना और कल्पना के घोड़े पर सवार हो गए। वे इसका अर्थ करते हैं– (नदीनां शुचिः) नदियों में शुद्ध (गिरिभ्यः आसमुद्रात् यती) पर्वतों से समुद्र तक जाती हुई (एका सरस्वती) एक सरस्वती नदी ने (अचेत) नाहुष की प्रार्थना जान ली और (भुवनस्य भूरेः रायः चेतन्ती) प्राणियों को बहुत से धर्म सिखाती हुई (नाहुषाय घृतं पयो दुदुहे) नाहुष राजा के एक हजार वर्ष के यज्ञ के लिए पर्याप्त घी दूध दिया।

यहाँ नहुष के अर्थ पर विचार न करने के कारण इस इतिहास की कल्पना करनी पड़ी। निघण्टु के अनुसार मनुष्य के 25 पर्याय हैं उनमें एक नहुष भी है। घृतं, पयः भी वेद है।

आर्ष वेदार्थ शैली के अनुसार इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है–

(एका नदी शुचिः गिरिभ्यः आसमुद्रात् यती) जैसे एक नदी गिरियों से शुद्ध पवित्र जल वाली समुद्र तक जाती हुई जानी जाती है। उसी प्रकार (सरस्वती एका) एक अद्वितीय सर्वश्रेष्ठ उत्तम ज्ञानवाली प्रभु वाणी (गिरिभ्यः) ज्ञानोपदेष्टा गुरुओं से (आ समुद्रात) जनसमूहरूप सागर तक प्राप्त होती हुई जानी जाती है। अर्थात् उससे लोग ज्ञान प्राप्त करें। वह (भुवनस्य भूरे चेतन्ती) संसार और जन्तु जगत् को प्रभूत ऐश्वर्य का ज्ञान कराती हुई (नाहुषाय) मनुष्य मात्र को (घृतं पयः दुदुहे) प्रकाशमय, पान करने योग्य रस के तुल्य ज्ञान रस को बढ़ाती है।

प्रकरणवश एक मंत्र पर और विचार करना उचित होगा, जिसमें गंगा आदि दस नदियों के नाम बताए गए हैं।

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥

स्वामी दयानन्द के अनुसार इडा, पिंगला , सुषुम्णा और कूर्मनाड़ी आदि की गंगा आदि संज्ञा है। योग में धारणा आदि की सिद्धि के लिए और चित्त को स्थिर करने के लिए इनकी उपयोगिता स्वीकार की गई है। इन नामों से परमेश्वर का भी ग्रहण होता है। उसका ध्यान दुःखों का नाशक और मुक्ति को देने वाला होता है। इस मंत्र के प्रकरण में पूर्व से भी ईश्वर की अनुवृत्ति है।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता हैं कि

1. वेद में सरस्वती नाम अनेक स्थानों पर आया है।
2. वेद में सरस्वती का उल्लेख नदी के रूप में भी आया है।
3. वेद में सरस्वती का उल्लेख धरती के किसी स्थान विशेष पर बहने वाली नदी के रूप में नहीं आया है। न ही वेद में सरस्वती से सम्बन्धित किन्हीं व्यक्तियों का इतिहास है।
4. सरस्वती नदी की ऐतिहासिकता को वेद से प्रमाणित करने का प्रयास वेद का अवमूल्यन करना है।

यही नियम वेद में वर्णित विभिन्न नामों, विभिन्न स्थलों, नदियो आदि पर भी लागू होता हैं जिससे कुछ लोग वेदों में इतिहास होने की कल्पना कर लेते हैं।

वेदों में ईसा मसीह, महावीर, कबीर का नाम

वेदों में मत प्रवर्तक जैसे जैन मत वाले महावीर, कबीर पंथी वाले कबीर साहिब, इस्लामिक मत वाले मुहम्मद साहिब, ईसाई मत वाले ईसा मसीह आदि का वर्णन है ?

हिंदी साहित्य और संस्कृत साहित्य अलंकारों, छंदों और पर्यायवाची शब्दों में होता है जिसमे एक ही शब्द के अनेक अर्थ और अनेक भाव होता है सिर्फ हिंदी साहित्य एक ऐसा साहित्य होता है जिसके अर्थो और भावो को एक अच्छा जानकर साहित्यकार ही समझ सकता है. हिन्दू धर्म में जितने भी वेद लिखे गए है वो संस्कृत साहित्य में लिखे गए है जिसमे श्लोक संस्कृत में लिखे गए है जिनके अर्थो और भावो को समझाना बहुत ही कठिन है. ओच्छी मानसिकता वाले लोग साहित्य के जानकर होकर भी उस साहित्य के अर्थ और भावो का अलग ही अर्थ लगाएंगे उसमे अश्लीलता ही खोजेंगे क्योकि व्यक्ति में जितनी बुद्धि होती है वह उतना ही सोच सकता है उससे ज्यादा नहीं।

उदाहरण के लिए देखिए।

- ऋग्वेद 1/32/6 में महावीर शब्द आया हैं जिसका अर्थ इन्द्र हैं जबकि जैन मत का पालन करने वाले उससे महावीर तीर्थंकर को दर्शाने की कोशिश करते है।
- यजुर्वेद 32/11 मंत्र में कविर्मनीषी शब्द से कबीरपंथी साकार परमेश्वर को दिखाने का प्रयास करते है जबकि इसी मंत्र में ईश्वर को शुक्रम (सर्वशक्तिमान), अकायम (स्थूल, सूक्षम और कारण शरीर रहित), अवर्णम (छिद्र रहित और नहीं छेद सकने योग्य), अस्नाविरम (नाड़ी आदि बंधन से रहित), शुद्धम (आदि दोषों से रहित), परिअगात (सब और से व्याप्त), स्वयंभू (जिसके माता–पिता, गर्भवास, जन्म, वृद्धि और मरण आदि नहीं होते), शाश्वतिभ्य (उत्पत्ति और विनाश रहित) कहा गया हैं।
- अथर्ववेद 20/127/1–13 मन्त्रों में नराशंस शब्द से मुहम्मद साहिब की कल्पना कुछ इस्लाम अनुयायी मानते है।
- यजुर्वेद के 40वें अध्याय के ईशावास्यम मंत्र में ईशा से ईसा मसीह की तुलना कुछ ईसाई मत को मानने वाले करते है

इसलिए वेदों में इतिहास होने के इस आरोप में कुछ भी बल नहीं है। इससे वेदों में इतिहास सिद्ध नहीं होगा। इसका कारण यह है कि वेदों, ब्राह्मणों और पुराणों के सूक्ष्म अवलोकन से ज्ञात होता है कि संस्कृत के समस्त साहित्य में इतिहास से सम्बम्ध रखने वाले असम्भव, संभवासंभव और संभव तीन प्रकार के वर्णन पाए जाते हैं। जो तीन भागों में विभाजित हैं। इसमें जितना भाग असंभव वर्णन से संबंध है वह वेद का है और किसी न किसी चमत्कारिक अथवा जातिवाचक पदार्थ से संबंध रखता है। किसी मनुष्य नगर, नदी और देश आदि व्यक्तिवाचक पदार्थ से नहीं परंतु जितना भाग संभवासंभव और संभव वर्णन से सम्बन्ध रखता है वह पुराण और ब्राह्मण ग्रंथों में ही आता है वेदों में नहीं।

संस्कृत साहित्य में इस विषय के अनेक प्रमाण विद्यमान हैं। विश्वामित्र और मेनका वेद के चमत्कारिक पदार्थ हैं। इधर दुष्यंत और शकुंतला मनुष्य हैं। परंतु दोनों को एक में मिलाने से भरत को इंद्र के यहां जाना पड़ा। इंद्र भी चमत्कारिक पदार्थ है। ऐसी दशा में भरत और दुष्यंत को मेनका और विश्वामित्र के साथ जोड़कर यही तो भ्रम करा दिया गया है कि वेदों में भरत के पूर्वजों का वर्णन है। परंतु यदि वेदों को खोलकर विश्वामित्र मेनका वाले मंत्रों को पढ़िए तो उसमें मानुषी वर्णन लेश मात्र भी नहीं मिलेगा। तो इंद्र के यहां जाने वाले वैदिक भरत का इस अलौकिक भरत से कोई संबंध न दिखेगा।

उदाहरण 1: नवी का नाम वेद मंत्र में बताकर आदि मानव सिद्ध करने की कोशिश

मुस्लिम जाकिर नायक ने अपने भाषण में कहा है की नबी का नाम अथर्ववेद में तीन बार आया है, इसी प्रकार कुछ अन्य सेकुलर नेता मर्यादा पुरुषोत्तम राम को मुस्लिम समाज से जोड़ने का नारा देते हैं, उनके अनुसार दिवाली में अली आया है, रमजान में भी राम आया है। आइए इसकी पड़ताल करते है।

1. मुस्लिम पंथ जो केवल 1400 साल पुराना है इसके संस्थापक का नाम कुरान के अनुसार अहमद है और मुहम्मद शब्द सम्मान के लिए जोड़ा जाता है जैसे श्री, महाशय आदि। अहमद शब्द भी कुरान में केवल एक दो बार आया है इसलिए मुस्लिम पंथ के संस्थापक का नाम नबी नही है।
2. चारो वेदों में अलग–अलग भावार्थ के साथ नवी शब्द 50 बार आया है।

ऋग्वेद में नवी के 39 संदर्भ मिले, सामवेद में नवी के 3 संदर्भ मिले, अथर्ववेद में नवी के 8 संदर्भ मिले जिनका अर्थ अलग–अलग है, और नवी शब्द किसी अन्य शब्द के साथ जुड़ा हुआ है जैसे नवीयसा, नवीयः, नवियासो, नवियासी, आदि मूल शब्द नवी है, नबी नही जैसे कि जाकिर नालायक ने कहा, जाकिर नायक के अनुसार केवल अथर्ववेद में नवीं शब्द आया है जबकि ये शब्द चारो वेदों में है।

दरअसल ये भटके हुए लोग आधा ज्ञान लेकर वैज्ञानिक बनने निकले है, इनकी आँखों पर मूर्खता का चश्मा लगा है, ये लालची, कायर लोग हिंदू धर्म से मुस्लिम बने और जो मुँह में आया बक देते हैं।

2: वेदों में ईसा मसीह का वर्णन है?

अनेक विदेशी एवं उनका अंधानुसरण करने वाले भारतीय लेखक वेदों में इतिहास मानते हैं। एक भ्रम वेदों में इतिहास मानने वाले ईसाई फैला रहे हैं। उनका कहना है कि वेदों में वे ईसा मसीह का वर्णन है। ईसाई हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए यह चालाकी करते है और कहते हैं कि वेदों में ईसा मसीह के बारे में भविष्यवाणी की गयी है। ईसा एक अवतार थे। ईसाई अपनी बात को सिद्ध करने के लिए इस वेदमंत्र का हवाला देते हुए कहते है कि इस वेद मंत्र में ईशावास्यमिदं में ईसा मसीह का वर्णन है।

"ईशावास्यमिदं यत्किंचित जगत्यां जगत "यजुर्वेद –अध्याय 40 मन्त्र 1.

ईसाई इसका अर्थ करते है, कि इस दुनिया में जो कुछ भी है, वह सब ईसा मसीह की कृपा से है। और वही दुनिया का स्वामी है।

स्वामी दयानन्द इस मन्त्र का मूल अर्थ इस प्रकार से करते हैं–

ईश्वर हमको सदा सब ओर से देखता हैं, यह जगत ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है। इस प्रकार से अंतर्यामी परमात्मा का निश्चय करके भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं किया जाता, वे धर्मात्मा होकर इस लोक

के सुख और परलोक में मुक्तिरूप सुख को प्राप्त करके सदा आनंद में रहे।

इस मंत्र में ईशा शब्द से सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान परमेश्वर अर्थ सिद्ध होता है। ईसा मसीह तो सर्वशक्तिमान थे ही नहीं। उन्हें तो सूली पर लटकना पड़ा, दुःख सहना पड़ा, मृत्यु को प्राप्त होना पड़ा। सर्वशक्तिमान ईश्वर मानवीय दुखों से मुक्त है। इसलिए ईसाईयों की यह सोच केवल छल मात्र है।

इसी प्रकार से ईसाई समाज पुरुष सूक्त में वर्णित प्रजापति की तुलना ईसा मसीह से करते है। उनके अनुसार ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जो प्रजापति बताये गए हैं वो वास्तव में ईसा मसीह ही हैं। चेन्नई के ईसाई प्रचारक स्वयं को साधू कहने वाले साधू चेल्लप्पा ने कहा की वेदों में प्रजापति ईसा मसीह के आने का पूर्वानुमान था इसलिए बिना ईसा मसीह के वेदों की खोज अपूर्ण है। वेदों में ईसा मसीह के आने का वर्णन है जो पापों को क्षमा करने वाला है। ईसा मसीह को पुरुष प्रजापति, जो सृष्टि का रचयिता है और जो अपना बलिदान देने आएगा के नाम से पुकारा गया है। ईसा मसीह के बिना वेद अधूरे है। अब ईसा मसीह भारतीयों क्षमा करने आएगा। ठीक वैसे जैसा बाइबिल की पुरानी पुस्तक में उनके आने की भविष्यवाणी है।

इस मंत्र में प्रजापति का अर्थ सब का पालन करने वाला है। वेद मंत्रो में ईश्वर को प्रजापति कहा है। यानि की अपनी प्रजा का पालन करने वाला, जिसमें जलचर, थलचर और वायुचर सभी आते है। ईश्वर ने सभी के भोजन के लिए अलग–अलग तरह की व्यवस्था की है। प्रजपति का मतलब है सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला। वह जिसने सृष्टि उत्पन्न की है। जबकि ईसा तो मरियम से पैदा हुए एक मनुष्य थे। जिसको बाद में वहाँ के राजा ने सूली पर लटकार मरवा दिया।

प्रजापति से ईसा मसीह का ग्रहण करना अपरिपक्वता का बोधक है।

स्वामी दयानन्द ने वेदों में इतिहास होने की मान्यता का खंडन किया। उनका कहना था कि वेद शाश्वत हैं। वेद परमात्मा की नित्य वाणी है। वेदों में सृष्टि रचना, वेद रचना आदि नित्य इतिहास ही हो सकता है, किन्तु किसी व्यक्ति विशेष का इतिहास नहीं हो सकता।

कुछ इस्लामिक लेखक वेदों के आधार पर मुहम्मद साहिब को वेदों में सिद्ध करने का प्रयास करते है ताकि हिन्दू समाज को भ्रमित किया जा सके। ऐसा प्रयास अबू मुहम्मद इम्माउद्दीन ने श्री वेद दिग्दर्शन, मुहम्मद फारूकखां ने वेद और कुरान, डॉ वेद प्रकाश उपाध्याय ने कल्कि अवतार और मुहम्मद आदि पुस्तकों के माध्यम से किया हैं। इन पुस्तकों में वेदों के कुंताप सूक्त में आये नराशंस शब्द से मुहम्मद साहिब की तुलना की गई हैं। इन लेखकों की भ्रान्ति का निवारण डॉ विवेक आर्य ने अपने लेख के माध्यम से किया है।

सर्वप्रथम नराशंस शब्द पर विचार करते है। डॉ वेदप्रकाश उपाध्याय ऋग्वेद 2/3/2, 5/5/2 एवं अथर्ववेद 20/127/1 में नराशंस शब्द दिखलाकर उसका अर्थ लिखते है– ष्ऐसा मनुष्य जो प्रशंसित हो।ष अथर्ववेद 20/127/2,3 के आधार पर आपने लिखा है– सवारी के रूप में ऊंट का प्रयोग करने वाला ,बारह पत्नियों वाला, सौ निष्कों (स्वर्ण मुद्राओं) से युक्त, दस मालाओं वाला (गले का हार), तीन सौ अर्वन से युक्त, दस हज़ार गौ से युक्त। इस प्रकार से उपाध्याय जी के अनुसार यह सिद्ध करते है कि नराशंस शब्द अरबी में मुहम्मद शब्द से अभिहित व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है।

उपाध्याय जी ने अथर्ववेद नराशंस शब्द को लेकर जो खींचतान की हैं। यह उनकी अनभिज्ञता का स्पष्ट प्रमाण है। सर्वप्रथम तो उपाध्याय जी की कोरी कल्पना में दो बड़ी गलतियां हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है जिनका आविर्भाव सृष्टि के आदि में हुआ था। वेद कोई बाइबिल या कुरान के समान कोई इतिहास पुस्तक नहीं हैं। इसलिए वेदों में मुहम्मद का वर्णन होना नितांत कल्पना है।

दूसरी वेदों में एक पत्नी से विवाह करने के अनेक प्रमाण हैं। बहुविवाह का स्पष्ट निषेध है। वेदों का कोई भी भद्रपुरुष बारह स्त्रियों को नहीं रख सकता है। वेदों में भी केवल एक पत्नी रखने का विधान है।

ऋग्वेद 10/85 को विवाह सूक्त के नाम से जाना चाहता है। इस सूक्त के मंत्र 42 में कहा गया है कि तुम दोनों इस संसार व गृहस्थ आश्रम में सुख पूर्वक निवास करो। तुम्हारा कभी परस्पर वियोग न हो। सदा प्रसन्नतापूर्वक अपने घर में रहो।

ऋग्वेद 10/85/47 मंत्र में हम दोनों (वर–वधु) सब विद्वानों के सम्मुख घोषणा करते हैं की हम दोनों के हृदय जल के समान शांत और परस्पर मिले हुए रहेंगे।

अथर्ववेद 7/35/4 में पति पत्नी के मुख से कहलाया गया है कि तुम मुझे अपने हृदय में बैठा लो, हम दोनों का मन एक ही हो जाये।

अथर्ववेद 7/38/4 पत्नी कहती है तुम केवल मेरे बनकर रहो। अन्य स्त्रियों का कभी कीर्तन व व्यर्थ प्रशंसा आदि भी न करो।

ऋग्वेद 10/101/11 में बहु विवाह की निंदा करते हुए वेद कहते हैं जिस प्रकार रथ का घोड़ा दोनों धुराओं के मध्य में दबा हुआ चलता है, वैसे ही एक समय में दो स्त्रियाँ करनेवाला पति दबा हुआ होता है। अर्थात परतंत्र हो जाता है। इसलिए एक समय दो व अधिक पत्नियाँ करना उचित नहीं हैं। इसलिए 12 पत्नियों का होना वेदविरुद्ध कल्पना है।

तीसरे वेदों के सभी शब्द यौगिक होते हैं। नराशंस शब्द का प्रयोग निरुक्त 8/7 में हुआ हैं।

यजुर्वेद में स्वामी दयानन्द नराशंस का अर्थ करते है– स्वामिन– यजुर्वेद 21/31, योग्य व्यवहार करने वाला–29/27, विद्वान जन–यजुर्वेद 27/13, ऐश्वर्या इच्छुक जीव–यजुर्वेद 28/19, विदुष जन–यजुर्वेद 21/55, विद्वत्जन–यजुर्वेद 20/37

ऋग्वेद में स्वामी दयानन्द नराशंस का अर्थ करते है–

अग्निम– ऋग्वेद 1/13/3, सभाध्यक्ष– ऋग्वेद 1/106/4, अन्नपानादिकस्य– ऋग्वेद 7/2/2, विद्वतजन– ऋग्वेद 1/142/3, मेधावी मनुष्य–ऋग्वेद 5/5/2, अग्नि– ऋग्वेद 3/29/11

चूँकि मुहम्मद साहिब की 12 बीवियां थी। इसलिए उन्होंने ऐसा असत्य कथन जुगाड़ बैठाने के लिए किया होगा।

निष्कर्ष यह है कि नराशंसी उन मन्त्रों के नाम है जो यज्ञपरक है। नराशंस नाम यज्ञ का है। मनुष्य प्रशंसा परक मन्त्रों का अर्थ नराशंसी हैं।

अंततः अथर्ववेद के मन्त्रों के आधार पर वेदों में मुहम्मद साहिब का वर्णन एक कोरी कल्पना सिद्ध होता हैं।

आर्य बाहर से आये थे

आर्य कहीं बाहर से भारत में आये थे। कथन ही गलत हैं। आर्य भारत के ही मूल निवासी थे। और भारत ही उनकी कर्म व जन्म भूमि थी। अंग्रेजों का इतिहास रहा हैं कि वे दुनिया के हर देश में हमला करके उस पर कब्जा करना चाहते थे और उन्होंने ऐसा किया भी।

दो सौ वर्ष पहले तक कल्पना यही थी कि आर्यों का मूल स्थान है भारत में यह विचार 19वीं सदी के आरंभ तक रहा किंतु 1830 के लगभग यह कहना शुरू हुआ कि वह मूल स्थान पूर्वी–मध्य यूरोप था।

आर्य कौन हैं?

प्राचीन भारत यानि आर्यावर्त में रहने वाला हर व्यक्ति आर्य हैं। या अपने कर्मों के आधार पर अनार्य हैं। प्रत्येक श्रेष्ठ और सुसभ्य मनुष्य आर्य है। अपने आचरण वाणी और कर्म में वैदिक सिद्धांतों का पालन करने वाले शिष्ट स्नेही कभी पाप कार्य न करने वाले सत्य की उन्नति और प्रचार करने वाले आन्तरिक और बाह्य शुचिता इत्यादि गुणों को सदैव धारण करने वाले आर्य कहलाते हैं। आर्य शब्द किसी गोत्र या उपनाम से भी सरोकार नहीं रखता।

1. आर्य का अर्थ क्या है?

आर्य शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है। मूलतः

''ऋ गतौ'' धातु से ''आर्य'' शब्द सिद्ध होता है। जिसका अर्थ है ''गतिः प्रापण ाार्थे'' अर्थात् गति–ज्ञान, गमन, प्राप्ति करने और प्राप्त कराने वाले को आर्य कहते हैं। प्रमाणः–1. आर्य ईश्वरपुत्रः। (निरुक्त 6/26) अर्थात् आर्य ईश्वर के पुत्र का नाम है।

वेद मे ईश्वर कहता है कि– अहं भूमिमददामायार्य।

(ऋ 4/26/2) अर्थात् मैं इस भूमि का राज्य आर्यो के लिये प्रदान करता हूँ।

भगवान ने आदेश दिया कि ''सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाओ''

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम

अपघ्नन्तो अराव्णः।। (ऋ9/63/5)

अर्थ–हे परम ऐश्वर्य युक्त आत्मज्ञानी! तुम आत्मशक्ति का विकास करते हुये गतिशील, प्रमादरहित, होकर कृपणता, आदानशीलता, अनुदारता, ईर्ष्या आदि का विनाश करते हुये सारे संसार को आर्य बनाओ।

प्रमाण-2

प्राचीन कोष मे ''आर्य'' शब्द के अर्थः––

संस्कृत के शब्द कल्पद्रुम, वाचस्पत्य, बृहदभिधानादि कोषों मे आर्य शब्द के अर्थ निम्न पाये जाते है–

आर्यः––पूज्यः, श्रेष्ठः, धार्मिकः, धर्मशीलः, मान्यः, उदारचरितः, शान्तचित्तः, न्यायपथावलम्बी, सततं कर्तव्य–कर्मानुष्ठाता यथोक्तम

प्रमाण-3

महर्षि वेदव्यास जी ने निम्न आठ गुणों से युक्त व्यक्ति को आर्य कहा है–ज्ञानी तुष्टश्च दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।

दाता दयालुर्नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणैः।।

अर्थः–जो ज्ञानी हो, सदासन्तुष्ट रहने वाला हो, मन को वश में करने वाला हो, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र हो, वह आर्य कहलाता है।

हमारे देश का मूल नाम आर्यवर्त है। सनातन काल से आर्यों की एक ही पूजा पद्ध ति रही है–यज्ञ व योग ।

विश्लेषण :–भारतीय उपमहाद्वीप में रह रहे लोगों का डीएनए एक ही हैं। आर्यों

को विदेशी कहने वाले यह नहीं बता पाते कि आर्य बाहर से आए थे तो उनके अवशेष केवल भारत में ही क्यों मिलते हैं। आर्यों की भाषा संस्कृत थी। यह कैसे हुआ कि आर्य भारत पहले आ गए उनकी भाषा उनके बाद यहाँ पहुँची क्योंकि किसी भी अन्य देश में संस्कृत नहीं बोली जाती और सारे वेद उपनिषद संस्कृत भाषा में भारत में ही लिखे गए क्यों? क्या भारत में आकर ही आर्य साक्षर हुए।

पं. भगवद् दत्त जी की पुस्तक भारतीय संस्कृति का इतिहास पढ़ें। अंग्रेजों ने पंडित भगवद दत्त के पास भी अपना सन्देश वाहक भेजा था। वे अपनी पुस्तकों में लिख दें कि जाट लोग इस देश में बाहर से आर्य के रूप में आये हैं परन्तु पंडित जी ने दृढ़ता से इसका निषेध कर दिया। जहाँ आर्य विद्वानों ने निषेध किया वहीं पर धन व प्रतिष्ठा के लोभी लोगों ने अंग्रेजों की इच्छानुसार लेखन भी किया। इस षडग्रंत्र को ऋषि दयानन्द ने समझा था और इसका सप्रमाण प्रतिकार भी किया था।

1 **आर्य-अनार्य शब्द जातिवाचक नहीं गुणवाचक हैं**–प्रथम बात किसी के लिये भी जानने की यह हैं कि आर्य–अनार्य शब्द जातिवाचक नहीं गुणवाचक हैं क्योंकि कृण्वन्तो विश्वमार्यम् कहते हुए वेद कहता हैं सम्पूर्ण रूप से आर्य बनो और सबको आर्य बनाओ। जो लोग श्रेष्ठ परम्परा के धनी हैं और वेद और वैदिक धर्म स्वीकार करते हैं वे सभी आर्य हैं। कोई भी आर्य बन सकता हैं और किसी को आर्य कह सकते हैं। हमारी आर्य परम्परा में एक पत्नी अपने पति को आर्य–पुत्र कहकर पुकारती हैं।

2 आर्यों के किसी भी ग्रन्थ में आर्यों के बाहर से भारत में आने का लेश मात्र भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। यूँ ही वेद शास्त्र के वचनों को तोड़ मरोड़ कर ईसाई पादरी सरकारी लेखक यह मनगढ़न्त मत थोपते चले आ रहे हैं।

3. महर्षि दयानन्द जी महाराज पहले ऐसे भारतीय विचारक महापुरुष और राष्ट्र नायक हुए जिन्होंने सूली व सरकार के चाकर इतिहास लेखकों के इस मनगढ़न्त मत को चुनौती दी। ऋषि की शिष्य परम्परा में आचार्य रामदेव जी डॉ. बालकृष्ण जी पंडित धर्मदेव जी पंडित भगवद दत्त जी विद्यार्थी गुरुदत्त जी आदि प्रकाण्ड इतिहासकार और विद्वानों ने इस मिथ्या मत की धज्जियाँ उड़ा दीं।

4. इस्लाम मक्का से आया। ईसाई मत यरूशलम से निकला। संसार भर के नमाज़ी मक्का मदीना की ओर मुँह करके नमाज पढ़ते हैं। ईसाई रोम की यात्रा को जाते हैं। परन्तु आर्य जाति ने तो सागर पार जाना ही पाप मान लिया। आर्यों का आदि देश भारत ही हैं। इसका इससे बड़ा तर्क व प्रमाण क्या हो सकता हैं। अमरीकन लेखक की पुस्तक इसका एक प्रबल प्रमाण हैं।

5. ऋषि दयानन्द कहते हैं कि जब इस पृथ्वी का निर्माण हुआ संपूर्ण जलमय संसार में से पृथ्वी का जो भाग सबसे पहले जल से बाहर निकला वह तिब्बत था। तथा सबसे ऊँचा होने के कारण उसी भाग पर मनुष्यों की सृष्टि सबसे पहले हुई जो मनुष्य वहाँ से उतरकर सबसे पहले भारत आये और जिन्होंने इस देश को बसाया वे ही लोग आर्य कहलाये और शेष संसार में यहीं से लोगों का जाना हुआ हैं। बाहर से इस देश में आने की बात मनगढ़न्त मिथ्या और षड्यन्त्रपूर्ण हैं।

वेद रामायण महाभारत गीता आदि में आर्य शब्द का प्रयोग गुणवाची के रूप में ही हुआ हैं।

आर्य शब्द का प्रयोग वेदों में निम्नलिखित विशेषणों के लिए हुआ हैं।

श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए इन्द्र का विशेषण, सोम का विशेषण ज्योति का विशेषण व्रत का विशेषण, प्रजा का विशेषण वर्ण के विशेषण के रूप में हुआ हैं। निरुक्त में आर्य शब्द का अर्थ ईश्वर पुत्रः के रूप में हुआ हैं।

रामायण बालकाण्ड में आर्य शब्द आया हैं। श्री राम के उत्तम गुणों का वर्णन करते हुए वाल्मीकि रामायण में नारद मुनि ने कहा हैं।

आर्यः सर्वसमश्चायमं, सोमवत् प्रियदर्शन अर्थात् श्री राम आर्य धर्मात्मा सदाचारी सबको समान दृष्टि से देखने वाले और चंद्र की तरह प्रिय दर्शन वाले थे। किष्किन्धा काण्ड में बालि की स्त्री पति के वध हो जाने पर उसे आर्य पुत्र कह कर रुधन करती हैं।

महाभारत में आर्य शब्द 8 गुणों से युक्त व्यक्ति के लिए हुआ हैं जो ज्ञानी हो सदा संतुष्ट रहने वाला हो मन को वश में रखनेवाला सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र गुणवाला आर्य कहलाता हैं।

आर्याव्रत देश इस भूमि का नाम इसलिए हैं कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं। परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय दक्षिण में विन्ध्याचल पश्चिम् में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी हैं। इन चारों के बीच में जितना प्रदेश हैं। उसको आर्यावर्त कहते हैं और जो इसमें सदा रहते हैं, उनको भी आर्य कहते हैं।

इस प्रकार से वैदिक वाङ्मय में आर्य शब्द का प्रयोग गुणों से श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए हुआ हैं।

डॉ. अम्बेडकर का मत

(1) डॉक्टर अम्बेडकर राइटिंग एंड स्पीचेस खंड 7 पृष्ठ में अम्बेडकर जी ने लिखा है। कि आर्यों का मूलस्थान (भारत से बाहर) का सिद्धांत वैदिक साहित्य से मेल नही

खाता। वेदों में गंगा यमुना सरस्वती के प्रति आत्मीय भाव हैं। कोई विदेशी इस तरह नदी के प्रति आत्मस्नेह सम्बोधन नही कर सकता।

(2) डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक शूद्र कौन? में स्पष्ट रूप से विदेशी लेखकों की आर्यो के बाहर से आकर यहाँ पर बसने सम्बन्धित मान्यताओं का खंडन किया हैं।

(3) डॉ. अंबेडकर ने माना हैं कि आर्य कोई विदेशी जाति नहीं वरन् आर्य भारत के मूलनिवासी थे। हम कुछ प्रमाण रखते हैं। जिससे सिद्ध होगा कि डॉ. अंबेडकर आर्यों को विदेशी नहीं मानते थे। देखिये पहला प्रमाण अम्बेडकर सम्पूर्ण वांग्मय खंड 7 पेज नं 321:–

यह सोचना गलत हैं कि आर्य आक्रमणकारियों ने शूद्रों पर विजय प्राप्त की। पहली बात तो ये हैं कि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि आर्य भारत के बाहर से आये और उन्होंने यहाँ के मूलनिवासियों पर आक्रमण किया था। इस बात की पुष्टि के कई प्रमाण हैं कि आर्य भारत के मूलनिवासी थे।

फिर आगे पेज नं 322 पर लिखते हैं:–शूद्र को आर्य स्वीकार किया था और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी उनको आर्य कहा गया हैं। शूद्र आर्यों के अभिन्न जन्मजात और सम्मानित सदस्य थे।

पेज नंबर 52 पुस्तक से:–जहाँ तक आर्य जाति के बाहर से आने और यहाँ के मूलनिवासियों को जीतने का सम्बम्ध हैं। ऋग्वेद में ऐसा कोई भी प्रसंग नहीं हैं।

परिणाम अम्बेडकर के अनुसार

1 आर्य विदेशी नहीं थे। न उन्होंने भारत के मूलनिवासियों पर आक्रमण किया।

2 आर्य भारत के मूलनिवासी हैं। उनके भारतीय होने के प्रमाण ऋग्वेद में मिलते हैं।

3 शूद्र भी आर्य जाति के अभिन्न अंग थे। वे क्षत्रिय वर्ण के ही थे।

संदर्भग्रंथ एवं पुस्तकें

1 अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खंड 7

2 शूद्र कौन थे

3 शूद्रों की खोज –सबके लेखक डॉ0 बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर हैं।

द्रविड़ और आर्य-भ्रांति निवारण

भारत का पूर्व मे नाम आर्यावर्त था और इसलिए यहां निवास करने वाले निवासी को कर्म के आधार पर दो भागों मे बांटा गया है–आर्य और अनार्य

इसी प्रकार वर्ण व्यवस्था है जिसको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चार भागों में बाँटा गया है और जाति के सन्दर्भ मे मनुष्य, पशु, पक्षी आदि को जाति कहा जाता है जिसका प्रसव के समय निर्धारण होता है यानि द्रविड़ शब्द का प्रयोग ना तो किसी वर्ण, ना जाति, ना कर्म के लिए प्रयोग हुआ है।

आर्य और अनार्य का भी द्रविड़ शब्द से कोई लेना देना नहीं है।

प्रश्न उठता है कि फिर द्रविड़ कौन है? किसको कहते हैं? कहां रहते हैं? क्या दक्षिण भारत मे द्रविड़ जाति/समुदाय रहता है?

द्रविड़ शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है ?

ये हम जानते हैं कि भारतीयों में फूट डालने के लिए अंग्रेजों ने आर्यन माइग्रेशन थ्योरी को जान बूझकर हमे पकड़ा दिया। आज डीएनए प्रमाण भी यही बताता है कि सभी भारतीयों का डीएनए एक हैं। फिर दक्षिण भारत का एक विशेष भू–भाग पांच द्रविड़ क्यों कहलाता है?

इसका उत्तर हमको आसानी से मिल जाता है यदि संस्कृत का थोड़ा ज्ञान हो और शब्दावली पर ध्यान दिया जाए। हम जानते हैं कि द्रविड़ शब्द का वास्तविक अर्थ है–द्रव्य, धन–सम्पत्ति। द्रव्य जो तरल है, निरंतर प्रवाहमान। यानि कि ऐसी सम्पदा जो द्रव्य के रूप मे चलायमान जो कभी स्थिर नहीं रहती हो, एक स्थान से दूसरे स्थान भेजी जा सकने वाली हो। आखिर 'लक्ष्मी' भी कहीं टिकती है क्या?

इसीलिए वेद मंत्र में ईश्वर को द्रविणं भी कहा गया है

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम देव देवं॥

इस मंत्र के अनुसार सबसे पहले माता क्योंकि यदि माता का आशीर्वाद है तो फिर संसार में किसी की जरूरत ही नहीं। इसलिए हे प्रभु! तुम माता हो! फिर पिता, अतः हे ईश्वर! तुम पिता हो! दोनों नहीं हैं तो फिर भाई ही काम आएंगे। इसलिए तीसरे क्रम पर भगवान से भाई का रिश्ता जोड़ा है। जिसकी न माता रही, न पिता, न भाई तब सखा काम आ सकते हैं, अतः सखा त्वमेव!

वे भी नहीं तो आपकी विद्या ही काम आती है। यदि जीवन के संघर्ष में नियति ने आपको निपट अकेला छोड़ दिया है तब आपका ज्ञान ही आपका भगवान बन सकेगा। यही इसका संकेत है और सबसे उदाहरण के तौर पर एक प्रार्थना भी वेद में मिलती है जिसमें ईश्वर से कहा है कि हे देवताः तुम्हीं धन हो।

परंतु इसमें प्रार्थनाकार ने वरीयता क्रम में जिस धन–द्रविणं को सबसे पीछे रखा

है, वहीं धन आजकल हमारे आचरण में सबसे ऊपर क्यों आ जाता है? इतना कि उसे ऊपर लाने के लिए माता से पिता तक, बंधु से सखा तक सब नीचे चले जाते हैं, पीछे छूट जाते हैं?

इस प्रार्थना मे द्रविणं सबसे पीछे बाकी रिश्ते ऊपर। बाकी लगातार ऊपर से ऊपर, धन क्रमशः नीचे से नीचे! क्योकि दक्षिण भारत के इस प्रान्त में सुन्दर मौसम, वहाँ पर उपलब्ध भोजन और वहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक सम्पदा की प्रचुरता है, जितनी भारत में कही भी नहीं है। यहाँ की सांस्कृतिक, भौगोलिक और आर्थिक दशा भिन्न हैं। दक्षिण भारत मे ग्रेनाइट, लोहा, जंगली बूटी, जीवन रक्षक वृक्षो के जंगल जिनसे कैंसर आदि की दवा बनती है आदि बहुत मात्रा मे हैं। यहां के शिल्पकारों ने ग्रेनाइट पर काम करने में महारत हासिल किया। समुद्र और नदियों के आस–पास बसे गाँव और शहर का भोजन और संस्कृति का विकास अलग तरीके से हुआ।

इसी प्रचुर सम्पन्नता के कारण ये लोकोक्ति हुई कि ईश्वर ने यहाँ के निवासियों को पर्याप्त द्रव्य सम्पत्ति खनिज और वनस्पति के रूप मे प्रदान की है, जैसे ज़मीन के स्वामी को जमींदार, उद्योग के स्वामी को उद्योगपति कहते हैं, इसी प्रकार इस अकूत द्रव्य सम्पत्ति के मालिक द्रविड़ कहलाये। कालान्तर मे उनका यही नाम पड़ गया।

आर्य और द्रविड़ युद्ध का वर्णन

दास (द्रविड़) द्रविड़ शब्द का अर्थ :–अनार्य, अज्ञानी, अकर्मा, मानवीय, व्यवहार, शून्य, भृत्य, बल रहित शत्रु के लिए हुआ हैं न कि किसी विशेष जाति के लोगों के लिए हुआ हैं।

वैदिक इंडेक्स के लेखक ने ऋग्वेद 7/21/5 और 10/99/3 के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दस्यु लोगों की पूजा विभिन्न थी और वे शिश्नपूजा अर्थात लिंग पूजा करते थे।

वैदिक इंडेक्स आदि के लेखकों ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वेद में आर्य और दस्युओं के युद्ध का वर्णन हैं। वेद में दासों के साथ युद्ध करने का वर्णन तो मिलता हैं। पर यह मानवीय नहीं अपितु प्राकृतिक युद्ध हैं जैसे इन्द्र और वृत्र का युद्ध, इन्द्र बिजली का नाम हैं जबकि वृत्र मेघ का नाम हैं। इन दोनों का परस्पर संघर्ष प्राकृतिक युद्ध के जैसा हैं। यास्काचार्य ने भी निरुक्त 2/16 में इन्द्र–वृत्र युद्ध को प्राकृतिक माना हैं। इसलिए वेद में जिन भी स्थलों पर आर्य–दस्यु युद्ध की कल्पना की गई हैं। इतिहासकार लिखते हैं कि आर्यों और द्रविड़ के मध्य युद्ध और विवाद होते रहे हैं। इस पर कुछ विश्वास करते हैं कुछ नहीं करते. लेकिन मुझे विश्वास है कि इनमें परस्पर युद्ध और विवाद होते रहे हैं. जैसा कि आप जानते हैं कि कर्म से मनुष्य दो प्रकार के होते हैं – आर्य और अनार्य।

जैसा कि हम सभी जानते है कि समाज मे सभी मनुष्यों का मानसिक और बौद्धिक स्तर एक जैसा नहीं होता. किसी विद्वान मे विद्या के साथ अहंकार आ जाता है, किसी धनी व्यक्ती मे कंजूसी, क्रोध, लालच और झगडे की प्रवृत्ति हो सकती है. सभी निवासी आर्य यानि श्रेष्ठ हो ये असंभव प्रतीत होता है। विशेषकर जब बिना परिश्रम के स्वतः भारी द्रव्य की उपलब्धि हो तो मनुष्य सत्कर्म से विमुख हो जाता है और इसलिए वह द्रविड़ अनार्य कहलाता है। शास्त्र कहते हैं –

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय!!

स्पष्ट है कि आर्यों और द्रविड़ (कुछ धनी अनार्य) लोगों के मध्य सामाजिक और व्यक्तिगत विवाद और युद्ध आदि होना स्वाभाविक है.इसी तथ्य के दृष्टिगत इतिहास में कहा गया है कि आर्यों और द्रविड़ में परस्पर विवाद और युद्ध होते रहते थे।

इतिहास में की गयी भारी मिलावट और भ्रम फैलाने तथा देश वो विभाजन करने वाली शक्तियों, वाममार्गी, और अंग्रेजो की ये खुराफात है। इसके अनुसार दक्षिण भारत मे द्रविड़ एक जाति और समुदाय विशेष है। इतना ही नहीं इतिहास मे आर्यों और द्रविड़ में परस्पर युद्ध को लेकर भी मनगढ़ंत कहानियाँ जोड़ दी गई।

आर्य सिर्फ अग्नि की पूजा करते हैं।

यहाँ इस वाक्य में तीन मुख्य शब्द आये हैं और पहले उनका अर्थ समझना जरूरी हैं।

आर्य :–शब्दकोश के अनुसार आर्य एक गुण वाचक शब्द हैं। आर्य का अर्थ होता हैं। आदर्श अच्छे ह्रदय वाला आस्तिक अच्छे गुणों वाला जिसका आचरण वेदानुकूल होता हैं। आर्य कोई जाति नहीं हैं। और कोई भी आर्य या अनार्य हो सकता हैं। आर्य होना एक तरह की उपाधि होती हैं। कुछ लोग खुद को इसलिए आर्य कहते हैं। क्योंकि इस देश का नाम आर्यव्रत था। रामायण महाभारत मे भी आर्य का सम्बोधन आया हैं। उस वक्त भी दूसरों के द्वारा आर्यपुत्र, आर्यमाता, आर्यपत्नी का सम्बोधन मिलता हैं।

पूजाः– जन सामान्य की दृष्टि में पूजा का तात्पर्य तो केवल इतना मात्र हैं कि किसी मूर्ति के आगे सिर झुका देना अगरबत्ती या धूप जला देना अधिक से अधिक शंख घंटा आदि बजाकर आरती कर लेना देव परमेश्वर की पूजा है । शास्त्रानुसार पूजनंनामसत्कारः अर्थात यथायोग व्यवहार करना पूजा है। लोक व्यवहार में भी यही प्रचलित है। भूखा बालक जब भूख–भूख चिल्लाता हैं तो माँ कहती हैं दो मिनट में तेरी पेट पूजा करूँगी। यहाँ पूजा से तात्पर्य हाथ जोड़ना या पेट की आरती करना नहीं अपितु यथोचित व्यवहार भोजन खिलाना हैं।

मनु ने लिखा हैं– **यत्र नार्यस्तु भूषणाच्छादनाशनैः**। – मनु.3/59

अर्थात नारियों की सदैव भूषण वस्त्र तथा भोजनादि से पूजा–सत्कार सम्मान करना चाहिए। इस प्रकार पूजा का अर्थात यथोचित, व्यवहार, सत्कार, सम्मान करना होता हैं।

पूजा क्यों की जाती हैं यह जानना आवश्यक हैं। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी कामना से पूजा करता है। अपनी–अपनी इच्छापूर्ति के लिए पूजा की जाती है।

अग्निः– यहाँ अग्नि का अर्थ यज्ञ से हैं। जिसमें यज्ञ कुंड में मंत्रों चारण के बाद घी सामग्री की आहुति दी जाती है।

अग्निहोत्र एक निष्काम कर्म भी हैं जिसके तीन मुख्य लाभ हैं।

1. देवपूजा (ईश्वर स्तुती) 2. संगतिकरण (सभी के साथ बैठकर यज्ञ करना जिसमें कोई जाति, लिंग, उम्र का बन्धन नहीं) 3. दान (यज्ञ द्वारा वायु आदि की शुद्धि किसी एक के लिए नहीं सम्पूर्ण मानव जीवधारी के लिए है। इसलिए दान कहा गया)

देवपूजाः– शब्द में से पहले देव किसे कहते हैं। यह जान लेना आवश्यक है। निरुक्त (7/15) में वर्णित देवों दानाद् व दीपनाद् व। स्थानों, भवतीतिवा देव शब्द के स्पष्ट एवं शास्त्रीय अर्थ को छोड़कर जन सामान्य की दृष्टि से कहे तो देव वह हैं। जो देता हैं बदले में कुछ चाहता नहीं हैं। सूर्यदेवता, वायुदेवता, अग्निदेवता, पृथ्वीदेवता आदि जड़ देव जीवन देते हैं बदले में कुछ नहीं चाहते हैं। चेतन देवों में माता–पिता, आचार्य, अतिथि, गुरू आदि आते हैं तथा समस्त देवों का देव परमपिता परमेश्वर हैं। ये सभी अर्थात् यथोचित, व्यवहार, सम्मान, सुरक्षा द्वारा अधिक कल्याण ग्रहण करना चाहते हैं। इस प्रकार चेतन देवों की तो हम पूजा उनको दिए सम्मान सेवा द्वारा करते रहते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा हैं – **अग्निवैमुखं देवानाम्**

इन जड़ देवों का मुख अग्नि हैं क्योंकि अग्नि में डाले हुए पदार्थ विज्ञान के अनुसार नष्ट नहीं होते हैं। अपितु रूपान्तरित होकर सूक्ष्म होकर शक्तिशाली बनते हैं। सूक्ष्म होकर अन्तरिक्ष में वायु के माध्यम से फैलते हैं और व्यापक हो जाते हैं। सभी को जीवन–शक्ति से संयुक्त कर देते हैं। अन्तरिक्ष में लोक में व्याप्त पर्यावरण को शुद्ध करने में सक्षम हो जाते हैं।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु 23/62)

इस यज्ञ को भुवन की नाभि कहा हैं जो पदार्थ अग्नि में डालते है वे सूक्ष्म होकर वायु के माध्यम से ऊर्जा शक्ति सम्पन्न होकर लोक तक पहुँचते हैं। मनु महाराज ने स्पष्ट लिखा हैं।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः प्रजाः। मनु.3/76

अर्थात् :–अग्नि में अच्छी प्रकार डाली गयी पदार्थों (घृत आदि) की आहुति सूर्य को प्राप्त होती हैं। सूर्य की किरणों से वातावरण में मिलकर अपना प्रभाव डालती हैं फिर सूर्य से वृष्टि होती हैं। वृष्टि से अन्न पैदा होता है उस से प्रजाओं का पालन–पोषण होता है। गीता में वर्णित हैं।

अन्नाद्भवन्ति कर्मसमुद्भवः। गीता 3/14

अर्थात् :– अन्न से प्राणी वर्षा से अन्न देव यज्ञ से वर्षा तथा देव यज्ञ तो हमारे कर्मों के करने से ही सम्पन्न होगा। निश्चय से देवयज्ञ ही वह साधन हैं जिसके द्वारा हम यथोचित रुप में चेतन देवों का सम्मान करते हैं तथा जड़ देवों की भी पूजा अर्थात यथोचित व्यवहार द्वारा इन्हें दूषित नहीं होने देते हैं। अग्नि में डाले गये पदार्थ सूक्ष्म होकर वृक्ष देवता, वायुदेवता, पृथ्वीदेवता, सूर्यदेवता, चन्द्रदेवता आदि सभी लाभकारी देवों को शुद्ध स्वस्थ पवित्र रखते हैं। और ये देव हमें स्वस्थ एवं सुखी बनाते हैं। गीता में इस तथ्य को कितने स्पष्ट शब्दों में वर्णित किया हैं।

देवान्भावयतानेन परमवाप्स्यथ। –गीता ३।११

इस यज्ञ के द्वारा (अग्निहोत्र के द्वारा) तुम इन जड़ चेतन देवों को उत्तम बनाओ तब वे देव तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को स्वस्थ रखने से ही परम कल्याण की प्राप्ति होगी। यज्ञ का जीवन में अत्यन्त महत्त्व हैं। यही सच्ची देवपूजा है। इसीलिए महाभारत काल प्रयत्न यज्ञ का ही विधान प्राप्त होता हैं। किसी मूर्तिपूजा आदि का विधान नहीं मिलता क्योंकि यज्ञ के अतिरिक्त सभी पूजा पद्धतियों में वायु, जल, अन्न, वृक्षादि पर्यावरण के दोषों को दूर करने का सामर्थ्य नहीं हैं। जल–वायु शुद्ध होगा यज्ञ से, यथोचित व्यवहार से। अतः सच्चे अर्थों में यज्ञ ही देवपूजा हैं। सच्ची देवपूजा हैं प्रतिदिन दैनिक यज्ञ करके इस देवपूजा को सम्पन्न करना हमारा नैतिक कर्तव्य हैं।

आगे इस विषय पर पूरी जानकारी और किसी निष्कर्ष के लिए ये जान लेना जरुरी है कि आर्य अग्नि होत्र यानि यज्ञ कर्म को सर्वश्रेष्ठ तो मानते हैं और इसके पीछे उनका वैज्ञानिक स्पष्टीकरण भी हैं। आर्य ५ यज्ञ मानते हैं और यज्ञ कर्म विज्ञान हैं कर्मकांड नहीं जिनमे अग्निहोत्र यज्ञ केवल एक है।

आर्य लोग बलिवैश्य यज्ञ करते है ?

जवाब :-वेद में बलिवैश्य यज्ञ का मूर्खता पूर्ण प्रचार -पशु बलि का सच

वेद में जो भी लिखा है आपको ध्यान से दीपक लगाकर पढ़ना चाहिए और भावार्थ समझना पड़ेगा। वेद और हमारे अन्य धर्म ग्रंथों में जीवन के सभी आवश्यक कर्तव्य निर्वहन के लिए 5 यज्ञ बताए है और इन सभी की उपयोगिता एक दूसरे से कम नही है और सभी का पालन करना अनिवार्य बताया गया है।

ये पांच यज्ञ है –ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ और बलिवैश्य यज्ञ

वैदिक धर्म कहता हैं की मनुर्भव और इसके लिए ५ यज्ञ करने का आदेश दिया जो कि दुनिया के सर्वश्रेष्ठ कर्म है।

ये जो है बलिवैश्व यज्ञ है इसका पूर्ण शब्द बलिवैश्व देव है। हमारे ऋषियों ने इसमें तीन शब्दों को समाविष्ट किया है। हमारी अपनी कमाई में सभी का भाग है चाहे वह बुद्धि, सम्पत्ति, शक्ति, नौकरी, व्यापार या खेती की कमाई क्यों नहीं हो इसके लिए प्रत्येक मनुष्य के मन में उदारता और परमार्थ परायणता का भाव होना चाहिए। केवल मनुष्य के लिए ही नहीं अपितु समस्त प्राणी मात्र के लिए जैसे पशु, पक्षी, चींटी, वृक्ष आदि सबके लिए सोचना चाहिए तभी परमात्मा प्रसन्न रहता है। दूसरों के साथ वैसी ही उदारता रखो जैसी ईश्वर ने आपके साथ रखी है।

बलिवैश्व देव यज्ञ का अर्थ है घर में जो भोजन बनता है, उसमें नमकीन पदार्थ को छोड़कर शेष की आहुति देना। इस हवन का प्रयोजन यह है कि पाकशाला के वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञानतावश जीवों की हत्या होती है उसका प्रतिकार कर देना।

हमारे धर्मग्रथों में अहिंसा को सर्वोपरि माना गया है। इसी क्रम में धर्म कहता है कि आप दूसरों की सेवा के लिए जिएँ इस हेतु नित्य बलिवैश्व करना पड़ता है। वेद कहता है कि त्यागपूर्वक भोग किया हुआ अन्न हमारे अंदर बल और प्राण शक्ति को धारण कराता है। जल और वायु के बाद अन्न हमारे जीवन को परमात्मा से मिली सबसे बड़ी भेंट है। वैश्व समस्त विश्व के जड़ और चेतन के लिए। देव अर्थात् देवताओं के लिए, दिव्य प्रयोजनों के लिए। बलिवैश्व देव अर्थात् समस्त विश्व के लिए उदारता से दिया गया अनुदान।

उपरोक्त से स्पष्ट है की कही भी बलि की बात नहीं कही गयी है बल्कि त्याग पूर्वक भोग की बात कही है।

ओइम् ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा. मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।

(ईशोपनिषद्, मन्त्र 1)

भावार्थ– जिसका सार कुछ यूँ हैः जड़–चेतन प्राणियों वाली यह समस्त सृष्टि परमात्मा से व्याप्त है । मनुष्य इसके पदार्थों का आवश्यकतानुसार भोग करे, परंतु 'यह सब मेरा नहीं है के भाव के साथ' उनका संग्रह न करे।

ईश्वर ने ही मनुष्यों सहित सभी प्राणियों व वनस्पति जगत को भी बनाया है। यदि ईश्वर के लिए मनुष्यों को पशुओं के माँस का आहार कराना ही अभिप्रेत होता तो फिर वह नाना प्रकार की खाद्यान्न की श्रेणी में परिगणित वनस्पतियां, अन्न, साग व सब्जियों

को शायद उत्पन्न ही न करता और पशुओं की संख्या को इतना बढ़ा देता कि मनुष्य केवल मांसाहार कर ही अपना जीवन व्यतीत करते।

पशु बलि एक अंधविश्वास भरी परम्परा : किसी भी पशु चाहे वह गाय, भैंस या बकरी हो उम्मीद से बलि दे दी जाती है कि उस पशु को देवता पर अर्पित करने से वह देवता प्रसन्न हो जावेंगे तथा बलि चढ़ाने वाले की सारी इच्छाएँ पूरी हो जावेगी। अपनी मृगतृष्णा की पूर्ति के लिए दूसरे जीव का जीवन हरण करने की यह प्रथा भी कितनी विचित्र है। अपने लाभ के लिए किसी दूसरे की जान लेकर उसके खून की धार बहाकर, उसके मांस के टुकड़ों को उदरस्थ कर क्या कोई धार्मिक क्रिया पूरी हो सकती है या किसी ईश्वर को प्रसन्न किया जा सकता है अथवा इच्छाएं पूर्ण की जा सकती है? या यह सिर्फ एक मृग मरीचिका है। क्या ऐसी क्रूरता जिसे कोई सहृदय इंसान भी नहीं पसंद कर सकता है तो भला दया के सागर माने जाने वाले ईश्वर कैसे स्वीकार

हिंसा मनुष्य का मूल स्वभाव नहीं है। आदि मानव असभ्य भले ही रहा हो लेकिन वह जंगल में रहते हुए भी पशुओं की वध सिर्फ दो ही कारणों से करता था। एक तो अपने बचाव के लिए तथा दूसरा अपनी भूख मिटाने के लिए वह भी तब जब उसके पास खाने–पीने, भोजन के विकल्प नहीं थे। (यहां तक जंगली जानवर भी भूखे न रहने पर अन्य जानवरों का शिकार नहीं करते) लेकिन जब उसने पशुओं के साथ रहना सींख लिया, उन्हें पालने लगा, कृषि, व्यवसाय, परिवहन, दूध आदि के लिए उपयोग करने लगा, तब उसने उन्हें अपना साथी मान लिया तथा उनका पालन व सुरक्षा भी करने लगा।

अब आप ही बतायें जिस परमपिता ने सभी जीवो को बनाया है वो इनकी हत्या क्यों करवाना चाहेगा, ईश्वर ने सभी प्राणियों को उनके कर्मो के अनुसार उनको कर्मो को भोगने के लिये जन्म दिया है और सभी की आयु भी निर्धारित की है। यदि ईश्वर इनको दूसरो के द्वारा इनकी हत्या करवाकर खुश होने लगा तो ईश्वर के न्याय पर प्रश्न उठ जायेगा।

वेद, रामायण और महाभारत आदि ग्रंथो में शूद्र का अपमान है?

- क्या किसी भी शुद्र के लिए तपस्या धर्म शास्त्रों में वर्जित हैं?
- क्या किसी शुद्र के तपस्या करने से किसी ब्राह्मण के बालक की मृत्यु हो सकती हैं?
- क्या श्री रामचन्द्र जी महाराज शूद्रों से भेदभाव करते थे?

इस प्रश्न का उत्तर वेद, रामायण, महाभारत और उपनिषदों में अत्यंत प्रेरणा दायक रूप से दिया गया हैं।

वेदों में शूद्रों के विषय में कथन

1. **तपसे शुद्रम** – यजुर्वेद 30/5

अर्थात– बहुत परिश्रमी, कठिन कार्य करने वाला, साहसी और परम उद्योगों अर्थात् तप को करने वाले आदि पुरुष का नाम शुद्र हैं।

2. **नमो निशादेभ्य** – यजुर्वेद 16/27

अर्थात– शिल्प–कारीगरी वि॥ से युक्त जो परिश्रमी जन (शुद्रधनिषाद) हैं उनको नमस्कार अर्थात् उनका सत्कार करें।

3. **वारिवस्कृतायौषधिनाम पतये नमो**– यजुर्वेद 16/19

अर्थात् – वारिवस्कृताय अर्थात् सेवन करने हारे भृत्य का (नम) सत्कार करो।

4. **रुचं शुद्रेषु**– यजुर्वेद 18/48

अर्थात– जैसे ईश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र से एक समान प्रीति करता हैं वैसे ही विद्वान लोग भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र से एक समान प्रीति करे।

5. **पञ्च जना मम** – ऋग्वेद

अर्थात पांचों के मनुष्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र एवं अतिशूद्र निषाद) मेरे यज्ञ को प्रीतिपूर्वक सेवें। पृथ्वी पर जितने मनुष्य हैं वे सब ही यज्ञ करें।

इसी प्रकार के अनेक प्रमाण शुद्र के तप करने के, सत्कार करने के, यज्ञ करने के वेदों में मिलते हैं।

सत्य, दान, क्षमा, शील अनृशंसता, तप और दया जिसमें हो वह ब्राह्मण हैं और जिसमें यह न हों वह शूद्र होता हैं। वन पर्व 180/21–26

वैदिक इतिहास में वर्ण परिवर्तन के अनेक प्रमाण उपस्थित हैं जैसे :–

(अं) ऐतरेय ऋषि दास अथवा अपराधी के पुत्र थे परन्तु उच्च कोटि के ब्राह्मण बने और उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेय उपनिषद की रचना की ऋग्वेद को समझने के लिए ऐतरेय ब्राह्मण अतिशय आवश्यक माना जाता हैं।

(इ) ऐलूष ऋषि दासी पुत्र थे जुआरी और चरित्रहीन भी थे परन्तु बाद में उन्होंने अध्ययन किया और ऋग्वेद पर अनुसन्धान करके अनेक अविष्कार किये। ऋषियों ने उन्हें आमंत्रित करके आचार्य पद पर आसीन किया। (ऐतरेयब्राह्मण 2.19)

(ब) सत्यकाम जाबाल गणिका (वेश्या) के पुत्र थे परन्तु वे ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए।

(क) राजा दक्ष के पुत्र पृषध शूद्र हो गए थे। प्रायश्चित स्वरुप तपस्या करके उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। (विष्णुपुराण 4.1.14)

अगर उत्तर रामायण की मिथ्या कथा के अनुसार शूद्रों के लिए तपस्या करना मना होता तो पृषध ये कैसे कर पाए।

(म)राजा नेदिष्ट के पुत्र नाभाग वैश्य हुए। पुनः इनके कई पुत्रों ने क्षत्रिय वर्ण अपनाया। (विष्णुपुराण 4.1.13)



भाग– 4
मनुस्मृति को लेकर दुष्प्रचार



मनुस्मृति को लेकर दुष्प्रचार

भारत और विदेशों में मनुस्मृति की प्रतिष्ठा वेद के बाद यदि किसी ग्रन्थ की भारत और भारत से बाहर विदेशों में सर्वत्र अत्यधिक प्रतिष्ठा है, तो वह ग्रन्थ मनुस्मृति है। विस्तारभय से हम उसका वर्णन करने में असमर्थ हैं। ऐसे विश्वप्रसिद्ध 'लागिवर' एवं समाज–व्यवस्था प्रणेता पर पता नहीं किस स्वार्थ के वशीभूत होकर आक्षेप और आरोप लगाये जा रहे हैं, जो चिन्तनीय हैं। मनुस्मृति में समय–समय पर मिलावट (प्रक्षिप्त) की गई। क्योंकि उसका सम्बन्ध हमारी दैनिक जीवनचर्या से था। और उससे जीवन व समाज सीधा प्रभावित होता था। अतः उसमें परिवर्तन भी किया जाना स्वाभाविक था। अनुसन्धान के मानदण्डों के आधार पर मनुस्मृति के उपलब्ध 2685 श्लोकों में से 1471 प्रक्षिप्त (मिलावटी) सिद्ध हुए हैं और 1214 मौलिक। विस्तृत समीक्षा के लिए डा. सुरेन्द्र कुमार द्वारा सम्पादित मनुस्मृति पढ़ें जो आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली द्वारा प्रकाशित हैं।

महर्षि मनु ने समाज के संचालन के लिए जो व्यवस्थाएँ दी हैं। उन सबका संग्रह मनुस्मृति में हैं। अर्थात मनुस्मृति मानव समाज का प्रथम संविधान हैं। न्याय व्यवस्था का शास्त्र हैं। यह वेदों के अनुकूल है। वेद की क़ानून व्यवस्था अथवा न्याय व्यवस्था को कर्त्तव्य व्यवस्था भी कहा गया है। उसी के आधार पर मनु ने सरल भाषा में मनुस्मृति का निर्माण किया। वैदिक दर्शन में संविधान या कानून का नाम ही धर्मशास्त्र हैं।

मनुस्मृति की सामान्य रूप रेखा कुछ ऐसी हैं –

1. पहले अध्याय में प्रकृति के निर्माण चार युगों चार वर्णों उनके पेशों ब्राह्मणों की महानता जैसे विषय शामिल हैं।
2. दूसरा अध्याय ब्रह्मचार्य और अपने मालिक की सेवा पर आधारित हैं।
3. तीसरे अध्याय में शादियों की क़िस्मों विवाहों के रीति रिवाजों और श्राद्ध यानी पूर्वजों को याद करने का वर्णन हैं।

4. चौथे अध्याय में गृहस्थ धर्म के कर्तव्य, खाने या न खाने के नियमों और 21 तरह के नरकों का जिक्र हैं।
5. पांचवे अध्याय में महिलाओं के कर्तव्यों शुद्धता और अशुद्धता आदि का ज़िक्र हैं।
6. छठे अध्याय में एक संत को कैसा होना चाहिए इसके बारे में बताया गया हैं।
7. सातवें अध्याय में एक राजा के कर्तव्यों का ज़िक्र हैं।
8. आठवाँ अध्याय अपराध न्याय वचन और राजनीतिक मामलों आदि पर बात करता हैं।
9. नौवें अध्याय में पैतृक संपत्ति महिला–पुरुष के सम्बन्ध का वर्णन हैं।
10. दसवें अध्याय में वर्णों के मिश्रण मतलब अगर एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण में शादी करे तो क्या होगा ये बताया गया हैं।
11. ग्यारहवें अध्याय में पापकर्म की व्याख्या हैं।
12. बारहवें अध्याय में तीन गुणों और वेदों की प्रशंसा हैं।

मनुस्मृति में कई जगह पर अधिकार अपराध ब्यान और न्याय के बारे में बात की गई हैं। इन्हें आईपीसी और सीआरपीसी की तरह लिखा गया हैं।

महर्षि मनु और मनुस्मृति को लेकर भ्रांतिया

यहाँ हम मनु पर लगाए गए कुछ आरोपों का जवाब दे रहे हैं। इस आशा के साथ कि यदि ये जवाब ठीक हो तो कृपया मनु पर आरोप लगाना और उनके प्रति नकारात्मक सोच छोड़ दे। क्योंकि इसमें कोई सच्चाई जानने की बात गलत नहीं मिली हैं।

मनुस्मृति में जातिवाद

मनु कहते हैं– जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते। अर्थात जन्म से सभी शूद्र होते हैं और कर्म से ही वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनते हैं। वर्तमान दौर में 'मनुवाद' शब्द को नकारात्मक अर्थों में लिया जा रहा है। ब्राह्मणवाद को भी मनुवाद के ही पर्यायवाची के रूप में उपयोग किया जाता है। वास्तविकता में तो मनुवाद की रट लगाने वाले लोग मनु अथवा मनुस्मृति के बारे में जानते ही नहीं है या फिर अपने निहित स्वार्थों के लिए मनुवाद का राग अलापते रहते हैं। दरअसल, जिस जाति व्यवस्था के लिए मनुस्मृति को दोषी ठहराया जाता है, उसमें जातिवाद का उल्लेख तक नहीं है।

आखिर जिस मनुस्मृति में कहा गया की जन्म से सब शूद्र ही होते है कर्मों से वो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बनते है,जातिवाद नही वर्णवाद नियम था की शूद्र के घर पैदा

होने वाला ब्राम्हण बन सकता था,,, सब कर्म आधारित था,,, आज उसको जातिवाद की राजनीति का केंद्र बना दिया गया।

वैदिक ग्रंथ जाति के विषय में कहते हैं कि जीव की जाति उसके कर्मों के अनुसार ईश्वर निर्धारित करता है, जिसको बदलना संभव ही नहीं है। जाति का अर्थ जो आज प्रचलन में हैं ये नही हैं। जाति का अर्थ है उद्‌भव के आधार पर किया गया वर्गीकरण। न्याय दर्शन में जाति की परिभाषा स्पष्ट की गयी हैं।

न्याय दर्शन कार गौतम मुनि जी लिखते हैं –

समानप्रसवात्मिका जातिः (न्या.2/2/19)

यानि जन्म के समय ही मालूम पड़ता है की जन्म लेने वाले की जाति क्या है जैसे कि मनुष्य की जाति, गाय एक जाति, घोड़ा दूसरी जाति, बन्दर, कुत्ता मोर आदि इनकी अपनी अपनी जाति है। इसी प्रकार मनुष्य भी एक जाति है। इसलिए गलत अर्थ निकालकर समाज को भ्रमित किया जाता रहा है।

इस पर भी वात्स्यायन मुनि भाष्य में कहते हैं –

या समानां बुद्धिम प्रसूते भिन्नेष्वधिकरणेषु यया बहूनीतरेतरतो न व्यावर्तन्ते योऽर्थोऽनेकत्र प्रत्ययानुवृत्तिनिमित्तं तत्सामान्यम्। यच्च केषाधिद भेदं कुतश्चिद्‌भेदं करोति तत्सामान्य विशषा जातिरिति।

अर्थात्:–भिन्न–भिन्न वस्तुओं में समानता उत्पन्न करने वाली जाति हैं। इस जाति के आधार पर अनेक वस्तुएँ आपस में पृथक–पृथक नहीं होतीं अर्थात् :–एक ही नाम से बोली जाती हैं। जैसे गौएँ पृथक् कितनी भी हो तो भी सबको गौ कहते हैं। यह एकता जाति के कारण ही उत्पन्न हुई जाति भी दो प्रकार की होती हैं। एक सामान्य दूसरी सामान्य विशेष जो अनेक वस्तुओं में एक आकार की प्रतीत होती हैं। वह सामान्य जाति हैं जैसे पशु जाति सामान्य हैं।

हर जाति विशेष के प्राणियों में शारीरिक अंगों की समानता पाई जाती हैं। एक जन्म–जाति दूसरी जाति में कभी भी परिवर्तित नहीं हो सकती हैं और नही भिन्न जातियां आपस में संतान उत्त्पन्न कर सकती हैं। अतः जाति ईश्वर निर्मित हैं। जाति का अर्थ होता हैं जो दो लोग मिल के एक संतान को जन्म दे सकते हैं वो समान जाति के होते हैं। जाति का सीधा–सीधा रिश्ता जन्म से जुड़ा हैं। उदाहरणः जैसे एक लोमड़ी और एक शेर मिल के एक बच्चा नहीं पैदा कर सकते तो वो दोनों अलग अलग जाति के होते हैं। लोमड़ी की जाति अलग हैं और शेर की जाति अलग है। उसी प्रकार एक आदमी और एक औरत एक जाति के माने गए है और जो लोग ब्रह्मण क्षत्रिय शूद्र आदि को जाति समझता है वो गलत हैं।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र किसी भी तरह भिन्न जातियाँ नहीं हो सकती हैं। क्योंकि न तो उनमें परस्पर शारीरिक बनावट (इन्द्रियादी) का भेद है और न ही उनके जन्म स्त्रोत में भिन्नता पाई जाती हैं।

जाति की दो उप जाति नर और मादा हैं।

वर्ण व्यवस्था– अभी तक मनुस्मृति को दोष दिया जाता है कि वर्ण व्यवस्था मनुस्मृति की देन है। ध्यान देने वाली बात यह है कि मनु की निंदा करने वाले इन लोगों ने मनुस्मृति को कभी गम्भीरता से पढ़ा और समझा नहीं है। वर्ण व्यवस्था क्या है?

वैदिककाल में यह वर्णव्यवस्था जन्म आधारित नहीं थी। मनु महाराज ने प्रतिपादित किया है कि यह वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं अपितु कर्म से प्राप्त होती थी। यदि कोई अपने अपने वर्ण के कर्तव्यों का यथावत् पालन न करें तो वह अपने वर्ण से पतित भी हो सकता है।

वर्ण को इसलिए बनाया गया जिसके द्वारा लोगों को उनके गुण कर्म और स्वभाव के आधार पर अधिकार दिया जा सके। वर्ण को मनुष्य के वंश के अनुसार नहीं कर्म के अनुसार बनाया गया हैं जिसका मतलब ये था कि जब कोई व्यक्ति शूद्र के घर में जन्म लेके भी वो कर्म से ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य है तो वो शूद्र नहीं बल्कि कर्म द्वारा बना वर्ग माना जायेगा।

- ब्राह्मण का कर्म हैं विधिवत पढ़ना और पढ़ाना यज्ञ करना और कराना दान प्राप्त करना और सुपात्रों को दान देना।
- क्षत्रिय का कर्म है विधिवत पढ़ना यज्ञ करना प्रजाओं का पालन पोषण और रक्षा करना सुपात्रों को दान देना धन ऐश्वर्य में लिप्त न होकर जितेन्द्रिय रहना।
- वैश्य का कर्म हैं पशुओं का लालन–पोषण सुपात्रों को दान देना यज्ञ करना विधिवत अध्ययन करना व्यापार करना धन कमाना खेती करना।
- शुद्र का कर्म हैं सभी चारों वर्णों के व्यक्तियों के यहाँ पर सेवा या श्रम करना।

शुद्र शब्द को मनु अथवा वेद ने कहीं भी अपमानजनक नीचा अथवा निकृष्ट नहीं माना हैं। मनु के अनुसार चारों वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र आर्य हैं।–मनु 10/4

इस आलोक में ब्राह्मण वर्ण हैं और कोई जाति नहीं। जो कि वर्तमान कर्मों के अनुसार चुना जाता है। आजकल प्रचलित कुलनाम (नतदंउम) लगाने के रिवाज से इन वर्णों का कोई लेना–देना नहीं है ।

'वर्णों में परिवर्तन' :

क्या शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र बन सकता हैं ?

ब्राह्मण शूद्र आदि वर्ण क्योंकि गुण कर्म और स्वभाव के आधार पर विभाजित हैं। इसलिए इनमें परिवर्तन संभव हैं। कोई भी व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण नहीं होता। अपितु शिक्षा प्राप्ति के पश्चात उसके वर्ण का निर्धारण होता हैं। कोई भी ब्राह्मण जन्म से होता हैं अथवा गुण कर्म और स्वभाव से होता हैं। व्यक्ति की योग्यता का निर्धारण शिक्षा प्राप्ति के पश्चात ही होता हैं। जन्म के आधार पर नहीं होता हैं। किसी भी व्यक्ति के गुण कर्म और स्वभाव के आधार पर उसके वर्ण का चयन होता हैं। कोई व्यक्ति अनपढ़ हो और अपने आपको ब्राह्मण कहे तो वह गलत हैं।

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् भवेत् द्विजःउच्यते।

मनु का उपदेश पढ़िए– जैसे लकड़ी से बना हाथी और चमड़े का बनाया हुआ हरिण सिर्फ नाम के लिए ही हाथी और हरिण कहे जाते हैं। वैसे ही बिना पढ़ा ब्राह्मण मात्र नाम का ही ब्राह्मण होता हैं। –मनुस्मृति 2/157

मनुस्मृति 10/65: ब्राह्मण शूद्र बन सकता और शूद्र ब्राह्मण हो सकता है इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य भी अपने वर्ण बदल सकते हैं।

मनुस्मृति 9/335: शरीर और मन से शुद्ध – पवित्र रहने वाला, उत्कृष्ट लोगों के सानिध्य में रहने वाला, मधुरभाषी, अहंकार से रहित, अपने से उत्कृष्ट वर्ण वालों की सेवा करने वाला शूद्र भी उत्तम ब्रह्म जन्म और द्विज वर्ण को प्राप्त कर लेता है।

मनुस्मृति के अनेक श्लोक कहते हैं कि उच्च वर्ण का व्यक्ति भी यदि श्रेष्ठ कर्म नहीं करता, तो शूद्र (अशिक्षित) बन जाता है ।

मनु का उपदेश देखे–एक ही अपराध के लिए शूद्र को सबसे कम दंड, वैश्य को दोगुना, क्षत्रिय को तीन गुना और ब्राह्मण को सोलह या 128 गुणा दंड मिलता था।–मनु 8/337 एवं 8/338

इन श्लोकों के आधार पर कोई भी मनु महाराज को पक्षपाती नहीं कह सकता।

शूद्र के अधिकार अनंत है : शूद्र के विषय में मनुस्मृति की व्यवस्था :

(1) शूद्र अस्पृश्य नहीं –अनेक श्लोकों से ज्ञात होता है कि शूद्रों के प्रति मनु महाराज की मानवीय सद्भावना थी और वे उन्हें अस्पृश्य, निन्दित अथवा घृणित नहीं मानते थे। मनुस्मृति में शूद्रों के लिए उत्तम, उत्कृष्ट, शुचि जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है। अब आप ही निर्णय कीजिये जिस मनुस्मृति में शूद्र के लिए ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया

गया तो ऐसे व्यक्ति को कभी अस्पृश्य या घृणित नहीं माना जा सकता (9.335)।

किसी द्विज के यहाँ यदि कोई शूद्र अतिथिरुप में आ जाये तो उसे भोजन कराने का आदेश है (3.112)।

(1)शूद्र को सम्मान व्यवस्था में छूट– मनु ने सम्मान के विषय में शूद्रों को विशेष छूट दी है। मनुविहित सम्मान–व्यवस्था में प्रथम तीन वर्णों में अधिक गुणों के आधार पर अधिक सम्मान देने का कथन है जिनमें विद्वान सबसे अधिक सम्मानीय है (2.111, 112, 130)।

किन्तु शूद्र के प्रति अधिक सद्भाव प्रदर्शित करते हुए उन्होंने विशेष विधान किया है कि द्विज वर्ण के व्यक्ति वृद्ध शूद्र को पहले सम्मान दें, जबकि शूद्र अशिक्षित होता है। यह सम्मान पहले तीन वर्णों में किसी को नहीं दिया गया है।

''मानार्हः शूद्रो ऽपि दशमीं गतः''–(2.१३७)

अर्थात् –वृद्ध शूद्र को सभी द्विज पहले सम्मान दें। शेष तीन वर्णों में अधिक गुणी पहले सम्मान का पात्र है।

(3) शूद्र को धर्मपालन की स्वतन्त्रता –

''न धर्मात् प्रतिषेधनम्''(10.126)

अर्थात्–'शूद्रों को धार्मिक कार्य करने का निषेध नहीं है' यह कहकर मनु ने शूद्र को धर्मपालन की स्वतन्त्रता दी है। इस तथ्य का ज्ञान उस श्लोक से भी होता है जिसमें मनु ने कहा है कि 'शूद्र से भी उत्तम धर्म को ग्रहण कर लेना चाहिए' (2.213)।

(4) वेदों में शूद्रों को स्पष्टतः यज्ञ आदि करने और वेदशास्त्र पढ़ने का अधिकार दिया है –

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

(यजुर्वेद 26.2)

अर्थात् मैंने इस कल्याणकारिणी वेद वाणी का उपदेश सभी मनुष्यों द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, स्वाश्रित स्त्री–भृत्य आदि और अतिशूद्र आदि के लिए किया है।

शूद्र सम्बन्धित मनु के विचार

शूद्र दास नहीं है–शूद्र से दासता कराने अथवा जीविका न देने का कथन मनु के निर्देशों के विरुद्ध है। मनु ने सेवकों, भृत्यों का वेतन, स्थान और पद के अनुसार नियत करने का आदेश राजा को दिया है और यह सुनिश्चित किया है कि उनका वेतन अनावश्यक रुप से न काटा जाये (7.125–126,8.216)

शूद्र सवर्ण हैं–वर्तमान मनुस्मृति को उठाकर देख लीजिए, उनकी ऐसी कितनी ही व्यवस्थाएँ हैं, जिन्हें परवर्ती समाज ने अपने ढंग से बदल लिया है। मनु ने शूद्र सहित चारों वर्णों को सवर्ण माना है, चारों से भिन्न को असवर्ण (10.4,45), किन्तु परवर्ती समाज शूद्र को असवर्ण कहने लग गया। मनु ने शिल्प, कारीगरी आदि कार्य करने वाले लोगों को वैश्य वर्ण के अन्तर्गत माना है, किन्तु परवर्ती समाज ने उन्हें भी शूद्रकोटि में ला खड़ा कर दिया।

शूद्र भी पढ़ा सकते है –शूद्र भले ही अशिक्षित हों तब भी उनसे कौशल और उनका विशेष ज्ञान प्राप्त किया जाना चाहिए ।

2.238: अपने से न्यून व्यक्ति से भी विद्या को ग्रहण करना चाहिए और नीच कुल में जन्मी उत्तम स्त्री को भी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए।

शूद्र ब्रह्मा के पैरों से उत्पन हुए

बौद्धिक कार्यों में संलग्न व्यक्तियों ने ब्राह्मण वर्ण को अपनाया है ।समाज में रक्षा कार्य व युद्धशास्त्र में रूचि योग्यता रखने वाले क्षत्रिय वर्ण के हैं। व्यापार–वाणिज्य और पशु–पालन आदि का कार्य करने वाले वैश्य तथा जिन्होंने सहयोगात्मक कार्यों का चयन किया है वे शूद्र वर्ण कहलाते हैं। ये मात्र आजीविका के लिए अपनाये जाने वाले व्यवसायों को दर्शाते हैं, इनका जाति या जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः हम भी समाज में व्याप्त जन्म आधारित भेदभाव को ठुकरा कर, एक दूसरे को भाई–बहन के रूप में स्वीकारें और अखंड समाज की रचना करें ।हमें गुमराह करने के लिए वेदों में जातिवाद के आधारहीन दावे करनेवालों की मंशा को हम सफल न होने दें और समाज के अपराधी बनाम दस्युदासराक्षसों का भी सफाया कर दें ।

दलित कौन?

दलित अंग्रेजी शब्द डिप्रेस्ड क्लास का हिन्दी अनुवाद है। ये शब्द हमारे किसी धर्म ग्रंथ या इतिहास में नही मिलता है। भारत में वर्तमान समय में 'दलित' शब्द कुछ विशेष वर्ग के साथ जोड़ दिया है जिसको गरीबी और अशिक्षा के कारण लम्बे अरसे तक शोषण–उत्पीडन का शिकार होना पड़ा। दरअसल दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है दलन किया हुआ यानि मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, विनष्ट किया हुआ। दलित शब्द जातिवाचक नहीं है इसका सीधा सम्बन्ध धनी और निर्धन से है। किसी के पास अत्यधिक धन होता है और कोई इतना निर्धन (दलित) की दो वक्त की रोटी नहीं मिलती।

आजादी के बाद अम्बेडकर, गाँधी और नेहरू ने दलित नाम को संविधान की आड़ में दलित खूब प्रचारित किया जिसको हर राजनैतिक पार्टी ने लपका और समाज के

विघटन का फायदा लिया। पूर्ण समर्थ और शिक्षित व्यक्ति भी लाभ हेतु दलित नाम का बिल्ला लगाकर मत्यु पर्यन्त दलित कहलाना पसंद करते है और इसकी आने वाले नस्ले भी दलित।

दलित का वास्तविक भावार्थ क्या है?

दलित कोई भी जन्म से नहीं होता प्रत्येक व्यक्ति की वर्तमान परिस्थिति पर निर्भर करता है। जैर्से–

1 जो आर्थिक रूप से अति गरीब हो और जीवन यापन के लिए दुसरे की दया पर जैसे कर्जा, भीख आदि से उसको निर्वाह करना पड़ता हो।

2 जो शारीरिक रूप से इतना कमजोर हो की उसको दुसरे की मदद हमेशा चाहिए।

3 जो मानसिक रूप से इतना कमजोर हो की उसको दुसरे की मदद हमेशा चाहिए।

4 अत्यंत आर्थिक रूप से कमजोर हो और दुसरे पर निर्भर रहना उसकी मजबूरी हो उसको भी अपवाद स्वरूप दलित कह सकते है।

5 गुलाम या बंधुवा मजदूर

6 बिना दोष के जेल में पड़ा कैदी आदि

क्या दलित स्वर्ण बन सकता है? जी हाँ बिल्कुल, जब उसकी परिस्थितिया अनुकूल हो जाये तो वह दलित नहीं रह जाता।

अछूत किसे कहते है ?

अछूत के ये शाब्दिक अर्थ हैं

1. जिसे अभी तक छुआ ना गया हो
2. जो किसी कारणवश छूने योग्य ना हो।

कोविड संक्रमण के दौरान आपने देखा होगा कि लोग एक दूसरे को छूने से डरते थे और आपस में हाथ मिलाने के बजाय हाथ जोडकर नमस्ते आरम्भ कर दिया। वायरस के भय के कारण एक दूसरे को अछूत माना जाने लगा था।

कुछ मजहबों में उन लोगों को अछूत माना गया जो सूअर पालन का काम करते हैं, क्योंकि इनमें सूअर अपवित्र माना गया है।

भारत के सन्दर्भ अछूत प्रथा की चर्चा अक्सर होती है। अक्सर इसको जातिवाद से जोड़कर देखा जाता है, जबकि ये अलग विषय है। कहा जा सकता है कि भारत में जातिवाद शेष है लेकिन अछूत प्रथा लगभग समाप्त हैं।

क्या अछूत कोई जाति, वर्ग भी है?

बिलकुल नहीं, ये राजनेताओं और कुछ पण्डो और देशविरोधी तत्वों की मानसिकता है जो समाज को आपस में बाँट रहे है जबकि वर्तमान में विशेष वर्ग में जन्म लेने के कारण किसी को अछूत कहने की सामाजिक बुराई लगभग समाप्त हो चुकी है सभी मिलजुलकर कार्य कर रहे है और एक दूसरे का सहारा बन गए है। शूद्र को अस्पृश्य (अछूत) निन्दित मानना मनु के सिद्धान्त के विरुद्ध है। परंतु वर्तमान में भारत सरकार द्वारा दिए जाने वाले लाभ के कारण स्वयं को अछूत कहलाने में परहेज नही करते। ये दुर्भाग्य है।

ब्राह्मणवाद मनु की देन नहीं

मनु तो सबके लिए शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य करते हैं। बिना पढ़े लिखे को विवाह का अधिकार भी नहीं देते। मनुस्मृति को नहीं समझ पाने का सबसे बड़ा कारण अंग्रेजों ने उसके शब्दांश भाष्य किए जिससे अर्थ का अनर्थ हुआ। पाश्चात्य लोगों और वामपंथियों ने धर्मग्रंथों को लेकर लोगों में भ्रांतियाँ भी फैलाईं। इसीलिए मनुवाद या ब्राह्मणवाद का हल्ला ज्यादा मचा।

मनुस्मृति या भारतीय धर्मग्रंथों को मौलिक रूप में और उसके सही भाव को समझकर पढ़ना चाहिए। पंडित पुजारी बनने के लिये ब्राह्मण होना जरूरी नहीं हैं।

पंडित और पुजारी तो ब्राह्मण ही बनेगा लेकिन उसका जन्मगत ब्राह्मण होना जरूरी नहीं हैं। यहां ब्राह्मण से मतलब श्रेष्ठ व्यक्ति से न कि जातिगत। आज भी सेना में धर्मगुरु पद के लिए जातिगत रूप से ब्राह्मण होना जरूरी नहीं हैं बल्कि योग्य होना आवश्यक है। ऋषि दयानंद की संस्था आर्यसमाज में हजारों विद्वान हैं। जो जन्म से ब्राह्मण नहीं हैं। इनमें सैकड़ों पुरोहित जन्म से दलित वर्ग से आते हैं।

मनुस्मृति में नारियों के लिए सम्मान

महर्षि मनु संसार के वह प्रथम महापुरुष हैं। जिन्होंने नारी के विषय में सर्वप्रथम ऐसा सर्वोच्च आदर्श उद्घोष किया हैं। जो नारी की गरिमा महिमा और सम्मान को असाधारण ऊँचाई प्रदान करता हैं।

मनुस्मृति के अन्तःसाक्ष्य कहते हैं कि मनु की जो स्त्री–विरोधी छवि प्रस्तुत की जा रही हैं। वह निराधार एवं तथ्यों के विपरीत हैं। मनु ने मनुस्मृति में स्त्रियों से सम्बन्धित जो व्यवस्थाएं दी हैं। वे उनके सम्मान सुरक्षा, समानता, सद्भाव और न्याय की भावना से प्रेरित हैं। कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं।

(1) नारियों को सर्वोच्च महत्व

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यैत्रतास्तुः तु न पूज्यन्ते सर्वाः तत्राफलाः क्रियाः ॥

—(3 / 59)

भावार्थः—जिस परिवार में नारियों का आदर—सम्मान होता हैं। वहाँ देवता, दिव्य, गुण, कर्म, स्वभाव, दिव्य, लाभ आदि प्राप्त होते हैं और जहाँ इनका आदर सम्मान नहीं होता वहां उनकी सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।

स्त्रियों के प्रति प्रयुक्त सम्मान जनक एवं सुन्दर विशेषणों से बढ़कर नारियों के प्रति मनु की भावना का बोध कराने वाले प्रमाण और कोई नहीं हो सकते। वे कहते हैं कि नारियों का घर भाग्योदय करने वाली आदर के योग्य घर की ज्योति, गृहशोभा, गृहलक्ष्मी, गृहसंचालिका एवं गृहस्वामिनी घर का स्वर्ग संसारयात्रा का आधार हैं। (9.11,26,28,5. 150)

कल्याण चाहने वाले परिवारजनों को स्त्रियों का आदर—सत्कार करना चाहिए अनादर से शोकग्रस्त रहने वाली स्त्रियों के कारण घर और कुल नष्ट हो जाते हैं। स्त्री की प्रसन्नता में ही कुल की वास्तविक प्रसन्नता हैं। (355—62)

इसलिए वे गृहस्थों को उपदेश देते हैं कि परस्पर संतुष्ट रहें एक दूसरे के विपरीत आचरण न करें और ऐसा कार्य न करें जिससे एक—दूसरे से वियुक्त होने की स्थिति आ जाये। (9.101—102)

मनु की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए एक श्लोक ही पर्याप्त हैं।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हाः गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रीयश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

—(मनु० 1 / 26)

अर्थात्ः—सन्तान उत्पत्ति के लिए घर का भाग्योदय करने वाली आदर सम्मान के योग्य गृहज्योति होती हैं। स्त्रियां। शोभा—लक्ष्मी और स्त्री में कोई अन्तर नहीं हैं वे घर की प्रत्यक्ष शोभा हैं।

पुत्र-पुत्री एक समान

मनु ही सबसे पहले वह संविधान निर्माता है जिन्होंने पुत्र—पुत्री की समानता को घोषित करके उसे वैधानिक रुप दिया हैं।

पुत्रेण दुहिता समा (मनु० 9 / 130)

अर्थात्ः–पुत्री, पुत्र के समान होती हैं वह आत्मारुप हैं। अतः वह पैतृक सम्पत्ति की अधिकारिणी हैं।

पुत्र-पुत्री को पैतृक सम्पत्ति में समान अधिकार

मनु ने पैतृक सम्पत्ति में पुत्र–पुत्री को समान अधिकारी माना हैं। उनका यह मत मनुस्मृति के 9.130,192 में वर्णित हैं। इसे निरुक्त में इस प्रकार उद्घृत किया हैं।

अविशेषणः पुत्रणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥

–(3.1.4)

अर्थात् :–सृष्टि के प्रारम्भ में स्वायम्भुव मनु ने यह विधान किया हैं कि दायभाग पैतृक सम्पत्ति में पुत्र–पुत्री का समान अधिकार होता हैं। मातृधन में केवल कन्याओं का अधिकार विहित करके मनु ने परिवार में कन्याओं के महत्त्व में अभिवृद्धि की हैं। (9.131)

स्त्रियों के धन की सुरक्षा के विशेष निर्देश

स्त्रियों को अबला समझकर कोई भी चाहे वह बन्धु–बान्धव ही क्यों न हो यदि स्त्रियों के धन पर क़ब्ज़ा कर लें तो उन्हें चोर सुदृश दण्ड से दण्डित करने का आदेश मनु ने दिया हैं। (9.212य3.52य8.2य8–29)

नारियों के प्रति किये अपराधों में कठोर दण्ड

स्त्रियों की सुरक्षा के दृष्टिगत नारियों की हत्या और उनका अपहरण करने वालों के लिए मृत्युदण्ड का विधान करके तथा बलात्कारियों के लिए यातनापूर्ण दण्ड देने के बाद देश निकाला का आदेश देकर मनु ने नारियों की सुरक्षा को सुनिश्चित बनाने का यत्न किया हैं। (9/323य9/232य9/352)

नारियों के जीवन में आने वाली प्रत्येक छोटी–बड़ी कठिनाई का ध्यान रखते हुए मनु ने उनके निराकरण हेतु स्पष्ट निर्देश दिये हैं।

पुरुषों को निर्देश हैं। कि वह माता, पत्नी और पुत्री के साथ झगड़ा न करें। (4/180) इन पर मिथ्या दोषारोपण करने वालों इनको निर्दोष होते हुए त्यागने वालों पत्नी के प्रति वैवाहिक दायित्व न निभाने वालों के लिए दण्ड का विधान हैं। (8/275,389य9/4)

वैवाहिक स्वतन्त्रता एवं अधिकार

विवाह के विषय में मनु के आदर्श विचार हैं। मनु ने कन्याओं के योग्य पति का स्वयं वरण करने का निर्देश देकर स्वयंवर विवाह का अधिकार एवं उसकी स्वतन्त्रता दी हैं। (9/90–91)

विधवा को पुनर्विवाह का भी अधिकार दिया हैं (9/176 ,9/56-63)

उन्होंने विवाह को कन्याओं के आदर–स्नेह का प्रतीक बताया हैं। अतः विवाह में किसी भी प्रकार के लेन–देन को अनुचित बताते हुए बल देकर उसका निषेध किया हैं। (3 / 51–54)

स्त्रियों के सुखी–जीवन की कामना से उनका सुझाव है कि जीवन प्रयत्न अविवाहित रहना श्रेयस्कर हैं किन्तु गुणहीन दुष्ट पुरुष से विवाह नहीं करना चाहिए (9 / 89)

जिस कुल में स्त्रियाँ कष्ट भोगती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता हैं।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥

मनुस्मृति 3 / 57।

यत्र जामयः शोचन्ति तत् कुलम् आशु विनश्यति।
यत्र तु एताः न शोचन्ति तत् हि सर्वदा वर्धते॥

जिस कुल में स्त्रियाँ कष्ट भोगती हैं। वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता हैं और जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं। वह कुल सदैव फलता–फूलता और समृद्ध रहता हैं (परिवार की पुत्रियों, वधुओं, नव विवाहिताओं आदि जैसे निकट सम्बन्धिनियों को जामि कहा गया हैं।

कन्याओं को जनेऊ (उपनयन) का अधिकार है ?

वास्तविकता :कन्याओं का भी उपनयन होता था और आज भी बहुत सारे वैदिक परिवारों में कन्याओं का उपनयन होता है और स्त्रियाँ यज्ञोपवीत पहनती हैं सन्ध्या अग्नि होत्र करती हैं वेदपाठ भी करती हैं । निर्णय सिन्धु तृतीय परिच्छेद में लिखा है –

''पुराकल्पेतु नारीणा नाञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्ययनंच वेदानां भिक्षाचर्य तथैव च॥''

इसमें यज्ञोपवीत और वेदों का अध्ययन दोनों का विधान है।

बहुत से पुरुष दो यज्ञोपवीत (6 धागे का जनेऊ 3 के बजाय) धारण करते है उनका कहना है की 3 धागे अपने और 3 धागे पत्नी वाले धारण किये है। इसका मतलब उनको यज्ञोपवीत का मतलब ही नहीं मालूम सिर्फ गले में डालकर घूमना है। संक्षेप में यज्ञोपवीत के तीन धागे का अर्थ है अभिप्राय यह है कि मनुष्यों को आदि सृष्टि में स्वकर्तव्यों पालन का उपदेश देने वाला स्वयं परमात्मा ही था और यज्ञोपवीत के ये तीन तार उसके पितृ ,आचार्य तथा ऋषि ऋण से उऋण होने के ही प्रतीक हैं। यह शुभ्र स्वच्छ और पवित्र यज्ञोपवीत धारण करने वाले की आयु , बल तथा तेज को बढ़ाता है ।

स्वामी दयानन्द जी ने तो आर्य समाज के नियमों में एक नियम ही बना दिया कि वेद का पढ़ना पढ़ाना परम धर्म है।आज के दिन दर्जनों कन्या गुरुकुलों में हजारों छात्रायें

वेद पढ़ रही हैं और सैकड़ों वेद विद्या की गम्भीर विदुषियाँ, आचार्याएँ वेद पढ़ा रही हैं।

उपरोक्त कथन ऋग्वेद के इस मंत्र से स्पष्ट है जिसमे नारी के लिए –पुरंधिः योषाः कहा गया है। यानि योषा अर्थात् नारी। पुरम– अग्रिम पंक्ति की निर्देशिका–– धिः बुद्धि से युक्त नारी

शंकराचार्य निश्चलानन्द सरस्वती जी कैसे विरोध करते हैं यह वहीं जाने। स्त्री और पुरुष को समान अधिकार ईश्वर ने दिए है, माता की तुलना भूमि से की गयी है और पिता को आकाश के समान माना है, कभी भी मातृशक्ति को कम नहीं आंकना चाहिए, ये स्त्री विरोधी मानसिकता समाप्त होनी जरुरी है।

मनुस्मृति मे दण्ड व्यवस्था

मनुस्मृति मे दण्डव्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड–मनुस्मृति में वर्णित दंड विधान का अध्ययन किया जाये तो पता चलता है कि यह कहना नितान्त अनुचित है कि मनु ने शूद्रों के लिए कठोर दण्डों का विधान किया है और ब्राह्मणों को विशेषाधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्रदान की हैं।

मनु की दण्ड व्यवस्था के मानदण्ड हैं–गुण–दोष, और आधारभूत तत्व हैं – बौद्धिक स्तर, सामाजिक स्तर, पद, अपराध का प्रभाव। मनु की दण्डव्यवस्था मनोवैज्ञानिक है। यदि मनु वर्णों में गुण–कर्म–योग्यता के आधार पर उच्च वर्णों को अधिक सम्मान और सामाजिक स्तर प्रदान करते हैं तो अपराध करने पर उतना ही अधिक दण्ड भी देते हैं।

इस प्रकार मनु की यथायोग्य दण्ड व्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड है, और ब्राह्मण को सबसे अधिक, राजा को उससे भी अधिक। मनु की यह सर्वमान्य दण्डव्यवस्था है, जो सभी दण्डस्थानों पर लागू होती है–

अष्टापा ! तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्ण वाऽपि शतं भवेत।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिः, तद्दोषगुणविद्धि सः ॥

(8.337–338)

अर्थात्–किसी चोरी आदि के अपराध में शूद्र को आठ गुणा दण्ड दिया जाता है तो वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा, ब्राह्मण को चौंसठ गुणा, अपितु उसे सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड करना चाहिए क्योंकि उत्तरोत्तर वर्ण के व्यक्ति अपराध के गुण–दोषों और उनके परिणामों, प्रभावों आदि को भलीभाँति समझने वाले हैं।

यदि मनु की दण्डव्यवस्था का आज की व्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट है कि मनुस्मृति में दंड व्यवस्था पूर्णतः मनोवैज्ञानिक, न्यायपूर्ण, व्यावहारिक और श्रेष्ठप्रभावी है।



भाग– 5



भविष्य पुराण के नाम पर दुष्प्रचार

भविष्य पुराण में मोहम्मद का नाम बताकर उसको आदि मानव सिद्ध करने के प्रयास?

मुस्लिम मौलाना जाकिर नायक का कहना है की प्राचीन हिन्दू धर्मग्रंथ भविष्य पुराण में मोहम्मद का उल्लेख महामद नाम से है, और जिससे साफ है कि भविष्य पुराण में मुहम्मद के आने की भविष्यवाणी की गई है। भविष्य पुराण हो या कोई अन्य ग्रंथ, किसी भी वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण या महाभारत आदि इनमे कहीं भी मोहम्मद या अल्लाह का वर्णन नहीं है।

जाकिर नायक ने अपनी ये चाल विगत इस वर्ष 20 फरवरी 2014 को चली, जिसमें हिंदुओं को भ्रमित करने के लिये मोहम्मद को अवतार बताने की कोशिश की, लेकिन असली कथा छुपा ली क्योंकि उसके लिए इतना ही काफी था। इस दावे का सम्पूर्ण विवरण का विडिओ भी यूट्यूब पर उपलब्ध है।

भविष्य पुराण मे क्या लिखा है?

भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड 3, अध्याय 3, शलोक 1/1 में वर्णित कथानक में मोहम्मद नही, महामद नाम अनेको बार आया है। इसमें महामद का एक पात्र है जिसको मल्लेछों का आचार्य, और पैशाच धर्म का संस्थापक बताया है जो बच्चो तक को खा जाता है। और इस पिशाच का अंत भगवान शंकर ने किया।

जाकिर नायक की बात को कुछ समय के लिए सच मानते है कि ये महामत ही मोहम्मद है। और इसकी विवेचना करते है।

इस अलोक में तो भविष्य पुराण में महामत यानि मुहम्मद को त्रिपुरासुर का पुनर्जन्म (अवतार), धर्म दूषक (Polluter of righteousness) और पिशाच धर्म (demoniac religion) का प्रवर्तक बताया गया है। और अल्लाह नाम का काल्पनिक भगवान इसी अहमद के खुराफाती दिमाक की उपज थी।

इस चाल की असलियत –जाकिर नायक अच्छे से जानता है कि किसी हिंदू के पास

वेद, पुराण धर्म ग्रंथ नहीं है और कोई प्रमाण की जाँच भी नही करेगा इसलिए सेकुलर, अज्ञानी हिन्दू उसकी इस कुटिल चाल में आसानी से उसके जाल में फँस जाते है।

ये जाकिर अक्सर दूसरे धर्म के लोगों को आमंत्रित करता है, फिर उन्हीं के धर्म ग्रन्थ से बड़ी चालाकी से कुछ ऐसे अंश पेश करता है, जिनसे साबित हो सके कि उनके धर्मग्रन्थ में भी मुहम्मद, अल्लाह और रसूल का उल्लेख है और भोले–भाले लोग मुसलमान बन जाएँ।

जाकिर नायक की मंशा मुहम्मद को एक अवतार के रूप में प्रस्तुत करना हैं ताकि हिन्दू मुहम्मद को एक अवतार मान कर सम्मान दें और उसके धर्म इस्लाम को स्वीकार कर लें।

भविष्य पुराण के कुछ उदाहरण अर्थ सहित

भविष्य पुराण के प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड – 3, अध्याय 3, श्लोक संख्या 1 –31 में महामद (मुहम्मद) का विवरण एक पैशाच धर्म स्थापक के रूप में किया गया है, जिसे यहाँ उद्धित किया जाना भी आवश्यक है ताकि जाकिर नायक को इस महामत का और खतना कराने वाले लिंगछेदी लोगो का पूरा ब्योरा मिल जाए। और पाठक को भी समझ आ जाए।

भविष्य पुराण से श्री सूत उवाच के संदर्भ

6. महामद इति ख्यातः शिष्यशाखा समन्वितः नृपश्चौव महादेवं मरुस्थलनिवासिनम्।

अर्थ – महामद शिष्यों की अपने शाखाओं में बहुत प्रसिद्द था। नृप (राजा) ने मरुस्थल में निवास करने वाले महादेव को नमन किया।

13. अयोनिः स वरो मत्तः प्राप्तवान् दैत्यवर्द्धनः। महामद इति ख्यातः पैशाच कृति तत्परः ।

अर्थ – वह मुझसे वरदान प्राप्त अयोनिज (मूलविहीन) हैं एवं दैत्य समाज की वृद्धि कर रहा है। वह महामद के नाम से प्रसिद्द है और पैशाचिक कार्यों के लिए तत्पर है।

16. उवाच भूपतिं प्रेम्णा मायामदविशारदः। तव देवो महाराज मम दासत्वमागतः।

अर्थ –माया एवं मद के विशारद ज्ञाता (महामद) ने राजा से झूठ कहा – हे महाराज! आपके देव ने मेरा दासत्व स्वीकार किया है अतः वे (महादेव) मेरे दास हो गए हैं।

18- म्लेच्छधर्मे मतिश्चासीत्तस्य भूपस्य दारुणे, तच्छृत्वा कालिदासस्तु रुषा प्राह महामदम्।

अर्थ – राजा की अत्यंत क्रूर (दारुण) मलेच्छ धर्म के मत से अवगत हुये। राजा को यह (महामद के मिथ्या माया प्रलापों का) श्रवण करते देख, कालिदास ने क्रोध में भरकर महामद से कहा।

22- **गृहीत्वा स्वगुरोर्भस्म मदहीनत्वमागतम्, स्थापितं तैश्च भूमध्ये तत्रेषुर्मदतत्पराः।**

अर्थ – उन्होंने अपने गुरु (महामद) के भाष्य (कुरान) को ग्रहण कर लिया और वे महामदी हो गए। उन्होंने वाहिक देश के भू–मध्य में उस भाष्य सम्मत विधान को स्थापित कर दिया और वे वहां पर ही बस गए।

23- **मदहीनं पुरं जातं तेषां तीर्थं समं स्मृतम्, रात्रौ स देवरूपश्च बहुमायाविशारदः।**

अर्थ–वह मदहीनपुर (मदीना) हो गया और उनके तीर्थ के समान माना जाने लगा। उस बहुमाया के विद्वान (महामद) ने रात्रि में देवरूप धारण किया।

24. **पैशाचं देहमास्थाय भोजराजं हि साऽब्रवीत् आर्य्यधर्म्मो हि ते राजन् सर्ब धर्मोतमः स्मृतः ।**

अर्थ – आत्मा रूप में महामद पैशाच देह को धारण कर भोजराज से आकर कहा। हे राजन (भोजराज)! मेरा यह अति उत्तम धर्म आर्य धर्मों के सम्मत है।

25 **ईशाज्ञया करिष्यामि पैशाचं धर्मदारुणम् लिंगच्छेदी शिखाहीनः श्मश्रुधारी स दूषकः।**

अर्थ – मैं अपने ईश (अल्लाह) की आज्ञा से अतिक्रूर (दारुण) पैशाच धर्म का प्रचार कर रहा हूँ। मेरे लोग लिंगछेदी (खतना किये हुए), शिखा (चोटी) रहित, दाढ़ी रखने वाले दूषक (विकृति उत्पन्न करने वाले) होंगे।

26- **उच्चालापी सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम विना कौलं च पशवस्तेषां भक्ष्या मता मम।**

अर्थ –मेरे अनुयायी ऊंचे स्वर में अलापने वाले और सर्वभक्षी होंगे। हलाल (ईश्वर का नाम लेकर) किये बिना सभी पशु उनके खाने योग्य न होगा।

27- **मुसलेनैव संस्कारः कुशैरिव भविष्यति तस्मात् मुसलवन्तो हि आतयो धर्मदूषकाः।**

अर्थ – मूसल से उनका संस्कार किया जायेगा और मूसलवान हो इन धर्म दूषकों की कई जातियाँ होंगी।

28. इति पैशाच धर्मश्च भविष्यति मयाकृतः इत्युक्तवा प्रययौ देवः स राजा गेहमाययौ।

अर्थ – इस प्रकार भविष्य में मेरे (मायावी महामद) द्वारा किया हुआ यह पैशाच धर्म होगा। यह कहकर वह वह (महामद) चला गया और राजा अपने स्थान पर वापस आ गया।

उपरोक्त भविष्य पुराण के कुछ श्लोको को अर्थ सहित पढ़ने के बाद आप भविष्य पुराण का सन्दर्भ देने वाले जाकिर नालायक से पूछें की मुहम्मद साहब वास्तव में कौन थे? वैसे तो नबी की तुलना मलामत पिशाच से करके जाकिर नालायक के मोहमद की शान में गुस्ताखी की है, मुस्लिम समाज से विद्वान इस पर कभी न कभी संज्ञान लेंगे।

पुराणों में मूर्तिपूजा

पुराणों में मूर्तिपूजा का घोर खण्डन

स्वयं पुराणों में मूर्तिपूजा का घोर खण्डन किया गया है। बौद्ध–धर्म के पतन के साथ इस देश में अनेक प्रकार की मूर्तियों की रचना होती ही गई जिन्होने वुद्ध तया तीर्थकरों की मूर्तियों का स्थान ग्रहण कर लिया। अनेकानेक पुराणों की रचना भी इसी काल में की गई। वर्तमान हिन्दू–धर्म की मूर्तिपूजा आचार–विचार, पर्व, तीर्थ, जन्मजात वर्णव्यवस्था सव ही को रूपरेखा इसी समय की गई। उसके तीन मुख्य सम्प्रदायों–शैव, शाक्त तथा वैष्णव, का जन्म भी इसी काल में हुआ। अठारह महा–पुराण इन ही तीन सम्प्रदायों के आधार भूत ग्रन्थ है। वैष्णव–सम्प्रदाय–प्रधान पुराणो ने मूर्तिपूजा, श्रवतारवाद, तीर्थ माहात्म्य को जितना महत्व दिया है, उतना शैव श्रथवा शाक्त प्रधान पुराणों ने नहीं दिया।

पुराणो के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में भी विद्वानो ने मूर्तिपूजा का विरोध किया। उन्होने या तो इसका सर्वथा खण्डन किया, या उसे अज्ञानी, मूर्ख अथवा निचली श्रेणी के लोगों की वस्तु वताकर ज्ञानियो के लिये उसका निषेध किया। मन्दिरों मे पूजा कार्य ब्राह्मणो ने स्वीकार नही किया और यदि किसी ने लालच वश स्वीकार कर लिया तो उसे जातिच्युत कर दिया गया। पुराणों से ऐते ही कुछ प्रमाण हम नीचे देते हैं: –

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले। न त्वा भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते ।
वर्ते. पुराणचतुर हरिशङ्कराणा। सेवापराश्चविहितास्तव निर्मितानाम् ॥12॥

देवी भागवत स्क० 5 श्र० 16

इस घोर कलियुग में पुराणों के वनाने में धूर्त चतुर लोगों ने विष्णु शिव आदि की पूजा अपने पेट भरने के लिये चलाई।

नाम्बुमयानि तीर्थानि न देवाः मृच्छलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव माधवः ॥12॥
नाग्निर्ग सूर्यो न च चन्द्रतारकाः, न भूर्जल ख श्वसनोऽथ बाड् मनः।
उपासिता भेदकृता हरन्त्यथ, विपश्चितो घ्नन्ति मुहूत सेवया ॥12॥

यस्यात्मवुद्धि कुण्पे त्रिधातुके, स्वधीः कलत्रादिषु भीम इज्यधी।
यत्तीर्थवुद्धि. सलिलेन कर्काहचित, जनेष्वभिज्ञेषु स एवगोखर॥13॥

श्रीमद्भागवत स्क० 10 अ० 84

पानी वाले तीर्थ नही होते, मिट्टी और पत्थरो की मूर्तियाँ देवता नही होती । वे वहुत काल में भी पवित्र नही करते । साधु महात्मा के दर्शन ही पवित्र करते है। 1। अग्नि,

सूर्य, चाद, तारे, भूमि, जल, आकाश, वायु, वाणी, मन आदि पदार्थों की उपासना से पाप दूर नहीं होता। इनकी पूजा परमात्मा से अलग करने वाली है। विद्वानो की थोडी सेवा भी पापो को हरती है ।12। वात, पित्त, कफ तीन मलो से वने हुए शरीर मे जो श्रात्म–बुद्धि, स्त्री आदि में स्वबुद्धि, पृथ्वी से वनी हुई मूर्तियों में जो पूज्यबुद्धि और पानी मे तीर्थ बुद्धि कभी भी करता है, वह गौखर–गौओ का चारा ढोने वाला गधा है ।13।

इसी प्रकार कपिलदेव, जिनकी अवतारो में गणना है कहते हैः–

यहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थित सदा ।
तमवज्ञाय मा मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्वनम् ।।21।।

यो मा सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चा भजने मायाद भस्मन्येव जुहोति सः ।।22

ग्रहमुच्चावचेद्र ब्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे ।
नैव तुष्येऽचितोऽर्चाया भूतग्रामायमानिन ।।24।।

श्रीमद्भागवत स्क० 3 श्र० 26।

सर्व प्रणियो मे जीवात्मा रूप से में व्याप्त रहता हूं। जो मेग निरादर करके मूति का पूजन करते है, यह विडम्बना है। मैं सबकी देह मे रहने वाला है। जो मनुष्य मुझे त्याग कर प्रतिमा का पूजन करते है, वे अपनी अज्ञानता से राख में हवन करते है। २२। हे जननि। ऊचे नीचे पदार्थों से, कर्म से, पूजा से, मै सन्तुष्ट नही होता है तथा जो प्राणियो का तिरस्कार करते है, उन पर मैं प्रसन्न नही होत्ता है।

नह्याम्बुमयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्यपि कालेन विष्णुभद्रा क्षणादहो ।।42।।

देवी भागवत स्क० 6 श्र० 7

पानी के तीर्थ नही होते, मिट्टी और पत्थरो के देवता नही होते, वे किसी काल मे भी पवित्र नही करते।

तीर्थानि तोययूर्णानि देवान् पापाणमृन्मयान् ।
योगिनो न प्रपद्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात् ।।

शिवपुराण दे० सं० 36/26

जल से पूर्ण तीर्थ और पत्थर तथा मिट्टी के देवताओ को योगिजन अपने आत्म विश्वास से नही मानते ।

शिवपुराण में भिन्न–भिन्न धातुओ के भिन्न–भिन्न वर्गों में शिवलिंग पूजने का विधान है। परन्तु इस समय देश में सर्वत्र पत्थर के ही लिंग की पूजा प्रचलित है, जो शिवपुराण के अनुसार केवल शूद्रों के लिए विहीत है– "गिलालिङ्ग तु शूद्राणां महाशुद्धिकरं

शुभम्।।'' 46।। शि० पु० विद्य० स० 1–18 इससे भी सिद्ध है कि प्रचलित ''शिवलिंग'' पूजा शूद्रो के लिये ही प्रचलित की गई थी।

सम्राट् चन्द्रगुप्त के मंत्री सुप्रसिद्ध नीतिकार चाणक्य ने भी मूर्तिपूजा को थोड़ी बुद्धि वालो के लिए वताया है –

अग्निर्देवो द्विजातीना मुनीना हृदि दैवतम्।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीना सर्वत्र समदर्शिना ॥16॥

चाणक्यनीति ग्र० ४

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का देवता अग्नि (अग्निहोत्र) है, मुनियो के हृदय मे देवता है, थोड़ी बुद्धि वालों को मूर्ति और समदर्शियो के लिए सर्वत्र ही देवता है।

पुजारियों के लिए भी पुराणो में यत्र तत्र निन्दनीय शब्दो का प्रयोग किया गया है और उन्हें जाति से बहिष्कृत करने को कहा है। वाराह पुराण मे, किन–किन ब्राह्मणो को श्राद्ध मे भोजन न कराया जाय, की गणना करते हुए 'देवलक' अर्थात् मन्दिर के पुजारी का भी नाम लिया है –

वृपनी सूतिपोष्यञ्च वृषलीपतिरेव च।
तया देवलकञ्चौव श्राद्ध नार्हन्ति केतनम् ॥14॥7॥

वृनली (दुराचारिणी) सूति (नवप्रसूता) वृपली का पति तथा मन्दिर के पुजारी श्राद्ध–भोजन में स्थान पाने योग्य नही है।

पद्मपुराण जो ''वैष्णव पुराण'' है, विष्णु के अतिरिक्त अन्य देव मूर्तियो के दर्शन, स्पर्श, पूजा तथा उन पर चढाये गये पदार्थ को सर्वथा त्यागने का बड़े कठोर गब्दों में निर्देशन करता हैः

नान्य देव तु वीक्षेत ब्राह्मणो न च पूजयेत् । नान्य प्रनाद भुजीत नान्यस्यायतन विशेत् ।

इतरेपा तु देवानां निर्माल्य गहित भवेत् सक्नुदेव हि योऽप्नाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः 1:670। निर्माल्य बहुरादीना स चण्डालो भवेद् ध्रूवम् । कल्पकोटि सहस्राणि पच्यते नरकाग्निना ॥8॥

निर्माल्य भो द्विजश्रेष्ठा रुद्रादीना दिवौकसाम् । रक्षोयक्ष पिश. चन्न मद्यमाससम स्मृतम् ॥66॥

अर्थात् ब्राह्मण दूसरे देवता का न तो दर्शन करे और न उसे पूजे, न उसके प्रसाद को खाये और न उसके मन्दिर में जाये। दूसरे देवताओं का निर्माल्य भी ग्रहण न करें। जो मूर्ख ब्राह्मण इस निर्मात्य को खाता है, वह मानो विष्टा खाता है। शङ्करादि के

निर्माल्य को खाने वाला, निश्चय ही चाण्डाल होता है। वह नरकाग्नि मे करोड़ो कल्प तक पडा रहता है। हे ब्राह्मणो! शिवादि देवताओ का निर्माल्य मद्य मास के तुल्य है।

पुराणों में भागवत पुराण का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है,अतः सबसे पूर्व मैं उसी का प्रमाण दे रहा हूं– **यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः। यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥**

–श्रीमद्भागवत 10–84–13

जो वात, पित और कफ–तीन मलों से बने हुए शरीर में आत्मबुद्धि रखता है, जो स्त्री आदि में स्वबुद्धि रखता है, जो पृथ्वी से बनी हुई पाषाण–मूर्तियों में पूज्य बुद्धि रखता है और जो पानी में ही तीर्थबुद्धि रखता है, ऐसा व्यक्ति गोखर–गौओं का चारा उठाने वाला गधा है।

दुष्प्रचार – मनुस्मृति में कर्म फल व्यवस्था नहीं है।

उत्तर ––मनुस्मृति (4–240) – जीव अकेला ही जन्म और मरण को प्राप्त होता है। अकेला ही अच्छे कर्मों का फल सुख और बुरे कामों की फल दुख के रूप में भोगता है।

विस्तार से –सुख दुख का कारण मनुष्य के कर्म (काम या कार्य) हैं, ग्रह नहीं। मनुष्य जैसा काम करता है वैसा ही फल पाता है। ऐसा काम जिससे किसी का भला हुआ हो उसके बादले में ईष्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होता है और ऐसा काम जिससे किसी का बुरा हुआ हो उसके बदले में मनुष्य को दुख मिलता है। ईष्वर पूर्ण रूप से न्यायकारी है। वह किसी की सिफारिष नहीं मानता। वह रिष्वत नहीं लेता। उसका कोई एजेंट या पीर, पैगम्बर या अवतार नहीं है।

अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कामों का फल अलग अलग भोगना पड़ता है। वे एक दूसरे को काटकर बराबर नहीं करते। अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कामों का अलग अलग हिसाब रहता है। ऐसा नहीं है कि एक अच्छा काम कर दिया और एक उतना ही बुरा काम कर दिया ओर वे बराबर होकर कट गए और हमें कोई फल न मिले। दोनों का अलग अलग फल भोगना पड़ता है। अच्छे और बुरे कामों के फलस्वरूप सुख और दुख साथ साथ भी चल सकते हैं। कुछ अच्छे कामों का फल हम भोग रहे हैं, साथ ही कुछ बुरे कार्यों का फल भी भोग रहे हैं।

मनुष्य जन्म में किए कामों के अनुसार ही आगे का जन्म मिलता है। अगर बुरे काम की बजाए अच्छे काम ज्यादा हों तो अगला जन्म मनुष्य का ही मिलता है। अगर बुरे काम ज्यादा हों तो अगला जन्म कामों के अनुसार पषु, पक्षी, कीड़ा, मकौड़ा आदि कुछ भी हो सकता है। यह बात सही नहीं है कि चौरासी लाख योनियों में से होकर ही मनुष्य जन्म फिर से मिलता है। हमारे सामने ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहां बच्चों को अपने पूर्व के जन्म का ज्ञान है और वे पूर्व जन्म में भी मनुष्य योनि में ही थे।

दुष्प्रचार ––क्या मनुस्मृति में मांस खाने की छूट है ?

'मांसाहार और मनुस्मृति' –(साभार ––मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

उत्तर ––प्राचीन काल में भारत में मांसाहार नहीं होता था। महाभारतकाल तक भारत की व्यवस्था ऋषि मुनियों की सम्मति से वेद निर्दिष्ट नियमों से राजा की नियुक्ति होकर चली जिसमें मांसाहार सर्वथा वर्जित था। महाभारतकाल के बाद स्थिति में परिवर्तन आया। ऋषि तुल्य ज्ञानी मनुष्य होना समाप्त हो गये। ऋषि जैमिनी पर आकर ऋषि परम्परा समाप्त हो गई। उन दिनों अर्थात् मध्यकाल के तथाकथित ज्ञानियों ने शास्त्र ज्ञान से अपनी अनभिज्ञता, मांसाहार की प्रवृति अथवा किसी वेद–धर्मवेत्ता से चुनौती न मिलने के कारण अज्ञानवश वेदों के आधार पर शास्त्रों में प्रयुक्त गोमेघ, अश्वमेघ, अजामेघ व नरमेध आदि यज्ञों को विकृत कर उनमें पशुओं के मांस की आहुतियां देना आरम्भ कर दिया था।

भारत में जब विदेशी आक्रमण हुए तो यह मांसाहार भी आक्रान्ताओं के साथ आया। आक्रान्ताओं का एक कार्य भारत के लोगों का मतान्तरण या धर्मान्तरण करना भी था। अतः भारत के मांस न खाने वाले लोगों को मृत्यु का भय दिखाकर मुट्ठी भर संख्या में आये आक्रान्ताओं ने असंगठित लोगों का धर्मान्तरण करने के साथ उन्हें मांसाहारी भी बनाया। इतिहास में इन घटनाओं के समर्थक अनेक उदाहरण सुनने व पढ़ने को मिलते हैं।

मांसाहार के सन्दर्भ में वेदों में पशुओं की रक्षा करने के स्पष्ट विधान हैं। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही ''यजमानस्य पशुन् पाहि" कहकर यजमान के पशु गाय, घोड़ा, बकरी, भैंस आदि की रक्षा व हिंसा न करने की बात कही गई है। प्राचीन वैदिक परम्परा में धर्म व आचार विषयक किसी भी प्रकार की शंका होने पर वेद वचनों को ही परम प्रमाण माने जाने की परम्परा भारत में रही है जिसका समर्थन मनुस्मृति से भी होता है।

कुछ लोग ये आरोप लगाते है कि मनुस्मृति में मांसाहार का समर्थन है। लेकिन ये पूरी तरह से गलत है। मांसाहार विरोधी महाराज मनु जी का एक महत्वपूर्ण श्लोक आपके सम्मुख प्रस्तुत है –– **अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्येति घातकः॥** मनुस्मृति 5/51

इसका भावार्थ करते हुए पं. हरगेविन्द शास्त्री, व्याकरण–साहित्याचार्य–साहित्यरत्न लिखते हैं कि ''अनुमति देने वाला, शस्त्र से मरे हुए जीव के अंगों के टुकड़े–टुकड़े करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने या लाने वाला और खाने वाला यह सभी जीव वध में घातक/हिसक होते हैं।"

इस पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए वैदिक विद्वान आचार्य शिवपूजन सिंह जी लिखते हैं कि अनुमन्ता–जिसकी अनुमति के बिना उस प्राणी का वध नहीं किया जा

सकता, वह क्रय–विक्रयी वा खरीदकर बेचने वाला, मारने वाला हन्ता, धन से खरीदने वाला, धन लेकर बेचने वाला और उसमें प्रवृत्ति करने वाला तथा मांस पकाने वाला घातक वा प्राणी हिंसा करने वाले होते हैं। खरीदने (खाने) वाले तथा बेचने वाले दोनों पापभागी होते हैं। यह घातक (हिंसक) दोष शास्त्रोक्त विधि से हिंसा है। शास्त्र के विधि–निषेध उभयपदक होते हैं तथा मांस–भक्षक के लिए अन्यत्र प्रायश्चित कहा गया है।

मनुस्मृति के श्लोक 11/95 ''**"यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांस सुराऽऽसवम्। सद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः।"** में कहा गया है कि ''मद्य, मांस, सुरा और आसव ये चारों यक्ष, राक्षसों तथा पिशाचों के अन्न (भक्ष्य पदार्थ) हैं, अतएव देवताओं के हविष्य खाने वाले ब्राह्मणों को उनका भोजन (पान) नहीं करना चाहिये।"

अतः मनुस्मृति में राजर्षि मनु बता रहे हैं कि जो मनुष्य मांसाहार करता है वह राक्षस व पिशाच कोटि का मनुष्य है। ब्राह्मण व अन्य मनुष्यों का भोजन तो देवताओं को दी जाने वाली गोघृत, अन्न, ओषधि, नाना प्रकार के फल व शाकाहारी पदार्थों की आहुतियां ही हैं। हम समझते हैं कि मांसाहार का सेवन मनुष्य के आचरण से जुड़ा कार्य है। प्राणियों की हिंसा होने से इसे सदाचार कदापि नहीं कह सकते। बहुत से लोगों कि यह मिथ्या धारणा है कि मांसाहार से शारीरिक बल में वृद्धि होती है। यह मान्यता असत्य व अप्रमाणिक है। हमारे महापुरुष, राम, कृष्ण, दयानन्द, हनुमान, भीम, चन्दगीराम व अन्य अनेक शारीरिक बल में संसार में श्रेष्ठतम रहे हैं। यह सभी शाकाहारी गोदुग्ध, गोघृत, अन्न व फल आदि का सेवन ही करते थे। यह भी सर्वविदित है कि मांसाहार से अनेक प्रकार के रोगों की संभावना होती है। मनुष्य के शरीर की आकृति, इसके खाद्य व पाचन यन्त्र भी शाकाहारी प्राणियों के समान ईश्वर ने बनाये है।

मांसाहारी पशु केवल मांस ही खाते हैं, उन्हें अन्न अभीष्ट नहीं होता। यदि मनुष्य अन्न का त्याग कर पशुओं की भांति केवल मांसाहार करें तो अनुमान है कि वह अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकेंगे। अन्न खाना मनुष्य के लिए आवश्यक व अपरिहार्य है। महर्षि दयानन्द जी द्वारा गोकरुणानिधि में किया गया यह प्रश्न भी समीचीन व महत्वपूर्ण है कि जब मांसाहार के कारण सभी पशु आदि समाप्त हो जायेंगे तब क्या मांसाहारी मनुष्य मांस की प्रवृत्ति के कारण अपने आस पास के मनुष्यों को मारकर खाया करेंगे? मांसाहार करना अमनुष्योचित कार्य है। इससे मनुष्य के स्वभाव में हिंसा की प्रवृत्ति व क्रोध का प्रवेश होता है। मनुष्यों में ईश्वर ने दया व करूणा का जो गुण दिया है वह भी मांसाहार से बाधित, न्यून व समाप्त होता है। परमात्मा ने मनुष्यों के लिए प्रचुर मात्रा में अन्न व अन्य भोज्य पदार्थ बनायें हैं जो भूख वा क्षुधा को शान्त करने, बल व आरोग्य देने सहित सर्वाधिक स्वादिष्ट भी होते हैं। यह पदार्थ शीघ्र ही पच जाते हैं। शाकाहारी मनुष्य आयु की दृष्टि से भी अधिक जीते हैं। महाभारत काल में भीष्म पितामह, श्री कृष्ण व अर्जुन आदि योद्धा 120 से 180 वर्ष बीच की आयु के थे।

शाकाहारी मनुष्य शाकाहारी पशुओं के समान फुर्तीला होता है। यह मांसाहारियों से अधिक कार्य कर सकता है। यदि सभी शाकाहारी होंगे तो बल–शक्ति–आयु में अधिक होने से देश को अधिक लाभ होगा। हमें ईश्वर की वेद में की गई वेदाज्ञा का पालन करते हुए मांसाहार का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इसी में हमारी और हमारी भावी पीढ़ियों की भलाई है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. रामायण भ्रान्तियाँ और समाधान – स्वामी विद्यानंद सरस्वती
2. महाभारत
   I. श्रीमद् भागवत गीता – जयदयाल गोयनदका – गीता प्रेस, गोरखपुर
   II. श्रीमद् भागवत गीता – अनील कुमार झाँ, अजीत कुमार विसनोई– दिल्ली–110032
   III. महाभारत–रीना पुराइ – अमर चित्र कथा
   IV.महाभारत सम्पूर्ण – सबल सिंह चौहान – श्री दुर्गा पुस्तक भण्डार
3. बाल्मीकि रामायण प्रकाशक – गोविन्दशम् हासानन्द नईसड़क, दिल्ली
4. रामायण–गोस्वामी तुलसीदास – गीता प्रेस, गोरखपुर
5. अन्धविश्वास निर्मूलन – मदन रहेजा
6. डॉ0 विवेक आर्य द्वारा लिखे गये लेख
7. मनमोहन आर्य द्वारा लिखे गये लेख
8. डॉ0 मुमुक्षु आर्य द्वारा लिखे गये लेख
9. डॉ0 विजय शंकर मिश्र द्वारा लिखे गये लेख
10. डॉ सोमदेव आचार्य के लेख
11. श्री प्रियांशु सेठ के लेख
12. श्रीकान्त श्रुती पंजाब के लेख

प्रमुख वेबसाइड एवं फेसबुक

1. onlineved.com
2. www.rishimission.com
3. aryamantavya.in

4. thearyasamaj.org
5. vedrishi.com
6. https://www.blogvedicpragya.in
7. aryasmaj.org.in
8. Facebook-aaryvart
9. aryasamaj.com
10. aryasamaj.info
11. akhilbharataryasamaj.org
12. allindiaaryasamaj.com
13. Ugtabharat.com
14. Agniveer.com
15. उगता भारत

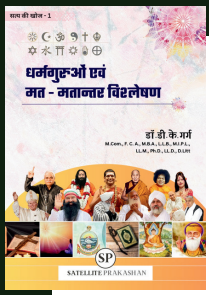


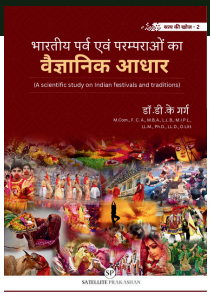
नाम : डॉ0 डी0 के0 गर्ग
(शिक्षाविद्, लेखक एवं सामाजिक कार्यकर्ता)
पिता : श्री प्रेम कुमार गर्ग
माता : श्रीमती लक्ष्मी देवी

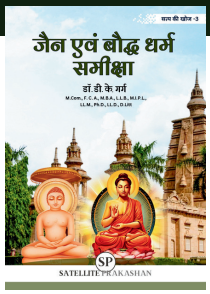
जन्म एवं स्थान	: 1 जनवरी, 1962 ,गाँव–रौनिजा, जिला–बुलंदशहर (उ.प्र.)
परिवार	: ज़मींदार और आर्यसमाजी
अकादमिक उपलब्धियाँ	: एम.कॉम., एफ.सी.ए., एल.एल.बी., एम.बी.ए., एल.एल.एम., एम.आई. पी.एल., पी.एच.डी., एल.एल.डी., डी.लिट्
पर्यवेक्षण	: लगभग 2150 रिसर्च प्रोजेक्ट्स
प्रकाशित कहानी संग्रह	: 1. फिर वही तलाश 2. यादें 3. मुआवाजा 4. निःशब्द 5. झुकीहुई डालियाँ 6. एहसास 7. तमस 8. सर्वश्रेष्ठ न्यायधीश 9. यथार्थ 10. राजधर्म 11. टिमटिमाते दीप 12. संता और एलियन 13. भगवान मिल गये 14. कोरोना 15. अनमोल रिश्ते
आयुर्वेदिक ग्रन्थ	: 1. आयुर्वेदिक वनस्पतिक संग्रह 2. स्त्री एवं पुरूष रोग निदान 3. बाल रोग निदान 4. मधुमेह समग्र 5. चर्म रोग निदान 6. दर्द निदान 7. काय चिकित्सा–1 8. काय चिकित्सा–2 9. नित्य चिकित्सा विज्ञान भाग–1 10. नित्य चिकित्सा विज्ञान भाग–2 11. Diabetes A to Z
धर्म और संस्कृति सम्बंधित	: 1. जन्म–पुर्नजन्म एवं कर्मफल रहस्य 2. रामायण एवं महाभारत एवं मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थों के प्रति भ्रातिंयॉ 3. धर्मगुरुओं एवं मत–मतान्तर विश्लेषण 4. भारतीय धर्मग्रंथों के प्रति दुष्प्रचार एवं अंधविश्वास निर्मुलन 5. धर्मग्रंथों में छिपे वास्तविक संदेश 6. भारतीय पर्व एवं परम्पराओं का वैज्ञानिक आधार 7. जैन एवं बौद्ध मत समीक्षा 8. सम्बन्ध सूत्र शतकम 9. मृत्यु सार 10. साधु और शैतान 11. धर्मांतरण का मकडजाल, 12. हिन्दू बनाम सिख धर्म 13. दैनिक जीवन में अंधविश्वास और भ्रांतियॉ 14. परमेश्वर की छॉव में 15. Science of Yajna(English book of Yagya)
पूर्व सदस्य कार्य परिषद्	: महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली : गुरू जम्बेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
अभिरुचि	: लेखन, योग, आयुर्वेद, वृक्षारोपण, सामाजिक कार्य
ई–मेल	: 120, हंसभवन, 1, बहादुर शाहजफर मार्ग, नई दिल्ली–110002 : dr.dkgarg01@gmail.com

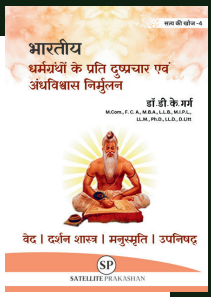
SP
SATELLITE PRAKASHAN
सैटेलाईट प्रकाशन, नई दिल्ली

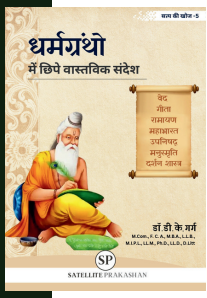
लेखक द्वारा लिखित अन्य धार्मिक पुस्तकें

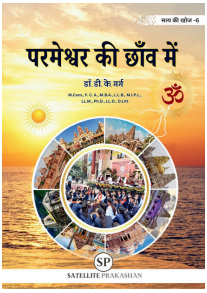


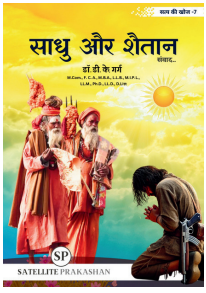


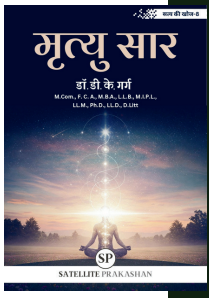


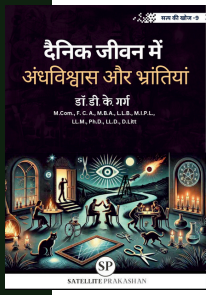


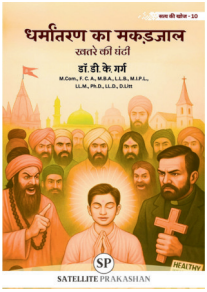


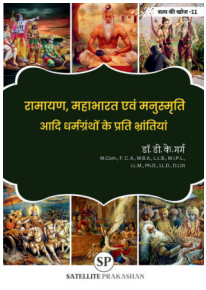


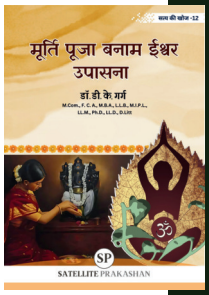


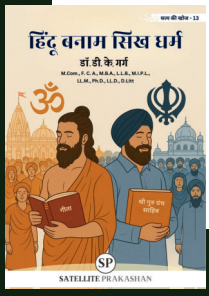


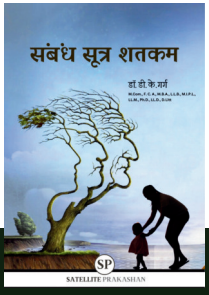


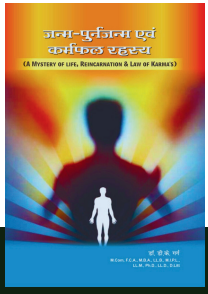


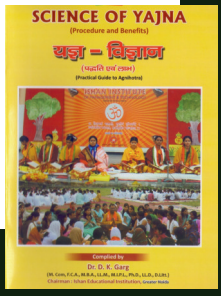












नोट: ये सभी पुस्तकें अमेजॉन (AMAZON) पर भी उपलब्ध है